**An International Multidisciplinary Refereed Research (Quarterly) Journal**
**उच्च शिक्षा से सम्बन्धित विमर्श तथा शोध का बहु-भाषीय त्रैमासिक अन्तर्राष्ट्रीय जर्नल**
**Issue-05/Vol-16/ Sept.2017** **ISSN No. 2319-5908**

# SHODH SANDARSH

Education, Literatura, History, Art, Culture, Science, Commerce etc.

An International Multidisciplinary Refereed Research (Quarterly) Journal
उच्च शिक्षा से सम्बन्धित विमर्श तथा शोध का बहु-भाषीय त्रैमासिक अन्तर्राष्ट्रीय जर्नल
Issue-05/Vol-16/Sept. 2017 ISSN No. 2319- 5908

# SHODH SANDARSH



---

Email : shodhsandarshalld@gmail.com
vijaykumarmishra1976@gmail.com
*Editorial/Managerable Office*
**Vijay Pratap Tiwari**
539-A, Bukhshi Khurd, Daraganj, Allahabad-211006
Mobile ; 09415627149, 09450586526, 09015465436
Publisher & Printer : Vagisha Prakashan, Old Jhunsi, Kohna, Jhunsi, Allahabad

# सम्पादकीय

भारत एक प्राचीन देश है, कुछ अनुमानों के अनुसार भारतीय सभ्यता लगभग 5 हजार वर्ष पुरानी है। इसलिये इसका समाज भी बहुत पुराना और जटिल प्रकृति का है। अपनी लम्बी ऐतिहासिक अवधि के दौरान, भारत बहुत से उतार-चढ़ावों और अप्रवासियों के आगमन का गवाह है; जैसे- आर्यों का आगमन, मुस्लिमों का आगमन आदि। ये लोग अपने साथ अपनी जातीय बहुरूपता और संस्कृति को लेकर आये साथ ही भारत की विविधता, समृद्धि व जीवन शक्ति में अपना योगदान दिया। इसलिये, भारतीय समाज विविध संस्कृतियों, लोगों, विश्वासों, मान्यताओं का जटिल मिश्रण है जो शायद कहीं से भी आया हो लेकिन अब इस विशाल देश का एक अभिन्न हिस्सा है। इस जटिलता और समृद्धि ने भारतीय समाज को एक जीवंत और रंगीन संस्कृति का अद्वितीय रूप दिया है।

लेकिन यही जटिलता अपने साथ बहुत सी सामाजिक समस्याओं और मुद्दों की जटिल प्रकृति को सामने लाती है। वास्तव में पूरे संसार के प्रत्येक समाज में भारतीय समाज की ही तरह अपने अलग-अलग सामाजिक मुद्दे होते हैं। भारतीय समाज बहुत गहराई से धार्मिक विश्वासों से जुड़ा हुआ है; यहाँ विभिन्न धार्मिक विश्वासों को मानने वाले लोग रहते हैं जैसे- हिन्दू, मुस्लिम, सिख, इसाई, पारसी आदि। ये सभी देश की सामाजिक-सांस्कृतिक किस्मों में जुड़ती हैं। भारतीय सामाजिक समस्यायें भी लोगों की धार्मिक प्रथाओं और विश्वासों में निहित हैं। लगभग सभी सामाजिक मुद्दों और समस्याओं की उत्पत्ति भारत के लोगों की धार्मिक और सांस्कृतिक प्रथाओं से होती हैं। ये सामाजिक समस्याएँ बहुत लम्बे समय से विकसित हुई हैं और अभी भी अलग रूप में जारी हैं।

इसके अलावा, भारत बड़े पैमाने पर बहुत से युद्धों का गवाह रहा है; बहुत से विदेशी आक्रमणकारियों ने इसके लम्बे इतिहास में भारत पर आक्रमण किया, जिनमें से कुछ ने इस देश को अपना लिया और अपने सामाजिक-धार्मिक प्रथाओं को मानने के लिये मजबूर किया जिससे सामाजिक स्थिति भी बिगड़ गयी; लम्बी अवधि के ब्रिटिश शासन ने देश को अपंग बना दिया और पिछड़ेपन की ओर फेंक दिया। इस प्रकार, बहुत से कारणों को भारत की सामाजिक समस्याओं के लिये उद्धृत किया जा सकता है लेकिन वास्तविकता ये है कि हम ये मुद्दे रखते हैं और केवल हम ही उन्हें सुलझा सकते हैं। लेकिन हम संसार में अपने देश को आधुनिक, आगे बढ़ते हुए राष्ट्र के रूप में प्रस्तुत करते हैं और ये सत्य है कि भारत दुनिया में, वैज्ञानिक, आर्थिक और तकनीकी क्षेत्र में प्रोत्साहन और उन्नति के साथ एक राष्ट्र के रूप में प्रगति कर रहा है, लेकिन जहाँ तक सामाजिक विकास का सम्बन्ध है, यह अभी भी दुनिया के सबसे कम रैंक के साथ नीचे स्तर के देशों में से एक है। भारत के मानव विकास सूचकांक (एचडीआई), 2013 की रिपोर्ट के अनुसार इसे कुल 187 देशों में से 135वाँ स्थान दिया गया है। ये भारत की सामाजिक संकेतकों में खेदजनक स्थिति को प्रदर्शित करता है। इससे ये भी दिखाई देता है कि हम आज भी रूढ़िवादी मान्यताओं, अविश्वासों के नकारात्मक दृष्टिकोण के समाज के रूप में हैं जो समानता और भाईचारे के सिद्धान्त में विश्वास नहीं करता है।

बहुत से सरकारी और गैर-सरकारी (एन.जी.ओ.) संगठन सामाजिक क्षेत्र में इस स्थिति को सुधारने के लिये कार्यरत हैं लेकिन परिणाम उत्साहवर्धक नहीं है। शायद ये समस्या देश के लोगों के विश्वासों और मान्यताओं में बहुत गहराई के साथ बैठी हुई है जो बदलाव की परिस्थितियों को स्वीकार नहीं करने दे रही है। उदाहरण के लिए : कन्याभ्रूण हत्या का मुद्दा, हमारे समाज में शर्मनाक प्रथाओं में से एक हैं। यद्यपि सरकार के बहुत से निषेधात्मक उपाय है और गैर-सरकारी

संगठनों के प्रयास भी जारी हैं। इसके लिए असली कारण हमारे देश की समाज की पितृसत्तात्मक व्यवस्था है जिसमें ये माना जाता है कि पुरुष ही श्रेष्ठ है और महिलाएँ उनकी अधीनस्थ हैं। जिसके कारण, लड़की की तुलना में लड़के की बहुत ज्यादा चाह में कन्या-भ्रूण हत्या जैसे शर्मनाक कार्य को अंजाम दिया जाता है। इस प्रकार, ये विश्वास प्रणाली या सांस्कृतिक मानसिकता वाले लोग समाज में तेजी से परिवर्तन होने में बाधा हैं।

हालाँकि, अब समाज में बहुत से सकारात्मक परिवर्तन भी हुए हैं, जैसे : अब लड़कियाँ बहुत बड़ी संख्या में स्कूल जा रही हैं और उनकी रोजगार दर में भी वृद्धि हुई है, सम्पूर्ण अशिक्षा की दर में कमी हुई है, अनुसूचित जाति व जन-जातियों की स्थिति में सुधार हुआ है आदि, लेकिन स्थिति आज भी सन्तुष्टि के स्तर से बहुत दूर है।

हम अपने घरों में ही महिलाओं के साथ हो रहे असमानता के व्यवहार के गवाह हैं, हम महिलाओं के साथ हो रही यौन हिंसा के बारे में दैनिक आधार पर सुन सकते हैं, कन्या-भ्रूण हत्या लगातार जारी है, सामुदायिक-धार्मिक हिंसा अपने उत्थान पर है, छुआ-छूत अभी भी वास्तविकता है, बाल-श्रम बड़े पैमाने पर कराया जा रहा है आदि।

अतः इन स्थितियों में सुधार के लिए और भी अधिक प्रयास करने की आवश्यकता है और लोगों के दिमाग की गहराई में बैठे हुये गलत विश्वासों, मान्यताओं व प्रथाओं को बदले बिना इन स्थितियों को सुधारना बहुत कठिन कार्य है। इस उद्देश्य के लिये सबसे उपयुक्त तरीका लोगों को विभिन्न सामाजिक समस्याओं के बारे में शिक्षित करना होगा और उन्हें अपनी सोच बदलने के लिये प्रेरित करना होगा। क्योंकि लोगों को खुद को बदलने के लिये प्रेरित किये बिना, कोई भी सरकारी या गैर-सरकारी संस्था के प्रयास आधे-अधूरे साबित होंगे। यदि हम भारत को सही में 21वीं शताब्दी का सच्चा विश्व नेता बनाना चाहते हैं तो ये अनिवार्य है कि हमें अपने सामाजिक स्तर में सुधार करने चाहिये।

**सम्पादक**

# Contents


*Page No.*

***Sanskrit Literature***

- आचार्य कौटिल्य एवं कौटिल्य नीति-*स्नेहा* 1-3

***Hindi Literature***

- सत्याग्रह : मौलिकता और आशय-*डॉ. कल्पना वर्मा* 4-5
- मानस में नैतिकता व सामाजिकता-*डॉ. सुनीता खरे* 6-8
- कुँवर नारायण के काव्य में मूल्यबोध-*डॉ. अश्वनी सिंह* 9-13
- सूरसागर में प्रयुक्त लोकोक्तियों एवं मुहावरों का 'भक्ति' के सन्दर्भ में सूक्ष्म अध्ययन-*डॉ. लता शर्मा* 14-18
- स्त्री न्याय के संदर्भ में माधवी-*डॉ. भारती सेंगर* 19-22
- तुलसी के साहित्य में लोक जागरण का अध्ययन-*डॉ. संजय कुमार* 23-27
- महावीर प्रसाद द्विवेदी : काव्य भाषा के रूप में खड़ी बोली हिन्दी की पृष्ठभूमि-*डॉ. कुसुम नेगी* 28-31
- हिन्दी उपन्यास-परम्परा में लघु उपन्यासों का अवदान-*डॉ. रजनी 'प्रताप'* 32-34
- निराला की कविताओं में शक्ति की आराधना-*अखिल मोहन* 35-38
- लोकगीतों के ऊर्जस्वी मानवेतर प्राणी-*डॉ. निधि सिन्हा* 39-45
- इतिहास बदलने की दहाड़ है - ''समय को इतिहास लिखने दो''
  असंघघोष का काव्य संकलन-*डॉ. सुनील जाधव* 46-50
- 'रामराज्य' में राष्ट्रीय एवं सांस्कृतिक पुनरुत्थान की उत्कृष्ट कल्पना-*डॉ. पूनम* 51-55
- खड़ी बोली काव्य और दक्खिनी हिन्दी-*राकेश कुमार सिंह* 56-61
- कुबेरनाथ राय के निबन्धों में राष्ट्रबोध-*राजेश कुमार* 62-63
- 'ख्वाजा, ओ मेरे पीर! : 'दाम्पत्य के 'अद्भुत' और 'जीवटपूर्ण' लय की अभिव्यक्ति-*प्रमोद कुमार यादव* 64-68
- सुमित्रानन्दन पन्त का काव्य-बिम्ब : परिचयात्मक एवं आलोचनात्मक अध्ययन-*डॉ. सत्यप्रकाश शुक्ल*69-70
- उदय प्रकाश का काव्य-वैशिष्ट्य-*सुजाता* 71-74
- सूरदास के काव्य में प्रकृति वर्णन-*डॉ. नीतू कौशल* 75-77
- संघर्ष के पथ पर राष्ट्र चिंतक-*डॉ. दिलीप कुमार अवस्थी* 78-80

***History***

- हिन्दी सिनेमा द्वारा राजस्थान लोक कथाओं का विश्लेषण-*एकता सिंह* 81-84
- 1857 की क्रान्ति में रुहेलखण्ड परिक्षेत्र की भूमिका-*अलका यादव, हरस्वरूप, अनूप कुमार* 85-89
- प्राचीन युग में भारतीय महिलाओं के कानूनी अधिकार-*ओम प्रभा* 90-93
- इतिहास लेखन की पुराणेतिहासिक परम्परा की विशेषताएँ-*डॉ. विमलेश कुमार पाण्डेय* 94-96
- महाकाव्य काल में नारी की स्थिति-*डॉ. राजीव शुक्ला* 97-98
- मौर्य एवं मौर्योत्तर कालीन रेशमी एवं क्षौम वस्त्र उद्योग-*डॉ. मनोज कुमार दुबे* 99-102
- प्रयाग परम्परा-*डॉ. अनूप कुमार* 103-105

## *Education*


- **Professional Ethic in Teacher Education-** *Dr. Girja Prasad Mishra* **106-107**
- **Exclusion by Inclusion : A Critical Review of Education for All Programme in India-** *Karunesh Kumar Pandey* **108-111**
- **इलाहाबाद जनपद के माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों की शैक्षिक रुचि पर अभिभावक प्रोत्साहन के मध्य सम्बन्ध का अध्ययन-** *अनूप कुमार यादव* **112-115**
- **जॉन डीवी के शैक्षिक विचारों की आधुनिक शैक्षिक जगत में प्रासंगिकता-** *डॉ. महेन्द्र सिंह* **116-118**
- **पूर्वी उत्तर प्रदेश में इण्टरमीडिएट स्तर पर छात्रों की व्यावसायिक वरीयताओं का अध्ययन-** *डॉ. राकेश प्रताप सिंह* **119-120**
- **बौद्धकाल में नारी शिक्षा-** *डॉ. (श्रीमती) रुचि मिश्रा* **121-122**


## *Political Science*


- **भारत-नेपाल सम्बन्ध का विकास 1960 के बाद के विशेष संदर्भ में-** *रामकृष्ण* **123-130**
- **भारत में सामाजिक न्याय और कमजोर वर्ग-** *डॉ. ब्रजेन्द्र सिंह* **131-133**
- **नरेन्द्र मोदी सरकार की लोककल्याणकारी योजनाएँ-** *डॉ. राजेश कुमार सिंह* **134-144**
- **भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन का उदय और उसके कारण-** *डॉ. प्रवीणा सिंह* **145-148**


## *Sociology*


- **भारतीय समाज में विधवाओं के युग-युगीन जीवन का अनुशीलन-** *डॉ. नीतू सिंह* **149-151**


## *Philosophy*


- **आध्यात्मिक आनन्द मोक्ष ( भारतीय दर्शन के परिप्रेक्ष्य में )-** *डॉ. सीमा शर्मा* **152-155**
- **राजनैतिक नैतिकता एवं अन्तर्राष्ट्रीय दायित्व-** *डॉ. दल सिंगार सिंह* **156-160**


## *Geography*


- **अवनलिका अपरदन का कृषि पर प्रभाव-** *शिव चरण गिरि* **161-163**
- **जलापूर्ति, समस्या एवं समाधान : जनपद जौनपुर का एक भौगोलिक विश्लेषण-** *बबिता शुक्ला* **164-174**
- **Average Slope of Chaibasa Plain Jharkhand India-** *Dr. Pawan Kumar Singh* **175-180**


## *Economics*


- **मनरेगा योजना : सोनभद्र जिले के विशेष संदर्भ में-** *डॉ. योगेन्द्र सिंह* **181-183**


## *English Literature*


- **Feminist Empiricism : A Psycho-analytic Study-** *Dr. Ram Mohan Tiwari* **184-187**
- **Woman of Present-Day-World in Namita Gokhale's Novels-** *Ankit Khare* **188-192**
- **Role of Women in the Novels of Kamla Markandaya-** *Dr. Gauravendra Vikram Singh* **193-194**


***

Sanskrit
Shodh Sandarsh-V, Vol.-XVI, Sept.-2017, Page : 1-3
ISSN No. - 2319–5908 (U.G.C. Approved Journal No. : 41329)

# आचार्य कौटिल्य एवं कौटिल्य नीति

*स्नेहा**

चाणक्य नीति भारतीय इतिहास और संस्कृति की ऐसी अनमोल निधि है, जिस पर हम भारत के नागरिक गर्व से मस्तक ऊँचा करके इस बात को कह सकते हैं कि, भारतीय दार्शनिक चिन्तक, विचारक और लेखक यूनान के विद्वानों से किसी भी तरीके से कम नहीं रहे हैं। लगभग 2400 वर्ष पूर्व तक्षशिला महाविश्वविद्यालय के आचार्य चाणक्य ने उस काल की व्यवस्था का वर्णन अपनी चाणक्य नीति में किया है, जिसके द्वारा मित्रभेद से लेकर स्त्री तक की पहचान पतिपरायण तथा चरित्रहीन स्त्रियों में विभेद राजा का कर्तव्य और जनता के अधिकारों तथा वर्ण व्यवस्था का उचित निदान हो जाता है। महापण्डित आचार्य चाणक्य की चाणक्य नीति के 17वें अध्याय हैं। वह वेदान्त द्वारा निर्दिष्ट मानव की सूक्ष्म शरीर के 17 अवयव योग, 5 प्राण, पांच ज्ञानेन्द्रियाँ, पांच कर्मेन्द्रियाँ, एक मन, एक बुद्धि के प्रतीक हैं। इस प्रकार इस ग्रन्थ के 17 अध्यायों के ज्ञान से मनुष्य के सूक्ष्म शरीर के 17 अवयवों का कल्याण होता है। महात्मा चाणक्य की एक और रचना चाणक्य सूत्र अपने आप में एक महान् ग्रन्थ है। इस रचना में आचार्य ने एक-एक सूत्र में मानो सागर में गागर भर दिया है। यह रचना न केवल भारत की भावी पीढ़ियों के लिए वरदान है बल्कि, सम्पूर्ण संसार किसी से अभिभूत है। आचार्य चाणक्य ने अपने छोटे-छोटे सूत्रों में राजा से लेकर जनसाधारण तक के लिए जैसी आचारसंहिता बनायी थी वह आचार्य चाणक्य जैसी किसी अत्यन्त निपुण व्यक्ति द्वारा ही संभव थी।

चाणक्य के सूत्रों में जो तेज दृढ़ता, साहस, आत्मविश्वास और समाज सुधार की संभावनाएँ हमें प्राप्त होती हैं, उनका कोई साक्षी नहीं है। निःसन्देह आचार्य चाणक्य का जीवन चरित्र अनुकरणीय है। विश्वबन्धुत्व का प्रथम सूत्रपात उन्होंने ही किया था। संकट को भाँप लेने की अद्भुत शक्ति थी। उनके व्यक्तित्व में कूटनीति की पराकाष्ठा थी। वह स्वार्थी आदतों से कोसों दूर रहते थे। यदि चाणक्य न होते तो चन्द्रगुप्त का नाम इतिहास के पन्नों पर कदापि न मिलता। चाणक्य अपने आप में एक इतिहास हैं। ढई गज की धोती पहनने वाले इस ब्राह्मण में अपने बुद्धि, बल से न केवल अपना संकल्प पूरा किया, बल्कि विश्वविजय का सपना देखने वाले सिकन्दर को भी चन्द्रगुप्त के हाथों करारी शिकस्त दिलवायी।

चाणक्य विश्व प्रसिद्ध ऐतिहासिक चरित्र हैं। तक्षशिला विश्वविद्यालय का आचार्य महापण्डित चाणक्य अपने समय का एक ऐसा क्रान्तिद्रष्टा विचारक और प्रबुद्ध राजनीतिज्ञ था, जो इतिहास को नया मोड़ देने की क्षमता रखता था। वह अत्यन्त दूरदर्शी और कुशाग्र बुद्धि का स्वामी था। ईसा पूर्व चौथी शताब्दी का यह काल था जब भारत के पश्चिमोत्तर इलाके से विदेशी शक्तियाँ भारत पर आक्रमण कर रही थीं, भारत की विपुल सम्पदा का लालच उन्हें यहाँ खींच रह था। उस समय भारत अनेक छोटे-छोटे राज्यों में विभक्त था। कोई भी राजा अपने पड़ोसी राजा की सहायता के लिये तैयार नहीं था। सभी अपने-अपने राज्य की सीमाओं में सिमटे अपने स्वार्थसिद्धि में ही अपनी शक्ति को नष्ट कर दे रहे थे। एक राष्ट्र की भावना को दूर-दूर तक कोई नहीं जानता था। दूसरे अर्थों में यह भी कहा जा सकता है कि राष्ट्र की भावना को कोई भी पहचानना ही नहीं चाहता था। ऐसे समय में सर्वप्रथम आचार्य चाणक्य ने भारत में एक राष्ट्र की कल्पना की है। यह बात अच्छी तरीके से समझ चुके थे कि जब तक भारत के यह छोटे-छोटे राज्य एक झंडे के नीचे नहीं आएँगे, जब तक इनके भीतर देशप्रेम की भावना का उदय नहीं होगा, जब तक यह संगठित होकर विदेशी आक्रमणकारी शस्त्र का सामना नहीं करेंगे, जब तक राष्ट्र के लिये यह प्रत्यक्ष और निजी स्वार्थ का परित्याग नहीं करेंगे, तब तक भारत की अखंडता और अस्मिता को सुरक्षित रख पाना कदापि संभव नहीं है।

भारत की स्वाधीनता के बाद विभिन्न रियासतों और रजवाड़ों को भारतीय संघ में मिलाने का जो दुष्कर कार्य सरदार वल्लभभाई पटेल ने किया था, कुछ वैसा यह दुष्कर कार्य आचार्य चाणक्य ने आज की परिस्थितियों से सर्वथा विपरीत स्थिति में तब किया था, जब यह कार्य सर्वथा असंभव समझा जाता था तब इस प्रकार की कोई कल्पना ही नहीं कर सकता था परन्तु आचार्य चाणक्य ने तब असंभव कर दिखाया। असंभव शब्द उनके कोष में आता ही नहीं था। बड़ी से बड़ी बाधा को भी आचार्य चाणक्य नगण्य समझते थे।

* *शोधछात्रा, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद*

उस समय विदेशी आक्रमणकारियों में सर्वाधिक शक्तिशाली योद्धा यूनान का राजा सिकन्दर था। सिकन्दर ने जब भारत पर आक्रमण किया तो यहाँ के कुछ देशद्रोही राजा ने अपने स्वार्थ के लिये उसका साथ दिया। परन्तु आचार्य चाणक्य ने पश्चिमोत्तर भारत के कुछ देशप्रेमी राजाओं को संगठित कर सिकन्दर को जबरदस्त टक्कर दी और चन्द्रगुप्त जैसा एक महानायक देकर अखंड भारत की नींव रख दी। चन्द्रगुप्त के नेतृत्व में उन्होंने भारत को एक झंडे के नीचे संगठित करने का एक सफल महायज्ञ सम्पन्न किया। यह उनके कुशल राजनीति का परिणाम था, कि सिकन्दर के बाद सम्राट चन्द्रगुप्त से टक्कर लेने का साहस फिर कोई आक्रमणकारी नहीं कर सका। भारत के स्वाभिमान की रक्षा में आचार्य चाणक्य इवचल चट्टान की भाँति उठ खड़े हुए थे।

आचार्य चाणक्य को कौटिल्य और विष्णुगुप्त के नाम से भी जाना जाता है। चणक का पुत्र होने के कारण उन्हें चाणक्य नाम मिला था और कुटिल राजनीतिज्ञ होने के कारण उन्हें कौटिल्य नाम से भी संबोधित किया गया। उनको पिता के द्वारा दिया गया वास्तविक नाम विष्णुगुप्त था। कुछ विद्वानों का मत है कि कुटिल गोत्र के वंशज और अर्थशास्त्र ग्रन्थ के प्रणेता होने के कारण चाणक्य को कौटिल्य कहा गया।

आचार्य चाणक्य केवल अर्थशास्त्र के ही पंडित नहीं थे, वह दूसरे शास्त्र और शस्त्र विद्याओं के बीच में पूर्ण विद्वान थे। वे कूटनीतिक योद्धा और असाधारण कोटि के कुशल नेतृत्व वाले सेनापति थे। आचार्य चाणक्य का समस्त जीवन जनकल्याण की भावना से ओतप्रोत था। वे महान् आदर्शवादी सामाजिक तथा राजनीतिक मर्यादाओं के प्रतिष्ठापक थे। विद्वानों का तो यहाँ तक मानना है कि जिन्होंने कौटिल्य के अर्थशास्त्र का अध्ययन नहीं किया वे कभी राजतंत्र का संचालन कर ही नहीं सकते थे।

आचार्य चाणक्य जीवन की एक प्रारम्भिक घटना से उनके चरित्र का बहुत सुन्दर खुलासा होता है। एक बार भी अपने शिष्यों के साथ तक्षशिला से मगध आ रहे थे, मगध का राजा महानंदन से द्वेष रखता था एक बार भरी सभा में चाणक्य का अपमान कर चुका था, तभी तो उन्होंने संकल्प कर लिया था कि वह मगध के सम्राट महापद्यमनन्द को पदच्युत करके ही अपनी शिखा में गांठ मारेंगे।

मगध पहुँचने के लिये वह सीधे मार्ग से न जाकर एक अन्य ऊबड़-खाबड़ मार्ग से अपना सफर तय कर रहे थे, तभी उनके नंगे पैर में एक कांटा चुभ गया, वह क्रोध से भर उठे, तत्काल उन्होंने अपने शिष्य से कहा उखाड़ फेंकों। इन नागफनी को एक भी शेष नहीं रहना चाहिए। उन्होंने तब उन कांटों को नहीं उखाड़ा अपितु, उनके तो वृक्ष की जड़ों को मट्ठा लाकर डाल दिया ताकि वह दोबारा न हो सकें। इस प्रकार इससे यह सिद्ध होता है कि वह अपने शत्रुओं का समूल विनाश करने में विश्वास करते थे। वह दूसरों के बनाये रास्तों पर चलने में विश्वास नहीं करते, अपने द्वारा नये मार्ग बनाने में ही उनका अपना विश्वास था।

कहा जाता है कि मगध पति धर्मनंदिनी चाणक्य के पिता चणक का वध किया था। वह राजा अत्यन्त अहंकारी था और सत्ता के नशे में चूर रहता था। प्रजा के सुख-दुख से उसे कोई लेना देना नहीं था। वह अपने ही भोग विलास में डूबा रहता था। चाणक्य ने ऐसे राज्य और राजा के वंश को मूल रूप से नष्ट करने का संकल्प लिया और अन्ततः उसको नष्ट भी कर डाला। उसे खत्म करके चाणक्य ने अपने प्रिय शिष्य चन्द्रगुप्त मौर्य को राज सिंहासन पर बैठाया। राज्य सत्ता प्राप्त करके भी उन्हें राज्य मोह कभी नहीं हुआ। राजमहलों से दूर मन में कुटी बनाकर रहने वाला यह आचार्य चन्द्रगुप्त मौर्य के शासन को सुदृढ़ करने में निरन्तर लगा रहा। उसने अपने पूर्ववर्ती चिन्तकों के ग्रन्थों और शास्त्रों का गहन अध्ययन किया। प्राचीन भारत की शासन व्यवस्था को बारीकी से समझा तथा परखा। पौराणिक ऋषि-मुनियों द्वारा स्थापित मान्यताओं और नीतियों का आकलन किया। वैदिक साहित्य में वर्णित सामाजिक व्यवस्था के गुण-अवगुण का परिशीलन किया।

जिस प्रकार गोस्वामी तुलसीदास ने नाना पुराण निगमागम समस्त आदर्श व्यवस्थाओं का एक व्यावहारिक परिशीलन करके महान ग्रन्थ रामचरित मानस की रचना की थी। उसी प्रकार चाणक्य ने अपने पूर्ववर्ती विद्वानों द्वारा स्थापित नीति सूत्रों का गहन अध्ययन किया और सम्राट चन्द्रगुप्त की शासन व्यवस्था के लिए दिशानिर्देश दिये थे। वे प्रसिद्ध ग्रन्थ अर्थशास्त्र की रचना की।

यह ग्रन्थ कौटिल्य अर्थशास्त्र के नाम से कालजयी रचना के रूप में राजनीति का महाकाव्य सिद्ध हुआ। इसलिए चाणक्य द्वारा रचित जो नीति श्लोक आज भी उपलब्ध होते हैं उनमें अधिकांशतः शुक्रनीति रामायण में वर्णित रामराज्य की नीति और महाभारत में नारद, कृष्ण, विदुर, भीष्म आदि के द्वारा जिस प्रकार की राजनीतिक व्यवस्था और राजा-प्रजा के सम्बन्धों की विस्तृत व्याख्या की गई है उसका अधिकांश अंश लेकर चाणक्य ने अपनी नीति ग्रन्थ की रचना की है। परन्तु उन्होंने नकल नहीं किया है तभी तो उनका अनुशीलन करके उन्हें युगानुरूप स्वरूप दिया है बल्कि उनका वर्तमान युग की परिस्थितियों से पूरा तालमेल स्थापित करने का भरपूर प्रयत्न किया है। प्राचीन काल में भारतीय चिन्तकों और मनीषियों ने मनुष्य जीवन की प्रत्येक भंगिमा को बहुत करीब से देखा था, उनकी प्रत्येक भावनाओं को जाँचा परखा था, और जिस प्रकार उन्हें सरलता से कंठस्थ किया जा सके उसे ध्यान में रखकर मनुष्य की भलाई के लिए उन्होंने अपने उस चिन्तन को छोटे-मोटे सरल नीति वाक्य में बाँध दिया।

महर्षि पतंजलि का योगसूत्र, नारंग के भक्तिसूत्र, वात्सायन का कामसूत्र, भरतमुनि का नाट्यशास्त्र, शुक्राचार्य की शुक्रनीति, कामंदकीय नीतिशास्त्र, धर्मसूत्र, मनुस्मृति, वैदिक साहित्य सूत्र, उपनिषद्, पुराण, संस्कृत महाकाव्य, पाणिनी की अष्टाध्यायी, शतपथ ब्राह्मण, रामायण, महाभारत, बौद्ध और जैन साहित्य आदि अति प्राचीन ग्रन्थ हैं, जिनमें सम्पूर्ण धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक जीवन की छोटी से छोटी बातों का उल्लेख प्राप्त होता है। विद्वानों का मत है कि, यह ग्रन्थ ईसा के जन्म से सैकड़ों वर्ष पहले लिखे जा चुके थे, और चाणक्य के काल से भी काफी पहले इनका प्रचुरता के साथ प्रचलन था। दरअसल इसमें कोई विभेद नहीं है कि हमारी प्राचीन राज्य व्यवस्था उतनी ही पुरानी है जितनी की हमारी सभ्यता, संस्कृति एवं हमारा धर्म। प्राचीन भारतीय साहित्य में राज्यव्यवस्था को राजधर्म राजनीति राज्यशास्त्र, दंडनीति, नीतिशास्त्र, अर्थशास्त्र आदि नामों से ही जाना जाता रहा है।

कौटिल्य ने भी अपने अर्थशास्त्र में अपने से पूर्ववर्ती अर्थशास्त्र के ज्ञाता 19 आचार्यों के नाम का उल्लेख किया है। इनके रहते हुए भी प्राचीन भारत के राज्यशास्त्रियों में चाणक्य का स्थान सर्वोपरि है। उन्हें शासनकला और कूटनीति का महान प्रतिपादक माना जाता है। कौटिल्य का अर्थशास्त्र राजनीतिशास्त्र का सबसे महत्वपूर्ण ग्रन्थ है। उनके इस ग्रन्थ में उनके नीतिवाक्य सरल संस्कृत श्लोकों और सूत्रों के रूप में बिखरे पड़े हैं।

आचार्य चाणक्य के जीवन का उद्देश्य था–जनकल्याण। इसी उद्देश्य के निमित्त उन्होंने अपने ग्रन्थों के संरक्षण की थी उनकी राजनीति सदाचार धर्म से अलग नहीं थी। आज के संदर्भ में चाणक्य की नीतियाँ उतनी ही कारगर हैं जितनी कि चाणक्य के काल में थीं। मनुष्य आज भी वही हैं जो तब था आज उसे जिस तरह की परिस्थितियों के मध्य से गुजरना पड़ रहा है उस समय भी कमोवेश कुछ ऐसी ही स्थिति है उससे दो चार होना पड़ता था। आज जिस प्रजातंत्र के मध्य हम जी रहे हैं उस समय का राजतंत्र कुछ ऐसा ही रहा होगा। चाणक्य की नीतियों से तत्कालीन समाज का स्पष्ट चित्रण हमें प्राप्त होता है। आज का प्रजातंत्र तत्कालीन राज्य तंत्र का ही बदला हुआ स्वरूप है बस आज इतनी छूट अवश्य मिली है कि देश का एक अदना सा व्यक्ति भी प्रधानमंत्री की आलोचना खुले मुख से कर सकता है, तब शायद ऐसा संभव नहीं था। परन्तु अपने ज्ञान की प्रबुद्धता से आचार्य चाणक्य जैसा व्यक्ति ही राजा को स्पष्ट चुनौती देने की क्षमता रखता था। इसी बात को ध्यान में रखकर संभवतः चाणक्य ने चंद्रगुप्त के काल में राजा और प्रजा के मध्य समन्वय का सीधा और सरल मार्ग निश्चित किया था। राजा के सम्मुख आम जनता को महत्व देकर और कूटनीति के विविध रंगों का सांगोपांग चित्रण करके चाणक्य ने सम्राट चंद्रगुप्त के राज्य को एक अत्यन्त महत्वपूर्ण आधारशिला प्रदान की थी।

चाणक्य के नीति वाक्य भले ही शब्द विन्यास में छोटे हों, पर उनमें जो भाव भरे हैं वह अत्यन्त विपुल और दूर तक प्रभावित करने वाले हैं।

## सन्दर्भ सूची

1. अर्थशास्त्र, पृ. 555-586
2. वही, प्रकरणाधिकरण विभाजन, पृ. 7
3. अर्थशास्त्र, 1/1/3, 7/115/9-11
4. दण्डीष्ट दशकुमारचरितम्, उच्छवास, 8
5. कादंबरी, बाणभट्ट
6. विष्णु शर्मा, पंचतंत्र कथामुखम्, पृ. 1,2
7. वाचस्पति गैरोला कौटिलीय अर्थशास्त्रम, भूमिका, पृ. 69
8. देवकांता शर्मा, कौटिल्य के प्रशासनिक विचार, पृ. 11
9. कौटिल्य का आर्थिक चिंतन, पृ. 2
10. डॉ. मधुसूदन त्रिपाठी, कौटिल्य का अर्थशास्त्र चिंतन, पृ. 41
11. रामावतार, विद्या भास्कर चाणक्य सूत्र संग्रह, पृ. 243
12. वाचस्पति गैरोला, अर्थशास्त्र भूमिका, पृ. 66
13. वाचस्पति गैरोला, कौटिल्य अर्थशास्त्र, प्रथम अधिकरण

***

Hindi
Shodh Sandarsh-V, Vol.-XVI, Sept.-2017, Page : 4-5
ISSN No. - 2319–5908 (U.G.C. Approved Journal No. : 41329)

# सत्याग्रह : मौलिकता और आशय

*डॉ. कल्पना वर्मा**

सत्यग्रह स्वयं में महात्मा गाँधी के पूरे सन्दर्भ को समेट कर सामने आता है। जबकि देखा जाये तो सत्य के लिए आग्रही हमारी पुरातन संस्कृति की विशेषता है। आज भी जब सब तरफ भ्रष्टाचार, आतंकवाद, हमँगाई, जातिवाद, पूँजीवाद जैसे प्रकरण अपने चरम पर हैं, सत्य की स्थापना के परिप्रेक्ष्य में सभी सक्षम दिखते हैं। सत्य एक प्रकार से सही की ओर संकेत करता है। देश को गुलामी से मुक्त कराने के लिए हुए अहिंसक आन्दोलनों में सत्याग्रह एक शस्त्र था महात्मा गाँधी का। अन्याय का विरोध करते हुए अन्यायी के प्रति वैर भावना रखना ही सत्याग्रह है। आजादी के लिए हुए संघर्षों में सत्याग्रह ने महत्वपूर्ण भूमिका निभायी थी। बिहार में चम्पारण जिले को यह सौभाग्य प्राप्त हुआ कि दक्षिण अफ्रीका से वापस आकर महात्मा गाँधी ने यहीं से सत्याग्रह आन्दोलन प्रारम्भ किया था।

सन् 1915 में महात्मा गांधी हिन्दुस्तान लौटे थे। उन्होंने गोपालकृष्ण गोखले के कहने पर एक वर्ष तक देश का दौरा किया। सन् 1916 में बिहार के नील मजदूरों के पक्ष में खड़े होकर सत्याग्रह का प्रयोग किया। यह एकदम नया और अनोखा प्रतिरोध का तरीका था। इस पर अंग्रेज हुकूमत ने उन्हें बन्दी बना लिया। महात्मा गांधी को अदालत में पेश किया गया। अदालत ने उनके ऊपर आर्थिक दण्ड लगाया। उसे देने से गांधीजी ने इन्कार कर दिया। तत्कालीन मजिस्ट्रेट हतप्रभ रह गया। उसे समझ में नहीं आया कि वह क्या करे। बाध्य होकर उसने उनका अर्थदण्ड माफ कर दिया। उस समय के तमान अकबारों ने इस नये प्रतिरोध के तरीके को महत्वपूर्ण समनाचार-पत्र में छापा। ब्रिटिस पार्लियामेंट में इस पर बहस हुई और गांधी मजदूरों के मुक्तिदाता के रूप में दुनिया में पहचाने गये।

महात्मा गांधी ने अपने इस वैकल्पिक प्रतिरोध के तरीके को दक्षिण अफ्रीका के फिनिक्स आश्रम में सन् 1906 में आविष्कृत कर लिया था। एक अहसिंक असहमति, एक निष्क्रिय प्रतिरोध की जो सामर्थ्य उन्होंने वहाँ विकसित की थी, उसका प्रयोग भारतवर्ष में सर्वप्रथम बिहार के नील मजदूरों के पक्ष में किया। भारतीय समाज बहुत दिनों से पराधीन था। उसमें प्रतिरोध की क्षमता और इच्छा लगभग समाप्त हो गयी थी। ऐसे समाज को लड़ने के लिए खड़ा करना अत्यन्क कठिन काम था। जो समाज युद्ध के लिए तत्पर नहीं हो सकता था, उसे आत्मत्याग और आत्मबलिदान के लिए खड़ा करना आसान था।

सन् 1857 में हुए व्यापक प्रथम स्वाधीनता संग्राम की हमारी कमजोरी भी यही थी कि हम बिना किसी सैनिक तैयारी के सैनिकों, मजदूरों और सामन्तों को एक साथ लेकर एक वैश्विक शक्ति के विरुद्ध भिड़ रहे थे। अंग्रेजों के पास संगठित सेना थी, अस्त्र-शस्त्र थे। उनके सम्मुख सामान्य किसान और सामान्य मजदूर अधिक देर तक टिक नहीं सकते थे। सामन्तों की अपनी राष्ट्रीय चेतना अपने राज्य की सीमाओं तक ही सीमित थी। जनता देश की बड़ी सीमाओं को समझने में अक्षम थी। बहादुरशाह जफर, जो 1857 का हमारा नायक था, उसने भी अपने मुकदमें में और तहरीर में यह कहा कि नाना फड़नवीस तथा तात्या टोपे ने हमें बन्धक बना लिया। उन्होंने ही लाल किले में अंग्रेजों की टुकड़ी का सफाया किया। इसमें मेरी कोई गलती नहीं है। अंग्रेज सरकार उनके बत्तों की तालीम का प्रबन्ध कर दे और उन्हें पेंशन दे दे। फिर वह भले ही देश पर राज्य करे, उन्हें कोई ऐतराज नहीं होगा।

झाँसी की रानी का देश केवल झाँसी के बराबर था। लक्ष्मीबाई का कहना था कि मैं अपनी झाँसी नहीं छोड़ूँगी। लक्ष्मीबाई के दत्तक पुत्र को अंग्रेजों ने उत्तराधिकारी के रूप में स्वीकार नहीं किया। अंग्रेजों का तर्क था कि जिस समय गोद लेने का अनुष्ठान हो रहा था, उस समय झाँसी के राजा कोमा में थे। यदि कोई स्वस्थचित्त न हो तो उसके द्वारा किया गया कोई भी कानूनी कार्य वैध नहीं माना जाता है और झाँसी की रानी का यह दत्तक पुत्र दत्तक कानूनों के विरुद्ध था। बीरसा मुण्डा का विद्रोह, जतरा भगत का आन्दोलन, कूका विद्रोह, संन्यासी विद्रोह–ये सब स्थानीय स्तर के विद्रोह के रूप में उभरे थे और अंग्रेजों के द्वारा नष्ट कर दिये गये।

* *अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, आर्य कन्या डिग्री कालेज, इलाहाबाद*

पहली बार महात्मा गांधी ने सत्याग्रह के द्वारा नील मजदूरों के पक्ष में खड़े होकर स्वाधीनता की इस लड़ाई को अन्तर्राष्ट्रीय जगत में औपनिवेशिक शासन के विरुद्ध चलने वाले बड़े संग्राम के साथ जोड़ा। इसकी व्याप्ति इतनी व्यापक थी कि ब्रिटिश पार्लियामेंट भी हिल गयी। इसे कुचलना आसान न था।

सत्य और अहंसा का यह व्यापक संदेश बुद्ध ने भारतीय परम्परा में अनुस्यूत किया था। बुद्ध का आन्दोलन अशोक के आने के बाद अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर व्यापक हुआ। अहिंसा की ताकत के विश्वविजयी होने की अवधारणा, जिसमें किसी को पराजित न किया जाए, पहली बार युद्ध ने ही दी थी। बिना किसी को पराजित किये, बिना किसी को अपमानित किये, बिना हिंसा का सहारा लिये विश्व विजय का जो संदेश बुद्ध और अशोक से प्राप्त हुआ था, उसका उपयोग महात्मा गांधी आधुनिक साम्राज्यवाद और औपनिवेशिक दासता से मुक्ति के लिए कर रहे थे। गांधीजी की इस पहल ने देशव्यापी लोकप्रियता प्राप्त की। नील आन्दोलन के बाद अंग्रेजों ने नमक पर टैक्स लगा दिया। गांधीजी ने यहाँ भी सत्याग्रह का उपयोग करके नमक का कानून तोड़ दिया। पूरे देश में, गाँवों में, नगरों में लोग नमक आन्दोलन में शामिल हुए।

नील का सत्याग्रह चम्पारण के एक स्थान विशेष तक सीमित था। परन्तु नमक के डांडी मार्च ने पूरे देश में प्रभाव डाला। हर आदमी उससे जुड़ने में गौरव महसूस करता था। उसी समय देश में क्रान्तिकारी आन्दोलन भी चल रहा था। क्रान्ति में जान देना और जान लेना, दोनों ही सहज-स्वाभाविक था। सामान्य आदमी असमें भागीदारी करने से बचता था। जबकि नमक सत्याग्रही होना उसके लिए आसान था। गांधीजी को आन्दोलनात्मक रूप से सत्याग्रह की यह शक्ति समझ में आयी और उन्हों इस अस्त्र को स्वाधीनता की लड़ाई से सीधे जोड़ दिया।

अंग्रेज क्रान्तिकारी आन्दोलन के हिंसक प्रतिवाद से पीड़ित थे। उन्हें गांधी से संवाद करना अधिक सुविधाजनक और सहज लगा। इस पूरे दौर में गांधी और उनकी सत्य-अहिंसा की प्रायोगिक भूमि-सत्याग्रह-ने देश के जनमानस पर अपनी व्यापक और गहरी पैठ बना ली। स्वाधीनता संग्राम में यह एक नया और अप्रत्याशित प्रयोग था, जिसमें सर्वजन की भागीदारी सुनिश्चित होती थी। लोग गांधीजी के नेतृत्व में गोलबन्द होने लगे थे। यह सत्याग्रह का ही परिणाम था कि हमें आजादी बिना खड्ग-बिना ढाल मिल गयी।

समकालीन जटिल समय में, जब आर्थिक साम्राज्यवाद का व्यापक विस्तार हो रहा है, उस समय गांधीजी के सत्याग्रह की सार्थकता समझ में आती है। आज यदि विदेशी उत्पादों का बहिष्कार कर दिया जाये, तो चीन जैसे नये आर्थिक साम्राज्यवाद से निजात पाना सम्भव है। बड़े देश जो अपने उत्पादों को हमारे देश के बाजार में खपाने पर उतारू हैं, उनके विरुद्ध भी इसका प्रयोग किया जा सकता है। आज ईरान, ईराक, सीरिया आदि देशों में जो आतंकवाद का ताण्डव चल रहा है, उससे निपटने में भी सत्याग्रह का उपयोग किया जा सकता है। आतंकवाद को शक्ति पूँजी के साम्राज्यवाद से ही मिलती है। उसे निपटने का एक ही तरीका है कि अन्तर्राष्ट्रीय पूँजीवाद के सम्मुख देशी, स्थानीय उत्पादों और उनकी विविधता को स्वीकार किया जाये। तभी ग्लोबलाइजेशन का सामना किया जा सकता है।

21वीं शताब्दी अपने जिस दौर में प्रवेश कर रही है और समाज तथा समाज की अर्थव्यवस्था जितनी क्रूर एवं जटिल हुई है, उसका प्रतिकर मानवीय सत्याग्रह से ही सम्भव लगता है। बात थोड़ी कठिन अवश्य प्रतीत होती है कि एक या कुछ लोगों के प्रतिरोध या असहयोग से क्या होगा? पर सोचने वाली बात यह है कि एक कील को हिलाने से पूरा पहिया लड़खड़ा जाता है उसी प्रकार थोड़ा सा असहयोग बड़े परिणाम भी दे सकता है। शर्त यह है कि आन्दोलन की दिशा और उद्देश्य सही हो। यहीं गांधी और उनके वाद के निरन्तर सार्थक होते जाने की सम्बावना विश्व की सीमाओं पर दिखायी भी दे रही है। गांधीजी वैसे भी किसी के प्रति शरीर-बल का प्रयोग करने के विरुद्ध थे। उन्होंने इस पर भी जोर दिया था कि विद्यार्थियों को कभी दण्ड न दिया जाए। दण्ड किसी सुधार की स्थ्यी दवा नहीं है। आज के समय में यह बात ध्यातव्य है। विद्यार्थी यदि गलत हाथों में पड़ जाता है तो उसके भटकाव के रास्ते भी खुलते जाते हैं। ऐसे में भटके हुए को दण्डित करना उसे और भी उग्र बना देता है। शान्त और सत्याग्रही उपचार पद्धति फसे अवश्य ही सोचने के लिए विवश करेगी। यही सत्याग्रह की मौलिकता है कि वह भटकाव को दिशा देता है।

## सन्दर्भ ग्रन्थ

1. मोहनदास करमचन्द गाँधी : सत्य के प्रयोग, सस्ता साहित्य मण्डल प्रकाशन, 2008.
2. मोहनदास करमचन्द गाँधी : अहिंसा और सत्य, गाँधी पीस फाउण्डेशन, नई दिल्ली, 1969.
3. नम्बूदरीवाद : गाँधी आर उनका वाद, सस्ता साहित्य प्रकाशन, पटना, 1972.
4. इण्टरनेट पर उपलब्ध सामग्री।

***

Hindi
Shodh Sandarsh-V, Vol.-XVI, Sept.-2017, Page : 6-8
ISSN No. - 2319–5908 (U.G.C. Approved Journal No. : 41329)

# मानस में नैतिकता व सामाजिकता

*डॉ. सुनीता खरे**

गोस्वामी तुलसीदास ऐसे समय में आविर्भूत हुए जब समग्र भारत देश विश्रृंखल, आदर्शहीन, कुण्ठाग्रस्त, भयाक्रान्त एवं अनास्था के द्वार पर खड़ा था। भारतीय संस्कृति का सूर्य निस्तेज, अस्तगत एवं भारतीय नागरिक पदाक्रान्त व हतप्रभ हो चुका था। समाज में सर्वत्र निराशा एवं अराजता का साम्राज्य व्याप्त हो गया था। जनसाधारण के समक्ष कोई आदर्श नहीं बचा था। विभिन्न धार्मिक सम्प्रदाय द्वन्द्व युद्ध में संलग्न थे। वर्ग विशेष अपनी चरम सीमा पर था, हिन्दू मुसलमान भी संघर्षरत थे। ऐसी विकट परिस्थिति में भारतीय समाज को एक ऐसे व्यक्तित्व की आवश्यकता थी जो उसके भग्न संतप्त हृदय को सांत्वना प्रदान कर सकें। ऐसे में श्रीरामचरित मानस की प्रासंगिकता निःसन्देह अत्यधिक है। संत शिरोमणि तुलसीदास का सम्पूर्ण जीवन रामरसामृत से आप्लावित था। वे सार्वभौम कवि थे। आदि कवि वाल्मीकि ने 'रामायण' में भगवान श्रीराम की लीला और चरित्र का जितना सूक्ष्म चित्रण किया है, युगों बाद केवल तुलसीदास ही ''श्रीरामचरितमानस'' में उतना जीवंत एवं सटीक वर्णन कर सके हैं। तुलसीदास ने वाल्मीकि के राम को अपने रामचरित मानस में जन-जन को राम बना दिया। उन्हें मर्यादा पुरुषोत्तम का स्वरूप दिया, जिनकी मर्यादा, करुणा, दया, शौर्य और साहस जैसे सद्गुणों से प्रेरित होकर हम एक अच्छा इंसान बनाने की राह पर आगे बढ़ सकते हैं।

यही कारण था कि तुलसीदास की ''श्रीरामचरित मानस'' जन-जन का कंठहार बन गई। इसकी लोकप्रियता इतनी बढ़ गई कि अन्य भाषा बोलने वाले बहुत से लोगों ने केवल मानस पढ़ने के लिये ही हिन्दी भाषा सीखी। विश्व की अनेक भाषाओं में इस ग्रन्थ का अनुवाद हो चुका है।

तुलसीदास ने अपने कृतित्व में सभी सम्प्रदायों के प्रति समन्वयकारी दृष्टिकोण अपनाकर बिखर रहे हिन्दू समाज को एकता के सूत्र में बाँधने का कार्य किया।

गोस्वामी तुलसीदास की वैचारिकता और उनके क्रियान्वयन से सामाजिक समस्याएँ निराकृत की जा सकती हैं। श्रीरामचरित मानस की भूमिका इस दृष्टि से अति महत्वपूर्ण है।

अस्पृश्यता एक सामाजिक अभिशाप है। मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम भगवान ने इसके निवारण की दशा में प्रेरक उदाहरण प्रस्तुत किये। ''मानस'' में निषाद, गीध, शबरी आदि के अनेक प्रसंग इसके प्रामाणिक उदाहरण हैं–

**करत दण्डवत देखि तेहिं, भरत लीन्ह उर लाइ।**
**मनहुँ लखन सन भेंट भइ, प्रेम न हृदय समाइ।।**[1]

यहाँ छुआछूत अथवा ऊँच-नीच का भेदभाव लेशमात्र भी नहीं है। एक ओर महाराज कोसलाधीश हैं तो दूसरी ओर अस्पृश्य गुहराज किन्तु भरत को लखन से मिलन की अनुभूति समाजवाद की पराकाष्ठा चरितार्थ करती है। इतनी ही नहीं वन पथ में श्रीराम ने स्वय शबरी के हाथों बेर भक्षण कर अस्पृश्यता उन्मूलन का आदर्श उपस्थित किया है। गोस्वामी जी क़ी दृष्टि भीलनी, नगिका, व्याध, गीध, निषाद, आभीर, किरात, यवन आदि सभी रामभक्ति के अधिकारी हैं। इससे बढ़कर सामाजिक समरसता एवं वर्गगत साम्यता और क्या हो सकती है। वस्तुतः नारी-पुरुष, ब्राह्मण-शूद्र, धनी-निर्धन आदि में जो श्रेष्ठता व हीनता की भावना है उसका मूलतः उच्छेदन करना गोस्वामीजी का परम लक्ष्य था। ब्राह्मण कुलावंतश गुरु वशिष्ठ को देखकर जब निषाद दूर से ही प्रणाम करता है उस प्रसंग में तुलसीदास ने लिखा है–

**देखि दूरि ते कहि निज नामू। कीन्ह मुनीसहिं दण्ड प्रनामू।।**
**जानि रामप्रिय दीन्ह असीसा। भरतहि कहेउ बुझाइ मुनीसा।।**

* *हिन्दी विभाग, सी.एम.पी. डिग्री कालेज, इलाहाबाद, ( उ.प्र. )*

**प्रेम पुलकि केवट कहि नामू। कीन्ह दूरि ते दण्ड प्रनामू।।**
**रामसखा रिषि बरबस भेंटा। जनु मुनि लुठत सनेह समेटा।।[2]**

तुलसी का दृष्टिकोण सर्वथा सामाजिक था! उन्होंने अपने जीवन काल में असंख्य सामाजिक असंगतियों को प्रत्यक्ष देखा, परखा और अनुभव किया। रामचरित मानस मानव जीवन की विविध समस्याओं का समाधान प्रस्तुत करता है। तुलसी का सामाजिक समन्वय आत्मसंयम की उस भूमि से प्रारम्भ होता है, जहाँ पर तनाव, विषमता आदि तो है ही नहीं और यदि है भी तो उन्हें अपने नैसर्गिक त्याग के अनुरूप कर लेने की गौरवपूर्ण सहज साधना भी है। मानस के प्रायः सभी आदर्श पात्र एक दूसरे के लिए पूर्णतया समर्पित हैं। इनमें आपसी स्वार्थों के लिए न संशय है न ही विद्वेष। राम कितने दृढ़ एवं विश्वासपूर्ण स्वरों में कहते हैं–

**भरतहिं होइ न राजमदु विधि हरिहर पद पाइ।**
**कबहुँ कि काजी सीकरनि छीर सिन्धु बिनसाइ।।[3]**

गोस्वामी जी ने मानस में पारिवारिक आदर्श उपस्थित किया है। तुलसी साहित्य में आदर्श परिवार की जो झाँकी दिखायी गयी है वह भारतीय लोकजीवन की उच्चतम प्रतिमान है। उनके स्थापित आदर्श भारतीय समाज के आधार स्तम्भ हैं जो उसे विघटन एवं अलगाववादी तत्वों से बचाये रखने में सदैव सक्षम सिद्ध होंगे।

श्रीराम के प्रति लक्ष्मण के सेवाभाव में भाई-भाई का मधुर सम्बन्ध साकार हो उठा है। जनकपुर के प्रवासकाल में भी वे परमसुख का अनुभव करते हुए अग्रज श्रीराम की सेवा में तत्पर रहे हैं। रात्रि में अनुरोध करने पर भी बिना उनके पैर दबाये वे सोये नहीं और रात्रि के अन्तिम पहर में ही उनसे पूर्व उठ जाते हैं।

**चापत चरन लखनु उर लाये। सभय प्रेम सचु पाए।**
**पुनि पुनि प्रभु कहु सोवहु ताता। पौढ़े धरि उर पद जलजाता।।**
**उठे लखन निसि गति सुनि अरुन सिखा धुनि कान।[4]**

शृंगवेरपुर में राम शैय्या दर्शन करने के बाद भरत का लक्ष्मण प्रेम कितना प्रेरणास्पद है। वे कहते हैं–

**लालन लोगु लखनु लघु लोने। मे न भई अरु अहहिं न होने।।[5]**

पति-पत्नी के आदर्श सम्बन्धों को देखने के लिए श्रीराम और सीता का चरित्र अवलोकनीय है। श्रीराम के अवध लौटने पर सीता-राम के आदर्श दाम्पत्य सम्बन्ध की एक झांकी दृष्टव्य है–

**पति अनुकूल सदा रह सीता। सोभाखानि सुशील विनीता।।**
**जानत कृपा सिन्धु प्रभुताई। सेवति चरन कमल मन लाई।।**
**जद्यपि गृह सेवक सेवकिनी। विपुल सदा सेवा विधि गुनी।।**
**निज कर गृह परिचरजा करई। रामचन्द्र आयसु अनुसरई।।[6]**

वर्तमान में गुरु-शिष्य का सम्बन्ध भी मधुर नहीं है। आज्ञापालन में आज का शिष्य उदासीन है। किन्तु रामायण काल में गुरु-शिष्य प्रेम प्रगाढ़ था जिससे आज प्रेरणा ग्रहण करने की आवश्यकता है। राम और लक्ष्मण गुरु सेवा के प्रति कितने श्रद्धावनत हैं–

**'तेइ दोउ बन्धु प्रेम जनु जीते। गुरु पद कमल पलोइत प्रीते।।[7]**

आगे भी गुरु वशिष्ठ का आगमन सुनकर श्रीराम-लक्ष्मण प्रेम विह्वल हो गुरु के श्रीचरणों में दण्डवत् प्रणाम करते हैं और गुरु भी अपने अगाध स्नेहवश उन्हें हृदय से लगा लेते हैं–

**गुरहिं देखि सानुज अनुरागे। दंड प्रनाम करन प्रभु आगे।।**
**मुनिवर धाइ लिये उर लाई। प्रेम उमगि भेटे दोउ भाई।।**

माता-पिता और गुरु ही संतान के लिए पूज्य हैं। माँ का हृदय बच्चे की पाठशाला है। उसके संस्कार से ही बच्चे में सुधार आता है। ममतामयी माँ के ममत्व की एक बूँद भी बच्चे के लिए अमृत से अधिक मधुर होती है। माता-पिता का आशीर्वाद बच्चे की लौकिक और पारलौकिक उन्नति का प्रदाता है। आजकल के बच्चों में आपने माता-पिता और गुरु के प्रति श्रद्धा भावना, कहाँ जितनी भगवान् श्रीराम में थी–

**प्रातकाल उठि के रघुनाथा। मातु-पिता गुरु नावहिं माथा।[8]**

तुलसीदास जी ने सफल पारिवारिक जीवन के लिये तीन आवश्यक तत्वों का निर्देश दिया है–(1) विवेक, (2) भक्ति, और (3) त्याग। परिवार में ज्ञान तो होना ही चाहिए साथ ही विवेक भी। भक्ति तो प्रेम और श्रद्धा का सम्मिलित रूप है। इस

अर्थ में परिवार के सदस्यों में छोटे के प्रति प्रेम और बड़ों के प्रति श्रद्धा का होना वाँछनीय है। सबसे अन्त में आवश्यक है त्याग एक दूसरे के लिए त्याग की भावना रखे। भरत जी के व्यवहार और स्वभाव में ये तीनों (विवेक, भक्ति और त्याग) थे जिसके फलस्वरूप पारिवारिक संकट तथा राज्य का संकट दोनों दूर हो सका और फिर जब श्रीराम वनवास से लौटे तो–

**राम राज बैठे त्रैलोका। हर्षित भये गये सब सोका।।**[9]

मानस से सीख मिलती है कि जानबूझकर कभी भी अपराध नहीं करना चाहिए। देवराज इन्द्र का मूर्ख पुत्र जयन्त का रूप धरकर श्री रघुनाथ का बल आँकना चाहता था। वह मूढ़ अपने मन्द बुद्धि के कारण सीताजी के चरणों में चोंच से प्रहार करके भागता है। जब रक्त बह चला तब रघुनाथजी ने धनुष और सींक का बाण रखकर संधान किया और कहा कि यदि गुरु भी अभिदान में आकर कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य का ज्ञान खो बैठे और दुष्कर्म करने लगे तो उसे भी दण्ड देना आवश्यक है। यद्यपि जयन्त का वध ही उचित था पर दयालु श्रीराम ने उसे अल्प दण्ड देकर ही मुक्त कर दिया–

**कीन्ह मोह बस द्रोह जद्यपि तेहि कर वध उचित।**
**प्रभु छाड़ेउ करि छोह को कृपाल रघुवीर सम।।**[10]

आज के युग में दण्ड और वाद-विवाद की स्थिति भयानक रूप ले चुकी है और मनुष्य प्राण हरण तक में भी नहीं चूकता। यह मानवतावादी भावना के सर्वथा विपरीत है। जिससे दूर रहने की प्रेरणा मानस से मिलती है। जाति, धर्म और सम्प्रदाय को लेकर बहुधा कलह होते रहते हैं जिससे धन-सम्पत्ति की हानि होती है। धर्म को संकीर्ण दृष्टि से देखने की प्रवृत्ति बढ़ी है। हम यह भूल चुके हैं कि मनुष्य की सेवा से ऊँचा कोई धर्म नहीं है, सबकी भलाई के लिए काम आना ही सबसे बड़ा धर्म है। सच्चा धर्म वही है जो किसी धर्म का विरोधी न हो। रामायण काल में वैष्णव और शैव मत के बीच जो पारस्परिक टकराहट की स्थिति विद्यमान थी उसे समाप्त करने में मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम की महत्वपूर्ण भूमिका है–

**औरउ एक गुपुत मत सबहिं कहौं कर जोरि।**
**शंकर भजन बिना नर भगति न पावइ मोरि।।**[11]

हमें भी जाति, धर्म और सम्प्रदाय के मतभेदों को छोड़ने की प्रेरणा श्रीराम के चरित्र से लेनी चाहिए। आज अपहरण, दुराचार, आदि की घटनाएँ सामान्य बात हैं। दुराचारियों में नैतिकता और दया का ह्रास दृष्टिगत होता है। अपने तुच्छ स्वार्थों की पूर्ति हेतु जघन्य अपराध करने में भी दुराचारी तनिक नहीं हिचकते हैं। रामायण काल में भी यद्यपि दुराचार विद्यमान था और दुराचारी रावण ने सीता का अपहरण अवश्य किया पर उसने ससम्मान अशोक वन में रखा। नारी के प्रति सम्मान की भावना उसमें थी। आज यह सम्मान की भावना लुप्तप्राय अवस्था में है। नारी की मर्यादा और अस्मिता की रक्षा करना पुरुषवर्ग का नैतिक कर्तव्य है।

ऐसे अनेक प्रसंग रामचरितमानस में हैं जो सद्प्रेरणा देने में बेजोड़ हैं और उनसे समाज में व्याप्त बुराइयों को दूर किया जा सकता है तथा एक आदर्श समाज की स्थापना की जा सकती है। इस प्रकार गोस्वामीजी ने मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम के लोकरंजक स्वरूप की कल्पना कर उनके चरित्र वर्णन द्वारा समाज को समन्वयवादी अभिनव आयाम देकर जगत् का अद्भुत अपूर्व कल्याण किया है।

## सन्दर्भ-सूची


1. रामचरित मानस : अयोध्याकाण्ड, 193 (दोहा)
2. रामचरित मानस : अयोध्याकाण्ड, 231 (दोहा)
3. रामचरित मानस : अयोध्याकाण्ड, 323, 324 के मध्य
4. रामचरित मानस : अयोध्याकाण्ड, 1/226/7-9
5. रामचरित मानस : अयोध्याकाण्ड, 2/200/1
6. रामचरित मानस : अयोध्याकाण्ड, 7/24/3-6
7. रामचरित मानस : अयोध्याकाण्ड, 1/226/2
8. रामचरित मानस : अयोध्याकाण्ड, 2/243/3-4
9. रामचरित मानस : उत्तरकाण्ड, 7/20/7
10. रामचरित मानस : अरण्यकाण्ड, 2
11. रामचरित मानस : उत्तरकाण्ड, 45 (दोहा)


***

Hindi

Shodh Sandarsh-V, Vol.-XVI, Sept.-2017, Page : 9-13
ISSN No. - 2319–5908 (U.G.C. Approved Journal No. : 41329)

# कुँवर नारायण के काव्य में मूल्यबोध

*डॉ. अश्वनी सिंह**

उत्तर आधुनिकता और भूमण्डलीकरण के इस युग में मानव जाति एक अत्यन्त कठिन दौर से गुजर रही है। सम्पूर्ण विश्व छोटे-छोटे संकीर्ण स्वार्थों से टुकड़े-टुकड़े होकर बिखर रहा है। गाँव और शहर कुछ लोगों की स्वार्थ पूर्ति के लिए विभिन्न जातियों और संप्रदायों में बँटकर बिखर रहे हैं। जीवन के शाश्वत मूल्य, आस्था, विश्वास, श्रद्धा, ईमानदारी, नैतिकता, सत्य, अहिंसा आदि बढ़ती नैतिकता और मिटती आस्था के बीच इस घोर भौतिकतावादी युग में म्यूजियम की संपत्ति बन गया है।

**मूल्य शब्द की व्युत्पत्ति :** आधुनिक भारतीय दार्शनिक विवेचना में 'मूल्य शब्द का प्रयोग अंग्रेजी के 'वैल्यू' (Value) के पर्याय के रूप में किया जाता है। लैटिन भाषा के VALERE से बना है, जिसका अर्थ है–अच्छा, सुन्दर।''[1] संज्ञा 'वैल्यू' का अर्थ वास्तविक अथवा संभावित उपयोगिता, महत्त्व या गुण के अनुसार किसी वस्तु की तुलनात्मक स्थिति एवं उसके अनुरूप अधिक दाम लगाने आदि अर्थों में प्रयुक्त किया जाता है। वैल्यू भाववाचक संज्ञा और सहायक क्रिया दोनों हैं। ऑक्सफोर्ड डिक्शनरी में इसके संज्ञावाचक अर्थ, महत्व, योग्यता, उपयोगिता, विनिमय हेतु निर्धारण किया हुआ द्रव्य, मूल्य इत्यादि होते हैं। क्रिया रूप में वैल्यू का अर्थ निर्धारण करना, महत्त्व देना, उच्च सम्मति रखना आदि है। विशेषण के रूप में 'मूल्य' शब्द का अर्थ मोल लेने योग्य है। 'यूनानी भाषा में मूल्य के लिए प्रयुक्त शब्द 'एगाओस' का अर्थ शूरमा व्यक्ति है। फ्रांसीसी भाषा में मूल्य के अर्थ में 'वालोर' का प्रयोग समानता या चरम बिन्दु को प्राप्त श्रेष्ठता के लिए होता है। इटली भाषा में इसका समानार्थी 'वेलोर' का प्रयोग महाकवि दान्ते की 'डिवाइन कॉमेडी' में श्रेष्ठता को व्यंजित करने एवं सम्मान भाव के पर्यायवाची के रूप में हुआ है।''[2] हिन्दी भाषा में 'मूल्य' संज्ञा शब्द है, श्यामसुन्दर दास द्वारा सम्पादित हिन्दी शब्द सागर में 'मूल्य के संज्ञा अर्थ के वाचक किसी वस्तु के बदले में मिलने वाला धन, दाम, कीमत आदि है और विशेषण के अर्थ में प्रतिष्ठा के योग्य, कद्र करने योग्य है।''[3] 'मूल्य' शब्द का प्रयोग संस्कृत ग्रन्थों में भी होता है।

**मूल्य : परिभाषा और स्वरूप :** मूल्य क्या है, उसका स्वरूप क्या है, इस पर विभिन्न विद्वानों ने अपनी-अपनी दृष्टियों से विचार किया है सच तो यह है कि 'मूल्य' शब्द जितना संक्षिप्त एवं सरल प्रतीत होता है, मानवीय चेतना के धरातल पर उसकी व्याख्या उतनी ही कठिन है। मूल्य-अध्ययन एक गहन चिन्तन का विषय है। मूल्य की अवधारणा में मानव के नैसर्गिक स्वभाव की केन्द्रीय भूमिका होने के कारण मूल्य के विषय में विद्वानों की समझ भी अलग-अलग रही है। विभिन्न विद्वानों ने मूल्य की विभिन्न परिभाषाएँ दी हैं। प्रो. कृष्णनाथ ने 'मूल्य' की परिभाषा के सिलसिले में शुक्रनीति की कुछ पंक्तियों को उद्धृत किया है। शुक्राचार्य ने जिन बातों को आर्थिक 'मूल्य' के सम्बन्ध में कहा है, वे काफी हद तक 'जीवन मूल्य' के लिए भी लागू हो सकती है। शुक्रनीति के अनुसार – 'जो कुछ भी अप्रतिम है, बेजोड़ है, वह रत्न जैसा ही है मूल्य देशकाल के अनुसार तय होना चाहिए। जो गुण हीन है और व्यवहार के योग्य नहीं है, उसका कोई मूल्य नहीं और जितने व्यय से मिले, उतना उसका मूल्य होता है। कामना के अनुसार–पदार्थों का मोल हीन या अधिक, कमोवेश होता है।''[4] इस व्याख्या के अनुसार 'मूल्यवान' वह वस्तु है जिसके लिए व्यक्ति को अधिक से अधिक मूल्य चुकाना पड़े।

प्रो. कृष्णनाथ ने मूल्य की परिभाषा देते हुए उपनिषदों का साक्ष्य भी दिया है–''जो है, वह तो तथ्य है और 'जो होना चाहिए' वह मूल्य कहा जाता है। 'जो होना चाहिए' के लिए उपनिषदों की परिभाषा में दो शब्द आये हैं– श्रेय या प्रेय अब अगर इन पारिभाषिक शब्दों का इस्तेमाल करें तो 'मूल्य' अन्य बातों सहित श्रेय, प्रेय है।''[5] इस विवेचन से यह अर्थ निकाला जा सकता है कि जो श्रेयस्कर है, कल्याणकारी है, वह भी मूल्य है और जो प्रीतिकर है, रुचिकर है, वह भी मूल्य है। सत्यम्, शिवम्, और सुन्दरम् की स्वीकृति भी इसी कथन को प्रमाणित करती है। मूल्य को परिभाषा के बंधन में नहीं बांधा जा सकता है। मूल्य

* *अतिथि प्रवक्ता, इलाहाबाद डिग्री कालेज, इलाहाबाद*

की विभिन्न दृष्टिकोणों से व्याख्या किया जाना ही उचित है, भारत को साहित्यशास्त्रियों, आचार्यों, दार्शनिकों, यूरोप के नीतिशास्त्रियों, यूनान के दार्शनिकों ने, मूल्यों की परिभाषा करते हुए, मूल्य विवेचना प्रवृत्त होकर जिज्ञासा एवं विचारों के अन्वेषण में मानव मन के उत्तुंग अज्ञात शिखरों तक पहुँचने तक प्रयास किया है। योगवादी, भोगवादी, व्यक्तिवादी, सामाजिक, आर्थिक, नैतिकतावादी, कलात्मक, दृष्टिकोण अपनाकर भी दार्शनिक अपनी जिज्ञासा शान्त नहीं कर सके। फलतः वे उच्च से उच्चतर मूल्यों की खोज में आगे बढ़ते गये। यही मूल्यों की विस्तृत परम्परा है, जिसे परिभाषा में सीमाबद्ध करना मानव की विचार प्रक्रिया के विकास को कुंठित करना है।

**मूल्य : हिन्दी साहित्यकारों की दृष्टि में–**कवि सुमित्रानन्दन पन्त की दृष्टि से मूल्यों का सामाजिक महत्त्व है। पंत ने मूल्यों के लिए समाज को आधार मानकर बतलाया कि मानवीय मूल्य अन्य सभी मूल्यों की अपेक्षाकृत बड़े हैं। उन्होंने लिखा है– ''जितने भी मूल्य हैं, उनकी पीठिका सिर्फ समाज हो सकता है, क्योंकि व्यक्ति का विकास समाज की दिशा में होता है। असल में प्रश्न यह है कि चाहे वे सामाजिक मूल्य हों, चाहे वैयक्तिक मूल्य हों, वे मानव मूल्य हैं या नहीं/ वे उस सत्य को वाणी देते हैं या नहीं जो कि मनुष्य का सत्य है चाहे वह व्यक्ति के रूप में हो चाहे समाज के रूप में मानवीय सत्य एक ही है।''[6] पंत जी की दृष्टि में मानवीय मूल्यों का सम्बन्ध मानवीय या मनुष्य के सत्य से है। महाकवि दिनकर के अनुसार, मानव मूल्य आचरण के सिद्धान्त है। समाज में प्रचलित नियमों और सिद्धान्तों ने सभ्यता को जन्म दिया है। यह सभ्यता मूल्यों की रचना करती है, जिनका महत्व तब तक नहीं होता जब तक वे जीवन के अंग नहीं बन जाते। वे लिखते हैं–''जो मूल्य वाणी की शोभा हैं, आचरणों के आधार नहीं, वे अगर व्यर्थ मान लिये जायँ तो इसमें आश्चर्य क्या है।''[7] दिनकर के अनुसार, मूल्य मानवीय हित से युक्त समाजव्यापी दृष्टि है। वैयक्तिक मूल्यों का गौरव तब तक नहीं आँका जाता जब तक वे सामाजिक मूल्यों से अपनी संगति नहीं बिठा लेते। उन्हीं के शब्दों में, ''मूल्य वे मान्यताएँ हैं जिन्हें मार्गदर्शक ज्योति मानकर सभ्यता चलती रहती है और जिसकी उपेक्षा करने वालों को परम्परा अनैतिक, उच्छृंखल या बागी कहती है किन्तु कभी-कभी ऐसा भी होता है कि पुराने मूल्यों को मिटाकर उनकी जगह नये मूल्यों की प्रतिष्ठा करने वाले व्यक्ति भगवान बन जाते हैं।''[8] डॉ. धर्मवीर भारती ने मानव मूल्य को आधुनिक मानवीय संकट से जोड़कर देखने का प्रयास किया है। परिस्थितियों, इतिहास क्रम और काल प्रवाह के संदर्भ में मनुष्य की स्थिति से मानवीय मूल्य उभरते हैं। ''समस्त मध्यकाल में इस निखिल सृष्टि और इतिहास क्रम का नियंता किसी मानवोपरि अलौकिक सत्ता को माना जाता था। समस्त मूल्यों का स्रोत वही था और मनुष्य की एकमात्र सार्थकता यही थी कि वह अधिक से अधिक उस सत्ता से तादात्म्य स्थापित करने की चेष्टा करे।''[9] मानवोपरि सत्ता अर्थात् ईश्वर की सत्ता का अवमूल्यन हो गया तब उसकी जगह पर मानव की सत्ता का उदय हुआ। मनुष्य ने ईश्वर का स्थान ले लिया। परिणामतः मानव मूल्यों के संदर्भ में एक मानवीय संकट अथवा सांस्कृतिक संकट उत्पन्न हो गया। जिसके मूल में आधुनिक वैज्ञानिक बुद्धिवाद अथवा भौतिकवाद अथवा वैज्ञानिक उपलब्धियों की भाग-दौड़ में लगा हुआ या युद्ध और विभाग में लिप्त संसार है। वर्तमान युग में ऐसी स्थितियाँ उत्पन्न हो चुकी हैं जिनमें अपनी नियति के, इतिहास निर्माण के सूत्र मनुष्य के हाथों में छूटे हुए लगते हैं– ''मनुष्य दिनोंदिन निरर्थकता की ओर अग्रसर होता प्रतीत होता है।''

**कुँवर नारायण के व्यवहारिक मूल्यबोध :** कवि कुँवर नारायण का मूल्यबोध उनकी कविताओं में आत्म का विस्तार है, जो वास्तव में आत्मान्वेषण और आत्म-संघर्ष की ही अगली कड़ी है। कविता अगर संवाद की इच्छा से जन्म लेती है तो वह निश्चय ही दूसरों से जुड़ने, अपने को वृहत्तर बना सकने का एक माध्यम है। इसीलिए कुँवर नारायण कहते हैं कि – ''रचनात्मकता का मेरे लिए चरम क्षण वह होता है, जब यह महसूस होता है कि जो कहना चाह रहा था, वह भरपूर अभिव्यक्त हो सका है और यह अनुभवपूर्ण तभी होता है, जब वह दूसरों तक भी उतनी ही तीव्रता से पहुँच पाता है।''[11] यों आत्म की खोज की और पहचान का मकसद दूसरों को समझने, उनके अनुभवों और विचारों में साझा कर सकने में सक्षम होना है–''अपने को ठीक से समझे बिना हम दूसरों को भी ठीक से नहीं समझ सकते।'' स्पष्ट है कि कुँवर नारायण का कवि व्यक्तित्व आत्म-मुग्ध और आत्मबद्ध नहीं है अपितु उनका मत है कि–''आत्मयुक्त होना जरूरी है। अच्छे लेखन के लिए जरूरी है कि एक लेखक व्यापक स्तर पर अपने समाज से भी जुड़े, तभी निजी का विस्तार और साधारणीकरण हो पाता है।''[12] कुँवर नारायण सांस्कृतिक, मुक्तिधर्मी और रचनात्मक दृष्टिकोण के कवि हैं। वे अतीत की विचार-सम्पदा के उत्कृष्ट और सार्थक भाग से अपना नाता जोड़ते हैं और उसके जड़ संस्कारों को अतिक्रमित करते हैं। सच्चाई को खोजने, उस पर गहरे और अविचलित हठ के आधार पर वे चुपचाप आक्रामक या विश्रृंखलित हुए बिना अपने समय की अराजकता और मूल्यहीनता का सशक्त प्रतिरोध करते हैं।

व्यावहारिक जीवन व्यक्ति एवं समाज का ठोस यथार्थ है। इच्छा, ज्ञान, कर्म, भोग, संस्कार का व्यवहारचक्र जन्म से मरण तक निरन्तर चलता रहता है। सकाम कर्म का जीवन ही व्यावहारिक जीवन है एवं उसके प्रयोजन ही उसके मूल्य हैं। कुँवर नारायण

के रचना संसार की प्रमुख संवेदना मूल्यबोध की प्रासंगिकता की तलाश और मानवीयता की पक्षधरता के आग्रह पर केन्द्रित रही है। कवि जीवन-जगत की तमाम जटिलताओं, तनावों से साक्षात् करता है साथ ही उनके विविध आशयों और उनके बीच जीते मनुष्य की मनःस्थिति को बार-बार उभारता है। कवि समय-सत्य को जीवन सत्य में परखरकर यथार्थता की अभिव्यक्ति करना चाहता है और जटिल एवं विचित्र के स्थान पर साधारण सत्य को प्राप्त करना चाहता है। साधारण सत्य का अर्थ यह कि जिन्दगी की प्रतिदिन घटित सच्चाईयाँ जिनको व्यक्ति हमेशा नकार कर चलता है। कवि उन्हीं सत्यों की बार-बार बात करता है और कहता है कि–

"मिथकों में वक्रोक्तियों में,
श्लेषों में रूपकों में
झूठ के उल्टी तरफ
क्यों इतना रास्ता चलना पड़ता है
एक साधारण सच्चाई तक भी पहुँच पाने के लिए।"[13]

कवि को समय की इस दुरूहता और भयावहता का बोध है। वह जानता है कि सत्य को लगातार खण्डित किया जा रहा है क्योंकि सत्य का मार्ग अमानवीयता का मार्ग नहीं हो सकता और यह समाज अमानवीयता की ओर धँसता चला जा रहा है। जिस परिवेश में कवि है वहाँ यह सब उसके सामने, खबरों, सूचनाओं के माध्यम से पहुँच रहा है। ये प्रश्न उस अकेले आदमी को एक ऐसी निरीहता के मुहाने पर ले जाने की कोशिश करते हैं जहाँ निराश का अनन्त जीवन अपना सिलसिला शुरू करता है–

"एक अंतिम फैसले की गुंजाइश थी
कि बाकी जीवन
पहले गीता से शुरू किया जाय?
या पहले रामायण से?"[14]

टूटने की, चरम हताशा की, पराजय की यह गहरी मनोदशा, यह प्रश्नाकुलता हमें आघात पहुँचाती हैं। ऐसे दुर्दमनीय समय में मौत के मुहाने पर धकेले जा रहे आदमी के समक्ष क्या कोई सम्भावना शेष नहीं बचती हैं? ऐसे में वह कौन होगा–"कौन है हमेशा इसकी हिम्मत नहीं केवल घुटने तोड़े जा सकें?"[15] ऐसे समय कवि उसे तलाशना चाहता रहा है जिसने इतनी अमानवीयता में भी अपनी हिम्मत नहीं टूटने दी, जिसने खड़े रहने के सारे सम्बल लुप्त हो जाने पर भी खड़े होने की जिद नहीं छोड़ी। उस कम से कम एक आदमी को कवि पाना चाहता है। स्वयं के अन्दर उसे टटोलना चाहता है। उसी आदमी को लेकर कवि के इस संघर्ष में उत्साह जाग्रत होता है। उस आदमी को कवि अपने आस-पास ढूँढ़ता है कि कल्पनाओं में उसे तलाशता है। विष्णु खरे ने कुँवर नारायण के बारे में लिखा है, "आज की दुनिया में जीने की भयावहता और सांसत को जानते हुए भी कुँवर नारायण ने अपने सेंस ऑफ ह्यूमर तथा विसंगति-विरोधाभास देखे जाने की ताकत गँवाई नहीं है, बल्कि इन्हीं सम्बलों के कारण वे इस दुनिया को ज्यादा समझ व झेल पाये हैं"[16] और इन्हीं गुणों के कारण वे यह भी समझ लेते हैं कि वर्तमान में चल रही इन विडम्बनाओं को वर्तमान के प्रत्ययों के अलावा भी जाना जा सकता है। अतः स्पष्ट है कि मनुष्यता का सतत् आग्रह मनुष्य के मूल्यनिष्ठ रुझान में विश्वास का प्रतिफलन है, जो एक गहन इतिहास विवेक से सम्बन्धित है। किसी भी समाज और राष्ट्र के लिए ये व्यावहारिक मूल्य समकालीन परिस्थितियों में महत्वपूर्ण होते हैं।

**कुँवर नारायण के रचना संसार में नैतिक मूल्यबोध–**प्रत्येक भाव एक मूल्यबोध है। मानव नित्य चैतन्य का प्रतीक होने से स्वरूपगत संभावनाओं को सम्पादित करने को तत्पर रहता है। मानव का नैतिक जीवन उसकी आत्मनिष्ठापूर्णता को चरितार्थ करने की साधना है। अतः आदर्श की संकल्पना नैतिकता का मर्म है। कुँवर नारायण के सृजन में नैतिक मूल्यबोध उनकी कालजयी कृतियों 'आत्मजयी' व 'बाजश्रवा के बहाने' में चरितार्थ है। 'आत्मजयी' में यम और नचिकेता के माध्यम से जीवनचक्र के यथार्थ बिन्दु केन्द्रीय कारक हैं। मनुष्य के जीवनप्रवाह के विभिन्न अद्वितीय गुण 'विवेक' के फलस्वरूप संभावना की सद्निरन्तरता को अनुप्राणित करते रहते हैं। सृजनशील पक्ष इसी के कारण पल्लवित होता है। मृत्युबोध मानव-जीवन के अस्तित्व के अन्तःबोध से ग्रस्त होता है अतः मृत्यु घोर चिंता का विषय बन जाती है। यदि जीवन प्रवाह में मानव सृजनशील नहीं है तो वह विवेकशीलता की आधार-शिला पर प्रतिष्ठित होने के कारण जीवन के लिए चिंतित हो जाता है क्योंकि औचित्यपूर्ण जीवन ही श्रेयस्कर है। कुँवर नारायण के अनुसार औचित्यपूर्ण जीवन का तात्पर्य "सार्थक जीना जरूरी है।"[17] एवं "यह जिज्ञासा ही हमें उन मनुष्यों

को कोटि में रखती है जिन्होंने सत्य की खोज में अपने हित को गौण माना और ऐन्द्रिय सुखों के आधार पर ही जीवन से समझौता नहीं किया बल्कि उन चरम लक्ष्यों के लिए अपना जीवन अर्पित कर दिया जो उन्हें पाने योग्य लगा।''[18]

सभ्यता एवं संस्कृति के पल्लवन के क्रम में मूल्यों की प्रतिष्ठा हुई जिनकी सार्वभौमिकता के सम्बन्ध में सदैव विवाद होते रहे हैं क्योंकि इनका स्थायित्व निरन्तरता से सम्बन्धित है जो समाज की संरचना के अनुरूप ही गतिमान रहते हैं। मनुष्यता के हितसाधन एवं व्यापकता के कारण मूल्य एक स्थायित्व बिन्दु पर प्रतिष्ठित होते हैं एवं समाज में मान्यता प्राप्त करते हैं। सामाजिक सरोकार के संदर्भ में इनमें विरोधाभास भी दृष्टिगत होता है। पाश्चात्य दार्शनिक सार्त्र के मतानुसार मानव की सत्ता अन्य वस्तुओं एवं अन्य व्यक्तियों की सत्ता से ही परिभाषित होती है, अन्य पर अपनी सत्ता स्थापित करने में उनकी चेतना एवं अस्तित्व प्रतिष्ठित होता है। भारतीय दर्शन में सहभागिता की प्रतिष्ठा है जिसमें सम्पूर्ण विश्व को एक ही ब्रह्म की सृष्टि सिद्ध किया गया है जिस पर सम्पूर्ण प्रकृति एवं मानवीय सत्ता अन्योन्याश्रित हैं। इस प्रकार भारतीय दर्शन भौतिक (यथार्थ) जीवन में मूल्यों की महत्ता को प्रतिपादित करता है। पुनर्जन्म में आस्था दृष्टिगत न होते हुए अमर जीवन मूल्यों को मानवता के शिखर बिन्दु पर प्रतिष्ठित करती है जो जीवन को सामास, श्रेयस, सार्थक सिद्ध करता है।

कुँवर नारायण के 'आत्मजयी' का दर्शन अमर जीवन मूल्य की प्रतिष्ठा करना है। कठोपनिषद् का नचिकेता पिता द्वारा शापग्रस्त होकर यम (मृत्यु) के द्वार पर जाता है परन्तु यम से अमर जीवन का वर प्राप्त कर लौट आता है। कथा क्रम में वर्णित है कि अनैतिक मूल्यों के आचरण के कारण नचिकेता अपने पिता को शाप देने के लिए बाध्य करता है। प्रभाकर श्रोत्रिय के अनुसार–''क्या किसी कृति की इससे बड़ी कोई सफलता हो सकती है कि वह ज्ञान को पूरी गंभीरता से झेलते हुए भी अनुभव में बदल सके? जातीय स्मृति को वर्तमान के फलक पर सामंजस्य और गत्यात्मकता से अन्वेषित और पुनर्सृजित कर सके? और व्यक्ति-साध्य अनुभव को अवधारणा द्वारा वृहत्तर मानव-समाज को जोड़ सके? क्या यह अन्तः प्रज्ञा का एक सुनिश्चित प्रमाण नहीं है?''[19] नचिकेता समझ चुका है–''न विन्तेन तर्पणीयो मनुष्यो।''[20] वह अमर जीवन की खोज करता है। बकौल कवि– ''कथानक का नायक नचिकेता मात्र सुखों को अस्वीकार करता है : तात्कालिक आवश्यकताओं की पूर्ति-भर ही उसके लिये पर्याप्त नहीं। उसके अन्दर वह वृहत्तर जिज्ञासा है, जिसके लिए केवल ''सुखी जीना काफी नहीं सार्थक जीना जरूरी है।''[21] कुँवर नारायण ने नचिकेता वाजश्रवा के संघर्ष में नई और पुरानी पीढ़ी के ही नहीं अपितु वैदिककालीन वस्तुवादी दृष्टिकोण और उपनिषदकालीन आध्यात्मिक दृष्टि से संघर्ष को भी मूर्त किया है जिनके प्रतीक क्रमशः वाजश्रवा व नचिकेता हैं। यदि भौतिक विकास की तुलना में आत्मविकास उपेक्षित रह जाता है तो यह असन्तुलन, आत्मघाती होगा। कवि नई पीढ़ी को समस्त पितृ-परम्परा का द्रोही नहीं वरन् गलत परम्परा का द्रोही मानता है। अतः स्पष्ट है कि कुँवर नारायण समाज और संस्कृति के क्षेत्र में किसी दी हुई प्रचलित या वर्चस्ववादी मूल्य-दृष्टि के प्रवक्ता नहीं है। न वे परम्परा की शरण में जाते हैं और न समकालीनता से विमुख हैं। कवि का भगीरथ प्रयत्न है कि बाह्य जीवन के दबाव में आत्मा धूमिल न हो और उसकी हानि न हो। जीवन से पाने की आशा पर चलनेवाला असहाय व्यक्ति नहीं अपितु जीवन को कुछ देने वाला होना चाहिए।

यदि मूल्य नहीं रह जाते तो मानव-सम्बन्ध भी विषाक्त होने से नहीं बच सकते। कुँवर नारायण प्रभु-वर्ग के 'पराक्रम', 'श्रेष्ठता' और 'विलासिता' के औचित्य को प्रश्नांकित करते हैं जो सम्पत्ति जनता-जनार्दन के अधिकारों का हनन कर अर्जित है उसमें सत्य की गरिमा नहीं है। नचिकेता उसे सुन्दर नहीं मानता, क्योंकि वह उसके अन्यायी आधार को देख लेता है। मात्र ऐन्द्रिय तृप्ति हेतु जीने वाले शासक क्षयिष्णु जीवन जीते हैं। नचिकेता ने शोषण और अत्याचार से प्राप्त समृद्धि का विरोध किया है–

''तुम्हारे इरादों में हिंसा,
संग पर रक्त।
तुम्हारे इच्छा करते ही हत्या होती है।
तुम समृद्ध होंगे
लेकिन उससे पहले
समझाओ मुझे अपने कल्याण का आधार।''[22]

इस प्रकार कवि स्पष्ट करता है कि सत्ता ही हिंसा है। यह भौतिकता के सापेक्ष आत्मिक मूल्यों की प्रतिष्ठा न आत्ममुक्ति के माध्यम से मानव-मुक्ति का प्रतिपादन है। यह विदित है कि 'आत्मजयी' एवं 'वाजश्रवा के बहाने' में कुँवर नारायण के वास्तविक जीवन के तीक्ष्ण अनुभव उनकी विचार-प्रक्रिया से मर्यादित हैं किन्तु आत्मा ही मनुष्य के समग्र नैतिक बोध के अर्थ में स्वीकार्यता ही रचना संसार का मूल्यवान प्राण पक्ष है। सांसारिक सुखों की नश्वरता का रहस्य जानकर मानव को उससे विरक्ति हो जाती

है। अतः श्रेयस् पथ का अनुसरण करना चाहिए। यही आत्म-मुक्ति है जिसके माध्यम से मानवमुक्ति की आधारशिला तैयार होती है। कुँवर नारायण की नैतिकतापूर्ण रचनाओं को आत्मवत्ता की उपलब्धि मानना न्यायसंगत है। इनके रचना-संसार में मानवमात्र के प्रति शाश्वत मूल्यों की स्थापना की प्रतिबद्धता प्रतिष्ठित की गयी है। स्वयं कोई सत्ता अपने आप में कुछ भी नहीं है क्योंकि विश्व सम्बन्धों का समुच्चय है। यदि मनुष्य मानवीय सम्बन्धों के प्रति जागरूक हो तो एक उच्चतर समाज का निर्माण कर सकता है। 'वाजश्रवा के बहाने' में कवि ने पिता-पुत्र के सम्बन्धों के बहाने, अतुलनीय मूल्य स्थापित किये हैं जिसमें प्रकृति, मनुष्य, समस्त ब्रह्माण्ड विस्तार पाकर एक इकाई के विभिन्न भाग परिलक्षित होते हैं।

अन्ततः कवि ने प्रतिपादित किया है कि नचिकेता आज के वर्तमान संकटग्रस्त जटिल स्थितियों को विश्लेषित कर सुविचारित हल प्रस्तुत कर सकता है एवं एक संतुलित समाज को साकार रूप दे सकता है। स्पष्ट है कि मूल्य स्वेच्छा से जीवन-पद्धति का अंग बनाई गयी वे विचारधाराएँ हैं जो एक ओर मनुष्य को प्रेरणा और शक्ति प्रदान करती हैं तो दूसरी ओर उसे अशुभ और अनैतिकता से बचाकर स्वस्थ मनुष्योचित आचरण की ओर अग्रसर करती है। अतः जीवन की सार्थकता इन मानव मूल्यों को स्वीकारने में निहित है।

## सन्दर्भ

1. प्रदीप कुमार सिंह (शोध-प्रबंध), पाँचवें दशक से दसवें दशक तक के पौराणिक उपन्यासों का मूल्यगत अध्ययन, पृ. 3
2. वही;
3. श्याम सुन्दर दास, हिन्दी शब्द सागर, पृ. 144
4. शुक्रनीति, 2-48/49
5. कल्पना, अप्रैल 1964, पृ. 35
6. धर्मयुग, 7 सितम्बर, 1967 पृ. 35
7. साहित्यमुखी, दिनकर, पृ. 6
8. वही, पृ. 56
9. डॉ0 धर्मवीर भारती, मानवमूल्य और साहित्य, भूमिका, पृ. 9
10. वही, भूमिका पृ. 10
11. यतीन्द्र मिश्र (संपादक), कुँवर नारायण उपस्थिति–2, पृ. 16
12. वही, पृ. 10
13. नन्द किशोर नवल, शब्द जहाँ सक्रिय है, वाणी प्रकाशन, पृ. 136
14. कुँवर नारायण, अपने सामने, पृ. 17
15. वही, पृ. 56
16. परमानन्द श्रीवास्तव, शब्द और मनुष्य, पृ. 117
17. कुँवर नारायण, आत्मजयी, पृ. 5
18. वही, पृ. 5
19. यतीन्द्र मिश्र (संपादक)–कुँवर नारायण उपस्थिति–2, पृ. 63
20. कठोपनिषद् 1/1/27
21. कुँवर नारायण, आत्मजयी, पृ. 5
22. वही, पृ. 21

***

Hindi

Shodh Sandarsh-V, Vol.-XVI, Sept.-2017, Page : 14-18
ISSN No. - 2319–5908 (U.G.C. Approved Journal No. : 41329)

# सूरसागर में प्रयुक्त लोकोक्तियों एवं मुहावरों का 'भक्ति' के सन्दर्भ में सूक्ष्म अध्ययन''

*डॉ. लता शर्मा**

'भक्ति' का सामान्य अर्थ है ईश्वर के प्रति पूर्णरूपेण समर्पण की भावना। भगवान् में सुदृढ़ और सतत् स्नेह ही भक्ति है। भक्ति के द्वारा ही जीव को मुक्ति मिलती है। भक्ति में दो तत्वों को प्रधानता दी गयी है–(1) ईश्वर के प्रति अनन्य प्रेम, (2) अन्य सांसारिक वस्तुओं से वैराग्य। सूरदास के प्रभु इतने कृपालु हैं कि संकट में धोखे से उनका नाम ले लेने मात्र से वे आतुर होकर सहायता के लिए दौड़ पड़ते हैं। शरणागत मात्र उनकी भक्ति का अधिकारी है, उसके कर्माकर्म का वे कुछ भी विचार नहीं करते, भक्ति-धर्म की व्यापकता असीम है। परन्तु भगवान की शरण में जाने के बाद मनुष्य के लिए भक्ति के अतिरिक्त और कुछ भी कर्त्तव्य नहीं रह जाता है।

**उलटा नाम जपत जगु जाना । बालमीकि भए ब्रह्म समाना ।।**[1]

श्रीमद्भागवत में भक्ति के चार प्रकार वर्णित हैं–(1) सात्विक भक्ति, (2) राजसी भक्ति, (3) तामसी भक्ति, (4) निर्गुण भक्ति।

भक्ति मानव ह्रदय में ही पल्लवित होती है। श्रद्धा और प्रेम के समन्वय से भक्ति का जन्म होता है। जब मानव ह्रदय में इन दोनों का होना पाया जाता है तभी जीव आनन्दमयी अवस्था को प्राप्त कर मुक्ति पाता है। सूर ने श्रीमद् भागवत के आधार पर ही 'सूरसागर' में भक्ति को चार रूपों में विभाजित किया है–

**1. सात्विक भावना–**सात्विक भक्ति का अर्थ है जब जीव सभी कामनाओं का परित्याग करके ईश्वर की आराधना करने लगता है। गोपियों का चित्त कृष्ण में इतना अटक गया है कि उन्हें कृष्ण के अलावा किसी पर विश्वास नहीं। सात्विक भक्ति का यही प्रमुख लक्षण है कि जीव उस भक्ति रूपी सागर में पूर्णरूपेण निमग्न हो जाता है।

**सूरदास–प्रभु सौं चित अटक्यौं, आवत नहिं इत उमहि पतीनौ।**[2]

गोपियों का मन कृष्ण में इतना लीन हो गया है कि वह कहीं भी जाने का नाम नहीं ले रहा है अर्थात् वह पूर्णरूपेण कृष्णमय हो गया है।

**2. राजसी भक्ति–**जब जीव के मन में किसी प्रकार की कामना, लालसा उत्पन्न होती है और उसकी प्राप्ति के लिए वह भक्ति करता है तब वह राजसी भक्ति कहलाती है।

कृष्ण के प्रेम करके पांडवों ने कौरवों पर विजय प्राप्त की। उनको भज कर ही उनका यश चारों ओर फैला।

**सूरदास भगवंत भजत जे, तिनकी लीक चहूँ जुग खाँची।**[3]

जीवन में आनन्द की प्राप्ति भक्ति के द्वारा ही संभव है। रावण ने भक्ति करके शिव को प्रसन्न किया। इसके फलस्वरूप उसकी नाभि में अमृत उत्पन्न हुआ। ईश्वर की कृपा के बिना शक्तिशाली भी शक्तिहीन हो जाता है। ईश्वर की भक्ति करके ही जीव को चारों फल (अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष) की प्राप्ति होती है। निम्न मुहावरा इसी को स्पष्ट करता है–

**होइ अटल जगदीश–भजन मैं, अनायास चारिहुँ फल पावै।**[4]

**3. तामसी भक्ति–**जितने भी दुर्विकार हैं उन सभी में आसक्त होकर जो भक्ति की जाती है वह तामसी कहलाती है। बड़े-बड़े शूरवीर, दुष्ट प्रवृत्ति वाले व्यक्ति जो स्वयं को ईश्वर कहते थे वे भी हरि कृपा उनके हाथों मरकर मोक्ष को प्राप्त हुए। हिरण्यकशिपु, कंस, रावण इस भक्ति के ज्वलन्त उदाहरण हैं–

**'सूर' हरि की कृपा तैं, खल तरि गए संसार।**[5]

* *हिन्दी विभाग, एस.एम.जे.एन. (पी.जी.) कालेज, हरिद्वार, उत्तराखण्ड*

**4. निर्गुण भक्ति–**निर्गुण भक्ति में उस ईश्वर के निराकार स्वरूप की आराधना की जाती है। मात्र स्मरण से ही जीवन की मुक्ति हो जाती है–

**हरि हरि हरि सुमिरौ सब कोई, बिनु हरि समुरिन मुक्ति न होई।**[6]

सूर ने भक्ति में जाति को कोई स्थान नहीं दिया है। भगवान तो मात्र प्रेम का भूखा है, उसके दरबार में कोई भेदभाव नहीं है–

**जाति-पाँति कोउ पूछत नाहीं, श्रीपति के दरबार।**[7]

सूर सगुण काव्य धारा के कवि थे। उन्होंने कृष्ण को आराध्य मानकर उनकी उपासना की। वही कृष्ण गोपियाँ जिनकी दीवानी थीं। कृष्ण के सामने मात्र प्रेम था कोई बड़ा-छोटा नहीं था। राम ने भीलनी के जूठे बेर खाये। केवट, निषाद, वानरों को अपना मित्र बनाकर निम्न जातियों को सामान्य लोगों का स्थान दिया। इसलिए भगवान ही एक ऐसा है जो सबसे ऊपर है। जाति-पाँति, ऊँच-नीच उसकी दृष्टि में सब व्यर्थ है। उसकी दृष्टि में सब एक समान हैं।

**ठकुरायत गिरिधर की साँची।**[8]

इन उपर्युक्त भक्ति वर्गों में भी भक्ति निम्न प्रकार से की जाती है–श्रद्धा, प्रेम, दास्य, सख्य।

**( 1 ) श्रद्धा–**ईश्वर में आस्था, धर्म में विश्वास तथा अपने से बड़ों के प्रति सम्मान ये सभी श्रद्धा के अन्तर्गत आते हैं। विश्वास और सत्य से ही श्रद्धा की बेल पल्लवित होती है। जब तक मनुष्य के हृदय में श्रद्धा भाव नहीं होगा तब तक वह उसको स्मरण भी नहीं करेगा। जीभ की सार्थकता हरि का नाम गाने से है। मनुष्य जीभ से बोलने का कार्य करता है। परनिन्दा, आत्म-स्तुति आदि क्रियाएँ करता है। लेकिन ये सब व्यर्थ है। वास्तविकता तो यह है कि इस जीभ की सार्थकता ईश्वर का नाम जपने में ही है।

**सोई रसना, जो हरि-गुन गावै।**[9]

वह जीव इस संसार से मुक्त होता जो निरन्तर कृष्ण ध्यान करता है। वही जीव इस संसार से मुक्त हो सकता है जो ईश्वर का भजन करता है। मनुष्य वाद-विवाद, यज्ञ तथा व्रत साधना में तथा अन्यत्र कहीं जाकर व्यर्थ में जन्म नष्ट करता है, परन्तु यदि ईश्वर के भजन में अटल हो जाये तो उनके चरणों में (ईश्वर) की सेवा करने से चाण्डाल भी श्रेष्ठ हो जाता है। कृष्ण के भजन बिना ब्राह्मण का जन्म भी व्यर्थ है।

**सोई भलौ जो रामहिं गावै।**
**स्वपचहु श्रेष्ठ होत पद सेवत, बिनु गोपाल द्विअ-जनम न भावै।**[10]

**( 2 ) प्रेम–**हर स्थान पर, हर व्यक्ति के मन में प्रेम की भावना विद्यमान रहती है। यह एक ऐसा भाव है जो जीवन में भौतिक हो या अभौतिक सभी प्रकार के सुखों की अनुभूति कराता है। इसके अभाव में मानव जीवन की कल्पना भी नहीं की जा सकती। प्रकृति भी इस प्रेम भाव को अपने भीतर संजोये रहती है। पक्षियों का कलरव, नदियों का कलकल, पुष्पों का खिलना ये सभी प्रेम की भावना के द्योतक हैं। प्रकृति के प्रत्येक कण में प्रेम फैला हुआ है। प्रेम से जीवन में पवित्रता आती है, प्रेम से जीवन में सार्थकता आती है। सम्पूर्ण सृष्टि उस ईश्वर के अधीन है किन्तु स्वयं वह हरि भी प्रेम के आधीन है।

**हरि के सब आधीन, पै हरि प्रेम आधीन।**
**याहिं ले हरि आपुहीं, याहि बड़प्पन दीन।।**[11]

कृष्ण की गोपियाँ शिक्षित नहीं थीं। उन्हें योग-जल-तप आदि का ज्ञान नहीं था। वे तो मात्र प्रेम भक्त थीं। उनके रोम-रोम में कृष्ण के प्रति प्रेम ही भरा हुआ था। संत कबीर ने भी प्रेम को ज्ञान की अपेक्षा श्रेष्ठता प्रदान की है–

**पोथी पढ़ि-पढ़ि जग मुवा, पंडित भया न कोइ।**
**एकै आखर पीव का, पढ़ै सो पंडित होइ।।**[12]

जिसने चारों वेदों का ज्ञान प्राप्त कर लिया किन्तु हरि से प्रेम नहीं किया तो उसका जीवन भी व्यर्थ है–

**चारि वेद पंडित पढ़ै, किया न हरि से हेत।**
**बालि कबीरा ले गया, पंडित ढूँढै खेत।।**[13]

मीरा के कृष्ण प्रेम से कौन अनभिज्ञ हो सकता है। मीरा तो कृष्ण के प्रेम में इतनी डूब गयी थी कि विष का प्याला भी कृष्ण का चरणामृत समझकर पी गयी। सर्वत्र अपने कृष्ण की छवि को देखने वाली मीरा के आत्मिक दर्द (पीड़ा) को कोई नहीं समझ सका। मीरा ने स्वयं कहा है–

**हेरी म्हां दरदे दीवाणी, म्हारां दरद न जाण्या कोय।**[14]

यदि ध्यान से देखा जाये तो प्रेम और भक्ति एक सिक्के के दो पहलू हैं। जहाँ प्रेम है वहीं भक्ति है और जहाँ भक्ति है वहीं प्रेम है। प्रेम के भी विभिन्न रूप हैं। स्त्री-पुरुष प्रेम, माता-पुत्र प्रेम, भाई-बहन प्रेम, प्रेमी-प्रेमिका प्रेम। ये सभी प्रेम उपादान सांसारिक मोहमाया में जकड़ने वाले हैं। मात्र ईश्वर के प्रति प्रेम भावना ही सर्वोपरि है। यही प्रेम भव बन्धन को काटने वाला है। गोपियों का कृष्ण के प्रति प्रेम था। प्रेम में इतनी शक्ति होती है कि देवताओं को भी उसके सम्मुख नतमस्तक होना पड़ता है। प्रेम के कारण ही भगवान भी भक्त के वशीभूत हो जाते हैं। प्रेम ही था जो राम ने शबरी के जूठे बेर खाये। कृष्ण ने विदुर के घर केले के छिलके खाये। कितना प्रेम भरा होगा विदुर की पत्नी के मन में जो प्रेम के सागर में इतना अधिक डूब गयी कि केले फेंक दिये और छिलके भगवान को खिलाये। भगवान ने भी उस प्रेम का मान रखते हुए छिलके ही खाये। इससे अधिक प्रेम की पराकाष्ठा और क्या हो सकती है। प्रेम के कारण भगवान भी अपने भक्त को सर्वस्व दे देते हैं। इसी प्रकार भक्त का मन भी अपने प्रभु के लिये सब कुछ समर्पण की भावना रखता है। गोपियाँ कृष्ण प्रेम में इतना डूब गईं कि अब उन्हें अपने जीवन की भी चिन्ता नहीं है।

**सूर स्वामी प्रीति कारनै सीस रहो कि जाइ।**[15]

प्रेम मनुष्य के मानवीय गुणों का परिचय देता है। पपीहा, परेवा, कुरंग प्रेम के कारण अपने प्राणों की चिन्ता नहीं करते। फिर मनुष्य तो इन सभी से सर्वोच्च है। सच्ची प्रीति मरने-जीने का विचार नहीं करती–

**प्रीति तौ मरिबौऊ न विचारै।**[16]

गोपियों के मन की दशा को वह समझ सकता है जिसने प्रेम की पीड़ा को सहन किया है। गोपियों के कृष्ण प्रेम के सम्मुख अन्य सभी सम्बन्ध फीके पड़ गये। उन्होंने कृष्ण से नाता जोड़कर अन्य सभी सम्बन्धों को समाप्त कर लिया। निम्न मुहावरा इसी भाव की अभिव्यक्ति करता है–

**मैं अपनौ मन हरि सौं जोरयौ । हरि सौं जोरि सबनि सौ तोरयौ ।।**[17]

स्वयं भगवान भी प्रेम में बँध जाते हैं। मुरली के प्रति कृष्ण का अगाध प्रेम देखकर गोपियाँ ईर्ष्या से भर जाती हैं। वे कहती हैं कि पता नहीं क्या कारण है जो कृष्ण हम गोपियों को त्यागकर इस मुरली से इतना प्रेम करते हैं जिसके कारण वे हमें भी भूल जाते हैं। हर समय मुरली को अपने अधरों से लगाये रखते हैं। क्षण भर के लिए भी अपने से अलग नहीं करते।

**सूरदास प्रभु कौ मन सजनी, बँध्यौ राग की डोरि।**[18]

लेकिन जिनको हरि से सच्ची प्रीति होती है उनके ईर्ष्या-द्वेष की भावना नहीं आनी चाहिए। सारे राग द्वेष समाप्त हो जाने चाहिए।

**मिटि गए राग द्वेष सब तिनके, जिन हरि प्रीति लगाई।**[19]

प्रेम की अधिकता ही मनुष्य के सभी विकारों को समाप्त करती है। प्रभु भी प्रेम में विवश होकर भक्त के सामने स्वयं प्रकट होते हैं। शर्त यही होती है कि वह प्रेम सरल हो।

**सूरदास प्रभु प्रेमहि के बस, संतनि दुरस दिखावे।**[20]

प्रेम स्थायी होता है। प्रेम का भाव जब एक बार हृदय में स्थापित हो जाता है तब उसके किसी भी प्रकार से समाप्त नहीं किया जा सकता। किन्तु जब मनुष्य उस प्रेम में कपट को सम्मिलित कर लेता है तब उसमें गाँठ पड़ जाती है। रहीम ने सही कहा है–

**रहिमन धागा प्रेम का मत तोड़ो छिटकाय।**
**टूटे से फिरि न मिले मिले गाँठ परि जाय।।**[21]

अंग्रेजी में एक कहावत है–Love is Blind अर्थात् प्रेम अन्धा होता है। यह कहावत इस बात की ओर संकेत करती है कि प्रेम की भावना होने पर जीव ऊँच-नीच की भावना से परे हो जाता है और जब यही प्रेम उस परम शक्तिवान के प्रति हो जाता है तो उस प्रेम के कहने ही क्या। बिना वाणी के ही बातें होने लगती हैं। राधा का कृष्ण से विवाह नहीं हुआ था और न ही कोी उनका पारिरारिक सम्बन्ध था और न राधा उनके गाँव की थी। मात्र कृष्ण राधा का प्रेम ही था जो कृष्ण रुक्मिणी के न होकर राधा के कृष्ण कहलाये। राधा के प्रेम की गहनता को तो स्वयं भगवान भी नहीं माप सकते। गोपियों का मन कृष्ण के हृदय में फँस गया। इसी कारण अन्तर की प्रीति उनसे किसी भी प्रकार तोड़ी जा रही है। गोपियाँ कृष्ण को अत्यधिक प्रेम करती हैं और हर समय उन्हें अपने समीप चाहती हैं तथा इसी कारण कृष्ण की शिकायतें लेकर यशोदा के पास जाती हैं। किन्तु यशोदा जानती हैं कि गोपियों का मन कृष्ण के प्रेम में फँस गया है–

**सूर सनेह ग्वालि मन अँटक्यौं अन्तर प्रीति जाति नहिं तोरी।**[22]

प्रेम दोगुना रंग तब लाता है जब विरह का भी समागम हो जाये। जिस प्रकार सोना आग में तपकर और अधिक शुद्ध हो जाता है उसी प्रकार प्रेम भी विरह रूपी अग्नि में और अधिक बढ़ जाता है। जिस प्रकार घड़ा अवें में अपने शरीर को जलाता है, फिर उसमें जल या दूध भरा जाता है, उसी प्रकार विरह भी प्रेम को उन्नति के शिखर पर ले जाकर उसे पूर्णता प्रदान करता है–

**ऊधौ विरैाह प्रेम करै।[23]**

जिस प्रकार बिना दुःख के सुख का अनन्द नहीं उठाया जा सकता उसी प्रकार वियोग के बिना संयोग का समुचित आनन्द नहीं लिया जा सकता। गोपियों के प्रेम की ज्वाला उस समय और अधिक उदीप्त हो जाती है जब कृष्ण मथुरा चले जाते हैं। आज भी जो गोपियों के प्रेम की प्रतिष्ठा है वह विरह के कारण ही है। जहाँ विरह नहीं होता वहाँ प्रेम भी नहीं होता।

**बिरह दुःख जहँ नाहिं नैकहुँ, तहँ न उपजै प्रेम।[24]**

**( 3 ) दास्य–**दास्य का अर्थ है दास्य की भाँति सेवा करना। जब मनुष्य स्वयं को प्रभु का दास मानने लगता है तभी दास्य भक्ति का प्रादुर्भाव होता है। तुलसी ने दास्य भक्ति को सर्वश्रेष्ठ बताया है। आत्मसमर्पण करके भक्ति करना दास्य भक्ति है। दास्य भक्ति में उपासक का भगवान के साथ सेव्य-सेवक भाव रहता है। मीरा की भक्ति इसी प्रकार थी–

**मैं तो दासी थारे चरण कँवल की, मिल बिछुरन मत कीजो जी।**
**मीरा तो सतगुरु जी सरणे, हरि चरणाँ चित्त दीजो जी।।[25]**

जिस प्रकार मछली जल से एक पल के लिए भी अलग नहीं होती और यदि होती भी है तो उसके बिना वह प्राण त्याग देती है उसी प्रकार कृष्ण के प्रेम में डूबी गोपियाँ भी उनसे एक पल के लिए भी अलग होना नहीं चाहतीं।

**'सूर' स्याम कै रंगहिं राँची, टरति नहीं जल तैं ज्यौं मीन्ही।[26]**

हमारे प्राचीन ग्रन्थों का यही सार है कि सांसारिक समुद्र को हरिचरण रूपी नौका के बिना पार नहीं किया जा सकता। सूर ने पाद-सेवा को अपनी भक्ति में ज्यादा महत्व दिया है–

**वेद, पुरान, भागवत, गीता, सब को यह मत सार।**
**भव समुद्र हरि-पद-नौका बिनु कोउ न उतारै पार।।[27]**

जिसका मन कृष्ण से लग जाता है उसे दूसरा कोई नहीं भाता। मछली को लेकर दूध में डाल दें तो भी पानी के बिना उसे सुख नहीं है।

**जाकौ मन लाग्यौ नँदलालहिं ताहि और नाहिं भावै हो।**
**जौ लै मीन दूध मैं डारै, बिनु जल नहिं सचुपावैं।।[28]**

**( 4 ) सख्य–**सख्य का अर्थ है सखा भाव। अपने आराध्य को सखा मानकर अपने सभी कष्ट उसको समर्पित कर देना या अपने मन की सब बातें उसे बता देना सख्य भक्ति कहलाता है। मित्र वही होता है जो समय पड़ने पर सहारा देता है। भगवान ने जिसकी बाँह थाम ली सोचो उसे कष्टों से मुक्ति मिल गयी।

**निबाहौं बाहँ गहे की लाज।[29]**

ईश्वर भी संकट के समय ही काम आते हैं। अपने भक्त को कष्ट में देखकर भगवान उसकी स्वयं मदद करने के लिए आते हैं।

**गोबिन्द गाढ़े दिन के मीत।[30]**

एक कहावत है जब सैंया भए कोतवाल तो डर काहे का। उसी प्रकार जिसकी सहायता कृष्ण करते हों तो उसे फिर किस बात की चिन्ता।

**जाकैं सदा सहाइ कन्हाई । ताहि कहौ काकौ डर भाई।[31]**

मित्रता में कोई बड़ा या छोटा नहीं होता। आपस में सभी अन्तर मिट जाते हैं। जहाँ मित्रता में कपट, छल, द्रोह आदि भावनाएँ समाप्त हो जाती हैं मात्र प्रेम रह जाता है वहीं सख्य भक्ति का जन्म होता है। सुदामा कृष्ण का सखा भाव सर्वविदित है। दीन-हीन सुदामा के कष्टों को दूर करके भगवान ने उन्हें समस्त सुख प्रदान किया।

## सन्दर्भ-ग्रन्थ

1. रामचरितमानस : अयोध्याकाण्ड, दोहा 164, चौपाई 4, पृ0 430.
2. सूरसागर पद सं0 2068.
3. सूरसागर पद सं0 18.
4. सूरसागर पद सं0 233.
5. सूरसागर पद सं0 3726.
6. सूरसागर पद सं0 4916.
7. सूरसागर पद सं0 231.
8. सूरसागर पद सं0 18.
9. सूरसागर पद सं0 350.
10. सूरसागर पद सं0 233.
11. रसखान रचनावली संपा0 विद्यानिवास मिश्र, सत्यदेव मिश्र, पृ0 120, दोहा 36.
12. कबीर वाङ्मय खंड (3) डॉ. जयदेव सिंह, डॉ. वासुदेव सिंह, पृ0 169, साखी 4
13. कबीर वाङ्मय खंड (3) डॉ. जयदेव सिंह, डॉ. वासुदेव सिंह, पृ0 161, साखी 9
14. मीराबाई और उनकी पदावली : प्रो0 देशराज सिंह भाटी, पृ0 267, पद सं0 96.
15. सूरसागर पद सं0 2266.
16. सूरसागर पद सं0 3908.
17. सूरसागर पद सं0 2279.
18. सूरसागर पद सं0 1275.
19. सूरसागर पद सं0 318.
20. सूरसागर पद सं0 1011.
21. रहीम ग्रन्थावली : संपा0 विद्यानिवास मिश्र, गोविन्द रजनीश, पृ0 99, दोहा 212.
22. सूरसागर पद सं0 923.
23. सूरसागर पद सं0 4603.
24. सूरसागर पद सं0 4031.
25. मीराबाई और उनकी पदावली : प्रो0 देशराज सिंह भाटी, पृ0 312, पद सं0 142.
26. सूरसागर पद सं0 2476.
27. सूरसागर पद सं0 68.
28. सूरसागर पद सं0 353.
29. सूरसागर पद सं0 255.
30. सूरसागर पद सं0 31.
31. सूरसागर पद सं0 1217.

***

Hindi

Shodh Sandarsh-V, Vol.-XVI, Sept.-2017, Page :19-22

ISSN No. - 2319–5908 (U.G.C. Approved Journal No. : 41329)

# स्त्री न्याय के सन्दर्भ में माधवी

*डॉ. भारती सेंगर**

**तुम्हारे डैनों ने**
**न जाने कैसे/साथ उड़ने के बहाने**
**मेरे ही पर/हर लिए**
**अब इन अपंग/अँधेरी गुफाओं में**
**कौन सा आकाश/लाऊँ?**[1]

उपर्युक्त पंक्तियाँ नारी मुक्ति की विवशता का बोध कराती हैं। पुरुष के समक्ष नारी की चेतना स्वयं के लिए एक आकाश ढूँढ़ना चाहती है जहाँ उसकी 'उड़ान' अबाध गति से पूर्ण हो सके। समकालीन कविता में लगभग सभी कवियित्रियाँ नारी के स्वत्व की पक्षधरता करती हुई दिखती हैं। स्त्री मुक्ति आन्दोलन एवं स्त्रीवादी चेतना का प्रभाव विश्व भर की महिला साहित्यकारों में देखा जा सकता है। पुरुष लेखन के वर्चस्व के समक्ष यह महिलाएँ अपने लेखन में उनके समानान्तर खड़ी दिखायी देती हैं। स्त्री से सम्बन्धित प्रश्न उठाते समय इन्होंने अपने अतीत को गहनता से टटोला है। जहाँ महिलाओं के प्रति हुए अत्याचारों एवं अन्यायों की महागाथाओं ने उन्हें विचलित ही नहीं किया, अपितु एक नई ऊर्जा भी प्रदान की। पुरुष प्रधान समाज की रूढ़ियों एवं परम्पराओं से टकराने की ताकत रखती इनकी कविता पौराणिक एवं ऐतिहासिक महिलाओं के उद्धरण देती है जिनको सम्भवतः हमारे समाज ने उस न्याय से कोसों दूर रखा जिसकी वह वस्तुतः हकदार थी। किसी भी युग अथवा काल में नारी की जटिलताएँ एवं अवमानताएँ एक सी रहती हैं। पीड़ा देने की व सहने की परिस्थितियाँ एक सी रहती हैं। सत्य तो यह है कि आदिकाल से अद्तन कालचक्र के वृत्त में घूमती न्याय की सुई जिस बिन्दु पर अटकती है उसे हम 'स्त्री के प्रति अन्याय' कह सकते हैं। भारतीय राजनीति में अनेक दिग्गज न्यायप्रिय शासक हुए हैं, जिन्हें न्याय के किस्से प्रबुद्धों की पोथियों से लेकर चौपालों तक में पढ़े जाते हैं। समय-असमय गुहार लगाने वाले को न्याय मिला है, देर सबेर, किन्तु जिसे गृहस्थ जीवन की 'धुरी' बताया गया वह न्याय की पंक्ति से ही निष्कासित कर दी गयी। आज भी न्यायालयों में न्याय की देवी की आँखों पर पट्टी बँधी है जिससे उसकी न्याय तुला कभी भी स्त्री के पक्ष में भारी नहीं हुई क्यों? पुरुषाधिष्ठित समाज के चतुर कारीगरों ने जो मूर्ति गढ़ी है, उसे जानबूझकर स्त्री को विमोहित अथवा भ्रमित अथवा दुनिया की दृष्टि में न्याय का डंका बजाने की कुशब साजिश है। जिससे उसकी गवाही नहीं दे सकती क्योंकि यह वही समाज है जिसमें नारी की विशेषता उसकी 'जुबानहीन' होने में है। यदि वह सत्य की अभिव्यक्ति के लिए मुँह खोलती भी है तो गार्गी की भाँति भरी सभा में उसे चुप रहने के लिए धमकी दी जाती है। ऐसे याज्ञवल्कि आज भी स्त्री के मुँह खोलने पर बर्बरतापूर्वक सिर के टुकड़े-टुकड़े करने की धमकियाँ देते हैं। "नारी शोषण पर विचार करें तो हम देख पाते हैं कि स्त्री के विपक्ष में मात्र एक मामूली पुरुष नहीं है अपितु उसे पिछड़ी समझने वाली सामाजिक, सांस्कृतिक दृष्टि का प्रेरक 'पुरुष स्वत्व' है, जिसको उच्च वर्गीय मूल्यों में रमने वाले अधिकार केन्द्रीकरण के प्रकरण में देखता पड़ता है।[2] स्त्री स्वत्व पर विमर्श करने पर अनायास ही उस न्याय के प्रति उँगली उठायी जाती है जिससे यशोगान में वेद, उपनिषद्, शास्त्र, पुराण भरे पड़े हैं। "स्त्री स्वत्व को हमारे समाज ने स्वीकार किया है तो वह उपभोग के सन्दर्भ में है। उपभोग के सन्दर्भ में वह इतनी उदात्त हो जाती है, मोहकता का शिखर बन जाती है कि वह सर्व स्वीकार्य हो जाती है। लेकिन तब भी यह देखा जा सकता है कि स्त्री की मोहकता के वर्णन चातुर्य की पृष्ठभूमि में उसके शारीरिक स्वत्व को ही स्वीकार्य समझा गया है, जिसमें यौवन कूट-कूट कर भरा पड़ा है।"[3] हमारे साहित्य में भी स्त्री सान्निध्य प्रचुरता से रहा है। नख-शिख वर्णन में उसके अंग-प्रत्यंगों का रसात्मक सूक्ष्म वर्णन उसके प्रति पुरुष की कामुक प्रवृत्तियों का ही द्योतक है। "विरह की आग में जलते समय भी स्त्री के अंग

* प्रवक्ता (हिन्दी), राजकीय बालिका इण्टर कालेज, फूलपुर, इलाहाबाद

लावण्य का वर्णन अनिवार्य था। भाव साधन रहा, साध्य था शरीर। अधिकार की विस्मृति के साथ कलाओं का व्यापक विकास हुआ और कला साहित्य के केन्द्र में स्त्री शरीर को रखा गया। उसको अनेक कोणों से देखा गया।''[4] एक कटु सत्य यह भी है कि स्त्री शरीर के भरपूर उपभोग का प्रावधान भी उस समय रहा है। भद्र समाज में उसकी स्वीकृति रही। भद्र समाज में एक ओर अन्तःपुर की संस्कृति थी जहाँ बहुपत्नी-प्रथा रही दूसरी तरफ इन तमाम बंधुओं के होते हुए भी नृत्यशालाओं या नाट्यशालाओं में थिरकती नगरबधुओं के साथ का संबंध भी वैध था। पुरुष ने इस प्रकार के अपने मूल्यों का एक मजबूत किला बनाया, जिसके अनेकानेक अदृश्य गलियारे थे, जिनमें दीर्घकाल तक के लिए 'स्त्री स्वत्व' भटकने के लिए छोड़ दिया गया। आज भी उसके प्रति पुरुष के संकीर्ण दृष्टिकोण ज्यों के त्यों विद्यमान हैं। जब हम भारतीय न्याय पद्धति अथवा विश्व की किसी भी सभ्यता की नैतिकता का विश्लेषण करते हैं तो सर्वप्रथम स्त्रियों पर अन्धाधुन्ध हो रहे शोषण पर दृष्टि जाती है। भारतीय समाज में स्त्री सदैव दोयम दर्जे की सदस्यता रही है। यदि स्त्री, नर-नारी की जीवन-गाड़ी का दूसरा पहिया थी तो इतनी कमजोर और लाचार क्यों बना दी गयी? क्या स्त्री शरीर तक ही सारे न्याय-अन्याय का अस्तित्व रहा? न्याय किसके साथ हुआ? सीता के साथ? द्रोपदी के साथ? शकुन्तला के साथ? कुन्ती के साथ? अहिल्या के साथ? या किसी भी स्त्री के साथ? आज तक। 'कुन्ती का आरोप' शीर्षक स्नेहमयी चौधरी की कविता दृष्टव्य है–

**वंश परम्परा को चलाने वाले/तीन**
**पुत्र मैंने**
**दो पुत्र माद्री ने उत्पन्न किये**
**उनको देती रही माता**
**जिन पुरुषों के वे बीज थे**
**उनसे बिना प्रेम किये**
**तटस्थ भाव से उत्पन्न करना पुत्र**
**मशीन ही माना था मुझे पाण्डु ने**[5]

हम पौराणिक स्त्रियों का उल्लेख इसलिए कर रहे हैं कि जब हमारी सभ्यता का आरम्भ ही संदेहास्पद है तो अन्य या उसका मध्य कैसा हो सकता है? रामायण तथा महाभारत काल में एक नहीं अनेक महिलाएँ 'न्याय' के दरबार में निराद्रित निष्कासित की गयीं। जिसमें 'महाभारत' उद्योगपर्व में वर्णित ययाति पुत्री 'माधवी' एक है। वह भी तटस्थता का शिकार बनी कहती है–

**पिता नहीं मेरा उसको/कुल की रक्षा करनी थी**
**विप्र बेचारा भिक्षुक था/उसको बस मैं भिक्षा थी**
**नृप थे/शुक्राणुकोष बस पुत्र लोभ में लोलुप थे**

**हुई तापसी/उसी निमिष मैं**
**तन से मन/विच्छिन्न हुआ**
**माँगा था वंश/नरपतियों ने**
**मुझको मांगा/कहो कहाँ?**[6]

यह एक ऐसी दयनीय उपेक्षित निर्दोष पात्र है जिसके स्वत्व को वस्तु की भाँति नीलाम किया गया। पुरुष की निर्ममवृत्तियों ने उसके अस्तित्व को ही छिन्न-भिन्न कर दिया और न्याय की मूक वाणी आज तक किसी पुरुष लेखनी से मुखर नहीं हो सकी। पुरुषवर्चस्व के समक्ष स्त्री स्वत्व निरीह होकर इतने यन्त्रणागृहों से गुजरा है जिसके विश्लेषण पर 'न्याय' के दरबार में सन्नाटा छा जाता है। यह पौरुषपूर्ण समय उसी भाँति चुप्पी साध लेता है जिस भाँति भरे दरबार में एक स्त्री के लज्जावसन का हरण कर निर्वसन किये जाने पर भी उसके पाँच-पाँच पति गर्दन नीची कर लेते हैं? पाँच पुरुषों के बीच एक स्त्री का वस्तु की भाँति बँटवारा कहाँ का न्याय है? उस पर भी उन पुरुषों में एक धर्मराज सम्मिलित हो? उस स्त्री ने कितनी भी किसी राजपुरुष की भर्त्सना की हो, क्या दण्ड स्वरूप उसे भरे दरबार में नंगा करना न्याय था? कृष्ण द्वारा लज्जा संरक्षित करने हेतु बढ़ाये गये वस्त्र को भी यह पुरुष समाज इस तर्क से 'ईश्वर' बनाकर उस स्त्री के एहसान से मुक्त करता है कि कभी उसने भी कृष्ण को कोई वस्त्र प्रदान किया था और उसका बदला उन्होंने चुका दिया। यदि वह स्त्री वस्त्र ने देती तो क्या कृष्ण भी उसकी लज्जा

का संरक्षण करते? कई स्त्रियाँ हमारी 'न्याय' व्यवस्था पर प्रश्न चिन्ह लगाती हैं। माधवी उसमें अधिक दयनीय है। माधवी की कथा-व्यथा पढ़ते-पढ़ते स्त्री स्वत्व के साथ हुए अन्याय में सन्धि महिलाओं के रूप में कुन्ती, द्रौपदी तथा माधवी को खड़ा पाते हैं। यह वे महिलाएँ हैं जिनको स्त्री के अक्षत होने का वरदान प्राप्त है। ''उस समय में एक ओर तो नारी की पतिव्रता रूप है (भले ही वह आँखों पर पट्टी बाँधने की हद तक ले जाये) और दूसरी ओर पुरुष व्यवस्थित समाज में नारी को वस्तु कहता उसका भोग्यता रूप है जिसके तहत अम्बा, अम्बिका, अम्बालिका की तरह अपहृत हो सकती है और अपने ही अपहरण करने/करवाने वाले के साथ प्रसन्न भाव से रमण करना ही उसका अभीष्ट होना है अन्यथा तरह-तरह से लांक्षित प्रताड़ित हो मरने को (अम्बा) वह स्वतंत्र है। माधवी का आख्यान इन दो नारी नियति के अतिरिक्त जिस तीसरी सन्धि स्थिति का रेखांकन करता है, वह यह कि एक नारी पर कई पति थोपे जा सकते हैं–शर्त केवल इतनी कि इनमें किसी के संग रमण करने को वह स्वयं आतुर न हो। ऐसी स्थिति में पहुँचा दी गई महिला को न केवल गूँगी रहकर सब पतियों को स्वीकार करना है, बल्कि प्रसन्नचित्त उनके बेटे भी पैदा करना है।''[7] महाभारत के उद्योगपर्व से गालवोपाख्यान में 'माधवी' की कथा इस प्रकार है–ऋषि विश्वामित्र शिष्य गालव से गुरुदक्षिणा स्वरूप आठ सौ श्यामकर्ण अश्व माँगते हैं, जिनकी प्राप्ति हेतु, गालव ऋषि परम प्रतापी राजा ययाति के समीप गरुण के साथ जाते हैं। यद्यपि ययाति का वैभव उस समय क्षीण हो गया था तथापि वह कहते हैं–''मैं आपको ऐसी वस्तु दूँगा जो इस कार्य का सम्पादन कर देगी। (तत् तू दस्याभि यत् कार्यभिदं सम्पादयिष्यति) वे बताते हैं मेरी जो यह पुत्री है चार कुलों की स्थापना करने वाली है, इसके शुल्क के रूप में राजा लोग निश्चय ही अपना राज्य भी दे देंगे फिर आठ सौ श्यामकर्ण अश्व की बात ही क्या है? (अस्यां शुल्कं प्रदास्यन्ति नृपा राज्यमपि ध्रुवम्, किं पुनः श्यामकर्णानां हयानां द्वे चतुःशते) मालव माधवी को लेकर अयोध्या के इक्ष्वाकुवंशी राजा हर्यस्व के पास गये। उस समय राजा के पास मात्र दो सौ श्यामकर्ण अश्व थे अस्तु उनके शुल्क रूप उन्होंने माधवी से एक पुत्र वसुमना उत्पन्न किया। तदनन्तर माधवी काशी के अधिपति भीमसेन कुमार दिवोदास के पास ले जायी जाती है। गालव ने पूर्ववत् उन्हें भी शुल्क देकर उस कन्या से एक संतान उत्पन्न करने को प्रेरित किया। दिवोदास के पास भी दो सौ श्यामकर्ण अश्व थे, उसने भी माधवी के गर्भ से प्रतर्दन नामक पुत्र उत्पन्न किया। तदनन्तर भोजनगर के राजा उशीनर के पास माधवी को ले जाया गया, वहाँ भी दो सौ ही श्यामकर्ण अश्व थे, जिनके शुल्क रूप उशी नगर ने शिवि नामक पुत्र प्राप्त किया। इसके पश्चात् गरुण गालव को बताते हैं कि पृथ्वी पर मात्र छः सौ श्यामकर्ण अश्व शेष हैं। इन छः अश्वों के साथ विश्वामित्र की सेवा में इस कन्या को ही दे दो। गालव गुरु विश्वामित्र के समीप जाकर समस्त प्रकरण सुनाते हुए माधवी को उन्हें सौंप देते हैं एक पुत्र उत्पन्न करने के लिए। विश्वामित्र कहते हैं–गालब तुमने पहले ही इसे यहीं क्यों नहीं दे दिया। जिससे मुझे ही वंश प्रवर्त चार पुत्र हो जाते (किमियं पूर्वमेवेह न दत्ता मम गालव, पुत्रा ममैव चत्वारो भवेयु कुलभावनाः)। इस प्रकार विश्वामित्र ने उसके साथ रमण करते हुए यथासमय उसके गर्भ से एक पुत्र अष्टक उत्पन्न किया। तत्पश्चात् माधवी को उसके पिता ययाति के पास लौटाकर गालव वन में चले गये। राजा ययाति ने फिर माधवी का स्वयंबर किया। जिसमें वह किसी का वरण न करके तपोवन का वरण करके चली गयी। माधवी की यह कथा अपने साथ कई प्रश्न लेकर भारतीय संस्कृति एवं न्यायप्रणाली को संदिग्ध बना देती है। कई प्रश्न एक साथ उभरते हुए नारी के साथ हुए अन्याय की दीर्घ शृंखला का उद्घाटन करते हैं। माधवी की कथी हमारी पुरुषसत्तात्मक सभ्यता की अनवरत् यात्रा का वह पहलू है जिसके पक्ष में बौद्धिकता चुप्पी साध लेती है। कुरेदने पर यह पौरुषपूर्ण चुप्पी विपक्ष में खड़े होकर तर्कों की धार को पैना करके अपना वार करती है और तर्क देती है–

**जीवन काट पीट के बिना**
**नहीं चलता/औरत जात**
**पिटने के लिए जन्म लेती है।**[8]

जिसकी ढाल भी उन्हीं के हाथों में है। एक पिता का अपनी पुत्री को वस्तु या पशु की भाँति पुरुषों के हाथों सन्तान उत्पन्न करने के लिए सौंपना कहां का न्याय है? ''स्त्रियों में इतनी सारी वैचारिक प्रगल्यता होते हुए भी स्त्री की निजता को मान्यता क्यों नहीं मिली? मातृत्व की महानता के बावजूद उसके अंग प्रत्यंगों पर लगातार रमने की कुतूहल दृष्टि कैसे हुई? माँ? उसे कोख के सन्दर्भ में क्यों देखा गया? जब एक दूसरे शरीर में दिलोदिमाग के लिए पूरा प्रावधान था? उसे वैचारिकता से शून्य साधन मात्र क्यों ठहराया गया? अगर कहीं कभी वैचारिकता के स्फुल्लिंग की थोड़ी बहुत कौंध दिखायी पड़ी तो उसे हमेशा के लिए ध्वंसित करने की कुत्सित वृत्ति के पीछे कौन सी न्याय दृष्टि है? विश्वामित्र को ज्ञात था कि आठ सौ श्यामकर्ण अश्व पृथ्वी पर नहीं हैं फिर ऐसी गुरुदक्षिणा की माँग क्यों की? यदि उसे स्त्री शरीर की आवश्यकता थी तो इतनी प्रवंचना क्यों की? ययाति ने पुत्री को वस्तु भर क्यों समझा? गालव ने दूसरे की पुत्री को क्या शुल्क वसूलने का साधन समझा? चार बच्चों को

उत्पन्न करने वाली मातृत्व विहीन क्यों की गई? क्या उसकी भावना का कोई मूल्य ही नहीं था? सत्य तो यह है कि एकतरफा पौरुषपूर्ण न्याय पद्धति ने दोयम दर्जे की सदस्या स्त्री के साथ कभी न्याय ही नहीं किया। ऐसा कौन राजा हुआ जिसने अपने पुत्र के रहते हुए पुत्री का राज्याभिषेक किया हो, क्या स्त्रियाँ विदुषी नहीं थीं? आज भी इस वर्गीय आक्रामकता का अंतहीन आतंक विद्यमान है जिसमें कन्याओं की भ्रूण हत्या, बलात्कार तथा दहेज का बहाना बनाकर स्त्री की नृशंस हत्याएँ हमारी न्याय प्रणाली पर पुनर्विचार के लिये प्रेरित करती हैं। माधवी एक बानगी है, समाज में अभी भी कई माधवियाँ हैं जो वस्तु से भी बदतर समझी जा रही हैं और हमारा 'न्याय' पूर्व की भाँति मूकदर्शक है। जिसे न्याय की आवश्यकता है उसे ही अन्यायपूर्वक न्याय की सलीव पर लटका दिया जाता है।

## सन्दर्भ ग्रन्थ


1. कौन सा आकाश, सुनीता जैन, अब तक कविता–1, भाग-3, वर्ष 2003, सार्थक प्रकाशन, दिल्ली, पृ0 45.
2. वही, पृ0 84
3. वही, पृ0 64
4. वही, पृ0 93
5. हड़कंप, स्नेहमयी चौधरी, वर्ष 2002, विकास पेपर बैक्स, गाँधीनगर, दिल्ली, पृ0 17
6. चौखर पर व उठो माधवी, वर्ष 2006, मेधा बुक्स प्रकाशन, नवीन शाहदरा, दिल्ली, पृ0 38
7. वही, पृ0 75
8. वही, पृ0 66
9. वही, पृ0 94


***

Hindi

Shodh Sandarsh-V, Vol.-XVI, Sept.-2017, Page : 23-27
ISSN No. - 2319–5908 (U.G.C. Approved Journal No. : 41329)

# तुलसी के साहित्य में लोक जागरण का अध्ययन

*डॉ. संजय कुमार**

गोस्वामी तुलसीदास जी का साहित्य भारतीय जनता की कलात्मक अनुभूतियों का एक मनोरम लोक-काव्य है। उनका साहित्य लोक मानस की सुललित भाव-भूमि पर स्थापित है। इनके साहित्य में नैतिकता, दार्शनिकता एवं धार्मिकता के विकसित रूप का असाधारण समन्वय है। तुलसीदास जी ने अपने साहित्य में जहाँ एक ओर युगबोध की भावनाओं का चित्रण किया है वहीं दूसरी ओर विभिन्न सांस्कृतिक चेतना के बढ़ते हुए आयामों को भी अभिव्यंजित किया है। उन्होंने अपने युग के विखण्डित कलह पूर्ण शासन व्यवस्था से संतृप्त एवं लोक-जीवन की व्यथा से व्यथित होकर वाह्य आक्रमणकारियों के अमानवीय अत्याचारों को देखा था और निरीह जनता की विवशता को महसूस किया था। इसी कारण ये गोस्वामी तुलसीदास जी ने शस्त्र एवं शास्त्र की कोरी दुहाई न देकर भगवान राम के रूप में एक महान आदर्श को जनता के सामने रखकर उनके मनोबल को मजबूत किया और राम के प्रति आस्था-और विश्वास को जगाकर उन्हें संघर्षों से जूझने की प्रेरणा प्रदान की। वस्तुतः गोस्वामी जी का साहित्य एक उदार तथा लोक-साधक की साधना का प्रतीक है। उनके साहित्य में मानवता की सहज अभिव्यक्ति हुई है। लोक की अकलंकित अवधारणा एवं जनता की अभिलाषायें प्रतिबिम्बित हुई हैं। उनका साहित्य भारतीय संस्कृति के संरक्षण की पूर्ण प्रतिक्षा है और जो कान्ति शीलता तथा स्वाभिमान की प्रदिप्त मसाल बनकर जन-जन को आदर्श मार्ग दिखा रही है।

राम-राज्य की स्थापना को मूर्त रूप देकर गोस्वामी जी ने एक ऐसे आदर्श भारतीय लोकतांत्रिक सुराज को जनता के मध्य रखने का जो सुदृढ़ संकल्प किया था, उसी से राष्ट्र पिता बापू प्रभावित हुए थे और भारत-भूमि को आनंदित तथा पूर्णरूपेण वसुंधरा बनाने के लिए वे कृतसंकल्प थे।

रामचरितमानस की लोक-प्रियता का प्रमुख कारण यही है कि वह भारतीय लोक-संस्कृति तथा सभ्यता का एक अनुपम भण्डार है। अधिक स्पष्ट रूप में यदि हम कहें तो "मानस शुद्ध भारतीय ग्राम जीवन का विश्वकोष है। अवधी भाषा को अपनाकर तुलसी ने तत्कालीन साहित्यिक परम्परा को तोड़ा और इसी प्रकार दोहा-चौपाई पद्धति को अपनाकर उन्होंने लोक-जीवन से अपने को जोड़ा था। उनके कृतित्व की इस कान्तिशीलता तथा लोक-जीवन से जुड़ने की आकांक्षा की सार्थकता को भुलाया नहीं जा सकता।"[1]

डॉक्टर नामवर सिंह के शब्दों में भारत को कोटि-कोटि जनता तक वही पहुँचा सकता है, जो जनता की भाषा तथा भावना को समझ और अभिव्यक्ति कर सका है। इस दृष्टि से तुलसी जनता के सबसे ज्यादा निकट हैं। उनकी यह निकटता ही उन्हें प्रासंगिकता प्रदान करती है। श्री सिंह का मत है कि 'मिथ' को लेकर काव्य रचने का प्रयास जनता के समीप जाने का प्रयास था और तुलसी अपने इस प्रयास में पूरे सफल हुए।"[2] जैसा कि सभी जानते हैं कि तुलसी का साहित्य सारे विश्व में लोकप्रिय है। न केवल भारतीय विद्वान अपितु विदेशी मनीषियों ने भी जैसे–कामिल बुल्के, प्रो. वरानीको, नेल्सन, कोमन, रेन्सेमेक्डानल्ड, डॉ. ग्रीब्ज बेबर आदि ने भी गोस्वामी जी की साहित्य की मुक्त कण्ठ से प्रशंसा की है।

गोस्वामी तुलसीदास जी लोक-कवि थे। इसीलिए उनके साहित्य में लोकरुचि, लोकसंग्रह, लोकमंगल, आदि का विवेचन एवं संरक्षण हुआ है। उन्होंने अपने साहित्य में लोक की मान्यताओं को आदर-पूर्वक अनुमोदित करते हुए लोक मान्यताओं की सार्थकता को भी प्रमाणित किया है। इस दृष्टि से हम उनके साहित्य को लोक-काव्य भी कह सकते हैं। गोस्वामी जी का साहित्य सारभौमिक महत्व का है और उनके साहित्य का प्रत्येक शब्द लोकरुचि से प्राणवान होकर निर्मित हुआ है।

* *शोध-छात्र, कनिष्ठ अनुसंधान अध्येता, हिन्दी-विभाग, नेहरु ग्राम भारती विश्वविद्यालय इलाहाबाद*

प्रो. विजेन्द्र स्नातक ने लिखा है–''तुलसी-साहित्य की मीमांसा करते समय हमें साहित्यकार के दायित्व का ध्यान रखना चाहिए। साहित्यकार रहता है उसे अपने 'युगधर्म का पूरा बोध रहता है और वह किसी न किसी रूप में युगधर्म को अपने साहित्य में स्थान देता है, अर्थात् समय की तरंगों पर खेलना और सम-सामयिक युग को चित्रित करने का दायित्व वह छोड़ नहीं सकता। इस युग, धर्म का पालन करते समय वह लोकाचार, लोकनीति, लोक-संग्रह पर आँख जमाये रहता है, किन्तु दूसरे दायित्व को भी जो अन्तर्मुखी दायित्व है, अपनी दृष्टि से ओझल नहीं होने देता। वह शाश्वत दृष्टि सम्भूत दायित्व है। उसमें धर्म, दर्शन, जीवन तथा आध्यात्मिक मूल्यों का समावेश है। तुलसी ने दोनों दायित्वों का भली-भाँति निर्वाह किया है। मेरी मान्यता है कि जिस लोक-संग्रह और लोक-मंगल को बहुत उभार कर सामने लाया गया है, उससे कहीं अधिक गम्भीर तलस्पर्शी दृष्टि तुलसी की दूसरे दायित्व के प्रति रही है। लोक संग्रह को मैं मूलभाव नहीं मानता। जीवन-दर्शन और जीवन ध्येय के स्तर पर लोक-संग्रह और लोकाचार हल्के ठहरते हैं। अतः मूलभाव की खोज करते समय हमें अपनी दृष्टि मानव-मूल्यों पर ही केन्द्रित रखनी चाहिये। मानस मानव मूल्यों का काव्य है।''[3]

गोस्वामी जी ने कहा भी है कि मानव धर्मों और मूल्यों की जननी लोकधारा ही है। इसी में जीव-मात्र का कल्याण-निहित है और समस्त संसार के मनुष्यों का कल्याण इसी में जन्म लेती है।[4] संसार में जाति-भेद और वर्ण-विभेद का कोई स्थान नहीं है। विश्व मैत्री ही शुभ परिणाम देती है। जो कवि लोक की आत्मा से परिचित है वही सच्चा कलाकार है। इस रूप में गोस्वामी तुलसीदास जी युग कवि, युग-बोध के प्रतिरूप और लोक के समक्ष, प्रतिभा सम्पन्न, साहित्य के रचयिता हैं। परिणामतः तुलसीदास जी के साहित्य से लोक-प्रज्ञा पूर्णरूपेण सन्तुष्ट होती है।

गोस्वामी तुलसीदास जी के साहित्य में लोक-संस्कृति, आद्योपान्त परिव्याप्त है। इनके साहित्य में लोक-संस्कृति बुद्धिमान होने के कारण वह जनता के हृदय का कण्ठहार बन गया है। उनका साहित्य पृथ्वी में बहुत गहराई तक अपने जड़ों को फैलाये हुए हैं और इसी कारण वह निरन्तर पुर्नजीवन प्राप्त करता रहता है। स्व. डॉ. वासुदेव शरण अग्रवाल का यह कथन वस्तुतः सत्य एवं उपादेय है कि वही साहित्य चिर जीवन पा सकता है जिसकी जड़ें दूर तक पृथ्वी में गई हों, जो साहित्य लोक की भूमि के साथ नहीं जुड़ा वह मुरझा कर सूख जाता है।[5] डॉ. राममूर्ति त्रिपाठी के शब्दों में साहित्य के लिए अपेक्षित नवता का प्रभाव इसी संस्कृत (लोक-संस्कृति) में निहित रहता है। इसलिए जब भी शिष्ट साहित्य नीरस या पुराना पड़ जाता है तब वह इसी से पुनर्जीवन प्राप्त करता है।[6] आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र के कथनानुसार जब काव्य-जीवन के वास्तविक पक्ष को छोड़कर बंधे-बँधाएं कुछ विशिष्ट पक्षों को ही लेकर चलने लगता है तो आवश्यकता होती है किवह सामान्य जीवन से फिर संलग्न हो[7] और इस प्रकार जीवन का सरस एवं वास्तविक पक्ष हमें लोक-संस्कृति में ही उपलब्ध होता है। तुलसीदास जी ने नाना पुराण निगमागम की सहायता से राम कथा लिखे और इस कथा के माध्यम से भारत की परेशान जनता को अद्भुत शक्ति से लोक-वाणी के माध्यम से सशक्त बनाया। इसका परिणाम यह हुआ कि भारतीय जनता अपने प्रशुक्त मनोबल को पहचानने लगी तथा जागृत ओजस्विता के प्रकाश में अपनी जीवन्तता की श्रेष्ठता को उजागर करने लगी। गोस्वामी जी ने अपने साहित्य में दो संस्कृतियों, ग्राम संस्कृति एवं नागर संस्कृति का चित्रण किया है। नागर संस्कृति में लोक-जीवन का ऊपरी स्तर मिलता हैं। जिसके नीचे अगाध प्रकृति लोक-जीवन है। टेलर ने ठीक ही कहा है कि 'अवशिष्ट' उन मान्यताओं के समूह का नाम है जो अपने उत्पत्ति स्थान (असभ्य अवस्था) से चलकर सभ्य समाज के अभिन्न अंग बन गये हैं।[8]

वस्तुतः गोस्वामी तुलसी दास जी का साहित्य एक लोककाव्य है जिसका ललित स्वरूप लोक संस्कृति पर आधारित है। इनका साहित्य लोक-कथा तत्वों से परिपूर्ण है। इन्हें ग्रहण करके और यथोचित महत्व प्रदान करके गोस्वामी तुलसीदास जी ने अपनी लोक-संस्कृति विषयक अभिरुचि का पूर्ण परिचय दिया है।

यद्यपि तुलसीदास जी भौतिकवादी नहीं थे। फिर भी लोक की भौतिक समस्याओं, उसकी स्थिति परिस्थिति पर उन्होंने गम्भीरता से विचार किया है। उन्होंने तत्कालीन भौतिक समस्याओं का धर्म-मिश्रित समाधान प्रस्तुत किया है। तुलसी-युगीन समाज अनेक समुदाओं, सम्प्रदायों, जातियों, उपजातियों के रूप में परस्पर विरोध की भावना से ग्रस्त था। विदेशी शासन से पदाक्रान्त होने पर भी सारा देश देशी सामन्तों, उप-सामन्तों की पारस्परिक ईर्ष्या से छोटे-मोटे युद्धों का अखाड़ा बना हुआ था, जिसका दुष्परिणाम सामान्य जनता को भोगना पड़ता था। इस अस्थिरता के कारण सारा समाज विशृंखलित हो गया था। शासन-शक्ति उसे एकसूत्रता देने में असमर्थ थी और धर्म उसे संगठित करने की अपेक्षा विभाजित करने लगा था। ऐसी स्थिति में लोगों की दृष्टि अपने-अपने स्वार्थ पर केन्द्रित हो गयी। समाज को जोड़कर सुव्यवस्थित रखने वाले नियम-उपनियम शिथिल होते गये। समाज की इकाइयों का पारस्परिक सम्बन्ध नहीं रह गया। तुलसी ने इस विषम परिस्थिति को ध्यान में रखकर अपने सामाजिक आदर्श का स्वरूप गठित किया। उनके अनुसार समाज में घोर अव्यवस्था, अशान्ति, अन्याय, संघर्ष और घोर अनाचार का कारण वर्णाश्रम धर्म का ह्रास था। तुलसी ने कलिकाल के प्रतीक को लेकर अपने युगीन समाज की सभी इकाइयों की पतनोन्मुखता का विस्तृत चित्रण किया है। इसके साथ ही सतयुग के प्रतीक द्वारा अपने सामाजिक आदर्शों को प्रतिफलित कराया है। 'मानस' के उत्तरकाण्ड

में कलि-वर्णन के अन्तर्गत तुलसी ने लिखा है कि ब्राह्मण वेद बेचने वाले हो गये थे, शूद्र सेवा-कर्म छोड़कर उपदेश देने लगे थे। निम्न वर्ण के तेली, कुम्हार, चाण्डाल, कोल, भील, कलवार आदि संन्यासी बनकर ब्राह्मणों से पैर पुजाने लगे थे। ब्राह्मण निरक्षर, लोलुप, कामी और आचारहीन होकर नीच जाति की व्याभिचारिणी स्त्रियों से सम्पर्क स्थापित करने लगे थे, जो तुलसी की दृष्टि में घोर अनर्थ था। इस प्रकार सब लोग वर्णशंकर होकर वर्ण की मर्यादा से पूर्णतः च्युत हो गये थे। पाप-कर्म में निरत रहने के कारण दुःख, भय, शोक, रोग, और प्रियजनों के वियोग से सभी आक्रान्त थे। संयासी वैराग्य-विहीन होकर धन एकत्र करने में लगे थे। तपस्वी धनवान और गृहस्थ निर्धन हो गये थे, पति-पत्नी, माता-पिता-पुत्र आदि की सम्बन्ध भावना का ह्रास हो गया था। राजा पाप परायण हो गये थे, वे निरर्थक दण्ड देकर प्रजा का उत्पीड़न करने लगे थे। धनवान नीच जाति का होकर भी कुलीन माना जाने लगा था। कवि और गुणियों को आश्रय देने वाला कोई नहीं रह गया था।[९]

तुलसीदास लोकदर्शी कवि थे। समकालीन जनजीवन की पीड़ा, प्रतारणा और हीनावस्था ही उनकी काव्य रचना का प्रेरणास्रोत था। लोकमान्य से तादात्म्य स्थापित कर उन्होंने अपनी कृतियों में उसका सच्चा प्रतिबिम्ब उपस्थित किया। उनके तीव्र संवेदनशील मानस में युग का जीता-जागता स्वरूप उतर आया है। प्राकृतिक जन को उद्वेलित करने वाली परिस्थितियाँ उनकी निजी अनुभूति बन गई हैं। तुलसी साहित्य में स्थान-स्थान पर अत्याचार तथा अभाव से क्षुब्ध लोकवाणी की गूँज सुनाई पड़ती है।

'मानस' के साथ ही तुलसीदास ने 'विनय-पत्रिका', 'कवितावली' और दोहावली में भी कलिवर्णन के माध्यम, से तत्कालीन दयनीय सामाजिक अवस्था का मर्मभेदी चित्रण किया है। 'कवितावली' का कलिवर्णन यथार्थ-स्थिति के अधिक निकट प्रतीत होता है। यहाँ भी तुलसी ने वर्णाश्रम धर्म के ह्रास को ही कलि की करालता का कारण माना है–

**'वरन धरमु गयो, आश्रम निवास तज्यौ,**
**त्रासन चकित सो परावनो परो सो है।**
**करमु उपासना कुवासना धिनास्यो ग्यानु,**
**बचन विराग-वेष जगतु हरो सो है।।**
**गोरख जगायो जोगु, भगति भगायो लोग,**
**निगम नियोग तें सो केलि ही छरो सो है।।''**

इसके फलस्वरूप तत्कालीन समाज की दुर्दशा क्या होती है– इसका अत्यन्त मार्मिक चित्रण तुलसी ने इस प्रकार उपस्थित किया है–

**'खेती न किसान को भिखारी को न भीख बलि,**
**बनिक को बनिज न चाकर को चाकरी।**
**जीविका विहीन लोग सिद्धमान सोच बस,**
**कहै एक एकन सों 'कहाँ जाई का करी' ।।**
**× × × ×**
**दारिद दसानन दवाई दुनी दीन बन्धु,**
**दुरित दहन देखि तुलसी हटा करी।।'**

वस्तुतः इस भीषण स्थिति को तुलसी ने बड़ी पीड़ा से अनुभव किया था। वर्ण-संकरता और सच्ची भक्ति के अभाव में त्राहि-त्राहि करती हुई जनता की पीड़ा का कभी वे राम से निवेदन करते हैं और जनता को राम के शरण में जाने का उपदेश देते हैं। 'कवितावली' के ९6वें छन्द में उन्होंने पेट के वशीभूत जन-समाज के अधःपतन का बड़ा ही यथार्थ चित्रण किया है। श्रमजीवी, कृषक, व्यापारी, भाट, सेवक, नट चोर, बाजीगर, आदि सभी पेट की ज्वाला शान्त करने के लिए पढ़ते-गुनते हैं। अनेक प्रकार के छल-छद्मपूर्ण उपाय रचते हैं, ऊँचे-नीचे कर्म करते हैं, यहाँ तक कि बेटा-बेटी बेचने में भी संकोच नहीं करते। उनकी दृष्टि से इस प्रकार की समस्त अव्यवस्थाओं का कारण वर्णाश्रम की भावना का ह्रास और सदाचार की कमी है।

कवितावली में विराट् पुरुष के हृदय में बढ़ते रावण-रूपी राजरोग का जो बिम्ब प्रस्तुत किया गया है। उसके मूल में वस्तुतः युगबोध ही है। गोस्वामी जी ने तन्द्राग्रस्त समाज के उद्बोधन के लिए अपने पूर्ववर्ती निर्गुणमार्गी सन्तों की भाँति चेतावनी तथा दार्शनिक तत्व विवेचन का मार्ग न अपनाकर लोक ग्राहय कथा पद्धति से राम के लोक-पावन चरित्र का आदर्श-प्रस्तुत करके दर्शन को जीवन में उतारने का स्तृत्व प्रयास किया। उन्होंने राम-राज्य और सतयुग के चित्रण के माध्यम से सामाजिक आदर्श प्रस्तुत किये।

राम-परिवार और राम-कथा के अनेक पात्रों के माध्यम से तत्कालीन समाज को सन्मार्ग दिखाने का उन्होंने प्रयास किया है। तुलसी का सामाजिक आदर्श वही है, जिसका निरूपण पुराण और स्मृतियों ने किया है। उसे वर्णाश्रम धर्म की संज्ञा से अभिहित

किया जा सकता है। इसमें ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, और शूद्र के कर्तव्य नियत हैं। इसमें ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, और शूद्र के कर्त्तव्य नियत है। तुलसी की दृष्टि में यदि क्षत्रिय अपने क्षात्र धर्म से विरत हो जनता का उत्पीड़क बन जाये, ब्राह्मण तत्वचिन्तन, क्षमा, दया आदि की, वैश्य कृपण बन जाये और शूद्र अपने सेवाधर्म को छोड़कर अपने से उच्च वर्णों के लोगों का निरादर करने लगे तो समाज एक दिन भी नहीं चल सकता। शील, शक्ति, विद्या, बुद्धि की असमानता के कारण समाज में ऊँची–नीची श्रेणियों का होना तुलसी अनिवार्य मानते हैं। इसके फलस्वरूप गुरु-शिष्य, स्वामी-सेवक, राजा-प्रजा आदि बड़े-छोटे का होना भी अनिवार्य है। जब बड़े छोटों के प्रति दुःशील हो जायें, छोटे बड़ों का आदर-सम्मान छोड़कर उन्हें आँख दिखाने लगें तो समाज का चलना कठिन हो जाता है। वस्तुतः विशिष्टाद्वैतवादी दर्शन का सामाजिक निहितार्थ यही है।

तुलसी कट्टर मर्यादावादी थे। मर्यादा का अर्थ होता है, प्रतिष्ठित आचार का पालन। इसकी अवमानना को तुलसी सभी अमंगलों की जड़ मानते थे। शूद्र यदि अपने कर्त्तव्यों का पालन करें और उनके प्रति अन्य वर्ग के लोग भी न्यायपूर्ण दृष्टि रखें तो उनका कर्त्तव्य इतना कठोर नहीं कि उन्हें छोड़ने की जरुरत पड़े। तुलसी की दृष्टि में वर्ण-विभाग केवल कर्म-विभाग न होकर भाव विभाग भी है। श्रद्धा, भक्ति, दया, क्षमा आदि उदात्त वृत्तियों के फलने-फूलने के लिए बड़े-छोटे का होना आवश्यक है। यह सामाजिक मान्यता उनके विशिष्ट द्वैतवाद के अनुकूल होने के साथ सेवक-सेव्य भाव की उपासना के अनुरूप और उच्चवर्णों के सामाजिक हितों की पोषक भी है। समाज की सबसे सुदृढ़ इकाई परिवार है। पारिवारिक जीवन की सुख-समृद्धि सामाजिक जीवन के उत्थान का आधार है। कम से कम तुलसी की दृष्टि में तो परिवार ही समाज की प्रमुख इकाई है। उसके दायरे में नियन्त्रित व्यक्ति ही सामाजिक प्राणी होने के गौरव का अनुभव कर सकता है। राम, राम-परिवार के एक सदस्य हैं। पिता, माता, भाई, सौतेली माता, पत्नी के साथ ही उनके कार्य पुरजन-परिजन, बन्धु, बान्धव मित्रादि द्वारा नियन्त्रित है। लोक-वेद की मर्यादा का पालन करते हुए वे आदर्श पुरुष के रूप में हमारे सम्मुख आते हैं। इस प्रकार राम और राम-परिवार के माध्यम से कवि ने हमारे सम्मुख वैयक्तिक और पारिवारिक आदर्शों का एक स्वरूप प्रस्तुत किया है।

तुलसी ने समाज के ऊँच-नीच कर्मों को काफी समझा-समझाया है, जिसमें आज की दृष्टि से कुछ संगत है तो कुछ असंगत भी। अन्ततः उन्होंने घोषित किया है कि सारे समाजतंत्र का आधार पेट अर्थात् अर्थ-शक्ति है। ('ऊगि बड़वागि तें बड़ी है आग पेट की') यह भूख ही समस्त सामाजिक अनर्थों की जड़ है। तुलसी के समाज-दर्शन की यह महत्तम उपलब्धि है, जो उन्हें अपने युग का महान सामाजिक चिन्तक सिद्ध करती है। आर्थिक दरिद्रता की चरम परिणति को भोगनेवाला तुलसी जैसे व्यक्ति की दरिद्रता के सामाजिक दुष्परिणामों को सही ढंग से समझ सकता है। उनके काव्य में दरिद्रता के प्रति प्रगाढ़ नफरत व्यक्त हुई है। उन्होंने स्पष्ट रूप से देखा था कि दरिद्रता और उसके सहयोगी दुख तथा पाप मिलकर समाज की जड़ें खोखली करते हैं।

तुलसीदास जी ने सामाजिक, साम्प्रदायिक, धार्मिक, नैतिक, दार्शनिक, साहित्य आदि जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में व्याप्त सैद्धान्तिक तथा व्यावहारिक विरोधों के कारणों का सम्यक् प्रकार से अध्ययन करके अपनी रचनाओं में उनके यथोचित समाधान प्रस्तुत किये। शैवों-वैष्णवों, निर्गुणों-सगुणों, लोकवेद-वादियों, कर्म-योग-ज्ञान मार्ग के साधकों द्वैत, अद्वैत तथा विशिष्टाद्वैत मतानुयायियों, ब्राह्मण-शूद्र आदि वर्गों के पारस्परिक द्वन्द्वों के शमन के लिए उन्होंने अधिकारी पात्रों के प्रामाणिक विचारों की योजना की। इसके अतिरिक्त उन्होंने रामतत्व की व्याख्या एवं प्रस्तृति जिसके विराट फलक पर ही उसके अन्तर्गत सारे विरोध स्वतः विलीन हो गये। विच्छिन्न लोक-जीवन को जोड़ने की यह प्रक्रिया सभी दृष्टियों से उपकारक सिद्ध हुई। यह तुलसी की ही दीर्घदर्शिता का प्रसाद था कि उत्तरी भारत में शिवकांची-विष्णुकांची का दृष्य प्रस्तुत होने की नौबत नहीं आई।

ज्योतिर्मय आकाश की अपेक्षा जीव संकुल धरती, दिव्य साकेत की अपेक्षा अयोध्या को अधिक महत्व देकर तुलसी ने सगुण साधन के क्षेत्र में लोकवादी विचारधारा को नई चेतना प्रदान की। मानव को विधाता की सर्वोत्तम सृष्टि, मानव जीवन को देवों के लिए भी स्पृहणीय और इसका कर्मक्षेत्र संसार तथा अपनी आविर्भाव भूमि भारत को वंदनीय बताकर इन्होंने लोकजीवन की महत्ता बढ़ाई। अद्वैतवादी संन्यासियों[10], गोरखपंथी योगियों तथा निर्गुणमार्गी संतों ने जागतिक जीवन निगर्हणा कर उसके प्रति जनता में जो विरक्त की भावना को फैलाई थी, तुलसी ने उनका जनक जैसे ब्रह्म विद्या के आचार्य द्वारा प्रतिपादित कराया और राम ऐसे नररत्न की क्रीड़ास्थली भवसागर का मुक्तकंठ से गुणगान किया–

**प्रमुदित हृदय सराहत भल भवसागर।**
**जहँ उपजहिं उस मानिक विधि बड़ नागर।।**[11]

अनादि अनंत परमात्मा की सृष्टि, संसार के सौंदर्य, माधुर्य और चिरंतनता पर तुलसी स्वयं भी मुग्ध थे–

**पल्लवत फूलत नवल नित संसार विटप नमामहे।**

इसी भावना से प्रेरित होकर उन्होंने मलायतन कलियुग को भी मूर्धन्य स्थान दिया। लोकोद्धारक राम का संस्पर्श पाकर देशकाल सभी तर गये–

**कलिजुग सम जुग नहिं, जो नर कर विश्वास।**
**गाई राम गुन गन विमल, भव तरु बिनहिं प्रयास॥**

इस प्रकार लोकालय का महत्व प्रतिपादित कर उन्होंने समकालीन वातावरण से विरक्त जनता के हृदय में लौकिक जीवन के प्रति अनुराग जगाया और स्तत्वों की रक्षा के लिए उसे प्रकारान्तर से भौतिक परिस्थितियों से संघर्ष करने के लिए प्रोत्साहित किया–

**जासु राजप्रिय प्रजा दुखारी। सो नृप अवसि नरक अधिकारी।**

तुलसी की अपनी दृढ़ धारणा थी कि लोकसेवक का मुख्य कर्त्तव्य जनरुचि का परिष्कार और उन्नयन होना चाहिए, अंधानुसरण नहीं। लोक के रंग में रंग जाने को वे अधः पतन की पराकाष्ठा मानते थे, कारणिक समूहानुगामी मनुष्य का व्यक्तित्व अपना वैशिष्ट्य विलीन कर पशुत्व में परिणत हो जाता है। इसी से उन्होंने समकालीन लोकजीवन के विविध क्षेत्रों में व्याप्त लोकधर्म विरोधी प्रवृत्तियों, रीति-रिवाजों, आचार-विचारों तथा उनके पुरस्कर्त्ताओं की खुलकर आलोचना की। जैनश्रावक[12] भगवान बुद्ध, अद्वैतवादी संन्यासी, नाथ पंथी सिद्ध, अलखिया संत, सूफी, फकीर और निर्गुणियाँ संत, यवन शासक और उसके गण, राजे-महाराजे, दरबारी कवि, ढोंगी, साधु, पंडे और पुरोहित, परोपदेशकुशल पंडित और बात की खेती करने वाले वक्ता-प्रवक्ता, सब पर उसका निर्मम प्रहार हुआ। जो भ्रातद्रोही तथा नैतिकताहीन सुग्रीव और विभीषण के पक्षधर अपने इष्टदेव की भी चुटकी लेने से नहीं चूका, वह लोक प्रवंचकों को कैसे छोड़ सकता था? इस स्पष्टवादिता की उन्हें भारी कीमत चुकानी पड़ी। विरोधियों ने उन्हें 'धूर्त' अवधूत, राजपूत, जोलहा, पाखंडी नीच क्या-क्या नहीं कहा? इनते से ही संतुष्ट न होकर उन्होंने तुलसी को दण्ड देने की योजना बनाई। वामदेव की पुरी काशी में उन्हें शारीरिक यातना दी गई। किन्तु इन सारे अपमानों का विष वे सहर्ष पीते रहे। चातक की भाँति आराध्य के सारे अत्याचार मौन भाव से सहने में ही वे प्रेम की पुष्टि मानते थे।

इस प्रकार हम देखते हैं तुलसीदास जी ने अपने साहित्य में मानवता को सबसे बड़ा धर्म माना है। उन्होंने कर्मकाण्ड को एवं सम्प्रदायिक मत-मतान्तरों को स्वीकार नहीं किया। वे अपने साहित्य में लोकधर्म को महत्व देते हैं। और इसी के प्रति लोक-जागरण का प्रयास करते हैं। आचार्य शुक्ल ने भी लिखा है कि रामचरित के सौन्दर्य द्वारा तुलसी ने जनता को लोकधर्म की ओर आकर्षित किया। आचार्य विश्वनाथ प्रसाद ने लिखा है कि ''सर्वकवि की दृष्टि जैसी व्यापक और सर्वग्राही होनी चाहिए वैसी उनकी थी। समाज के विकृत रूप पर दृष्टि देकर उसे उन्होंने उद्धार का उपाय भी सोचा। उनको यह प्रतीत था कि राम के बिना समाज का कल्याण नहीं हो सकता राम के इसी रूप को जन-जन में पहुँचाने का वीणा उन्होंने उठाया।''[13] अपने अगाध लोक-प्रेम की पराकाष्ठा को व्यक्त करते हुए तुलसीदास जी ने लिखा है–

**बराढ़ी परुष पाहन पयद, पंख करहु टूक-टूक।**
**तुलसी परी न चाहिए, चतुर चातकहि चूक॥**

## संदर्भ-सूची

''तुलसी के साहित्य में लोक जागरण का अध्ययन''

1. मानस की प्रासंगिकता और सम्पूर्ण मनुष्य की अवधारणा विचारोत्तेजक गोष्ठी : रामचरितमानस चतुश्शताब्दी-समाचार, भोपाल, नवम्बर 1973, पृष्ठ 12
2. वही;
3. प्रो. विजयेन्द्र स्नातक, विवेक और आस्था की अमूल्य निधि-मानस, नवभारत टाइम्स वार्षिकांक, पृष्ठ 81
4. कीरति भनिति भूति भल सोई।
   सुरसरि सम सब कहँ हित होई।– रामचरित मानस– बालकाण्ड।
5. वीणा पत्रिका-ग्राम संस्कृति अंक 4-5 मुख पृष्ठ।
6. वही, पृष्ठ 5
7. वाङ्मय विमर्श, पंचम संस्करण, पृष्ठ 240
8. प्रिमीटिव कल्चर, प्रथम संस्करण, 1781, पृष्ठ 15
9. 'मानस' उत्तर काण्ड, दोहा 97 से 102 तक।
10. झूठौ है झूठौ है झूठो सदा बस संत कहंत जो अंत लहा है।
    जानकी जीवन जानिन जान्यौ तौ जानि कहाय कै जान्यौ कहा है। कवितावली 7/39
11. जानकी मंगल, तुलसीदास, 47,
12. ईस सीस विलसत विमल, तुलसी तरल तरंग।
    स्वान सरावग के कहे, लघुता लहै न गंज। – 383 दोहावली
13. गोसाई तुलसीदास, विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, पृष्ठ 09।

***

Hindi

Shodh Sandarsh-V, Vol.-XVI, Sept.-2017, Page : 28-31
ISSN No. - 2319–5908 (U.G.C. Approved Journal No. : 41329)

# महावीर प्रसाद द्विवेदी : काव्य भाषा के रूप में खड़ी बोली हिन्दी की पृष्ठभूमि

*डॉ. कुसुम नेगी**

**प्रस्तावना :** वर्तमान में खड़ी बोली हिन्दी एक समृद्ध रूप में उभरकर हमारे समक्ष अपने वर्चस्व का परचम लहरा रही है, जिसकी सक्षमता हर भारतीय को गद्‌गद करती है, लेकिन इसकी स्थिति सदा से ऐसी नहीं थी। इसे विकसित करने में अनेक साहित्यकारों ने अपना जीवन अर्पित कर दिया, परन्तु खड़ी बोली हिन्दी को उच्चता की श्रेणी तक पहुँचाने वाले महावीर प्रसाद द्विवेदी हैं, जिन्होंने अनेक भाषाविदों (ग्रियर्सन, जगन्नाथ रत्नाकर) जो ब्रजभाषा के समर्थक थे, उनके सन्देहों का निराकरण किया तथा खड़ी बोली हिन्दी को काव्य भाषा के रूप में पूर्णतः उपयुक्त बताया। भाषा, छन्द और विषय को लेकर खड़ी बोली को काव्य भाषा के रूप में पूर्णतः उपयुक्त बताया। भाषा, छन्द और विषय को लेकर खड़ी बोली सम्बन्धी क्रान्ति के बीज भारतेन्दु के समय से ही अंकुरित हो उठे थे, परन्तु काव्य सिंहासन के लिए ब्रजभाषा और खड़ी बोली के कवियों में स्पर्द्धा बनी हुई थी। इस संघर्ष के निवारण के रूप में द्विवेदी जी ने अपनी उत्कृष्ट विचारशीलता और तर्कशीलता द्वारा काव्य भाषा स्वरूप खड़ी बोली हिन्दी को स्थापित करने पर जोर दिया। उन्होंने '**सरस्वती**' पत्रिका (1903 ई.) का कार्य भार सम्भालते ही खड़ी बोली हिन्दी के अस्तित्व को जन-जन तक पहुँचाया और उसे सदैव के लिए पोषित कर दिया।

खड़ी बोली हिन्दी का जो समृद्ध और विकसित रूप हमें आज प्राप्त होता है, उसमें सबसे अधिक श्रेय महावीर प्रसाद द्विवेदी को जाता है। लेकिन उनसे पूर्व कई ऐसे साहित्यकार हुए, जिन्होंने खड़ी बोली हिन्दी की नगण्यता को प्रत्यक्ष रूप प्रदान किया। सर्वप्रथम 14वीं शताब्दी में अमीर खुसरो ने खड़ी बोली हिन्दी का निखरा हुआ रूप समाज को उपलब्ध कराया। तत्कालीन समाज की बोली भी खड़ी बोली हिन्दी के अनुकूल होती जा रही थी, इसलिए जनसामान्य के मनोरंजन के लिए खुसरो ने लोक प्रचलित खड़ी बोली हिन्दी में लिखना आरम्भ किया। उनकी एक पहेली जो आज भी लोगों का मनोरंजन कर प्रत्येक जन को गुदगुदा देती है–

**''एक थाल मोती से भरा, सबके सिर पर औंधा धरा।**
**चारों ओर यह थाली फिरे, मोती उससे एक न गिर॥''**[1]

कुछ विद्वानों के मतानुसार खड़ी बोली हिन्दी की कविता का सबसे प्राचीन रूप सन्त कवि नामदेव की कविता से प्राप्त होता है। उनकी सन्देहप्रद कविता की पंक्तियाँ इस प्रकार हैं–

**''पांडे तुम्हारी गायत्री लोधे का खेत खाती थी।**
**लैकरी ठेंगा टँगरी तोरी, लंगत-लंगत आती थी॥''**[2]

15वीं शताब्दी में कबीर की रचनाओं में भी खड़ी बोली के रूप दिखने लगे। लोक कवि होने के कारण वह लोक रुचि के आधार पर अपने विचारों को जनसाधारण की बोली में ही प्रस्तुत करना उपयुक्त समझते थे। जैसे–

**''आऊंगा न जाऊंगा, मरुंगा न जीऊंगा।**
**गुरु के सबद, रम रम रहूंगा॥''**[3]

इसके पश्चात् 18वीं शताब्दी में सदल मिश्र ने ''**नासिकेतोपाख्यान**'' लल्लू लाल ''**प्रेमसागर**'' मुंशी सदासुखलाल ने '**सुखसागर**' और इंशा अल्ला खाँ ने '**रानी केतकी की कहानी**' में खड़ी बोली का प्रयोग करके उसके विकास को आगे बढ़ाया।

* *हिन्दी विभाग, एस.एम.जे. एन. (पी.जी.) कॉलेज, हरिद्वार*

19वीं शताब्दी में भारतेन्दु युग ने हिन्दी आलोचना के आविर्भाव काल में भाषा की समस्या पर समधिक बल दिया और बार-बार इस बात की घोषणा की कि, देश की सर्वतोमुखी उन्नति खड़ी बोली हिन्दी के विकास और प्रौढ़ि के साथ सम्पृक्त है।

धीरे-धीरे जनसाधारण खड़ी बोली हिन्दी को पूर्णतः समझने के प्रयास में था, इसलिए साहित्यकारों ने खड़ी बोली हिन्दी में साहित्य रचनाएँ प्रस्तुत करनी शुरु कर दी। यद्यपि भारतेन्दु ने अपनी कुछ कविताएँ खड़ी बोली हिन्दी में लिखी हैं, लेकिन वे भी भारतेन्दु युग के अन्य साहित्यकारों की तरह गद्य की भाषा खड़ी बोली और पद्य की भाषा ब्रजभाषा को ही महत्व देना उचित समझते थे। इसका विरोध सर्वप्रथम मुजफ्फरपुर के बाबू अयोध्या प्रसाद खत्री ने किया। उन्होंने 'खड़ी बोली आन्दोलन' नामक एक पुस्तक की रचना भी की और खड़ी बोली हिन्दी के समर्थन में यह प्रचार किया कि, **''ब्रजभाषा के स्थान पर खड़ी बोली हिन्दी में ही रचनाएँ लिखनी चाहिए।''**[4]

अत विविध साहित्यकारों के समर्थन के बाद भी खड़ी बोली हिन्दी को अपना उचित स्थान बनाने में असफलता मिल रही थी, क्योंकि काव्य रूप में ब्रजभाषा अपने प्रतिष्ठित स्थान पर आसीन थी। लेकिन इसी समय खड़ी बोली हिन्दी की समर्थता, महत्ता, सहजता, स्पष्टता, सरलता, महनता, सुदृढ़ता, प्रभावशीलता को सिद्ध करने वाले व्यक्ति महावीर प्रसाद द्विवेदी का आगमन हुआ और उन्होंने अपनी दिप्त विचारशीलता से खड़ी बोली हिन्दी को काव्य भाषा के रूप में प्रतिष्ठित करने की महती उपलब्धता हासिल की। उन्होंने काव्य के साहित्य क्षेत्र में खड़ी बोली हिन्दी पर विशिष्ट छाप लगा दी।

सूरदास से लेकर भारतेन्दु युग तक जो ब्रजभाषा काव्यभाषा के पद पर प्रतिष्ठित रही उसे अपने पद से हटा देना आसान कार्य नहीं था, लेकिन आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने खड़ी बोली हिन्दी को महत्वपूर्ण सिद्ध करके ब्रजभाषा को पूर्व काव्य की भाषा बना दिया और खड़ी बोली हिन्दी को लक्षित कर उसे सर्वसम्मता प्रदान की। उन्होंने **'सरस्वती'** पत्रिका के माध्यम से इस बात पर जोर दिया कि गद्य और पद्य दोनों की भाषा एक हो। उनके निबन्ध **'कवि कर्त्तव्य'** से भी उनकी कविता सम्बन्धी विचारधारा का पता चलता है। उनका मत है कि साहित्य उसी भाषा में रचा जाना चाहिए, जिसे सभ्य समाज व्यवहार में लाता है। उन्होंने हिन्दी साहित्य का विकास देखकर भविष्यवाणी कर दी थी कि, **''यह निश्चित है कि किसी समय बोलचाल की हिन्दी भाषा, ब्रजभाषा की कविता के स्थान को अवश्य ही ले लेगी... बोलना एक भाषा और कविता में प्रयोग करना दूसरी भाषा प्राकृतिक नियमों के विरुद्ध है।''**[5] उन्होंने ही सर्वप्रथम खड़ी बोली में कविता का शुद्ध एवं टकसाली रूप प्रस्तुत किया। खड़ी बोली में उनकी पहली कविता **'बलीवर्द'** है, जिसका प्रकाशन 19 अक्टूबर, 1990 ई. में **'बेंकटेश्वर'** समाचार पत्र में हुआ था।

**''तुम्हीं अन्नदाता भारत के सचमुच बेताज सरताज।**
**बिना तुम्हारे हो जाते हम दाना-दाना को मोहताज।**
**तुम्हें खण्ड कर देते हैं जो महा निर्दयी जन सिरताज।**
**धिक उनको, उन पर हँसता है बुरी तरह यह सकल समाज।''**[6]

उनकी **'कविता'** की कुछ पंक्तियाँ, जिनकी मधुरता खड़ी बोली हिन्दी को विशेष बना देती है, जैसे–

**''इन्द्रासन के इच्छुक किसने करके तप अतिशय भारी**
**की उत्पन्न असूया तुझमें, मुझसे कहो कथा सारी।**
**मेरा यह अनिवार्य शरासन पाँच कुसुम सायक धारी।**
**अभी बना लेते तत्क्षण ही उसको निज आज्ञा कारी।।**[7]

द्विवेदी जी ने खड़ी बोली में काव्य रचना करके यह सिद्ध कर दिया कि खड़ी बोली हिन्दी में भी सरस एवं मधुर कविताएँ लिखी जा सकती हैं। जुलाई 1903 ई. की **'सरस्वती'** पत्रिका में **'स्वदेशी वस्त्र का स्वीकार'** नामक कविता छपी थी। कविता के साथ कवि का नाम न होने पर विद्वानों का मानना था कि यह कविता द्विवेदी जी की ही है, जिसकी पंक्तियाँ निम्न हैं–

**विदेशी वस्त्र क्यों हम ले रहे हैं, वृथा धन देश का क्यों दे रहे हैं।**
**न सूझे हैं अरे भारत भिखारी, गई है हाय तेरी बुद्धि मारी।।**[8]

द्विवेदी जी ने **'काव्य मंजूषा'**, **'सुमन'** **'कान्यकुब्ज-अबला-विलाप'** आदि कविताओं की रचनाएँ की। इनकी कविताएँ सहज, सरल और प्रायः उपदेशपूर्ण रही हैं। भले ही खड़ी बोली हिन्दी की प्रारम्भिक कविताओं में वैसी सुकुमारता और माधुर्य विद्यमान नहीं था, जैसी अब वर्तमान में है। क्योंकि जब किसी वस्तु, विचार विशेषता आदि को विकासशीलता की ओर ले जाया

जाता है, तो वह प्रारम्भ में उतनी प्रभावशाली एवं समृद्ध नहीं होती, जितनी समय के साथ निखरती जाती है। इसलिए खड़ी बोली की समृद्धता के लिए भी वक्त लगा और धीरे-धीरे उसमें विभिन्न गुणों (सरसता, सुकुमारता, माधुर्यता, उत्कृष्टता, प्रभावशीलता, तारतम्यता, तरलता) का विकास होने लगा। इसके साथ ही साथ हिन्दी साहित्य उच्च श्रेणी में शामिल होने लगी। जब एक भाषा जनसाधारण की भाषा हो और वहाँ का साहित्य उन्हीं की भाषा में लिखा जा रहा हो तो वह अपना प्रभाव अधिक जमाती है और साहित्य जनसमूह के मध्य अपना विशिष्ट स्थान बना लेता है, क्योंकि भाषा का सम्बन्ध साहित्य से और साहित्य का सम्बन्ध यहाँ की संस्कृति और परम्परा से जुड़ा रहता है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा भी है, **''किसी देश के साहित्य का सम्बन्ध उस देश की संस्कृति, परम्परा से होता है, अतः साहित्य की भाषा उस संस्कृति का त्याग करके नहीं चल सकती। भाषा में जो रोचकता या शब्दों में जो सौन्दर्य का भाव रहता है वह देश की प्रकृति के अनुसार होता है।''**[9]

यही विचारधारा द्विवेदी जी की भी थी। इसलिए उन्होंने अपने साहित्य की गद्य व पद्य दोनों ही विद्याओं की भाषा खड़ी बोली हिन्दी को सिद्ध किया। खड़ी बोली हिन्दी के लिए उनका सर्वांगीण समर्पण अपने समय के अन्य साहित्यकारों को प्रभावित किये बिना न रह सका। उन्होंने अपने समकालीन साहित्यकारों को भी खड़ी बोली हिन्दी का प्रयोग करने का उपदेश दिया। इसलिए वे एक युगदृष्टा आचार्य के रूप में पहचाने जाते हैं। उन्होंने लिखा है, **''आजकल हिन्दी संक्रान्ति की अवस्था में है। हिन्दी कवि का कर्त्तव्य यह है कि वह लोगों की रुचि का विचार रखकर अपनी कविता ऐसी सहज और मनोहर रचे कि साधारण पढ़े-लिखे लोगों में भी पुरानी कविता के साथ-साथ नई कविता पढ़ने का अनुराग उत्पन्न हो जाए। पढ़ने वालों के मन में नई-नई उपमाओं, नये-नये शब्दों और नये-नये विचारों को समझने की योग्यता उत्पन्न करना कवि का ही कर्त्तव्य है।''**[10]

इस प्रकार उनकी सलाह का मान रखते हुए अनेक साहित्यकारों ने खड़ी बोली हिन्दी में अनेक महत्वपूर्ण रचनाओं का निर्माण किया। जो हिन्दी साहित्यजगत में अपनी विशिष्टता (प्रियप्रवास, साकेत आदि) के कारण अमर हो गये। श्री बालकृष्ण राव ने लिखा है, **''उनकी प्रेरणा से जाने कितनों ने उस युग में हिन्दी में लिखना शुरु किया, उनके प्रशिक्षण के कारण जाने कितने मँजे, मँजाये लेखक बन गये।''**[11]

**'सरस्वती'** पत्रिका के प्रारम्भिक समय में **'आकाशमण्डल'** नामक एक सुन्दर कविता का प्रकाशन हुआ, जिसके रचयिता वागीश्वर मिश्र थे। खड़ी बोली में लिखी गयी यह कविता बहुत ही प्रभावशाली है–

**''खड़ा हुआ मैं, निकल के घर से, गगन में तारे चमक रहे थे।**
**सभी अनोखे, सभी मनोहर, सभी प्रभा से, दमक रहे थे।**
**अपूर्व गहने, रजत के पहने, अपार छवि से, छमक रहे थे।**
**मनो प्रतीक्षा, करै किसी की, इसी से मन में, ठमक रहे थे।''**[12]

उपर्युक्त पंक्तियाँ सहज और सरलता का पुट लिए हुए है लेकिन इसकी मधुरता और तरलता जन-जन को आनन्दित कर देती हैं। द्विवेदी जी से प्रभावित नाथूराम शंकर शर्मा, अयोध्या सिंह उपाध्याय, मैथिलीशरण गुप्त आदि कवियों ने अपनी रचनाओं के माध्यम से खड़ी बोली हिन्दी को वर्चस्व प्रदान किया। नाथूराम शर्मा ने पद्य क्षेत्र में खड़ी बोली की नई शक्ति उद्घाटित की। मई, 1906 ई. में उन्होंने **'हमारा अधः पतन'** नामक एक कविता को सरस्वती पत्रिका में प्रकाशित किया जो खड़ी बोली हिन्दी की रचनाओं में अपना प्रमुख स्थान रखती है। अयोध्या सिंह उपाध्याय ने **'प्रियप्रवास'** नामक महाकाव्य की रचना की, जो खड़ी बोली हिन्दी का प्रथम महाकाव्य माना जाता है। इसी क्रम में गुप्त जी ने अपनी प्रतिष्ठित रचनाओं के कारण खड़ी बोली हिन्दी के लिए अपना सम्पूर्ण योगदान दिया। द्विवेदी जी ने गुप्त जी को सलाह भी दी कि, **'एक बात का विचार रखिएगा, भाषा सरल हो, भाव सार्वजनित और सार्वकालिक हो।''**[13]

गुप्त जी ने द्विवेदी जी की हर सलाह को सरआँखों पर रखा, उनके प्रत्येक उपदेशों को ग्रहण किया और उनका अनुपालन भी किया। जब द्विवेदी जी ने **'कवियों की उर्मिला विषयक उदासीनता'** नामक निबन्ध की रचना की तो गुप्त जी ने साकेत जैसे महाकाव्य की रचना कर डाली तथा इसकी प्रसिद्धि का श्रेय द्विवेदी जी को देते हुए कहा कि–

**''करते तुलसीदास भी कैसे मानस नाद।**
**महावीर का यदि उन्हें मिलता नहीं प्रसाद ॥''**[14]

इस प्रकार खड़ी बोली हिन्दी में विचारों की अभिव्यक्ति जन-जन को प्रभावित करने में सफल हो गयी। विविध लेखकों की रचनाएँ इसी भाषा में अपनी प्रसिद्धि के चरम शिखर तक जा पहुँची। ऐसी परिष्कृत हिन्दी जिसने कवि एवं सामान्य जन को पूरी

तरह एक-दूसरे से समन्वित कर दिया। अतः द्विवेदी जी ने इस स्थिति तक लाने में समस्त समकालीन कवियों को सहयोग के साथ प्रेरित भी किया। अपनी विशिष्टता, लगन, ओज, तल्लीनता, लक्ष्य के कारण द्विवेदी जी ने सरस्वती पत्रिका का सम्पादन लगातार सत्रह वर्षों तक किया। अर्थात् खड़ी बोली हिन्दी को सुदृढ़ करके साहित्य रूप में प्रस्तुत करने के लिए उन्होंने अपना सर्वस्य अर्पण कर दिया। उनकी यही समर्पणशीलता देखकर हजारी प्रसाद द्विवेदी जी ने कहा है कि, **''भाषा को युगोचित, उच्छवासहीन, स्पष्ट, स्पष्टवादी, और वक्तव्य अर्थ के प्रति ईमानदार बनाकर जो काम द्विवेदी जी कर गये हैं, वही उन्हें हिन्दी साहित्य में अद्वितीय स्थान का अधिकारी बनाता है। साधारणतः साहित्य क्षेत्र में भाषा के प्रजापतिगण केवल शैली और भाषा के बल पर इस महत्वपूर्ण आसन पर अधिकार नहीं करते परन्तु द्विवेदी जी एक ऐसे अद्भुत मुहूर्त में आये थे और ऐसी प्रकृति और ऐसा संस्कार लेकर आविभूर्त हुए थे कि वे उस आसन पर निर्विवाद भाव से अधिकार कर सके।''**[15]

यही कारण है कि द्विवेदी जी की भाषा सुधार का आन्दोलन व्याकरण विशुद्धता का आन्दोलन है। वे सदा ही परम्परा और गौरव के अनुकूल भाषा-शैलियों के समुचित विकास की दिशा में भी सचेत रहे, संस्कृत भाषा की अलंकार योजना और वर्णन कुशलता, अंग्रेजों की सरलता और स्पष्टता, मराठी की गम्भीरता और रूढ़ता, बंगला की कमनीयता, उर्दू-फारसी की गतिशीलता, आदि शैलीगत विशेषताओं को द्विवेदी जी के निर्देशन हिन्दी ने सावधानी के साथ आत्मसात किया।

**निष्कर्ष—**निष्कर्षतः द्विवेदी जी ने खड़ी बोली हिन्दी को परिपक्वता, व्यवस्था एवं मार्दव तक पहुँचाया। यही कारण है कि इस युग की समस्त काव्य भाषा सुबोध, शुद्ध और रसानुभूति परक प्रतीत होती है। इससे पूर्व लगभग 600 वर्षों तक ब्रजभाषा में काव्य रचनाएँ होती रही, इसलिए इसके अनेक गुणों के कारण खड़ी बोली हिन्दी की प्रारम्भिक रचनाओं में त्रुटि आना कोई बड़ी बात नहीं थी, इसके कारण प्रारम्भ में निराशाजनक रचनाओं का आगमन हुआ, लेकिन द्विवेदी जी इससे टूटने वाले नहीं थे। उन्होंने हताश व निराश होना सीखा ही नहीं था। खड़ी बोली हिन्दी के प्रति उनका यह समर्पण धीरे-धीरे भाषा में सुकुमारता, माधुर्य, सरसता, कोमलता, लयात्मकता, पदलालित्य, उत्कृष्टता, प्रभावशीलता जैसे गुणों को समावेशित करता चला गया। उन्होंने हिन्दी की त्रुटियों का परिमार्जन किया और अपने समकालीन लेखकों से परिष्कृत गद्य में लिखने को कहा, जिसका पालन अतिशीघ्र हुआ। इस प्रकार हिन्दी गद्य और पद्य के क्षेत्रों में खड़ी बोली के सिंहासन रूढ़ होने में द्विवेदी जी ने निजी प्रयास की चरमता तक श्रम किया। अब इसी खड़ी बोली हिन्दी का प्रयोग प्रत्येक आधुनिक कवि अपनी रचनाओं में कर रहा है।

## संदर्भ-सूची


1. द्वारिका प्रसाद सक्सेना, हिन्दी के आधुनिक प्रतिनिधि कवि, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा, 12वां संस्करण, 2006, पृ. 03
2. वही, पृं. 03
3. वही, पृं. 04
4. वही, पृ. 05
5. डॉ. विश्वनाथ तिवारी, हिन्दी आलोचना, राजकमल प्रकाशन प्राईवेट लिमिटेड, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1977, पृ. 34
6. डॉ. शैव्या झा, आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी : व्यक्तित्व एवं कृतित्व, अनुपम प्रकाशन, पटना, पृ. 26, प्रथम संस्करण, 1977
7. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास, नमन प्रकाशन, नई दिल्ली संस्करण 2002, पृ. 362,
8. राम विलास शर्मा, महावीर प्रसाद द्विवेदी और हिन्दी नव जागरण, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 1977, पृ. 355
9. सम्पादक शंभुनाथ, अशोक जोशी, भारतेन्दु और भारतीय नवजागरण, आने वाला कल, पृ. 87 कलकत्ता, प्रथम संस्करण, 1986
10. डॉ. विश्वनाथ तिवारी, हिन्दी आलोचना, पृ. 34
11. डॉ. शैव्या झा, आचार्य महावीर द्विवेदी : व्यक्तित्व एवं कृतित्व, पृ. 02
12. राम विलाश शर्मा, महावीर प्रसाद द्विवेदी और हिन्दी नवजागरण, पृ. 351
13. डॉ. शैव्या झा, आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी : व्यक्तित्व एवं कृतित्व, पृ. भूमिका 05
14. द्वारिका प्रसाद सक्सेना, हिन्दी के आधुनिक प्रतिनिधि कवि, पृ. 77
15. डॉ. शैव्या झा, आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी : व्यक्तित्व एवं कृतित्व, पृ. 02


***

Hindi
Shodh Sandarsh-V, Vol.-XVI, Sept.-2017, Page : 32-34
ISSN No. - 2319–5908 (U.G.C. Approved Journal No. : 41329)

# हिन्दी उपन्यास-परम्परा में लघु उपन्यासों का अवदान

*डॉ. रजनी 'प्रताप'**

मानव ने अपने आदिम काल से लेकर अब तक विकास के अनेक पड़ाव पार किए हैं। विकास की इस यात्रा में मानव ने अपने मनोभावों को प्रकट करने के लिए अनेक माध्यम अपनाएं। संगीत, साहित्य, चित्रकारी, मूर्तिकला आदि ऐसे ही क्षेत्र हैं जिनके माध्यम से मानव ने अपने मन के विविध भावों को अभिव्यक्त किया। अभिव्यक्ति के इन सभी साधनों में समाज की प्रतिछाया अवश्य विद्यमान रही। इसलिए मानव के लिए समाज की भूमिका बहुत महत्वपूर्ण है। इसीलिए साहित्य में भी केवल मानव की मनोभावनाएं ही नहीं, अपितु समाज की परिस्थितियाँ भी झलकती है। साहित्य मानव की विकास-यात्रा का प्रमाण भी हैं। साहित्य के ही एक रूप लोक-साहित्य से लेकर अब तक के साहित्य से मानवीय चेतना और मानवीय समाज में होने वाले परिवर्तनों का सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है। इसलिए किसी भी समाज के गूढ़ रहस्य, संवेदना, स्थिति और संस्कृति को जानने के लिए साहित्य में झांकना परमावश्यक है।

हिन्दी साहित्य विश्व-साहित्य में विशेष स्थान रखता है। हिन्दी साहित्य की केवल परम्परा ही प्राचीन नहीं है, अपितु हिन्दी साहित्य में अनेकानेक विधाओं में विपुल लेखन हुआ है। इसके इतिहास के आदिकाल और मध्यकाल में जहाँ काव्य का बाहुल्य रहा है, वहीं आधुनिक काल में गद्य विधाओं का विकास बहुत विस्तृत फलक पर हुआ। इसीलिए इस काल को 'गद्य काल' के नाम से जाना जाता है। आधुनिक काल कहानी, उपन्यास, निबंध, रेखाचित्र, संस्मरण, जीवनी, आत्मकथा, रिपोर्ताज, यात्रा-वृत्तांत आदि सभी विधाओं का उन्नयन हुआ। इन सभी विधाओं में से उपन्यास और कहानी साहित्य की लोकप्रियता अभी भी बरकरार है। विशेषतः उपन्यास साहित्य को केन्द्र में रखकर यह कहा जा सकता है कि उपन्यास साहित्य ने हिन्दी साहित्य को बहुत समृद्ध किया है। उपन्यास के विकास के विविध चरणों में हिन्दी में लघु उपन्यास लेखन की परम्परा भी मिलती है।

उपन्यास, कहानी और लघु-उपन्यास में अन्तर की सीमा-रेखा खींचना बहुत मुश्किल है, क्योंकि विषय-वस्तु की दृष्टि से यह तीनों विधाएं लगभग समान प्रतीत होती हैं, परन्तु शिल्प की दृष्टि से इन के परस्पर अन्तर को रेखांकित किया जा सकता है। "बृहत उपन्यास और कहानी की तुलना में लघु-उपन्यास में सिद्धान्त, विषय और शिल्प की दृष्टि से अन्तर होता है.. लक्ष्य की दृष्टि से लघु-उपन्यास-साहित्य को मुख्य रूप से दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है। एक, तो व्यक्तिवादी या मनोवैज्ञानिक लघु-उपन्यास जिसमें व्यक्ति के अंर्तमन की ग्रन्थियों का विश्लेषण ही प्रमुख होता है, दूसरा, सामाजिक लघु-उपन्यास जिसमें सामाजिक यथार्थ को प्रधानता दी जाती है।"[1] इस प्रकार स्पष्ट है कि लघु-उपन्यासों का वर्ण्य-विषय सीमित होता है। "लघु उपन्यास का चित्रफलक अपेक्षाकृत छोटा होता है। इसलिए उसमें प्रायः अधिकारिक कथा ही होती, प्रासंगिक तथा उपकथाओं के लिए उसमें अवकाश नहीं रहता। कथा में लेखक की दृष्टि एक विशेष बिन्दु की ओर केन्द्रित रहती है, और उसी बिन्दु की ओर सारी घटनाएं अबाधित गति से बढ़ती जाती हैं।"[2] अतः लघु उपन्यासों में केवल चुनिन्दा प्रसंगों को ही कथावस्तु में समाविष्ट किया जाता है।

हिन्दी में अनेक लघु उपन्यास लिखे गये हैं। हिन्दी में लघु उपन्यासों की परम्परा प्रेमचन्द युग से ही स्वरूप ग्रहण करती दिखाई देती है। निराला, चतुरसेन, शास्त्री, जैनेन्द्र के उपन्यासों में लघुता का विशेषता स्पष्टतः देखी जा सकती है। परन्तु जैनेन्द्र ने लघु उपन्यासों के विकास में विशिष्ट योगदान दिया है। "जैनेन्द्र ने हिन्दी में लघु-कथाफलक को लेकर लघु-उपन्यासों का विधिवत् प्रारम्भ किया। उनके इन लघु-उपन्यासों में पश्चिमी की पूर्व-दीप्ति (फ्लैश बैक)) तथा चेतना-प्रवाह शैलियों का प्रयोग पाया जाता है।"[3] अतः यह उपन्यास शैली की दृष्टि से भी विशिष्ट है। इन लघु उपन्यासों में सामान्य उपन्यासों की भाँति कथा-विस्तार तो नहीं है, परन्तु संवेदना के धरातल पर यह उपन्यास सामान्य उपन्यासों से कहीं भी क्षीण नहीं दिखाई देते। "आधुनिक

* *अस्सिटेण्ट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, पंजाबी विश्वविद्यालय पटियाला*

उपन्यास की विशेषता यह है कि वह अपेक्षाकृता संक्षिप्त कलेवर में भी जीवन को उतने ही व्यापक रूप में स्वीकार करता है जितना कि 19वीं शती के बृहदाकार क्लैसिक कृतियों में चित्रित हुआ है।[4] इन उपन्यासों में समाज के सब पहलुओं का अवलोकन उतनी ही सूक्ष्मता से किया गया है, जितना लम्बे उपन्यासों में किया जाता है। इसलिए कथ्य की दृष्टि से भी लघु उपन्यासों का विशिष्ट महत्व है।

धर्मवीर भारती का लघु उपन्यास 'सूरज का सातवां घोड़ा' हिन्दी उपन्यास के विकास में एक नया मोड़ लेकर आया है। इस उपन्यास ने हिन्दी विधा को शिल्प की दृष्टि से एक नयी दिशा प्रदान की है। इस लघु उपन्यास के माध्यम से धर्मवीर भारती ने उपन्यास-लेखन की तकनीक में एक प्रयोग किया है। ''लघु उपन्यासों के इस दौर में उपन्यास का सर्वोत्तम रूप धर्मवीर भारती के 'सूरज का सातवां घोड़ा' के रूप में आया, जो शिल्प की दृष्टि से अनोखा प्रयोग था। दरअसल इन लघु उपन्यासों में 'शिल्प' के प्रयोग ही अधिक किए गए हैं।''[5] इस लघु उपन्यास में प्रत्येक अध्याय में अपने आप में एक अलग कहानी है, परन्तु प्रत्येक नये अध्याय का आरम्भ पूर्व अध्याय में इंगित है। इस प्रकार एक कहानी में दूसरी कहानी छिपी हुई प्रतीत होती है। प्रस्तुत लघु उपन्यास में धर्मवीर भारती ने प्रत्येक कहानी माणिक मुल्ला नामक पात्र के द्वारा व्याख्यायित की है। वही इस लघु उपन्यास का प्रमुख पात्र भी है। इस प्रकार लघु उपन्यास की दृष्टि से 'सूरज का सातवाँ घोड़ा' एक ऐसी सशक्त कृति के रूप में उभर कर सामने आता है, जिसके माध्यम से रचनाकार ने पुरानी लीक से हटकर एक नया प्रयोग किया है और उपन्यास विधा को नई तकनीक से अवगत करवाया है।

'सूरज का सातवां घोड़ा' जहाँ अपनी विलक्षण शैली के लिए चर्चित है, वहीं कृष्णा सोबती और सुनीता जैन के लघु उपन्यास नारी संवेदना के धरातल पर अपनी विशिष्ट पहचान रखते हैं। कृष्णा सोबती ने अपने लघु-उपन्यासों के माध्यम से हिन्दी उपन्यास-साहित्य में नारी-स्वर को मुखरित किया है। उन्होंने तत्कालीन समाज में कुण्ठित होती जा रही मनःस्थिति के चित्र प्रस्तुत किए हैं। इस संदर्भ में विजयमोहन सिंह लिखते हैं कि ''इसी दौर में कृष्णा सोबती को यह श्रेय दिया जाता है कि उन्होंने अपने दो लघु उपन्यासों 'डार से बिछुड़ी' और 'मित्रो मरजानी' में पहली बार 'नारी की स्थिति' को नारी की दृष्टि से पहचानने की परम्परा हिन्दी उपन्यास में शुरु हुई। इसका सर्वोत्तम रूप शताब्दी के नवें दशक में लिखे उनके लघु-उपन्यास 'ऐ लड़की' में प्राप्त होता है।''[6] अतः स्पष्ट है कि कृष्णा सोबती ने अपने लघु उपन्यासों के माध्यम से न सिर्फ हिन्दी साहित्य को समृद्ध किया है, अपितु साहित्य को एक नयी दृष्टि भी प्रदान की है।

कृष्णा सोबती की ही भाँति सुनीता जैन के उपन्यास 'बिन्दु', 'बोज्यू', 'सफर के साथी', 'अनुगूंज', 'मरणातीत' आदि ऐसे उपन्यास हैं, जिनमें सुनीता जैन ने नारी जीवन की विभिन्न विसंगतियों के साथ नारी-चेतना के स्वर को मुखरित किया है। ''सुनीता जैन का उपन्यास 'बिन्दु' नारी का समाज के साथ संघर्ष, स्वयं का व्यक्तित्व तलाशना, लेकिन रूढ़ियों से मुक्त न हो पाने का जो लम्बा सिलसिला है, उसे स्पष्ट करता है।.. 'अनुगूंज' उपन्यास में स्त्री-पुरुष सम्बन्धों में जो ठंडापन आ रहा है, उसे मदन और छवि के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है।.. 'मरणातीत' उपन्यास में विधवा नारी की जो मानसिकता होती है, उसे स्पष्ट किया गया है।''[7] अपने इन लघु उपन्यास के माध्यम से सुनीता जैन ने यह तथ्य प्रस्तुत करने की चेष्टा की है कि नारी का जीवन भारतीय समाज में सदैव मर्यादित ही रहा है। उसे समाज में रहते हुए सामाजिक मान्यताओं को नज़र अंदाज करने की आज्ञा नहीं है, परन्तु सामाजिक परिवर्तनों के साथ नारी मन की स्थिति भी परिवर्तित हुई है। वह अब सजग हुई है और अपने जीवन के सफर में साथी की तलाश खुद करने में सक्षम है। वह अपने जीवन के विभिन्न निर्णय स्वयं ले सकती है।

चन्द्रकान्त ने भी नारी जीवन से जुड़े कई प्रश्न उठाए हैं। स्त्री अस्तित्व और स्त्री-देह से सम्बन्धित अनेक मुद्दे उनके लघु उपन्यास 'अपने-अपने कोणार्क' में देखे जा सकते हैं। इस संदर्भ में चन्द्रकान्त बान्दिवडेकर 'अपने-अपने कोणार्क' के विषय में लिखते हैं कि ''नारी मुक्ति के सन्दर्भ में एक प्रश्न बार-बार उठता है वह यह है कि मनुष्य की सांस्कृतिक प्रगति के फलस्वरूप जो एकल परिवार व्यवस्था निर्मित हुई है। वह अबाधित रहे या नहीं और रहे तो किन शर्तों पर और स्त्री-पुरुष सम्बन्धों में संवादपूर्ण स्थितियाँ कैसी हों, उनमें देहशुद्धि की अवधारणा का रूप क्या हो। चन्द्रकान्त का 'अपने-अपने कोणार्क' इस परिप्रेक्ष्य में सशक्त लघु उपन्यास है।''[8] इस प्रकार चन्द्रकान्त ने अपने इस लघु-उपन्यास में स्त्री-पुरुष सम्बन्धों का विश्लेषण किया है।

इस प्रकार इन लघु-उपन्यासों ने हिन्दी साहित्य में नारी संवेदना को विभिन्न धरातलों पर अंकित किया है। महेन्द्र भल्ला ने भी अपने लघु-उपन्यास 'एक पति के नोट्स' में नारी जीवन की दैहिक संवेदनाओं को बहुत सूक्ष्मता से अंकित किया है। यह उपन्यास अपनी भाषा और शिल्प के कारण भी चर्चित रहा। ''सन् 60 के बाद के कहानीकारों में सम्भवतः सबसे पहले महेन्द्र भल्ला ने एक लघु उपन्यास 'एक पति के नोट्स' लिखा था जिसकी पर्याप्त चर्चा हुई। चर्चा का कारण उसका सुन्दर बेलौस गद्य तथा बेबाक दैहिक वर्णन था। इतनी तटस्थ निर्भीकता के साथ अपने शारीरिक संवेगों का वर्णन हिन्दी में इससे पहले किसी कथाकार ने नहीं किया।''[9]

नारी संवेदना से जुड़े हुए इसी प्रकार के विभिन्न पक्षों को ममता कालिया ने भी अपने लघु उपन्यासों में रेखांकित किया है। 'एक पत्नी के नोट्स', 'लड़कियाँ', 'प्रेम कहानी' नामक लघु उपन्यासों में ममता कालिया ने नारी मन के विविध मनोभावों को सामाजिक और मनोवैज्ञानिक धरातल पर प्रस्तुत किया है। 'एक पत्नी के नोट्स' लघु उपन्यास में ममता कालिया ने एक उच्च अधिकारी की पत्नी की सामाजिक विवशता को आलोकित किया है। कृति में निम्न मध्यवर्गीय नायिका, कविता का पति, संदीप, अपनी पत्नी पर सर्वस्व स्वयं का अधिकार समझता है। वह समाज में उसकी सराहना को स्वीकार नहीं कर पाता। संदीप की यही प्रवृत्ति कविता की घुटन का कारण बनती है। 'लड़कियाँ' लघु उपन्यास में भी ममता कालिया ने नारी जीवन से जुड़े संदर्भों को उजागर किया है। आधुनिक लड़कियों के लिए विवाह की अनिवार्यता का प्रश्न अब कोई मायने नहीं रखता, वह अपने कैरियर और जीवन-शैली के प्रति अधिक सजग हैं, इसी तथ्य को ममता कालिया ने इस लघु उपन्यास की नायिका के माध्यम से प्रस्तुत किया है। 'प्रेम कहानी' उपन्यास में रचनाकार ने प्रेम के चित्रण के साथ-साथ समाज से जुड़ी हुई अनेक अव्यवस्थाओं का भी चित्रण किया है। सरकारी विभागों की अनियमितताओं की झलक भी इस लघु उपन्यास में दिखाई देती है।

विनय कुमार पाठक ने अपने लघु उपन्यास 'एषणा' में आधुनिक समाज में विवाह संस्था से सम्बन्धित अनेक प्रश्नों को पाठक वर्ग के सामने रखा है। धीरज और श्वेता के वैवाहिक सम्बन्धों के द्वारा रचनाकार ने परम्परागत विवाह संस्था से सम्बन्धित औपचारिकताओं पर प्रश्न चिह्न लगाया है। आज के दौर में विवाह से सम्बन्धित मान्यताएं बदल रही हैं। ऐसी स्थिति में परम्परागत मान्यताओं को बोझ की भाँति ढोते रहना व्यर्थ सिद्ध हो रहा है। विनय कुमार पाठक ने 'एषणा' के माध्यम से परम्परागत मान्यताओं का खण्डन करते हुए स्त्री और पुरुष दोनों के सम्बन्धों को नये दृष्टिकोण के साथ प्रस्तुत किया है।

लघु उपन्यास के कथ्य के केन्द्र तत्कालीन ज्वंलत विषय भी स्थान पा रहे हैं। रणेन्द्र कृत 'ग्लोबल गाँव के देवता' लघु उपन्यास इसी का उदाहरण है। इस लघु उपन्यास में आदिवासी जीवन की समस्याओं को चित्रित किया गया है। ''ग्लोबल गाँव के देवता' वस्तुतः आदिवासियों-वनवासियों के शोषण को बहुत बेबाकी से प्रस्तुत किया है। आधुनिक युग में अपनी भौतिकवादी लालसाओं की पूर्ति में मानव इतना लिप्त हो गया है कि वह प्रकृति और प्रकृति में विचरण करने वाले अन्य मानवों को हानि पहुँचाने से भी गुरेज नहीं करता है। रणेन्द्र ने इस लघु-उपन्यास में आदिवासी जीवन के सूक्ष्म यथार्थ को व्याख्यायित किया है।

इस प्रकार हिन्दी साहित्य में लघु उपन्यासों का विशिष्ट महत्व है। लघु उपन्यासों ने हिन्दी साहित्य को शिल्प और कथ्य दोनों ही दृष्टियों से समृद्ध किया है। समाज से जुड़े अनेक प्रश्नों को संवेदना के धरातल पर चित्रित करने के साथ-साथ अभिव्यक्ति कौशल के नये-नये तरीके भी लघु उपन्यासों में रूपायित होते हैं। इसलिए उपन्यास साहित्य के समान्तर ही लघु उपन्यास हिन्दी साहित्य को समृद्ध कर रहे हैं। कथावस्तु की सीमितता के बावजूद भी यह समाज से जुड़े प्रश्नों को गहनता के साथ पाठक वर्ग के समक्ष रख रहे हैं। इसलिए साहित्य की अन्य विधाओं की ही भाँति लघु उपन्यास भी हिन्दी साहित्य में विशिष्ट स्थान के अधिकारी हैं।

## संदर्भ सूची


1. गीता, स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास, पृ. 20-21
2. वही पृ. 20
3. मधुप घनश्याम, हिन्दी लघु-उपन्यास, पृ. 91
4. रामस्वरूप चतुर्वेदी, समकालीन हिन्दी साहित्य, पृ. 93
5. विजयमोहन सिंह, बीसवीं शताब्दी का हिन्दी साहित्य, पृ. 137
6. वही, पृ. 137
7. वैशाली पाण्डेय, स्त्रीवाद और महिला उपन्यासकार, पृ. 85
8. विजयमोहन सिंह, बीसवीं शताब्दी का हिन्दी साहित्य, पृ. 154
9. विश्वनाथ प्रसाद तिवारी, बीसवीं सदी का हिन्दी साहित्य, पृ.45
10. रणेन्द्र, ग्लोबल गाँव के देवता, बैक फ्लैस


***

Hindi
Shodh Sandarsh-V, Vol.-XVI, Sept.-2017, Page : 35-38
ISSN No. - 2319–5908 (U.G.C. Approved Journal No. : 41329)

# निराला की कविताओं में शक्ति की आराधना

*अखिल मोहन**

महाकवि निराला के व्यक्तित्व पर बंगाल की शक्ति पूजा की परम्परा का अत्यधिक प्रभाव पड़ा है। रामकृष्ण परमहंस शक्ति के उपासक थे, लेकिन वे तांत्रिक मत वाले शाक्त नहीं थे। स्वामी विवेकानन्द जी ने भी उपासना के क्षेत्र में ज्ञान, कर्म, और भक्ति तीनों का समन्वय किया था। वे विरक्त संन्यासी, वैष्णव भक्त और शाक्त उपासक तीनों ही थे। उसी तरह निराला ने भी सन्यासी मार्गी, वैष्णव मार्गी और शाक्तमार्गी तीनों ही उपासना पद्धतियों का समन्वय किया है।

भारत वर्ष में शक्ति की उपासना का इतिहास अति प्राचीन काल, वैदिक काल से जुड़ा हुआ है। वैदिक काल में ही शक्ति पूजा के स्वरूप का विकास 'मातृभूमि' द्वारा शक्ति की उपासना के रूप में ही प्रारम्भ हुआ। दुर्गा सप्तशती में शक्ति को जगतकारिणी माँ दुर्गा के ही रूप में प्रतिपादित किया गया है।

**''या देवी सर्वभूतेषु शक्ति रूपेण संस्थिता,**
**नमस्तयै नमस्तयै नमस्तयै नमोः नमः''**

अर्थात् जड़ चेतन सभी प्रकार के प्राणियों के भीतर कहीं गुप्त और कहीं व्यक्त भाव से अवस्थित शक्ति-रूपिणी देवी को हम बारम्बार प्रणाम करते हैं। वेद कहते हैं कि–''प्राचीन होने पर भी शक्ति नित्य जीवन है, अव्यक्त भाव से जब वह व्यक्त होती है, तब वह नवीन प्रतीत होती है। इसी कारण श्री रामकृष्ण देव जी कहा करते थे–

**''चिक की ओट में देवी सदा ही खड़ी है।''**

कुछ विद्वानों का विचार है कि शक्ति की उपासना का कार्य भारत की आदिम जातियों से प्रारम्भ हुआ, किन्तु स्पष्टता शक्ति को देवी के रूप में प्रतिष्ठा वैदिक काल से ही मिल चुकी थी। दुर्गा अथवा काली के रूप में शक्ति की उपासना करने की परम्पर पौराणिक काल में प्रारम्भ हो गयी थी। इस सम्बन्ध में रामकृष्ण गोपाल भण्डारकर ने लिखा है– ''इन देवियों की कल्पना में एक तीसरा प्रबल तत्व शक्ति भावना है। इच्छा, क्रिया, सृजन, मोह आदि की शक्तियों की कल्पना देवियों के रूप में की गई, क्योंकि शक्ति शब्द स्त्रीलिंग है। उपर्युक्त ब्राह्मणी, माहेश्वरी आदि देवियों की कल्पना देवों की शक्तियों की भाव है।''

शाक्त-भक्ति में देवी के तीन रूप प्राप्त हैं। 1. सौम्यरूप, 2. प्रचण्डरूप 3. काम प्रधान रूप। काम प्रधान शक्ति रूप के उपासक उसे आनन्द भैरवी त्रिपुर सुन्दरी, ललिता आदि कई नामों से पुकारते हैं। शाक्त सम्प्रदाय में शक्ति को ब्रह्मा, विष्णु, और शिव, से भी उच्च स्थान प्राप्त है। शाक्त दर्शन के अनुसार शिव और शक्ति का सम्बन्ध सत्य है। शिव प्रकाश स्वरूप है जो विमर्श रूप अथवा स्फूर्त रूप शक्ति में प्रविष्ट होने और बिन्दु का रूप धारण कर लेते हैं। इसी प्रकार शक्ति भी शिव में प्रवेश कर जाती है शाक्त दर्शन के अनुसार त्रिपुर सुन्दरी पराशक्ति है, सृष्टि उसका परिणाम है। शाक्तों का यह विश्वास है, कि ''ईश्वर स्त्री रूप है और उसी ने इस सृष्टि की रचना की है। वह आनन्दनीय और कल्याणी है, उसी की आराधना से मुक्ति सम्भव है। वह मातृशक्ति है, इसी कारण वह करूणामयी भी है। शक्ति पूजा के सम्बन्ध में महर्षि अरबिन्द का विचार है–''भगवान का सेवक होना कुछ चीज है, भगवान का दास होना उससे भी बड़ी चीज है.. भला यह मनुष्य दैवी को कैसे पा सकता है जिसने कभी काली की उपासना नहीं की है।''

महाप्राण निराला ने अपनी कविताओं में मातृशक्ति के रूप में भी अपनी शक्तिरूपी भाव को प्रदर्शित किया है। उनकी शक्ति की आराधना में तांत्रिक शक्ति सम्प्रदाय का प्रभाव नहीं है। वे महाशक्ति दुर्गा की सर्वशक्ति रूपी मान्यता का वर्णन करते हुए कहते हैं–

* *शोध छात्र, हिंदी तथा आधुनिक भारतीय भाषा विभाग, महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी*

**''पतित हुआ हूँ, भव से तार**
**दुस्तर दव से कर उद्धार**
**तू इंगित से विश्व अपरिमित**
**रच-रच कर करती है अवसित,**
**किस काया से, किस छायाश्रित**
**मैं वस होता हूँ, बलिहार।''**

इसमें निराला ने शक्ति या दुर्गा को ईश्वर का स्थानापन्न माना है। निराला कहते हैं कि मृत्यु रूपिणी देवी का शारीरिक स्वरूप कैसा है? और वह किस प्रकार संकेत मात्र से सृष्टि की रचना और विनाश करती है? यह मुझे ज्ञान नहीं मैंने एक भक्त के रूप में अपने का देवी के चरणों में अर्पित कर दिया है, इस कारण अब मुझे कोई भय नहीं है।

**''मृत्यु रुपिणी मुक्त कुन्तला**
**माँ भी नहीं किसी को चाह**
**मृत्यु स्वरूपा माँ हैं तू ही**
**सत्य स्वरूपा सत्याधार''**

निराला जी ने अपनी कविता 'पंचवटी-प्रसंग' में भी सीता को शक्ति के रूप में लक्ष्मण के मुख से कहलवाया है। लक्ष्मण स्वयं निराला के रूप में मातृशक्ति के चरण-रेणु रज लेने के लिए लालायित दिखाई देते हैं–

**''माता की चरण-रेणु मेरी परम शक्ति है**
**माता की तृप्ति मेरे लिए अष्ट सिद्धियाँ**
**माता के स्नेह शब्द मेरे सुख-साधन है।''**

'आराधना' और 'गीतिका' के अनेक गीतों में कवि ने मातृशक्ति की आराधना की है। माँ के प्रति कवि की भक्ति भावना निज स्वार्थ के लिए नहीं वरन, विश्व कल्याण की भावना से प्रेरित है–

**''माँ मानस के सित शतदल को**
**रेणु-गन्ध के पंख खिला दो**
**जग के मंगल, मंगल के पल**
**पार लगा दो प्राण मिला दो**
**तरु को तरुण पत्र मंजर दो।''**

निराला द्वारा रचित 'राम की शक्ति-पूजा' का उद्देश्य शक्ति की मौलिक कल्पना करना है। इस कविता में निराला के चिंतन-मनन का मूलाधार रामकृष्ण-विवेकानंद का शक्तिवाद पर आधृत नव्य वेदांत है। अद्वैत को स्वीकारते हुए भी श्री रामकृष्ण ब्रह्म और शक्ति दोनों को मानते थे, क्योंकि दोनों में वे अभेद मानते थे। उनके अनुसार जो ब्रह्म है, वे ही शक्ति है। ब्रह्म और शक्ति अभेद हैं, जैसे कि अग्नि और उसकी दाहिका शक्ति। उनके शिष्य विवेकानंद ने अपनी इसी अंतर्निहित शक्ति को पहचान कर उसे जगाकर सक्रिय कर सारे विश्व को बदल देने का आवाहन किया था। उनकी सिंह गर्जना थी, अपने पर विश्वास करो सब शक्ति तुममें है– इसे जान लो और उसे विकसित करो।

**''किन्नाम रोदिषि सखे त्वयि सर्वशक्तिः**
**आमन्त्रयस्व भगवन् भगदस्वरूपम्**
**त्रैलोक्यमेतदखिले तव पादमूले**
**आत्मैव हि प्रभवते न जडः कदाचित् ।।''**

महाकवि निराला इन्हीं मान्यताओं को लेकर ही कदाचित विवेकानंद की दो कविताओं 'गाई गीत सुनाते तोमाय' एवं 'नाचुक ताहाते श्यामा' का अनुवाद किया था। देवी को शक्ति-पूज्य मानते हए 'राम की शक्ति-पूजा' नामक कविता में बतलाते हैं कि साधना से प्रसन्न होकर देवी साधक की सब प्रकार से रक्षा करती है–

**''हे पुरुष-सिंह, तुम भी यह शक्ति करो धारण**
**आराधन का दृढ़, आराधन से दो उत्तर,**
**तुम करो वरो विजय संयत प्राणों से प्राणों पर;**
**शक्ति की करो मौलिक साधना, करो पूजन''**

जिस भक्ति की आराधना से शक्ति प्राप्त होती है, वह आद्य शक्ति है, उसके व्यापक रूप का वर्णन राम ने अपनी सभासदों से इस प्रकार किया था–

**''देखो बन्धुवर, सामने स्थिर जो वह भूधर**
**शोभित, शत-हरित,-गुल्भ-तृण से श्यामल सुन्दर।**
**पार्वती कल्पना है इसकी मकरंद-बिन्दु।**
**गरजता चरण-प्रान्त पर सिंह वह,नदी सिन्धु॥''**

इन पंक्तियों में दुर्गा के प्रतीकात्मक विग्रह का वर्णन किया गया है। असुरविमर्दिनी, सिंह वाहिनी, अष्ट भुजा दुर्गा का शक्तिरूपेण रूप को चित्रित किया गया है जो शक्ति का ही प्रतीकात्मक है।

निराला ने अपनी शाक्त भक्ति में देवी के प्रचण्ड रूप का भी वर्णन किया है। निराला के अनुसार महाशक्ति की उपासना दीन भाव से नहीं, अपितु सिंह भाव से की जानी चाहिए। राम ने इसी भाव से शक्ति की आराधना की। वे श्यामा से प्रार्थना करते है, कि वह क्रान्ति की देवी बनकर दुष्टों का उसी प्रकार दमन करें जैसें असुरों का किया था–

**''एक बार बस और नाच तू श्यामा**
**सामान सभी तैयार**
**कितने ही असुर चाहिए कितने तुझको हार?''**

उक्त पंक्ति में निराला ने माँ दुर्गा का वर्णन नाश और क्रान्ति की देवी के रूप में किया गया है, जो लोकहित के लिए दुष्टों का दमन करती और उसका सिर काटकर मुण्ड मालाओं की मेखला और गलें का हार पहनती है। निराला जी इस क्रान्ति में देवी का अनुसरण करते हुए उनका सहयोगी बनना चाहते हैं, जिससे स्पष्ट होता है कि वह लोकहित के लिए हिंसात्मक क्रांति करना और शक्ति की उपासना द्वारा शक्ति अर्जित करना चाहते हैं। इस प्रकार निराला के शाक्त दर्शन में केवल दैन्य और शरणागति वाले भाव ही नहीं हैं, बल्कि क्रान्ति ओज एवं पौरुष वाले भाव भी हैं।

निराला ने शक्ति आराधना के अन्तर्गत केवल शक्ति के प्रबल तेज रूप का ही वर्णन नहीं किया बल्कि शक्ति के सौम्य रूप जैसे माँ सरस्वती का भी वर्णन किया है। निराला जी के कल्पनाओं का उत्सवीणा-वादिनी माँ सरस्वती ही है। अतः वे माँ सरस्वती का आह्वान करते हैं; ताकि उनके भीतर सुन्दर कल्पनाओं का उदय हो जिससे उनके भीतर की मलिनता दूर हो जाये और चित्र निर्मल बन जाये। वे माँ सरस्वती की मूर्ति का ध्यान उसी प्रकार करते हैं जिस प्रकार भक्त अपने आराध्य की मूर्ति की मूर्ति का ध्यान करते है। वे कहते हैं–

**''फिर संवार सितार लो।**
**बाँध कर फिर ठाट अपने**
**अंक को झनकार दो**
**शब्द की कलि-दल खुले।**
**गति पवन भर कांप थर-थर**
**मोड़ भ्रमरावलि दुले,**
**गीत परिमल बहें निर्मल फिर बहार बाहर हो।''**

निराला ने देवी सरस्वती को केवल काव्य और कला की अधिष्ठात्री देवी ही नहीं बल्कि मानवता की कल्याणी देवी भी माना है। वे सरस्वती से मानव जाति को आनन्दमय बनाने की प्रार्थना करते है। क्योंकि काव्य और कला के माध्यम से मानव जाति के दुःख एवं पाप का शमन कर उसे सुखी वे ही बना सकती है।

**''छेड़ दे तार तू पुनबीर**
**फिर हो अरण्य में चरण चार**
**फिर घाटी-घाटी में बंधकर**

**बातुल घूमें झूम कर भंवर**
**प्राणों की पावनता झरकर खोले स्वर की सुन्दर विचार।''**

'गीतिका' संग्रह के कई गीतों में निराला ने देवी सरस्वती की वंदना की है। 'कल्पना' के कानन की रानी'' जैसे गीतों में सरस्वती की वंदना कर श्री माँ का आह्नन किया है तथा निवेदन किया है कि ''जला दे जीर्ण शीर्ण प्राचीन'' ऐसे निवेदन में निश्चय ही कवि नवीन शक्ति प्राप्त करने की आकांक्षा रखता दिखाई देता है।

''गीतिका'' संग्रह का प्रसिद्ध गीत जिसमें निराला ने सरस्वती के चरणों में स्वतंत्रता के प्रिय अमृत मंत्र को समस्त भारत वर्ष में भर देने की कामना करते हुए सामाजिक एवं राजनीतिक क्रांति की प्रेरणा देने के लिए प्रार्थना करता है–

**''वर दे वीणा वादिनी वर दे**
**प्रिय स्वतंत्र रव, अमृत मंत्र नव**
**भारत में भर दे**
× × ×
**नवगति, नवलय, ताल छन्द नव**
**नवल कण्ठ, नव जलद-मंत्र रव**
**नव नभ के नव विहग-वृन्द को**
**नव पर नव स्वर दे।''**

उपर्युक्त कविता में निराला जी ने माँ सरस्वती से प्रार्थना की है कि वह भारतवासियों में कविता के माध्यम से नवीन क्रान्ति की प्रेरणा उत्पनन करे जिससे कि वे स्वतंत्रता के लिए संघर्ष करे। अपने अन्दर के अज्ञान को दूर करे, जिससे अन्यायपूर्ण सामाजिक भेदभाव दूर हो जाए, लोगों में नई चेतना, नया उत्साह और नया गतिशीलता आए। वे आचार-विचार और जीवन के सभी क्षेत्रों में तीव्रगति से प्रगति करे। इस प्रकार निराला ने अपने इस उद्‌बोधन गीत में सरस्वती के प्रति अपनी जिस भक्ति भावना की अभिव्यक्ति की है वह मात्र साहित्य और कला के क्षेत्र तक सीमित भक्ति नहीं है, अपितु उसका सम्बन्ध देश भक्ति एवं संस्कृति भक्ति से भी है।

इस प्रकार निराला के भक्ति चेतना के अन्तर्गत आध्यात्मिक मूल्य में शाक्त भक्ति का अपना अलग स्थान है। यद्यपि निराला का शाक्त भक्ति चेतना साम्प्रदायिक एवं कट्टरवादी नहीं है; अपितु रामकृष्ण परमहंस एवं स्वामी विवेकानंद जी के शाक्त भक्ति से प्रभावित होकर समन्वयवादी है। निराला ने वैष्णव भक्ति और शाक्त भक्ति में अन्तर नहीं माना है, क्योंकि उनकी शक्ति वाह्य आडम्बर से युक्त नहीं है, न तो उन्होंने कहीं भी मूर्ति पूजा से सम्बन्धित कोई बात कही है। उनकी भक्ति चेतना साधनात्मक नहीं भावनात्मक है।

## संदर्भ-सूची

1. दुर्गा शप्तशती 5/32-34, गीता प्रेस, गोरखपुर
2. स्वामी सारदानन्द, भारत में शक्ति-पूजा, पृ. 2
3. रामकृष्ण गोपाल भण्डारकर : वैष्णव शैव और अन्य धार्मिक मत, पृ. 165
4. डॉ. श्याम बहादुर वर्मा, श्री अरबिन्द साहित्य-दर्शन, पृ. 61
5. संपा. नन्दकिशोर नवल, निरालारचनावली-2, अर्चना गीत-97 पृ. 398
6. सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला, अनामिका. पृ. 110
7. निराला रचनावली, भाग-1 परिमल, पंचवटी प्रसंग- 2. पृ. 54
8. निराला रचनावली, भाग-2 आराधना, गीत –107 पृ. 403
9. निराला कवि-छवि संपादक नंद किशोर नवल, पृ. 154
10. निराला रचनावली-1, अनामिका, राम की शक्ति-पूजा. पृ. 335
11. निराला रचनावली- 1. अनामिका, राम की शक्ति-पूजा, पृ. 338
12. निराला आवाहन परिमल. पृ. 138. गंगा पुस्तक माला, लखनऊ
13. सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला, अनामिका, पृ. 330
14. निराला रचनावली, भाग-1, आराधना, गीत-129. पृ. 414
15. निराला रचनावली, भाग-1 गीतिका, वर दे, वीणा वादिनी वर दे! पृ. 225

***

Hindi
Shodh Sandarsh-V, Vol.-XVI, Sept.-2017, Page : 39-45
ISSN No. - 2319–5908 (U.G.C. Approved Journal No. : 41329)

# लोकगीतों के ऊर्जस्वी मानवेतर प्राणी

*डॉ. निधि सिन्हा**

लोक-साहित्य मानव-प्रकृति का स्वच्छन्द गान है, जिसका कोई आदि-अन्त नहीं। उसका रचयिता अज्ञात और कालक्रम अविदित है। यह परम्परागत लोक-संस्कृति की एकमात्र अकृत्रिम कलात्मक अभिव्यक्ति है। यह सदियों से पीढ़ी-दर-पीढ़ी संचित लोक-अनुभवों का मूल्यवान कोष है। लोक-साहित्य का द्वार गरीब-अमीर, शिक्षित-अशिक्षित, नर और नारी सबके लिए खुला है। भारत ग्राम प्रधान देश है। ग्रामों का जन-जीवन, सभ्यता, संस्कृति आदि सब लोक-साहित्य में समाहित है। गढ़वाल का सम्पूर्ण लोक-जीवन लोक-साहित्य में और लोक-साहित्य गढ़वाली लोक-जीवन में एकाकार है।

विश्व में लिखित साहित्य के अभाव में लोक-साहित्य ही जन-जीवन को सरस एवं स्वस्थ बनाता रहा है। लोक-जीवन में लिखित साहित्य से अधिक इस अलिखित साहित्य लोक-गीत, गाथाओं का व्यापक प्रसार रहा है। आज भी दादी-नानी अपने नाती-पोतों को जीवन-प्रेरक गाथाएं सुनाती मिल जाएंगी। किसी भी माँगलिक सुअवसर पर घर की स्त्रियों के मुख से लोकगीतों के स्वर स्वतः ही फूट पड़ते हैं। चक्की चलाते, खेती करते, वनों में घास-लकड़ी काटते समय अपनी कष्ट-व्यथा को भुलाने और हृदय को शान्ति प्रदान करने के निमित्त, सुखानुभूति प्राप्त करता हुआ श्रमिक थकावट दूर करने हेतु इस प्रकार गुनगुनाने उठता है–

**रिंगळी-पिंगळी फसल ह्वगै दांथी उठो दांथी!**
**दांथी उठौ दीदी मेरी, दांथी उठौ भुली मेरी!**
**धन्य तेरी मिनगत, धन्य तेरी माटी,**
**उठ फसल पकी, फसल दे तू काटी,**
**छप्प पुंगड़ी भरीन, सब भरीन सारी,**
**काटी काटी बांध पूळा, आज ज्यू न हारी!**
**दांथी उठौ मांजी मेरी दांथी उठौ दांथी!**
**अर्थात् फसल पककर पीली हो गई, दरांती उठा,**
**दरांती उठा मेरी बड़ी और छोटी बहिन दरांती उठा!**
**तेरा श्रम धन्य है, तेरी माटी धन्य है**
**उठ फसल पकी, फसल काट!**
**खेत भर गये हैं, सब खेत भर गए हैं,**
**काट-काट कर पुल बाँधों, आज जी न हारना!**
**दरांती उठा मां जी मेरी, दरांती उठा।**

किसी विशेष कार्य को करते हुए जैसे–धान को रोपते हुए गाये जाने वाले गीत 'रोपनी', खेत को निराते समय गाए जाने वाले गीत 'सोहनी' और तेल पेरते समय जो गीत गाये जाते हैं, उन्हें 'कोल्हू के गीत' का कहा जाता है। ये सभी प्रकार के गीत श्रमगीतों की श्रेणी में आते हैं। अतः परम्परा से चले आ रहे इन गीतों में मनुष्य की मार्मिक संवेदनाएं जुड़ी होती हैं, क्योंकि लोकगीत ही मानव-हृदय के विभिन्न उद्‌गारों को व्यक्त करने के सहज तथा सरल माध्यम हैं। मनोभावों के शब्दों की शृंखला इन गीतों में

* *एसोसिएट प्रोफेसर, हिन्दी-विभाग, डी.ए.वी. (पी.जी.) कॉलेज, देहरादून*

बनावट लेशमात्र भी नहीं होती है। स्वतः निसृत इन लोकगीतों में लोक के सम्पूर्ण परिवेश का सहज ही अवलोकन किया जा सकता है। सामाजिक जीवन से जुड़े विभिन्न क्षेत्रों से सम्बन्धित अनेकानेक गीत गढ़वाली लोक-साहित्य में मिलते हैं। कृषि-कार्य से सम्बन्धित अनेक गीत गढ़वाली लोक-साहित्य में मिलते हैं, जिनमें अनेकानेक मानवेतर प्राणियों का उल्लेख मिलता है। मानवेतर प्राणियों में पशु-पक्षी, कीट और उनकी विभिन्न कोटियों के सौन्दर्य पर प्रकाश डालना ही प्रस्तुत आलेख का मुख्य हेतु है।

उत्तराखण्ड की सामाजिक व्यवस्था कृषि पर निर्भर है। यद्यपि ब्राह्मण, हरिजन आदि अपना मांगलिक व्यवसाय भी करते हैं, किन्तु वह पूर्ण जीविका का साधन न होने के कारण कृषि भी करते हैं। अधिकतर सम्पन्न सवर्ण कृषि पर ही आश्रित होते हैं, इसके साथ ही पशुपालन भी यहाँ के निवासियों की आजीविका का मुख्य साधन है। गाय, बैल, भैंस, भेड़, बकरी आदि इनके प्रमुख पशु हैं। ये पशु इनके जीवन के लिए अत्यधिक महत्वपूर्ण हैं। आर्थिक स्थिति दयनीय होने के कारण उत्तराखण्ड के निवासी दूध बेच कर आजीविका चलाते हैं। प्रायः सभी घरों में गाय पाली जाती हैं, किन्तु भैंस कुछ समृद्ध घरों में पाली जाती है। बैलों का पालन कृषि के लिए किया जाता है, अतः प्रत्येक कृषक के घर में बैलों की जोड़ी होती है। पहाड़ का कृषक यदि धन इकट्ठा करता है, तो बैल, गाय, भैंस खरीदने के लिए।

कृषि प्रधान समाज होने के कारण गढ़वाल के निवासी पशुओं को पुत्र-पुत्रीवत् स्नेह करते हैं। स्नेहवश वह अपने बैल के क्रिया-कलापों को बड़े ध्यान से देखते हैं। एक लोकगीत में '**बैल**' के प्रति एक कृषक की स्नेहमयी भावना का चित्रण इस प्रकार किया गया है–

**सबसि मेरा मोती ढांगा**
**बेडू पाक्यों भर-भैर भी नि आंदो, मोती चिलांगो की डैर।**
**घोटी जाली हींग ओबरा बाध्यूं च मोती पांडा तै को सींग।**
**खल्यांणी को दांदो, हलसुंगी देखीकि मोती लमसट ह्वे जांदो।**
**बूंणी जालो जाल, कल्यौडयूं देखीक ढांगो ढोंडा देन्द फाल।**
**ताल रींगे औत, हल जनू लालू मोती सारो वेको भौत।**
**बूती जाला गेऊ, सौ साठ चेवरी आला मैं मोती नर देऊँ।**
**खील बूतों मेथी मोती ढांगों बच्यूं चंद कूटा न खण्ला खेती।**

प्रस्तुत गीत में कृषक की मोती नाम '**बैल**' के प्रति उत्कट स्नेह-भावना का चित्रण किया है। यहाँ तक कि यदि मोती हल न भी लगाए तो भी कृषक को उसका बहुत बड़ा सहारा है। उसके मोती **बैल** के लिए कितने ही लोग याचना करें, वह किसी भी कीमत पर बैल देने को तैयार नहीं है। उसकी उत्कट इच्छा है, कि बस उसका **बैल** जीवित रहे, इसके लिए उसे कुदाल से ही खेत क्यों न जोतना पड़े।

पालतू पशुओं में **गाय** अथवा **भैंस** सभी घरों में होती हैं। पुत्री की विदाई के क्षणों में पिता द्वारा पूर्ण भण्डार के साथ **गाय-भैंस** भेजने का वादा हृदयद्रावक होने के साथ-साथ समृद्धि का भी प्रतीक है–

**चौनन्दी पार में यखुली न जांदू,**
**तखा कि बाबा जी बोली कि बिगेन्दी।**
**तोई मेरी लाडी कि इखुली न भेजू**
**भैस्यू का खरक, गायूं का गोठ्यार,**
**त्वे सणी लाड़ी इखुली न भेजू ।**

अर्थात् चौनन्दी पार में अकेली नहीं जाऊँगी, पिताजी वहाँ की बोली, समझ में नहीं आती। लाडली पुत्री! मैं तुझे अकेले नहीं भेजूँगा। **भैंस-गाय** भी तेरे साथ भेजूँगा। मेरी लाडली! तुझे अकली नहीं भेजूँगा।

अतः उक्त लोकगीत से यह संकेत मिलता है कि **गाय-भैंस** आदि पशुओं का पालन समृद्धि का प्रतीक माना जाता था। बारात के आगमन पर एक ओर लोक-हृदय बारात का स्वागत करने के लिए उत्सुक होने के साथ-साथ चिन्तित भी हैं क्योंकि बारात में **हाथी-घोड़े** तथा बाराती सभी हैं–

**कती लाख हस्ती, अैन न कती लाख घोड़ा,**

**राजा का पैखु कु लेखू न ही जाखु।**
**कखा बैठला बाबा जी हस्ती व घोड़ा,**
**कखा बैठला राजा का पैखा।**
**आटांगणी बैठला हस्ती व घोड़ा,**
**पटांगणी बैठला, राजा का पैख।**
**सभा मां बैठलु धिया कु टुलैया,**
**कोठड़ी बैठलु मुगल समधी**

अर्थात् कई लाख **हाथी-घोड़े** और बाराती आए। ये कहाँ बैठेंगे? इनकी कोई गिनती ही नहीं है। बाराती अट्टालिका में, दूल्हा सभा में और समधी कोठरी में बैठेगा।

गढ़वाली गीत की नायिका रुक्मा ऐसे प्रेमी (भण्डारी) से विवाह करना चाहती है, जिसके देश में गाय-भैंस के खर्क और गोठ हो। निम्न गीत में नायक-नायिका के वार्तालाप में पशुओं का सौन्दर्य विद्यमान है–

**मलेथा ऐ जाणों रुकमा मेरा**
**मलेथा कैसा च? भंडारी, तेरो**
**भैंस्यों का खर्क मेरा मलेथा!**
**घांड्यो कू घमणाट मेरा मलेथा!**
**बाखरयों को तांदो मेरा मलेथा!**
**ए जाणू रुकमा मेरा मलेथा!**

अर्थात् रुकमा मेरे मथेला आ जाओ। हे भण्डारी! तेरा मलेथा गाँव कैसा है? मेरे कलेथा गाँव में भैंसों का खरक है, गायों का गोठ है और मेरे मलेथा गाँव में **बकरियों** की टोलियाँ हैं। रुक्मा मेरे मलेबा आ जाओ।

**भेड़ पालन** भी इस क्षेत्र का मुख्य व्यवसाय माना जाता है, यहाँ भेड़-पालक को बड़े हर्ष के साथ देखा जाता है। खांई के छूड़े गीत की एक पंक्ति दृष्टव्य है–

**खड़ू उठ्या भेड़ुका पालसी हरीश भुंचदू तेरो।**
**हे भेड़ों के पालसी (पालनकर्ता) जरा खड़ा तो उठ**
**मैं तेरा हर्ष भोगना (देखना) चाहता हूँ।**

गढ़वाली गीतों में **कुत्ते, बिल्ली** का उल्लेख बाल-गीतों में मिलता है। प्रस्तुत बालगीत में शब्द सौन्दर्य और भाव-सौन्दर्य के साथ पशुओं का भी चित्रण है–

**विराळी, विराळी, बल कख जांदी?**
**बल माछा मार्न?**
**मार्ली कनी? छप छप, छप छप!**
**लौली कनी? सटपट, सटपट!**
**काटली कनी? खर्स खर्स।**
**पकौली कनी? छ्यां माँ!**
**खाली कनी? कुरमुर कुरमर।**
**तबरके आए एक कुत्ता**
**विराळी भागण बैठे सुरुक, सुरुक!**
**विराळी, कख छै भागणी।**
**मैं माछा मार्न जांदौ!**

अर्थात् **बिल्ली, बिल्ली** कहाँ जाती है? / **मछली** मारने! /मारेगी कैसे? छप, छप! लाएगी कैसे? सरपट, सरपट/ काटेगी कैसे? खर्स खर्स! पकाएगी कैसे? छयाँ माँ/ खाएगी कैसे?–कुरमुर, कुरमुर! तभी एक कुत्ता आ पहुँचा/ **बिल्ली** चुपके से भागने लगी। **बिल्ली** कहाँ भाग रही है!/ **मछली** मारने जा रही हूँ। इसके अतिरिक्त लोकगीतों में कहीं-कहीं **सिंह, हिरणी, बछिया, चूहे** का भी उल्लेख मिलता है।

संस्कारों का भारत में अत्यधिक महत्व स्वीकारा गया है। धर्म जीवन का अभिन्न अंग होने के कारण हमारे संस्कारों के साथ अविच्छिन्न रूप से जुड़ा हुआ है। वैदिक काल से समस्त संस्कार समाज में सम्पन्न होते आ रहे हैं। गढ़वाल में सोलह संस्कारों में से कुछ ही ऐसे संस्कार सम्पन्न होते हैं, जो उल्लासयुक्त हैं। संस्कार–सम्बन्धी गीतों में पक्षियों, कीटों का सौन्दर्य स्थान-स्थान पर दृष्टिगोचर होता है। यों तो सभी मांगलिक अवसरों पर अपने सगे-सम्बन्धियों को आमन्त्रित किए जाने की परम्परा सर्वत्र पाई जाती है। गढ़वाली लोक में मांगलिक कार्य में भाग लेने के लिए नगर की सुहागिनों को आमन्त्रित करने के लिए **शुक** पक्षी से अनुरोध किया जा रहा है–

**पिंजरी का सुवा! कटारी का सुवा!**
**सुनपंक्षी सुवा, लाल पंखी सुवा!**
**मैं जाणदी नी छौं, कै घर देऊँ न्यौता,**
**दे आ सुवा तू सुहागिन्यू न्यूतो।**
**एक अन्य लोकगीत में शुक का सौन्दर्य उल्लिखित है–**
**हरा पंख मुख लाला सुआ जन बोले बागां में।**
**कौन दिशा में बादल देखा कौन दिशा में घनघोर,**
**सुआ जन बोले बागां में।**
**पूरब दिशों में बादल देखा पश्चिम दिशा में घनघोर**
**सुआ जन बोले बागां में।**

पशु-पक्षी प्रारम्भ से ही मानव के सहचर रहे हैं। गढ़वाल में किसी भी मांगलिक कार्य को निर्विघ्न पूर्ण करने के लिए जिस प्रकार सभी देवी-देवताओं को आमन्त्रित किया जाता है, उसी प्रकार शगुन बोलने के लिए **कौवे** को भी आमन्त्रित किया जाता है। कौवे से हरित वृक्ष पर बैठने का आग्रह किया जाता है–

**आवा कागा, बैठा कागा हरिया विरछ!**
**कौल कागा, बोल कागा, चौदिसा सगुन!**
**त्वे द्यूलों मैं कागा, दूद-भाती परी!**
**बोल कागा बोल कागा चौंदिसो सगुन।**

यही नहीं, गढ़वाली लोकगीत में **कागा** और **कोयल** को वर-वधू के प्रतीक के रूप में भी चित्रित किया है–

**कागा कोयल लांदा सनेहू, चल न कोयल हमारा देसु।**
**तुमारा देस के केकु खांणू, तुमारा देश के केकु लाणु।**
**कागा कोयल लांदा सनेहू।**
**हमारा देस च दूधभात खांणू, हमारा देश च निलपट लाणों।**
**कागा कोयल लांदा सनेहू, चल न  कोयल हमारा देसु।**

अर्थात् **कागा-कोयल** स्नहेयुक्त है। चलो **कोयल** हमारे देश। तुम्हारे देश क्या-क्या खाना है? तुम्हारे देश का पहनावा क्या है? हमारे देश दूध-भात खाया जाता है। हमारे देश का पहनावा मखमली है।

गढ़वाली लोक साहित्य में 'बारहमासा' का चित्रण अनेक लोकगीतों में किया गया है। मन भावन बसन्त ऋतु में समस्त प्रकृति मस्त होकर झूम रही है। एक अवलोकन–

**आयो बसंत प्यारो, फूल फूलेन अनमन भाँति,**

**कुई फूल भोळ, फूललो प्यारो**
**रितु बसन्त की चांदना मांझें,**
**वासला चकोर खेतु मा**
**मैन सोचे स्वामी घर आला**

अर्थात् प्यारा बसन्त आया है, भाँति-भाँति के फूल खिले, कोई फूल कल लिखा, कोई फूल आज खिलेगा। बसन्त ऋतु की चांदनी में। खेतों में **चकोर** बोलेंगे। मैंने सोचा था प्रिय घर लौटेंगे।

**हिलांस, कफू** और **घुगूती** गढ़वाल में बसन्त की ध्वनि लेकर आते हैं। ये पक्षी एक तो बसन्त से सम्बद्ध हैं। दूसरे लोकधारणा में ये नारी-उत्पीड़न के प्रतीक हैं। इन पक्षियों के विषय में अनके जनश्रुतियाँ हैं, जिसके अनुसार ये (कफू, घुघूती) पूर्व जनम की दुखी स्त्री-आत्माएँ हैं। लोकगीतों में गढ़वाली नारी इनको आत्मीय दृष्टि से देखती और याद करती हैं। 'खुदेड़' गीतों में अनेक स्थानों पर **कफू** और **घुगूती** को मायके में संदेश भेजने का वाहक बनाया गया है। 'खुद' एक प्रकार की भावात्मक क्षुधा, क्षुब्धता, उत्कंठा, विरह-जन्य स्मृति है, जो अपने स्वजन, परिजन या प्रिय के प्रति होती है। उसकी उक्त भावनाओं का उल्लेख लोकगीतों में मिलता है। गढ़वाली नारी को इन पक्षियों का कलरव उसे अपने मायके की याद दिलाता है–

**झूपन्याळी डाळयों मा घूघूती घूरतली**
**गैरी-गैरी गदन्यों मा म्योलड़ी बासली!**
**उंचा-उंचा डांडू मा कफू बासलो।**
**मौळली भाँति-भाँति की फलेर डाले,**

पत्तों से हरे वृक्षों पर **फाख्ता** बोलती है, नदियों के कह्वरों में **चातकी** बोल रही है। ऊँचे वन पर्वतों पर **कफू** की वाणी सुनाई देती है। भाँति-भाँति की पुष्पवती लताएं मुकुलित हो उठी हैं।

लोकगीतों में गुंजायमान पक्षी ससुराल में व्यथित नारी के हृदय में व्याप्त वेदना को जाग्रत करते हैं, तभी वह कह उठती है–

**बोल रे बोल कफू तू बासलो कफू मेरा मैत्यों कू मैती,**
**कफू बासलो मेंर मैत्यों की तिर!**
**कफू बासलो नई रीत बौड़ली,**
**कफू बासलो मेरी बई सुणली,**
**मैं कू कलेऊ भेजली! भेंटुली साँजली,**
**जा मेरा कफू बास मेरा मैत का चौक,**
**मेरा मैती सुणला ऊं खुद लगली,**
**जोड़ी-सौंजड़यों बाडुली लगली!**

मेरे मायके का पक्षी है! **कफू** ते मेरे मायके की ओर जाकर बोल! कफू तू बोलेगा तो नई ऋतृ लौट आएगी। तू बोले तो मेरी माँ सुनेगी। मेरे लिए खाद्य-उपहार भेजेगी। जा मेरे **कफू,** मेरे मायके वालों के चौक में बोल। मेरे मायके वाले सुनेंगे, तो उन्हें मेरी याद आएगी। सम वयस्कों को याद की हिचकियाँ आएँगी।

कभी वह (ससुराल में दुःखी नारी) माता-पिता की विवशता का अनुभव करती हुई घुघूती को मायके में जाकर न बोलने को कहती है–

**मेरा मैत का देस न वास, घुघूती, न वास घुघूती रुमझूम।**
**बोई सुणली आँसू ढोळली बाबा सुणळो सासू मनालो।।**
**एक अन्य गीत में 'हिलांसी पक्षी' से अनुनय-विनय किया गया है–**
**मैं एकली छऊं एकूत हिलांसी जाण दे मैत!**
**मेरा मैत्यों की ब्यांई भैंसी हिलांसी जाण दे मैत!**

**मेरी सासु छः ककडाँदी, हिलांसी जाण दे मैत!**
**आई खुदेड़ बगत हिलांसी हिलांसी जाण दे मैत!**

अर्थात् मैं अपने माँ-बाप की इकलौती हूँ **हिलांसी** मायके जाने दे। मेरे मायके वालों की भैंस व्याही है, **हिलांसी** मायके जाने दे। मेरी सास बुरा-भला कहती है, **हिलांसी** मायके जाने दे। स्मृतियों को जगाने वाली ऋतु आ गई है, **हिलांसी** मायके जाने दे।

**मोर** पक्षी के सौन्दर्य का निरूपण भी गढ़वाली लोकगीतों में हुआ है। 'मोर नाचलो' नामक गीत में मोर के मनोहर नृत्य करने का उल्लेख है। उसका नृत्य नैसर्गिक सौन्दर्य से सम्पन्न और कलात्मक है इसकी अभिव्यक्ति प्रस्तुत गीत में दर्शनीय है–

**राजा की डिलाल्यूं मोर नाचलो**
**पंख झूलै-झुलै मोर नाचलो**
**रतन्यालिय आख्यूं को पतन्यालि फील्यूं को,**
**कंचन्यालि गौण्यूं को मोर नाचलो**

उक्त पशु-पक्षियों के चित्रण के अतिरिक्त लोकगीतों में कीटों का भी चित्रण हुआ है। तीनों प्रकार से कीटों (थलचर, जलचर, नभचर) का चित्रण विभिन्न प्रकार के लोकगीतों में हुआ है। थलचर कीटों में **नाग-नागनी** का उल्लेख गीतों में मिलता है। प्राचीन काल से ही गढ़वाल में नागराजाओं की बड़ी पूजा-प्रतिष्ठा प्रचलित रही है। 'नाग' देवता के रूप में अवतरित होता है। गढ़वाल में घर-घर में नाग की पूजा होती है। इसका अर्चन-वन्दन दर्शनीय है–

**द्यूल नगेलो आए मुलक लाए ध्यौऊ,**
**द्यूल नगेलो आए जौ जस द्यौऊ!**
**द्यूल नगेलो आए दीनू कू दयाल!**
**द्यूल नगेलो आए लैंदी देंद दूद,**
**द्यूल नगेलो आए मनरवी देंद बूद,**
**द्यूल नगेलो आए औता देंद पूत,**

प्रस्तुत गीत में कहा गया है कि देवालय में नागदेवता की प्रतिष्ठा होते ही चहुँ ओर प्रसन्नता व्याप्त हो गई अब सभी के दुःखों का निवारण हो जाएगा। जलचर प्राणियों के अन्तर्गत **मेढक-मेढकी, मछली** आदि का उल्लेख लोकगीतों में मिलता है। एक गीत देखिए–जिसमें देवर, भाभी को जल भरने जाने से रोकना चाहता है–

**मेरा अलबेला भंवर का सिला पांणी न जा।**
**बोल्यूं मान मेरु बौ त्वे मेंढकी छैल ली।**
**मेंढक्यूं को छौल बो, हर जुग नी जान्दो।**

उत्तराखण्ड में कोई लोकोत्सव हो या देवोत्सव सभी देवताओं का उपस्थित होना आवश्यक माना जाता है। प्रस्तुत गीत का सौन्दर्य देखिए– सभी देवता आ गए, लेकिन लक्ष्मी जी नहीं आईं–

**सभी द्योऊ ऐंग्या, बल त लक्ष्मी नी आए।**
**लक्ष्मी नारैण कु त, माछी-पाणी, ज्यू च।**
**द्योखला माँख द्योखा, त द्योखड़ो उरयो च।**
**सभी देऊँ ऐंग्या, बल न बर्मा नी आए।**
**बरमा पोतला कु, बल त माछी-पाणी ज्यू च।**
**अर्थात् सभी देवता आए, लेकिन लक्ष्मी नहीं आईं**
**लक्ष्मी नारायण का तो मछली-पानी (के समान) दिल है**
**देव आँगन में देवोत्सव हो रहा है,**
**सभी देवता आए, लेकिन ब्रह्मा जी नहीं आए।**

**ब्रह्मा पोतला का तो, मछली पानी ( के समान ) दिल है।**

लोकगीतों में नभचर कीटों का भी सुन्दर चित्रण हुआ है। **भौंरा** और **मधुमक्खियाँ** इसी कोटि में आते हैं। पुत्रजन्म के अवसर पर प्रसूता द्वारा मातृपक्ष को **भौंरे** द्वारा सूचना भेजने का चित्रण कितना मनोहारी है–

**जा धौं भौंरा मांजी का पास हमारी,**
**जा धौं भौंरा कुशल-मंगल बोल आई।**
**जा धौं भौंरा मांजी बोल आई–**
**धियान तुमारी मांजी जाल तो डयों**
**धियान तुमारी मांजी रण जीत्यो।**
**जा धौं भौंरा माँजी का पास हमारी**

अतः हे **भौंरे** मेरे मायके में जाकर मेरी कुशल मंगल और पुत्रजन्म की सूचना देकर आ। इसी प्रकार एक गीत में बसन्त ऋतु में गुंजन करते **भौंरे** ने बसन्त का सौन्दर्य वर्द्धन इस प्रकार किया है–

**आयो बसंत प्यारो, फूल फूलेन अनमन भाँति,**
**कुई फूल फूले व्याळी, कुई फूल फूले आज।**
**कुई फूल भोळ फूललो प्यारो।**
**फूल फूलू मा म्वारी रुणाली,**
**कली कली मा भौंरा कू राज!**

अर्थात् प्यारा बसन्त आया है, भाँति-भाँति के फूल खिले, कोई फूल कल खिला, कोई फूल आज खिलेगा, और कोई प्यारा सा फूल कल फूलेगा। फूल फूल पर **मुधकरियाँ** गूँजेंगी। कली-कली पर **भौंरा** का अधिकार होगा। इस तरह 'डाँडा हरयाली' नामक लोकगीत में **मधुमक्खियों** का भी उल्लेख मिलता है।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है, कि लोकगीत मानव-प्रकृति के स्वच्छन्द गान हैं। विधाता की इस सृष्टि के अनेक रंग हैं, अनेक रूप हैं और इसमें सभी प्राणियों का पृथक-पृथक अस्तित्व है, किन्तु एक दूसरे के अभाव में सभी रंगहीन हैं अतः समष्टि के बिना सभी गीत अधूरे हैं।

इन लोकगीतों में जहाँ एक ओर **भैंसे** खरक की शोभा बढ़ा रही हैं, तो वहीं दूसरी ओर गाएँ गोठ्यार की और **बैलों** की जोड़ी खेत-खलिहान के सौन्दर्य में वृद्धि करती हुई दिखाई देती है। **शुक** और **कागा** के बिना कोई भी मांगलिक संस्कार अधूरा है। **हाथी-घोड़े** वरपक्ष के सौन्दर्यमान हैं। बालगीतों में **कुत्ता-बिल्ली** क्रीडाएँ कर रहे हैं। **कफू, घुघूती** और **हिलासं** का सौन्दर्य दुख से पीड़ित गढ़वाली नारी के दुख को उद्दीप्त करने वाले उपादान हैं। यदि एक ओर नृत्यरत **मोर** का साकार रूप अवतरित है, तो दूसरी ओर **नाग** देवता का अर्चन दर्शनीय है। इसके साथ-साथ बासन्तिक सौन्दर्य की शोभा बढ़ाने वाले **भौंरे** और **मधुकरियों** का सौन्दर्य मानव को सहज ही अपनी ओर आकर्षित करता है।

**सहायक पुस्तकें**

गढ़वाली लोकगीत– एक सांस्कृतिक अध्ययन
उत्तराखण्ड हिमालय के चाँचड़ी गीत एवं नृत्य
उत्तराखण्ड का लोक साहित्य और जन जीवन
गढ़वाली लोकगीत विविधा
उत्तराखण्ड के लोक साहित्य का आयामी परिदृश्य
भारतीय लोक संस्कृति का संदर्भ : मध्य हिमालय
लोक साहित्य का सामाजिक-सांस्कृतिक अध्ययन
लोक साहित्य

***

Hindi

Shodh Sandarsh-V, Vol.-XVI, Sept.-2017, Page : 46-50
ISSN No. - 2319–5908 (U.G.C. Approved Journal No. : 41329)

# इतिहास बदलने की दहाड़ है– ''समय को इतिहास लिखने दो'' असंघघोष का काव्य संकलन

*डॉ. सुनील जाधव**

29 अक्टूबर, 1962 कस्बा जावद, मध्य प्रदेश में जन्मे असंघघोष, 2002 में मध्य प्रदेश साहित्य अकादमी तथा सृजन गाथा डॉट कॉम सम्मान से पुरस्कृत हैं। दलित विमर्श पर लिखी गई उनकी चार प्रसिद्ध रचनाएँ हैं। खामोश नहीं हूँ मैं, मैं दूँगा माकोल जवाब, समय को इतिहास लिखने दो, हम गवाही देंगे। उनकी कवितायें भोगे हुए इतिहास को अभिव्यक्त नहीं करतीं बल्कि दलित विरोधी समाज के विरोध में तर्कपूर्ण, अकाट्य अस्त्र से एक नया इतिहास बनाती हैं। उनकी कविताओं में इतिहास बदलने की दहाड़ है। उनके ''समय को इतिहास लिखने दो'' कविता संकलन की प्रतिनिधि कविताओं के माध्यम से यह शोध प्रस्तुत है। जो ऑनलाइन वेबसाईट : *www-कविताकोश.org* से लिया गया है।

असंघघोष के ''समय को इतिहास लिखने दो'' नामक कविताओं का अध्ययन करने के बाद जब मैंने दलित साहित्य के अन्य रचना संसार से तुलना की तो पाया कि आपकी कविताओं में मात्र भोगे हुए पीड़ा की अभिव्यक्ति नहीं है। ना ही यह कवि हजारों सालों से हो रहे दलितों पर अन्याय और अत्याचार, दलन की मात्र कहानी नहीं सुनाता बल्कि वह दलितों की शोचनीय स्थिति के लिये जिम्मेदार वर्ग, उनकी समाज व्यवस्था, ईश्वर, धर्म, मुहावरे-लोकोक्तियाँ-सूक्तियों, ईर्षा-द्रेष, जलन-दलन आदि के प्रति घनघोर आक्रोश व्यक्त करने के साथ उनके सम्मुख अकाट्य चुनौती प्रस्तुत करता है। जिसे पढ़कर अब तक के दलितों के शोषणकर्त्ता की बोलती बंद हो जाती है और वे भीतर से तिलमिला उठते हैं। मानों इस कवि ने अपने विद्रोह धनुष्य से ऐसा बाण चलाया कि वह शोषण कर्त्ता के नकली मुखौटे को उड़ाकर असी मुखौटा जन-जन के सम्मुख लाया है। जिसे देख उसी का समाज उसके ऐसे भयानक रूप से भयभीत हो अपने आप कर ग्लानि करने लगता है और शोषण कर्त्ता जकड़े हुए पाश में भीतर ही भीतर पहले क्रूद्ध होता है और फिर आँसू बहाने के अलावा वह कुछ कर भी नहीं सकता।

समय को बदलने की चुनौती देने वाले इस विद्रोही कवि की कविता जब छपकर बाजार में आयी तो दलित विरोधी समाज में एक भूचाल-सा आ गया था। इसकी प्रतिक्रिया के रूप में उन्हें विरोधी समाज के अन्याय, अत्याचार, दलन को भी सहना पड़ा था। यही कारण है कि वे अपनी कविता ''तेरी चुप्पी'' के माध्यम से इसे बड़ी निडरता से क्रोध और पीड़ा को अभिव्यक्त करते हुए वे कहते हैं–

**तुझे/पंसन्द नहीं है/ मेरी आत्मकथा/ इस आत्मवृत्तान्त को**
**तुम ढकोसला कह/ उसे अतिरंजित बताते हो।**
**मेरी हर उस रचना पर/ तुम गहरी चुप्पी ओढ़ लेते हो**
**जिससे प्रतिध्वनित होता है/ तुम्हारे ढाए जुल्मों के खिलाफ**
**मेरा खुला विद्रोह।/ जब मैं खारिज करता हूँ/ सिरे से**
**तेरे लिखे सहानुभूतिजन्य साहित्य को,**
**तुम नख-सिख सुलग जाते हो।**

---

* *हनुमानगढ़ कमान के सामने, महराना प्रताप हौसिंग सोसाइटी-नांदेड़*

**तुम्हारा/यह दोगलापन/ यह शुतुरमुर्गी चुप्पी,**
**तुम्हारे खून में ही क्यों समाई हुई है?**

कवि जब भोगी हुई पीड़ा पूरे अंतस से अभिव्यक्त करते हैं, तो दलित विरोधी समाज या पाठक उसे ढकोसला समझता है। ऐसे में यह कवि जिसने यह ठान लिया है कि इतिहास बदलना है। तब वह कैसे खामोश बैठ सकता था। यही कारण है कि वह सीधे वार करता है। वह दलित विरोधी समाज को सम्बोधित करता हुआ कहता है कि तुम्हारे खून में ही दोगलापन समाया हुआ है। वह यह नहीं सोचता कि इसकी प्रतिक्रिया क्या होगी?

यह कवि ईश्वर की सत्ता को मानने के लिए कतई तैयार नहीं। वह सिरे से इसे खारिज कर देता है। उसे लगता है कि ईश्वर की नजरों में सभी समान होना चाहिए किन्तु ईश्वर उनके लिए कभी था ही नहीं। उसने हमारे साथ भेदभाव किया है। देवों ने हमेशा दलितों, राक्षसों आदि को पराजित किया है। आज तक उनके इसी कथा को सुनाया जाता है। कवि का मानना है कि ईश्वर न तब बदला और न आज बदला है। यही कारण है कि वह अपने आप को ही बदलकर नया इतिहास बनाना चाहता है। जब वह इतिहास बदलने के लिए दहाड़ता है, तो दलित विरोधी समाज उस दहाड़ से काँप जाता है, ''तू और तेरे देवता'' नामक कविता में वे दहाड़ते हुए कहते हैं–

**तेरे द्वारा छीनने, झपटने/ और कारित हत्याओं की**
**ऐसी ही अनेक कथाएँ पाता हूँ /हर पन्ने पर**
**तुझे पढ़ते हुए/तू कभी बदलेगा/ ऐसा लगा नहीं**
**बदलना / सिर्फ और सिर्फ/ मुझे ही होगा..!**

यह कवि अग्नि, जल, वायु, पृथ्वी, सूर्य आदि देवों को मानता है, किन्तु इन्द्र के छली रूप के कारण वह ईश्वर के प्रति अपनी भूमिका स्पष्ट करते हुए उसकी सत्ता मानने से इंकार कर देता है। ''देवता को मैं नकारता हूँ'' नामक **कविता में वे तार्किक उवाब देते हुए कहते हैं–**

**तूने कहा/जल देवता/मैंने मान लिया**
**तूने कहा/ वायु देवता/ मैंने मान लिया**
**तूने कहा/ अग्नि देवता/ मैंने मान लिया**
**तूने कहा/ पृथ्वी देवता/ मैंने पृथ्वी को मान लिया देवता**
**तूने कहा /सूर्य देवता/ मैंने यह भी मान लिया**
**मैं मानता भी क्यों नहीं/ ये सभी आवश्यक थे/ मेरे जीने के लिए**
**तूने फिर कहा/ इन्द्र देवता/ मैं क्यों मानूँ/ तेरे इस छली,**
**कुटिल और विलासी को/देवता,/ इसके बाद के /तेरे हर देवता को मैं नकारता हूँ।**

कवि का मानना है कि ईश्वर ने कभी उनकी बात नहीं सुनी। सुनी है तो सिर्फ उन्हीं की जिन्होंने उन्हें बनाया है। उनके लिए ईश्वर था ही नहीं। अपने गुस्से को प्रकट करते हुए कहते हैं कि पता नहीं ईश्वर ने उनकी बोली-भाषा को क्यों नहीं समझा। ना वे पहले समझ सके और ना वे अब उनकी भाषा को समझ सकते हैं। ईश्वर तो उनकी ही भाषा समझते हैं। इसीलिए वह ''तेरा ईश्वर'' नामक कविता में कहते हैं–

**वह मेरी अनगढ़ बोली-भाषा**
**ना पहले कभी समझ सका**
**ना अब कभी समझेगा**
**उसे रमता रहने दो।**

जब यह कवि इस प्रकार से दहाड़ता है, तब ऐसा लगता है कि इस कवि में इतनी शक्ति कहाँ से आयी। मानव विज्ञान कहता है कि जब अत्याचार मनुष्य की सहन शक्ति से ज्यादा हो जाता है, तब वह विद्रोह कर बैठता है।

वह अपनी संघर्ष यात्रा को रोकता नहीं। वह चुनौती देता है कि उन पर होने वाले अन्याय, अत्याचार, शोषण, षड़यत्र का जवाब उन्हें देना ही होगा।

**तूने/ अपनी इच्छानुसार/ सब पाया/ क्योंकि तू शातिर था/ जानता था छल वि।।**
**और हमें छलता रहा/ करता रहा हमारा शोषण।**
**तुम्हारी कुटिलता/ और छल के आगे / मेरी इच्छाएँ ही/ पत्थर हो गई**
**लेकिन मेरी संघर्ष यात्रा/ अब भी जारी है/ एक दिन/ देना ही होगा/ तुम्हें! / मेरे शोषण का हिसाब**
**( शोषण का हिसाब-कविता से )**

जिस धर्म में मनुष्य-मनुष्य की पहचान जाति से होती है। यह कवि उस धर्म समाज को ठुकराना चाहता है। जहाँ धर्म ग्रन्थ का आधार बनाकर अपनी सुविधानुसार जातियाँ बनाई गईं और उनकी जाति को शोषण का शिकार बनाया गया। मानो वे मनुष्य ही नहीं हों। उन्हें जानवरों से भी बदतर सलूक का सामना करना पड़ा था। इसीलिए वह इस धर्म को ही बदलना चाहता है। वह इस धर्म के मोह को त्याग कर इसकी पहल करना चाहता है। और यह कवि अब तक किसी ने जवाब नहीं दिया ऐसा जवाब वह अपनी कविता में देता है। जिसे पढ़कर कवि का विरोधी समाज आगबबूला हुए बिना नहीं रह सकता। कवि का अत्यन्त क्रोध ''आहुति' नामक कविता में देखने को मिलता है–

**अपने ही रचे/ प्रपंची ग्रन्थ-शास्त्रों से/ धर्म का रास्ता/ पकड़ कर**
**तुमने! /समाज में अपनी पैठ बना ली/ इन्हें बैसाखी बना**
**तुम बन गए/ धर्म के सर्वेसर्वा / तेरा यही धर्म/ मेरा दुश्मन हो गया,/**
**इन्हीं ग्रन्थों में/ तूने रचा वर्ण और कालान्तर में/**
**बना दी जातियाँ / जो कमबख्त! / रची बसी है/ तेरे समाज में।/ इस धर्म को नकारने**
**इसका मोह त्यागने/ किसी ना किसी को/ करनी ही होगी पहल/ फिर मैं खुद ही/ क्यों ना करूँ/ यह पहल**
**लो मैं ही/ सबसे पहले/ अपने पुरखे/ आदिकुरील/ की तरह/ मूतता हूँ/ तेरे ग्रन्थों पर**

यही कवि शोषण चक्र में फंसे अपने समाज को बाहर निकालने के लिए इतिहास बदलना चाहता है। पर वह समय को चुनौती नहीं देता बल्कि उसे समय पर पूरा-पूरा विश्वास है कि वह आने वाले समय में उनका एक नया इतिहास बनाएगा। आज भले ही वही परिस्थितियाँ हों जो पहले थीं। आज भी शोषण का चक्र शुरू है। यह कवि समाज को उद्वेलित करता है कि हमें इस ओर ध्यान न देकर नई शुरुआत करनी होगी। वे डॉ. बाबा साहेब अम्बेडकर के मार्ग पर चलने का आह्वान करते हुए उन्हें महाड़ के पानी से आचमन कर दुःख पीड़ा को भुलाकर आततायियों के शोषण का सामना करने के लिए कहते हैं। ताकि आने वाले समय में ''समय'' उनका इतिहास लिखे। ''समय को इतिहास लिखने दो'' कविता में वे कहते हैं–

**आओ इस नई भौर में/ महाड़ के पानी से/ आचमन कर/ नई स्फूर्ति के साथ**
**अंकुरित हो/ हम व्याप जाएँ/ इस नभ में/ दारुण दुःख छोड़/ करें सामना/**
**इन आतताइयों का, / समय को**
**अपना/ काम कर लेने दो/ उसे अब हमारा भी/ इतिहास लिखना है।**

दलित विरोधी समाज ने दलितों के लिए न जाने कितने प्रतिबंध बनाये रखे थे। उन प्रतिबन्धों के बारे में जब हम पढ़ते सुनते हैं, तब हृदय द्रवित हो व्यवस्था के विरुद्ध क्रूद्ध हो जाते हैं। दलितों की छाया पड़ना पाप समझा जाता था। उन्हें तथा उनकी स्त्रियों को नंगे पैर उनके सम्मुख चलना पड़ता, जी हुकुम कहकर पुकारना पड़ता, विवाह में दुल्हे को घोड़े पर चढ़ने की अनुमति नहीं थी। सलाम प्रथा थी। ऐसे न जाने कितनी ही यातनापूर्ण प्रथाओं ने दलितों को मानिसक गुलाम बनाया था। कवि उन सारी बातों को याद दिलाते हुए सिंह की सी गर्जना करते हैं कि एक दिन हम भी तुम्हारे लिए फरमान निकालेंगे। और उस दिन तुम्हें उस प्रथा का सामना करना पड़ेगा। यह कवि अपनी कविता के माध्यम से उन अन्यायी-अत्याचारी प्रथा को महसूस करना चाहता है और चुनौती भी देता है। जिसमें इतिहास बदलने की दहाड़ साफ-साफ सुनी जा सकती है। वह अपनी कविता ''तैयार रह'' में कहते हैं–

**मेरे दूल्हे की बारात/ चुप-चाप निकले/ तुम्हारे मोहल्ले से / यदि ढाक भी बजे**
**तो तुम्हारे घरों के /निकल जाने के बाद बजे।**

**ऐसी ही अनेकानेक प्रतिबंधताएँ/ सदियों से लादते रहे तुम**
**हमारे ऊपर,/ अब हम कहते हैं/ तुम अपना दूल्हा मत चढ़ाओ / घोड़ी पर**
**बैंड-बाजे मत बजाओ/ हमारे घरों के समाने/ हमारे ही गाँव में/ जो हमारी जात से ही**
**जाना जाता है/ तुम तैयार रहो सुनने/ किसी भी दिन हमारा यह फरमान।**

दलित समाज न जाने कितने सालों से अन्याय-अत्याचार सहता रहा था। भूख-दरिद्रता का शिकार होता रहा था। उन्हें तथा उनकी स्त्री को मात्र उपयोगी और तुच्छ वस्तु समझा गया था। प्राचीन कालीन किसी भी कवि की कविता में जब दलितों का कहीं उल्लेख मात्र भी यह कवि नहीं देखता तब वह वाल्मीकी, कालिदास जैसे कवियों को खरीखोटी सुनाता है। ''आदिकवि'' नामक कविता में वे कहते हैं–

**तुम्हारा ध्यान/ हाशिये पर बसे/ लोगों तक कभी/ गया ही नहीं**
**तुम्हें तो / पता ही नहीं था/ वे थे कौन?**
**तुम कवि थे/ तथाकथित महान सभ्यता/ संस्कृति के वाहक?**
**जिसमें बुनने वाला/ हमेशा की ही तरह नदारत था**
**भूल कर उन्हें / करते रहे स्तुतिगान / तुम सचमुच कवि थे महान?**

यह कवि विरोधी समाज व्यवस्था द्वारा दलित समाज का समय-समय पर अत्याचार दलन देखता है। और चहुँ ओर से वह अपने को और अपने समाज को उपेक्षित देखता है। तब वह कैसे खामोश बैठ सकता था। उसने ऐसे समाज व्यवस्था, ईश्वर, धर्म, कवि, मान्यतायें, लोकोक्ति-सूक्ति, मुहावरे आदि का घोर शब्दों में विरोध किया है। वह बार-बार की उपेक्षा, अपमान, घृणा, ईर्ष्या, तुच्छता को सह नहीं पाया। वह जहाँ मुहावरे में भी अपने और अपनी जाति के अपमान को देखता-सुनता है, तब यह कवि अपना आक्रोश प्रकट करता है किन्तु बदला लेने की उसमें भावना नहीं है। वह मात्र उन्हें एहसास करता है। उनका मानना है कि अन्याय का जवाब अन्याय नहीं हो सकता। ऐसे में शोधकर्ता को लगता है कि गौतम बुद्ध के महान संदेश अहिंसा का प्रभाव उन पर पड़ा है। जब यह कवि दलितों के संदर्भ में सुनता है कि ''सांप को दूध नहीं पिलाना चाहिए'' इस पर यह कवि अपना आक्रोश तो प्रकट करता है किन्तु उन्हें क्षमा के अस्त्र से उन्हीं की ही नजरों में गिराने का कार्य करता है। वे ''मैं ही तुझे छोड़ देता हूँ'' नामक कविता में कहते हैं–

**हाँ मेरा जहर/ बढ़ता ही जा रहा है/ इससे पहले**
**कि मैं तुम्हें काट खाऊँ / और / तुम्हें पीने**
**पानी भी ना मिले/ मैं तुम्हें छोड़ देता हूँ / आज**
**तुम्हारे लिए बेहतर है यही/ भाग जाओ।**

इस कवि ने जब इतिहास बदलने की दहाड़ लगाई है तो वह रुकने वालों में से तो नहीं था। उसमें आज जो विद्रोह का बीज वृक्ष बन कर लहलहा रहा है। उसका यदि कोई कारण है तो वह है ''काल''। यह काल का आभार मानते हुए उसके सम्मुख नतमस्तक होता है। काल ने ही उसमें शक्ति भरी है। इसीलिए वह काल का आभारी है। वह काल के सम्मुख अपनी हृदय की पीड़ा को खोल कर रखता है। वह काल को हजारों सालों से दलितों द्वारा सहे गये काँटों के दर्द को बांटते हुए यह वचन देता है कि भविष्य में ये कांटे दूर कर वह यहाँ फूलों को देखेगा। ''तुम देखना काल'' नामक कविता के माध्यम से वे संदेश देते हुए कहते हैं–

**काल ! / यह तुम्हीं हो/ जिसने मझे कालानतर से**
**इन आतताइयों का सामना / करने की शक्ति दी है/ मुझे विद्रोह का स्वर दिया है/ तुम्हीं ने**
**काल।**
**काल! / मेरी हथेली की/ रेखाओं पर/ अपनी जड़े जमाए**
**इस कैक्टस में भी/ एक दिन/ फूल आएँगे उन्हें/ जरूर/ देखना तुम/ काल / फूलों को**
**चुन कर**
**जब कांटे निकाल फेंकूँगा बाहर/ तुम जरूर देखना काल!**

यह कवि अपनी कविता के माध्यम से एक नया इतिहास रचता हुआ नजर आता है। परम्परा के लिंक को छोड़ कर यह कवि मात्र दर्द-पीड़ा की अभिव्यक्ति नहीं करता बल्कि दलितों की शोचनीय दशा के लिए जिम्मेदार वर्ग के विरोध में अपनी तर्कपूर्ण, अकाट्य बात को रखते हुए उन्हें उन्हीं की नजरों से गिराता है, वहीं वह क्रोध में ऐसे शब्दों का प्रयोग करता है कि मानो उस शब्द के ब्रह्मास्त्र के सम्मुख जो आएगा वह ध्वस्त हुए बिना नहीं रह सकता। उनकी ऐसी यथार्थ कठोर वाणी के कारण उन्हें समाज और साहित्य के क्षेत्र में अपमान, उपेक्षा को सहना पड़ा। यही कारण है कि उनकी कविता 'विद्रोह की बू'' में व्यवस्था को निडर होकर चुनौती देते हुए कहता है कि मुझे जला डाला, मेरी झोपड़ी, खेत, खलिहान सब कुछ जला दो। लेकिन मेरी कविता से विद्रोह की बू आना रुकेगी नहीं। वह लगातार बढ़ते ही रहेगी। चाहे मुझे मौत के घाट क्यों न उतार दें। मेरी लेखनी मेरे बाद विशाल वृक्ष बनकर आने वाली पीढ़ी को संदेश देगी। मेरी पीढ़ियाँ उसका रक्षण करेंगी। मेरी लेखनी तुम्हारे खिलाफ जरूर जिन्दा रहेगी। विद्रोह का डंका लगातार बजता रहेगा।

**अन्ततः तू! / मुझे भी जला डाल/ तब भी मुझसे**
**बू ही आएगी तुझे/ मेरे विद्रोह की,/ मेरी झोपड़ी,/ खेत, / खलिहान/**
**सभी जला डाल हर जगह से/ तुझे / अपने खिलाफ मेरे विद्रोह की /**
**फख्त बू ही आएगी।**

वस्तुतः यह कवि अपने कविता संकलन ''समय को इतिहास लिखने दो'' के माध्यम से परम्परागत दुःख, पीड़ा, उपेक्षा, अपमान, अन्याय-अत्याचार, दरिद्रता, दलन, द्वेष, घृणा को मात्र अभिव्यक्त नहीं करता बल्कि उसके आगे यह कवि एक दलित विरोधी समाज के विरोध में अकाट्य-तर्कपूर्ण अस्त्र से विद्रोह करता है। यह विद्रोह उनके घोर क्रोध और पीड़ा की ही अभिव्यक्ति है। जिसे सुनकर या पढ़कर विरोधी समाज एक ओर तिलमिला उठता है तो दूसरी ओर स्वयं को अपने आप की नजरों से गिरा हुआ पाता है। वहीं यह कवि वर्षों से सहते आये अन्याय का बदला वह उन्हें क्षमा करके अलग ढंग से लेता है। उनके इस क्षमा और आशावाद के पीछे गौतम बुद्ध और डॉ. बाबा साहेब अम्बेडकर जैसे महान विभूतियों के तत्वज्ञान का प्रभाव साफ-साफ झलक उठता है। यह कवि अब तक की परम्परा को तोड़कर इतिहास को बदलने की धमक रखता है। वे दलितों से शोचनीय स्थिति के लिए जिम्मेदार प्रत्येक तत्व का विरोध करते हैं। ऐसे ईश्वर, धर्म, समाज, व्यवस्था, ग्रन्थ, आदिकवि वाल्मीकि, कालिदास आदि का निषेध करते हुए उन्हें मानने से इंकार कर देते हैं। इन कविताओं में एक ओर उनका कटु व्यंग्य है तो दूसरी ओर खुली आग है। यह कवि कठोर शब्दों के द्वारा अपना क्रोध प्रकट करते हैं। वह सब कुछ भूलकर नई शुरुआत कर काल को विश्वास दिलाते हैं कि एक दिन कैक्टस में फूल खिलेंगे। हम नया इतिहास बनायेंगे। वास्तव में उनका यह कविता संकलन इतिहास को बदलने की दहाड़ ही है।

## संदर्भ सूची

1. समय को इतिहास लिखने दो-असंघघोष–संस्करण-2015, प्रकाशन-शिल्पायन, शाहदरा, दिल्ली।
   लिंक : *www–kavitakosh.org*

***

Hindi

Shodh Sandarsh-V, Vol.-XVI, Sept.-2017, Page : 51-55
ISSN No. - 2319–5908 (U.G.C. Approved Journal No. : 41329)

# 'रामराज्य' में राष्ट्रीय एवं सांस्कृतिक पुनरुत्थान की उत्कृष्ट कल्पना

*डॉ. पूनम**

राम-कथा का प्रादुर्भाव प्रमुखतः आदिकवि वाल्मीकि के रामायण से माना जाता है। संस्कृत के राम-कथा प्रणेताओं तथा हिन्दी के राम-कवियों में सर्वश्रेष्ठ रामचरितमानस- प्रणेता गोस्वामी तुलसीदास ने भी आदिकवि के ऋण को साभार स्वीकार किया है। प्रसार की दृष्टि से राम-आख्यायिका विश्वविख़्यात है। राम के चरित्र में युग-जीवन एवं चेतना की आकांक्षाओं को परितृप्त करने तथा मानवादर्शों की प्रतिष्ठापना करने की जो अमोघ शक्ति विद्यमान है, वही वैश्विक-स्तर पर इसके विस्तार का प्रमुख कारण है।

हिन्दी की आधुनिक राम-काव्य-परम्परा में काव्य-प्रतिपाद्य की दृष्टि से डॉ. बलदेव प्रसाद मिश्र विरचित महाकाव्य 'राम-राज्य' का स्थान महत्वपूर्ण है। इसमें कवि ने वर्तमान जीवन, समाज एवं राजनीति की अनेक समस्याओं का व्यावहारिक समाधान चिर-परिचित राम-कथा के माध्यम से देने का प्रयास किया है। इनके दो अन्य काव्य–'कौशल-किशोर' तथा 'साकेत-सन्त' क्रमशः मानस के बाल-काण्ड तथा भरत-चरित्र पर आधारित हैं। 'राम-राज्य' में 12 सर्गों में मुख्यतः उत्तर राम-कथा वर्णित है। कथा-आरम्भ निर्वासित राम के सुमंत्र के रथ पर बैठकर वन की ओर जाने से होता है, दसवें सर्ग में राम का राज्य-अभिषेक है, इससे पूर्व परम्परित कथा का सांकेतिक व संक्षिप्त वर्णन है। काव्य के ग्यारहवें सर्ग में भारतीयों के मानव धर्म की घोषणा है तथा बारहवें सर्ग में राम-राज्य की व्यवस्था का वर्णन है।

वाल्मीकी और तुलसी ने जिस 'रामराज्य' रूपी 'आदर्श एवं प्रगतिशील राज्य' की धारणा समाज के समक्ष प्रस्तुत की, वह आदर्श राष्ट्र और शासन-व्यवस्था का संस्कारित स्वरूप है। इस विषय में डॉ. शम्भुनाथ सिंह लिखते हैं–'तुलसी ने रामराज्य की जो कल्पना की है, उसी को महात्मा गाँधी ने लोकतंत्र और स्वातंत्र्य के युग में भी अपना आदर्श और लक्ष्य निश्चित किया।...रामराज्य की स्थापना को तुलसी ने कितना महत्व दिया है, इसका अनुमान इसी से किया जा सकता है कि रामराज्य की सुख-सम्पदा का वर्णन वाल्मीकी-रामायण और आध्यात्म-रामायण में केवल कुछ ही छंदों में किया गया है, जबकि मानस में उसका वर्णन 11 कडवकों (दोहों) में हुआ है। अतः कथा की केन्द्रीय घटना की महानता की दृष्टि से राम-रावण-युद्ध, रावण-वध, और रामराज्य की स्थापना ही मानस का महत्वपूर्ण कार्य है।[1]

राम-राज्य की स्वर्णिम धारणा भारतीय संस्कृति एवं चिंतन की एक महत्वपूर्ण देन रही है। राम-कथा की ऐतिहासिकता उसे प्रामाणिकता प्रदान करती है। समाज के उन्नत आदर्श के संस्थापक वाल्मीकी और तुलसी के ग्रन्थों में राम-राज्य की व्यवस्था के रूप में जिस राजनैतिक व सामाजिक चेतना का वर्णन हुआ है, वह सार्वकालिक व सार्वदेशिक है तथा उसमें सभी वर्गो-धर्मों का हित समाहित है। इस लोकतांत्रिक व्यवस्था को ही प्रासंगिक मानकर महात्मा गाँधी ने स्वातन्त्र्य-युग में अपना आदर्श तथा लक्ष्य निश्चित किया था।

डॉ. बलदेव प्रसाद मिश्र विरचित 'राम-राज्य' महाकाव्य में कवि ने राम-राज्य की प्राचीन परिकल्पना को ही शासन का आदर्श उपस्थित किया है, जहाँ सुप्रबन्ध एवं जनहितकारी योजनाओं के कार्यान्वयन से सब लोग सुखी रहते हैं। साथ ही वर्तमान जीवन, समाज एवं राजनीति की अनेकानेक समस्याओं का समाधान चिर-परिचित राम-कथा के माध्यम से किया है। कथा-चयन हेतु कवि का कथन है–कथा-क्रम का मुख्य आधार है–गोस्वामी जी का मानस। कहीं-कहीं अन्य ग्रन्थों ने और कहीं कवि-कल्पना ने भी अपना प्रभाव दिखाया है। कथा का उद्देश्य केवल कथा नहीं, किन्तु राष्ट्रीय एकीकरण और सुराज्य-स्थापना से सम्बन्धित राम के प्रयत्नों पर अपनी मति के अनुसार प्रकाश डालना है।... श्रद्धेय महात्मा गाँधी ने 'राम-राज्य' और 'सुराज्य' को समानार्थक

* *सहायक प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष हिन्दी, पी.जी. गवर्नमेंट कॉलेज, सैक्टर-11 चंडीगढ़*

बताते हुए इस नाम के प्रति भारतीयों में पर्याप्त उत्सुकता जागृत कर दी है। सुराज्य स्थापना के लिए राम तथा उनके सहचारियों ने कितना अथक परिश्रम किया था और किस रूप में उसको चरितार्थ किया था, यह जिज्ञासा स्वभावतः कई लोगों के मन में उठ सकती है।...राम-राज्य एक कल्पना ही सही, परन्तु वह ऐसी कल्पना है जो व्यवहार में भी असीम लाभप्रद हो सकती है।[2]

अतीत की गौरवमयी राम-गाथा के युगानुरूप नवीनतम परिवेश तथा राम-राज्य के प्रतीक द्वारा कवि ने शाश्वत जीवन-मूल्यों की, समसामयिक समस्याओं को दृष्टि में रखकर, प्रतिष्ठा की है। इस दृष्टि से काव्य के अंतिम दो सर्ग महत्वपूर्ण हैं। काव्य के प्रथम सर्ग में ही कवि ने सांस्कृतिक पुनरुत्थान तथा प्रगतिशीलता का आह्वान किया है, जिससे मानव-जीवन एवं समाज में विकासशीलता बनी रह सके–

**चरैवेति ही प्रगति मन्त्र है, वेदों का सद्घोष यही,**
**इसी मंत्र से सुख देगी यह, कामदुधा सम्पन्न मही।**[3]

तथा अन्यत्र भी ---

**जो होगा, देखा जायेगा, निष्क्रिय क्यों हो मनुज महान।**
**सक्रियता ही तो जीवन है, कृति मति का वह तजे न ध्यान।**[4]

डॉ. मिश्र भारतीय जीवन-दर्शन एवं संस्कृति के प्रति पूर्ण निष्ठा व आस्था 'राम-राज्य' में व्यक्त करते हैं तथा मानवता के विकास का उपाय मानव का मानव के प्रति प्रेम, सहयोग, सद्भाव तथा विश्वास में निहित मानते हैं–

**मनुज की मानवता बढ़ जाये, रचो प्रिय! ऐसे रुचिर उपाय।**
**यही, लक्ष्मण! शिक्षा उद्देश्य, इसी से विकसित जन-समुदाय।**

*** *** ***

**ज्ञान की भाषा में अभिमान, प्रेम की भाषा में सहयोग।**
**समझ लेते हैं झटपट सदा, प्रेम की भाषा मानव लोग।**[5]

कवि ने मानव-संस्कृति के प्रसार तथा समन्वय द्वारा भारतीय एकता पर भी बल दिया है–

**दक्षिण यदि विकलांग रहा तो उत्तर की समृद्धि निष्प्राण।**
**सब अवयव हों स्वस्थ समंजस, तभी स्वस्थ है पुरुष महान।**

*** *** ***

**किन्तु अभी जो अंधकार है वहाँ प्रकाश जगाना है।**
**पुरुष परम पुरुषत्व देख ले वह संस्कृति फैलाना है।**[6]

राम-राज्य के प्रतिष्ठापक तथा संचालक श्री राम हैं। कवि ने उनके असाधारण व्यक्तित्व का निरूपण पूर्णतः यथार्थवादी लोकनायक के रूप में किया है तथा उनके प्रति अपनी श्रद्धा व्यक्त करते हुए उन्हें युग-युग की प्रेरणा का धाम माना है–

**मानव भी श्रीराम हैं, अतिमानव भी राम।**
**उसी रूप में वे सुलभ, जिसकी जिससे काम।**
**त्रेता युग के नहीं, राम तो युग-युग के प्रेरणा धाम हैं।**
**पूर्ण पुरातन चिर नवीन वे, भाव-स्रोत हृदयाभिराम हैं।**[7]
**राम ब्रह्म हों, राम विष्णु हों, किन्तु राम नर तो हैं निश्चय।**
**युग-द्रष्टा ही नहीं, आप ही युग-कर्त्ता भी जो निःशंसय।।**[8]

मिश्र जी ने राजा राम को 'विश्व-भूप' के रूप में प्रतिष्ठित किया है, किन्तु उनके राम आदर्श शासक के प्रतीक हैं वे स्वयं को अवध का ही नहीं 'विश्व का बन्धु' घोषित करते हुए कहते हैं–

**क्यों मेरा बन्धुत्व अवध की सीमा में आबद्ध रहे।**
**क्यों न विश्व का मानव, खग-मृग तक, मुझको निज बन्धु कहे।**[9]

उनके राम नवयुग की चेतना के संवाहक, नवीन संस्कृति के प्रचारक, नवीन सामाजिक क्रान्ति के प्रवर्तक हैं तथा विश्व-बन्धुत्व की भावना से ओत-प्रोत हैं। वे कहीं अतिमानव हैं तो कहीं वर्ग-संघर्ष में दलितवर्ग के नेता हैं, उनके चरित्र में जन-मन का उत्कर्ष स्थापित है तथा जीवन-उद्देश्य लोक सेवा है, क्योंकि उनकी मान्यता है–

**नहीं भोग में, किन्तु त्याग में खिलता जीवन।[10]**

उनके राम ईश्वरीय अवतार होते हुए भी मानव में ईश्वरत्व के विकास का यही अनुपम लक्ष्य रखते हैं जो विश्व-हित की कामना से ओत-प्रोत है–

**एक प्राण हो भारत-जननी, एक राष्ट्र भारतवासी।**
**राष्ट्र-सूत्र हो मानवता में जो कि दिव्यता सुखरासी।**
**प्रतिमानव में प्रभु रहता है, उसे सप्रेम जगायें हम।**
**भूमा भाव भूमि पर छाये, सुख बांटें, सुख पायें हम।[11]**

वस्तुतः मानव-मात्र के प्रति यही प्रेम व्यष्टि और समष्टि में एकात्म स्थापित कर सर्वत्र समत्व भाव उत्पन्न करता है।

भारत में विविधताओं के बावजूद भी एक सांस्कृतिक चेतना विद्यमान है। प्रादेशिकता, साम्प्रदायिकता आदि संकुचित मनोभावों को दूर कर पारस्परिक सहयोग तथा समन्वय द्वारा राष्ट्रीय प्रगति का स्वस्थ चिन्तन ही राष्ट्रीयता की भावना को गौरवान्वित करता है। 'राम-राज्य' में इसी प्रकार की राष्ट्रीय-सांस्कृतिक चेतना का समर्थन मिलता है जहाँ व्यापक राष्ट्र-हित के लिए क्षुद्र मानव (स्वार्थ) हित का त्याग श्रेष्ठ है–

**तभी राष्ट्रीयता होगी सुदृढ़ इस देश की।**
**जब भिन्न जनों में भी, एक संस्कृति-साम्य हो।[12]**

तथा–

**यदि प्रत्येक व्यक्ति ही, अपने को सुधार ले**
**तो राष्ट्र का सुसंस्कार, सुसाध्य कितना बने।**
**विरोध यदि हो, राष्ट्र-स्वार्थ में व्यक्ति स्वार्थ में।**
**तो राष्ट्र-हित में व्यक्ति-हित का स्वार्थ त्याज्य है।[13]**

इस काव्य के माध्यम से मिश्र जी ने ऐसे समाज की कल्पना की है जहाँ नर-नारी के पारस्परिक सहयोग से ही सुख-सम्पन्नता सम्भव हो सकती है–

**''तत्व यदि नर है नारी शक्ति,'' कहा ऋषि-पत्नी ने यह आप**
**''उभय का होता जब सहयोग, जगत का चलता कार्य कलाप।**
**बुद्धि है नर तो नारी भाव, इष्ट हो नर का जग-कल्याण।**
**किन्तु है नारी का यह धर्म, करे वह उत्तम नर निर्माण।।''[14]**

मिश्र जी ने देश की चहुँमुखी उन्नति में ग्रामोन्नति को अभीष्ट माना है। भारद्वाज आश्रम में आदर्श ग्राम की रूपरेखा वर्णित है तथा श्री राम चित्रकूट और पंचवटी में कृषि-संस्कृति का प्रचार करते हैं तथा जन-सम्पर्क स्थापित कर प्रगति की शिक्षा देते हैं।[15] वे अपनी भौतिक समृद्धि के लिए दूसरों का शोषण निंदनीय मानते हैं और इसे नारकीय कृत्य की संज्ञा देते हैं–

**नर शोषण? और करे निर्बाध उसे नर?**
**तो वह निश्चय निन्द्य, नारकी से भी बढ़कर।[16]**

इस काव्य में कवि ने राम के राज्य को आधार बनाकर एक सुखी, सम्पन्न एवं सुदृढ़ राज्य की कल्पना की है–

**वसुन्धरा में वस्तु भरी है, जन में तन-मन शक्ति अपरिमित।**
**राष्ट्र-हिताय उभय अर्पित हों, शासन का यह ध्येय सुनिश्चित।**
**वही राष्ट्र-हित जनहित वह ही, जो जन-जन को सुखी बनाये।**
**राम-राज्य ने निज शासन में तत्व यही प्रत्यक्ष दिखाये।।[17]**

राजा और प्रजा का सम्मिलित राज्य ही 'राम-राज्य' है। यह अनुशासित शासन-व्यवस्था है। समस्त को सुख-सम्पन्न बनाना ही 'राम-राज्य' का आदर्श है–

**अनुशासित हो गए सभी जन, साज व्यवस्था का वह साजा।**
**राजा तो घर-घर का जन था, नाम मात्र के थे वे राजा।[18]**

**सभी सुखी थे और सबों को सब प्रकार का सुख पहुँचाना।**
**यह ही आदर्श राज्य का, राम-राज्य ने जो पहचाना।**[19]

राजा राम के आचरण द्वारा मिश्रजी ने आदर्श राजा की समस्त नीतियों को रूपायित किया है। 'एकतंत्र भी शुचि जनतान्त्रिक, राम-राज्य का रहा प्रशासन'[20]–कहकर वे स्वयं स्पष्ट करते हैं कि उनके राम आदर्श शासक ही नहीं, आदर्श 'जन-सेवक' भी हैं।[21] यद्यपि वे राजतंत्रीय व्यवस्था के प्रतीक हैं तथापि ('सर्वसम्मति से हुआ सुग्रीव नृप स्वीकार'[22] जनतान्त्रिक प्रणाली का समर्थन करते हैं। वे शासक होते हुए भी आदर्श सेवाव्रती, जनहितैषी व जनप्रतिनिधि बनकर समतामूलक प्रजातंत्रात्मक राज्य की स्थापना करते हैं–

**महाराज श्री रामचन्द्र ने रामराज्य इस भान्ति चलाया।**
**राजतंत्र या प्रजातंत्र है, भेद न यह कोई लख पाया।**[23]
**प्रजानुरंजन का इससे बढ़ शायद ही दृष्टान्त मिल सके।**
**राम-राज्य भी इसीलिए तो शायद ही अन्यत्र खिल सके।**[24]

स्पष्ट है कि राम-कथा के पुनराख्यान के बहाने 'राम-राज्य' काव्य में विश्वबन्धुत्व-भावना, राष्ट्रहितार्थ वैयक्तिक-सामाजिक-राजनैतिक और सांस्कृतिक मूल्यों व जीवनादर्शों का प्रतिपादन तथा नवयुग की चेतना का विन्यास जिस रूप में मिलता है, उस सबके मूल में कवित्त की राम के प्रति अगाध निष्ठा एवं कलियुग में भी राम-राज्य स्थापना के रूप में राजनीतिक व्यवस्था के पुनरुद्धार का एक सत्संकल्प व्यक्त होता है। इसमें ऐसी उक्तियों की कमी नहीं है जो सार्वकालिक, सार्वदेशिक व सार्वजनीय बन सके।

**प्रगतिशीलता की सीमा लख, दे संतुलन-व्यवस्था बाँकी।**
**राम-राज्य में युगों-युगों के लिए मिली वह सुन्दर झाँकी।**[25]

डॉ. राम निरंजन पांडेय ने 'राम-राज्य' की राजनीति की व्याख्या करते हुए लिखा है–"राम-राज्य की राजनीतिक ब्रह्मर्षियों और राजर्षियों के द्वारा आयोजित राजनीति है, उसमें ज्ञान, कर्म और प्रेम की त्रिवेणी प्रवाहित होकर यश रूपी अक्षयवट के चरणों का प्रक्षालन करती हुई विश्व-मंगल-विधायिनी शक्ति के रूप में परम पावन बन गई है।"[26]

अतः प्रस्तुत कृति आधुनिक राम-काव्य की एक प्रतिनिधि, राष्ट्रीय एवं सांस्कृतिक पुनरुत्थान की एक उत्कृष्ट रचना स्वयमेव सिद्ध होती है। पौराणिक राम-कथा के पुनर्मूल्यांकन तथा कलात्मक उत्कृष्टता के कारण यह प्रगतिवादी युग की एक विशिष्ट रचना है तथा इसका महत्व अक्षुण्ण है। स्वयं कवि-पण्डित डॉ. बलदेव प्रसाद मिश्र 'राम-राज्य' के प्रति अपनी आस्था को स्वर देते हुए लिखते हैं–

**राम-चरित के साथ ही, राम-राज्य के तत्व।**
**जन-मन में अक्षय रखें अपना अमर महत्व।**[27]

**तथा**

**त्रेता युग का राम-राज्य वह, कलियुग को आलोक दिखाये।**
**जिसका प्रबल प्रेरणा पाकर, शासन-स्वप्न सत्य बन जाये।**
**भारत की सीता-समृद्धि को, रावणत्व से मुक्त कराकर।**
**खिल जाये रामत्व मनुज का, ऐसे योग रचें विश्वेश्वर।।**[28]

## सन्दर्भ गन्थ

1. डॉ. शम्भुनाथ सिंह, हिन्दी महाकाव्य : उद्‌भव और विकास, पृष्ठ 560
2. डॉ. बलदेव प्रसाद मिश्र, राम-राज्य, भूमिका, पृष्ठ 9-10
3. राम-राज्य, प्रथम सर्ग, पृष्ठ 17
4. वही, प्रथम सर्ग, पृष्ठ 19
5. वही, चतुर्थ सर्ग, पृष्ठ 51

6. वही, प्रथम सर्ग, पृष्ठ 22
7. वही, प्रस्तावना, पृष्ठ 11
8. वही, द्वादश सर्ग, पृष्ठ 147
9. वही, प्रथम सर्ग, पृष्ठ 21
10. वही, द्वितीय सर्ग, पृष्ठ 30
11. वही, प्रथम सर्ग, पृष्ठ 23
12. वही, एकादश सर्ग, पृष्ठ 119
13. वही, एकादश सर्ग, पृष्ठ 127
14. वही, चतुर्थ सर्ग, पृष्ठ 49
15. वही, द्वितीय सर्ग, पृष्ठ 34-35 तथा चतुर्थ सर्ग, पृष्ठ 48
16. वही, पंचम सर्ग, पृष्ठ 57
17. वही, द्वादश सर्ग, पृष्ठ 139
18. वही, द्वादश सर्ग, पृष्ठ 138
19. वही द्वादश सर्ग, पृष्ठ 143
20. वही द्वादश सर्ग, पृष्ठ 140
21. वही, षष्ठ सर्ग, पृष्ठ 69
22. वही, अष्ठम सर्ग, पृष्ठ 83
23. वही द्वादश सर्ग, पृष्ठ 147
24. वही, द्वादश सर्ग, पृष्ठ 136
25. वही, द्वादश सर्ग, पृष्ठ 140
26. डॉ. बलदेव प्रसाद मिश्र : व्यक्तित्व और कृतित्व, पृष्ठ 126
27. वही, मुख-पृष्ठ से उद्घृत
28. वही मुख-पृष्ठ से उद्धृत


***

Hindi
Shodh Sandarsh-V, Vol.-XVI, Sept.-2017, Page : 56-61
ISSN No. - 2319–5908 (U.G.C. Approved Journal No. : 41329)

# खड़ी बोली काव्य और दक्खिनी हिन्दी

*राकेश कुमार सिंह**

यह हम सुनते आए हैं कि हिन्दी के खड़ी बोली के पहले कवि का नाम अमीर खुसरो है। इसके बावजूद जब हम हिन्दी साहित्य के इतिहास के पास जाते हैं, तो यह देखकर आश्चर्य होता है कि ऐतिहासिक और सामाजिक रूप से इतने महत्वपूर्ण कवि के लिए हमारे हिन्दी साहित्य के इतिहास में अमीर खुसरो को फुटकल खाते में डाल दिया गया। आप एक ऐसे व्यक्ति (इतिहास) की कल्पना करें, जिसके पॉकेट में वीरगाथाकाल और भक्तिकाल के बड़े-बड़े (रुपये) तो मौजूद हों लेकिन विद्यापति, अमीर खुसरो और सेनापति जैसे कवि रेजगारी के रूप में इधर-उधर पड़े हों। उस साहित्य के इतिहास पर सवाल खड़ा होता है। हमारे साहित्य के इतिहास में यह बुनियाद ही कहीं गड़बड़ है। जिसकी वजह से हम अपनी प्राथमिकताओं को सही क्रम में कहीं समझ ही नहीं पाए। चाहे वे सिद्ध-नाथ हों, विद्यापति हों या फिर अमीर खुसरो या फिर दक्खिनी हिन्दी कविता। ये सभी बुनियादी पहलू हैं, जिसे समझे बिना साहित्य क्या आप समाज का इतिहास तक सही नहीं लिख सकते।

यह कितने आश्चर्य का विषय है कि एक तरफ अमीर खुसरो को तो बड़ी सिद्दत के साथ हन्दी के पहले कवि के रूप में याद किया जा रहा है, लेकिन उसकी परम्परा को अनदेखा किया गया। सिर्फ पीछे की दक्खिनी परम्परा को ही नहीं बल्कि आगे की परम्परा अर्थात् मीर तकी मीर और मिर्जा गालिब पर कुछ लिखने-पढ़ने की जरूरत नहीं समझते। समस्या है शब्दावली और लिपि की। ''किसी भाषा का समझा जाना अधिकतर उसकी शब्दावली (वोकेब्युलरी) पर अवलंबित होता है। यदि ऐसा न होता तो उर्दू और हिन्दी का एक ही साहित्य माना जाता है।''[1] जहाँ एक तरफ आचार्य शुक्ल यह कहते हैं कि शब्दावली की भिन्नता नहीं होती तो हिन्दी-उर्दू का साहित्य एक होता। वहीं दूसरी तरफ अमीर खुसरो को खड़ी बोली की परम्परा में शामिल कर मीर और मिर्जा गालिब पर कुछ लिखने-पढ़ने की जरूरत नहीं समझते। ब्रजभाषा में लिखी जाने वाली रीति कविता तो हिन्दी साहित्य का हिस्सा बनती है, मगर खड़ी बोली में लिखी जाने वाली मीर तकि मीर और मिर्जा गालिब की कविता पर विचार तो दूर की बात है, चर्चा और सूचना के लिए भी जरूरी नहीं समझी जाती। आलोचक डॉ. नामवर सिंह का यह कथन बेजा नहीं है जिसे विश्वनाथ त्रिपाठी ने लिखा है कि ''अच्छी हिन्दी लिखने के लिए उर्दू गद्य पढ़ना चाहिए। (जाहिर है हिन्दी अनुवाद में)''[2] गौर करने की बात है कि डॉ. नामवर सिंह उर्दू पर बल देते हैं कि अच्छी हिन्दी लिखनी हो तो उर्दू का अध्ययन करें। क्योंकि उन्हें दोनों की मिली-जुली संस्कृति की एकता की पहचान और दरकार है। मेरे ख़याल से यही वह बुनियाद है जहाँ पर हमें आज दूसरों पर दोषारोपण किए बगैर अपने भीतर झाँक कर देखने की जरूरत है कि हिन्दी और उर्दू के बीच जो फासला बढ़ा है उसके लिए हमारा अपना साहित्य चिंतन कितना जिम्मेदार है? हमने उस कड़ी को ही अलग कर दिया जो हिन्दी के विकास की सहमामिनी थी।

सोचने की बात है कि आचार्य शुक्ल ने जहाँ-जहाँ प्रत्येक काल के बाद फुटकल कवियों का खाता खोलने की कोशिश की है, वहाँ-वहाँ वे उन मोड़ों से अनभिज्ञ रहे या नहीं समझ पाए। यही टर्निंग प्वाइंट इतिहास और अनैतिहासिकता के मापक भी होते हैं। इस तरह गाहे-बगाहे उनसे गलतियाँ हुई हैं। यह नहीं कहा जा सकता कि उन्होंने जानबूझकर ऐसा किया। यह उनके पूर्वाग्रह थे। लेकिन आलोचक ही पहचान वही होती है और आचार्य शुक्ल से इसमें चूक हुई है। किसी कवि के बारे में अच्छी-अच्छी बातें लिखना अलग बात है, लेकिन युग को पहचानने की क्षमता जिस आलोचक के पास हो, युग के टर्निंग प्वाइंट की पहचान हो, आलोचक वही बड़ा होता है। आप देखिए आचार्य शुक्ल आदिकाल का प्रारम्भ सिद्धों-नाथों के साहित्य को अलग करके देखते हैं। आप देखिए कि शुक्ल जी विद्यापति को नहीं समझ पाए, दक्खिनी हिन्दी कविता को नहीं समझ पाए, अमीर खुसरो को नहीं समझ पाए, यहाँ तक कि सेनापति को भी समझने में भूल कर बैठे। मिश्रबन्धुओं ने तुलसी युग के बाद सेनापति

* *शोध छात्र-हैदराबाद विश्वविद्यालय, हैदराबाद*

युग रखा है। शुक्ल जी वह काम नहीं कर पाए। शुक्ल जी ने गड़बड़ कर दी वहाँ। मतलब भक्तिकाल जहाँ से शुरू होता है और जहाँ खत्म होता है उस टर्निंग प्वाइंट को शुक्ल जी नहीं समझ पाए। शुक्ल जी उस बदलाव को नहीं समझ पाए, जहाँ से वे वीरगाथाकाल कह रहे हैं। सिद्धों-नाथों के साहित्य को समझ ही नहीं पाए। राहुल जी इस अलगाव को समझ रहे हैं। राहुल जी के परवर्ती और कुछ समकालीन लेखक इस बात को समझते हैं इसीलिए सभी ने एक कड़ी के रूप में सिद्धों-नाथों को जोड़कर देखने का प्रयास किया है। राहुल जी जो हिन्दी साहित्य के इतिहास के युग हैं और युगों का जो परिवर्तन हो रहा है, उस परिवर्तन की आहट और उस बदलाव को महसूस करते हैं। इन सबके पीछे उनका विस्तृत इतिहास बोध है।

इस विषय पर विचार करने वालों की भी एक लम्बी परम्परा है जो चन्द्रबली पांडे, श्रीराम शर्मा, राहुल सांकृत्यायन, डॉ. सुनीति कुमार चाटर्जी से लेकर डॉ. रामविलास शर्मा तक देखी जा सकती है अपने अंतर्विरोधों के साथ। अपनी पुस्तक 'दक्खिनी हिन्दी-काव्यधारा' (1958) में राहुल जी ने लिखा है कि ''दक्खिनी काव्य के और भी संग्रह निकले हैं, जिनमें एक हैदराबाद से थोड़े ही दिन पहले निकला है और बहुत अच्छा है। यदि इन संग्रहों को सात-आठ साल पहले मैंने देखा होता, तो शायद इस कार्य में हाथ न लगाता।''[3] राहुल जी ने स्पष्ट नाम नहीं लिया, लेकिन 'दक्खिनी हिन्दी-काव्यधारा' से पहले श्रीराम शर्मा की पुस्तक 'दक्खिनी का पद्य और गद्य' सन् 1954 ई. में हिन्दी प्रचार सभी, हैदराबाद से प्रकाशित हो चुका था। 'दक्खिनी का गद्य और पद्य' पुस्तक के बाद भी श्रीराम शर्मा ने दक्खिनी हिन्दी पर दो और पुस्तकों का लेखन किया, जिनमें 'दक्खिनी हिन्दी का साहित्य' और 'दक्खिनी हिन्दी का उद्भव और विकास' नाम से हैं। इन दोनों पुस्तकों पर श्रीराम शर्मा ने चन्द्रबली पांडे और राहुल सांकृत्यायन के योगदान के प्रति आभार प्रकट किया है। ''दक्खिनी के अध्ययन के लिए मुझे जिन विद्वानों से अत्यधिक प्रेरणा और सहायता मिली है, उनमें से चन्द्रबलीजी पांडे और राहुल जी अब संसार में नहीं हैं।''[4]

राहुल जी की पुस्तक 'दक्खिनी हिन्दी-काव्यधारा' की बात करें तो वह कई दृष्टियों से महत्वपूर्ण है। पहली बात तो इस तरह की पुस्तकें आलोचना और अनुसंधान के दायरे को स्पष्ट करती हैं, कि आखिर आलोचना का क्या काम है और अनुसन्धान का क्या? यह अलग बात है कि बिना आलोचनात्मक दृष्टिकोण के अनुसन्धान नहीं किया जा सकता।

हम बात कर रहे हैं–दक्खिनी हिन्दी कविता के अवदान पर। इस अवदान की शुक्ल जी ने अनदेखी की। इसीलिए अमीर खुसरो को हिन्दी के प्रथम कवि के रूप में स्थापित करने के बावजूद फुटकल खाते में डालना पड़ा। आखिर ऐसा क्यों? क्योंकि आचार्य शुक्ल अमीर खुसरो को सही समझ ही नहीं पाए। हिन्दी के प्रथम कवि को लेकर विवाद है। हिन्दी के अधिकांश साहित्येतिहासकारों ने अमीर खुसरो को हिन्दी का प्रथम कवि माना है। लेकिन राहुल सांकृत्यायन ने अमीर खुसरो को हिन्दी का प्रथम कवि मानने से इंकार किया है, इसके पीछे कई कारण हैं। प्रश्न प्रथम कवि और अंतिम कवि का नहीं है। प्रश्न परंम्पराबोध का है। प्रश्न इतिहासबोध का है। प्रश्न हिन्दी के भूगोल और इतिहास का है। प्रश्न हिन्दी-उर्दू की साझी संस्कृति और साझी विरासत का है। जिसे हमें हिन्दी के मध्यदेश तक ही सीमित करके नहीं देखना चाहिए अर्थात् हिन्दी क्षेत्रों तक ही सीमित करके नहीं देखना चाहिए। इसके भूगोल और इतिहास की पड़ताल करनी चाहिए। उसे पूर्व से पश्चिम और उत्तर से दक्षिण तक उसका विस्तार देखना चाहिए। आज जब हम हिन्दी को राष्ट्रभाषा, राजभाषा और सम्पर्क भाषा के रूप में देखने की बात करते हैं तो उसके पीछे आम जनता है, जिसने 1857 से लेकर स्वतंत्रता संग्राम में अपना योगदान दिया था। गौर करें कि यदि खड़ी बोली उन्नीसवीं सदी के अंत में आती है तो कैसे वह हिन्दी क्षेत्र के अतिरिक्त सम्पूर्ण भारत में अपने बोलचाल के रूप में समझी और बोली जाती थी? राहुल जी ने लिखा है कि ''खुसरो को खड़ी (कौरवी) हिन्दी का प्रथम कवि बतलाया जाता है, पर इसमें संदेह है। खुसरो के समय अर्थात् 13वीं सदी का अंत अपभ्रंश और आधुनिक भाषाओं का संधिकाल था। उस समय प्राकृत तत्सम शब्दों का उपयोग ज्यादा होता था। खुसरो के समकालीन फारसी इतिहासकार राजपूत के लिए राउत शब्द का प्रयोग करते हैं, जो स्पष्ट राउत का ही अरबी लिपि द्वारा भ्रष्ट लेख है। ऐसे शब्दों का खुसरो की कविता में अभाव है।''[5] दूसरी तरफ डॉ. सुनीति कुमार चटर्जी का भी मानना है कि ''13वीं-14वीं शती में अमीर खुसरो की कोटि के सुसलमान लेखक का भारतीय देशज भाषा में लिखना एक अपवाद-रूप घटना ही कही जा सकती है।''[6] आप देखिए एक तरफ राहुल सांकृत्यायन लिखते हैं कि ''इस प्रकार खड़ी हिन्दी के सर्वप्रथम कवि यही दक्खिनी कवि थे।''[7] तो दूसरी तरफ सुनीतिकुमार लिखते हैं ''ब्रजभाषा के स्थान पर साहित्य के लिए विशेषकर हिन्दी या हिन्दुस्तानी के प्रयोग का आदर्श उत्तरी भारत के समक्ष सर्वप्रथम 'दक्कन' वालों ने ही रखा।''[8] लेकिन परम्परागत साहित्येतिहास ग्रन्थों का अध्ययन करते समय यह तनिक भी एहसास नहीं होने दिया जाता कि हिन्दी खड़ी बोली का इतिहास हिन्दी क्षेत्र विशेष की सीमा से बाहर भी हो सकता है। लेकिन राहुल जी और राहुल जी जैसे कई विद्वानों ने इस भ्रांत धारणा को तोड़ने का काम किया कि खड़ी बोली का प्रारम्भ 19वीं सदी से ही होता है। राहुल जी ने 'दक्खिनी हिन्दी काव्यधारा' के माध्यम से यह स्थापित कर दिया कि हिन्दी में खड़ी बोली पद्य और गद्य लेखन 19वीं

सदी के अंतिम दशक से नहीं बल्कि उससे भी चार सौ वर्ष पहले ख्वाजा बंदानेबाज़ (1343 ई.) एवं शाह मीरांजी (1496 ई.) जैसे कई दक्खिनी कवियों के लेखन से खड़ी बोली हिन्दी की शुरुआत हो गयी थी।

'दक्खिनी हिन्दी काव्यधारा' का जहाँ महत्व इस ओर है कि इसने खड़ी बोली को आधार प्रदान किया वहीं दूसरी ओर हिन्दी और उर्दू के बीच जो लम्बे समय से विवाद की खाई है उसको भी यह ग्रन्थ पाटने का काम करता है। राहुल जी जहाँ एक ओर अरबी, फारसी युक्त दक्खिनी काव्य को हिन्दी से जोड़ते हैं वहीं अरबी, फारसीमय उर्दू को भी हिन्दी के विकसित होने की एक कड़ी के रूप में देखते हैं ''हिन्दी के साहित्यिक विकास में दक्खिनी हिन्दी और उर्दू का बहुत बड़ा हाथ है। उर्दू को बहुत से लोग हिन्दी का प्रतिपक्षी समझते हैं, जो गलत है। हम हिन्दी वाले उसे हिन्दी की एक शैली मानते हैं। जो विरोध है, वह केवल उसकी अरबी लिपि के कारण।''[9] दूसरी तरफ लिखते हैं कि ''खड़ी बोली के सर्वप्रथम कवि यही दक्खिनी कवि थे। एक ओर उन्होंने बोलचाल की कौरवी को साहित्यिक भाषा का रूप दिया, तो दूसरी तरफ उनकी कृतियों ने उर्दू कविता का प्रारम्भ किया। हमारी हिन्दी उर्दू की विशेष तौर से गद्य की ऋणी है।''[10] गौर करने की बात है कि इसी दक्खिनी हिन्दी ने हिन्दी की पृष्ठभूमि निर्धारित की और उर्दू का भी बीजवपन किया। लेकिन हिन्दी के बहुत से साहित्यकार इस तरह के विश्लेषण को अस्वीकार करते हैं। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल है उद्धरणों के द्वारा हम इस विश्लेषण को समझाने का प्रयास करेंगे। आचार्य शुक्ल का मानना है कि ''खुसरो ने विक्रम ही चौदहवीं शताब्दी में ही ब्रजभाषा के साथ-साथ खालिस खड़ी बोली में कुछ पद्य और पहेलियाँ बनाई थीं। औरंगजेब के समय से फारसी मिश्रित खड़ी बोली या रेख्ता में शायरी भी शुरू हो गई और उसका प्रचार फारसी पढ़े लिखे लोगों में बराबर बढ़ता गया। इस प्रकार खड़ी बोली को लेकर उर्दू साहित्य खड़ा हुआ।''[11] राहुल जी ने इस बात की पुष्टि की है जिस पर हम ऊपर बात कर चुके हैं कि खुसरो के बाद तीन सौ साल तक खड़ी बोली का कोई भी लिखित साहित्य नहीं प्राप्त होता और आचार्य शुक्ल भी सीधे खुसरो से औरंगजेब तक की छलांग लगाते हैं। आचार्य शुक्ल इस बात से भी इंकार करते हैं जिस पर राहुल जी ने जोर देकर कहा है कि खड़ी बोली गद्य खासतौर से उर्दू का ऋणी है। वहीं आलोचना की पहली पंक्ति के आलोचक नामवर जी दक्खिनी हिन्दी और उर्दू को वही महत्व देते हैं जो राहुल जी देते हैं। नामवर जी ने लिखा है कि ''हिन्दी साहित्य की पुरानी और आधुनिक परम्परा को उर्दू के बिना नहीं समझा जा सकता। हिन्दी साहित्य का इतिहास उर्दू के बिना सम्भव नहीं है। दक्खिनी हिन्दी से उर्दू और हिन्दी दोनों शूरू हुई...इसकी बेहतरीन मिसाल प्रेमचंद हैं।''[12] वहीं आचार्य शुक्ल लिखते हैं ''कुछ लोगों का यह कहना या समझना कि मुसलमानों के द्वारा ही खड़ी बोली अस्तित्व में आई और उसका मूल रूप उर्दू है जिससे आधुनिक हिन्दी गद्य की भाषा अरबी-फारसी शब्दों को निकलकर गढ़ ली गई, शुद्ध भ्रम या अज्ञान है।''[13] शुक्ल जी के इस भ्रम और अज्ञानता के निवारण में सच कहा जाए तो हिन्दी और उर्दू पाठक और भारतीय जनमानस आज भी उसी भ्रम का शिकार है। देखने की बात है कि जो बात आचार्य रामचन्द्र शुक्ल कह रहे हैं और जो बात राहुल सांकृत्यायन कह रहे हैं वह कहाँ तक सही है। यह देखने की बात है। इसका निर्णय आगे की पीढ़ी करती है। तब नामवर जी कहाँ खड़े हैं? आचार्य शुक्ल की परम्परा में या राहुल जी की परम्परा में!

हिन्दी साहित्य के विषय में यह बड़ी बात है कि जब राहुल जी 'दक्खिनी हिन्दी काव्यधारा का लेखन कर रहे हैं तो वह दक्खिनी के सभी कवियों को हिन्दी के कवि के रूप में अभिहित करते हैं। खासतौर से यह भी गौर करने की बात है कि उन्हीं दक्खिनी हिन्दी कवियों को उर्दू साहित्येतिहासकार भी उर्दू का कवि मानते हैं। वली दकनी (1705 ई.) इसके सबसे बड़े अपवाद हैं। हिन्दी-साहित्येतिहास लेखन की परम्परा में शुरुआती जो इतिहास लेखन हुआ उसमें हिन्दी और उर्दू दोनों के कवि समान रूप से सम्मिलित थे जिन्हें बाद में आगे चलकर आचार्य शुक्ल ने अपने इतिहास में जगह देना उचित नहीं समझते और अपने से पूर्व सभी इतिहास ग्रंथों को या तो कविवृत्त संग्रह या बड़ा भारी कविवृत्त संग्रह कहकर नकार देते हैं। आज का हिन्दी साहित्येतिहास पाठक आचार्य शुक्ल के इतिहास को परिपक्व और पूर्ण मानकर बैठा है और मानना भी चाहिए कुछ बातों के लिए। लेकिन आचार्य शुक्ल ने इन्हीं प्रवृत्तियों और सिद्धान्तों को लेते हुए और पूर्वाग्रह मुक्त होते हुए यदि जिन्हें आज उर्दू का रचनाकार कहा जाता है उनको अपने इतिहास में स्थान दिया होता तो हिन्दी और उर्दू के बीच जो स्थिति आज है शायद वह देखने को न मिलती। तो राहुल जी ने दक्खिनी काव्यधारा के सभी कवियों को हिन्दी कवि का दर्जा दिया। इतना ही नहीं जब वह दक्खिनी हिन्दी काव्यधारा का लेखन कर रहे होते हैं तो हिन्दी के रचनाकार या कविगण उनके चित्त से ओझल नहीं होते। वह कबीर, नानक, सूर और तुलसीदास को निरंतर याद करते रहते हैं अर्थात् दक्खिनी हिन्दी कवियों के साथ हिन्दी के कवियों को भी याद करना नहीं भूलते। इसी क्रम में वे यहाँ तक कह जाते हैं कि ''दक्खिनी खड़ी हिन्दी-कविता के सूर और तुलसी, वजही, सुलतान मुहम्मद कुल्ली कुतुब (1565-1612 ई.) और गौवासी (1625 ई.) थे।''[14] यहाँ तक तो ठीक है लेकिन दक्खिनी हिन्दी का इतिहास लिखते समय तुलसीदास उनके मनमानस पर बसे हैं, इसे अतिरेक कहें या अतिप्रेम। 'दक्खिनी हिन्दी

काव्यधारा' में राहुल जी ने तुलसीदास का उल्लेख सोलह बार किया है। पृष्ठ संख्या दस से लेकर पृष्ठ संख्या 251 तक हर साधारण सी साधारण बात पर तुलसीदास आकस्मिक आ जाते हैं। कभी-कभी ऐसा लगता है कि दक्खिनी हिन्दी को विश्लेषित करने या मापने का एक ही पैमाना राहुल जी के पास है। लेकिन इसके बावजूद सबसे महत्वपूर्ण जो बात है वह हिन्दी के रचनाकारों का दक्खिनी के रचनाकारों से जोड़कर देखना। लेकिन ये बात दक्खिनी के कवियों को हिन्दी का कवि घोषित नहीं करती है। इसके कई मानक उनके साहित्य में विद्यमान हैं। पहला तो यह कि दक्खिनी के कई रचनाकारों ने अपनी भाषा को हिन्दी/हिन्दवी कहा है। दूसरा यह कि इनकी रचनाओं में प्रयुक्त भाषा अरबी, फारसी का पुट लिए भी यदि किसी भाषा से यदि सबसे अधिक निकट है तो वह हिन्दी ही है। यदि पहले तर्क पर बात करें तो दक्खिनी हिन्दी के प्रारम्भिक कवियों में गिने जाने वाले कवि अशरफ ने अपनी भाषा को हिन्दवी नाम देते हुए लिखा है–

**बाचा[15] कीना[16] हिन्दवी में। किस्सा मकतल[17] शाह हुसेन।।**
**नजम[18] लिखी सब मौजूं[19] आन। यों मैं हिन्दवी कर आसान।**
**यक यक बोल यह मौजूं आन। तकरीर हिन्दवी सब बखान।।[20]**

वहीं बुरहानुद्दीन जानम् (1522 ई.) ने अपनी भाषा को हिन्दी नाम से अभिहित करते हैं–

**यह सब बोलू हिन्दी बोल। पन तूं अनभौ सेती खोल।**
**ऐब न राखें हिन्दी बोल। माने तूं चख देखें खोल।।**
**हिन्दी बोलो किया बखाना। जेकर फसाद अथा मुंज ज्ञान।।[21]**

दूसरी तरफ ऐसे भी कवि हुए हैं जिन्होंने अपनी भाषा हिन्दी को अरबी, फारसी से अलग करके देखा है। ऐसे कवियों में अब्दुल (अब्दुल गनी) का नाम आता है। अब्दुल गनी (1603 ई.) तुलसीदास और मुहम्मद कुल्ली का समकालीन बीजापुर महाराष्ट्र का कवि था। अपने काव्य लिखने का कारण बतलाते हुए अब्दुल गनी ने लिखा है–

**जबां हिन्दव मुझसों होर[22] देहवली। न जानूँ अरब होर अजम[23] मस्त्रवी।।[25]**

ध्यान देने की बात है कि कोई रचनाकार अपने समय में रचनारत होते हुए अपनी भाषा को किस नाम से अभिहित करता है, यह एक बात है। लेकिन उसकी रचना क्या कहती है या दूसरी बात है। इसलिए अब हम रचनाकारों की रचनाओं के उदाहरणों को आधार स्वरूप देखेंगे। इसलिए 'दक्खिनी हिन्दी काव्यधारा' के कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं–

**नामां कत्या बोल संबार। जानो[26] मोतियां केरा हार।।**
**सोने की ज्यों घुंटी[27] घड़। मानिक मोती हीरे जड़।।**
**यक यक बोल यह मानिक मोल। सीम[28] तराजू सेंती तोल।।**
**बंद[29] पिरोये सोनेतार। सच्चा हुआ नौसिरहार।।[30]**

यह कविता शेक्ष शरफुद्दीन अशरफ की है। कवि अपनी कविता की प्रशंसा कर रहा है। दूसरी ओर गद्य का नमूना भी देखते बनता है जिसकी ओर राहुल जी ने ध्यान दिलाते हुए लिखा है कि ''सबरस' वजही की मौलिक कृति नहीं समझी जाती, किन्तु वह अपने कवितामय गद्य के रूप में विशेष महत्व रखता है। तुलसीदास के तुरंत बाद या समकालीन गद्य का क्या रूप था, इसका एक अच्छा उदाहरण है। इस प्रकार यह महाकवि गद्य और पद्य दोनों का उत्कृष्ट रचयिता है। गद्य में ऐसा उदाहरण उत्तर के समकालीन हिन्दी कवियों द्वारा उपस्थित नहीं किया गया।''[31] वजही के गद्य का उदाहरण दृष्टव्य है–

***''एक शहर था। उस शहर का नाम सीस्तान। उस सीस्तान के बादशाह का नाँव अकल। दीनों दुनिया का तमाम काम उससे चलता। उसके हुकम बाज जर्रा कई नैं हिलता। उसके फरमाये पर जिनों चले, हर दो जहाँ में होये भले।''[32]***

गद्य का ऐसा चलता फिरता रूप वजही 'सबरस' के माध्यम से जनता के सामने ला रहे थे। सोचने की बात है कि जिस समय हिन्दी में तुलसीदास जैसा कवि अपनी रचना को पद्य के माध्यम से जनता के सम्मुख ला रहे थे उसी के आसपास वजही जैसा हिन्दी का दक्खिनी कवि अपनी बात गद्यमय काव्य बड़ी सरलता से कह रहा था। यही गद्यमय काव्य आगे चलकर खड़ी बोली गद्य का आधार बनता है। इसीलिए राहुल जी दक्खिनी हिन्दी के गद्य और पद्य को उत्तर की खड़ी बोली का आधार कहते हैं।

जहाँ तक भाषा के सम्बन्ध में दक्खिनी हिन्दी कविता की बात की जाए, जिस पर टिप्पणी करते हुए राहुल जी ने लिखा है कि ''मुहम्मद कुल्ली ही नहीं, बल्कि दूसरे भी मुसलमान कवियों के सामने देशभाषा को अपनाने के समय यह सवाल बराबर आया, कि किस रूप में भाषा को अपनाया जाय। दक्खिनी-हिन्दी के इन कवियों की रचनाओं में संस्कृत और हिन्दी के शब्द

बहुत अधिक मिलते हैं जिन्हें आगे चलकर कम-से-कम करते अंत में केवल व्याकरण हिन्दी का रहने दिया गया। पर पुराने कवियों ने भी हिन्दी-छंदों को कभी नहीं अपनाया, वह सदा अरबी–छन्दों को लेते रहे।''[33] राहुल जी जो बात कह रहे हैं वह अपनी जगह सही है कि दक्खिनी कवियों ने भाषा का वह रूप विकसित किया है जो हिन्दी के अधिक निकट है लेकिन छंदों में परिवर्तन नहीं ला सके। उन्हीं अरबी–छन्दों का प्रयोग प्रचलन में लाते रहे। लेकिन इसके पीछे सामाजिक और राजनीतक कारण थे। जिसकी ओर राहुल जी ने खुद इंगित करते हुए लिखा है कि ''मुकीमी (1627 ई.) ईरान का निवासी फारसी का बड़ा शायर था, किन्तु सत्रहवीं सदी के आरम्भ होने तक हिन्दी की महिमा दक्खिन के दरबारों में बढ़ गई थी, इसए अपने दूसरे स्वदेशी शायर तथा बीजापुर के सरकारी (फातूहात आदिलशाही) इतिहासकार की तरह मुकीमी ने भी हिन्दी में काव्य लिखना शुरू किया। दक्खिन के दरबारों में फारसी और ईरानियों की बड़ी प्रतिष्ठा थी।...उसके फारसी कविता संग्रह (दीवान) की प्रशंसा समकालीन इतिहासकारों ने की है, किन्तु हिन्दी कविता का उन्होंने जिक्र नहीं किया।''[34] समझने की बात है कि जहाँ अरबी, फारसी ग्रन्थों के सामने हिन्दी ग्रन्थों का जिक्र करना तक मुनासिब नहीं समझा जाता था वहाँ हिन्दी-छंदों के प्रयोग से दक्खिनी हिन्दी के कवियों की क्या गति होती? अर्थात् सामाजिक और राजनीतिक दबाव था न कि धार्मिक। तब राहुल जी की यह टिप्पणी कहाँ तक सही मामूल पड़ी है? कि ''यदि हिन्दुस्तान ईरान की तरह पूर्णतया मुसलमान हो गया होता तो हमारे छंदों की भी वही गति हुई होती, जो कि ईरान में हुई।...वस्तुतः इन कवियों ने भाषा के हिन्दीकरण की ओर उतना ध्यान नहीं दिया, जितना कि उसके इस्लामीकरण की ओर।''[35] इसी बात की ओर इंगित करते हुए समकालीन कथाकार अब्दुल बिस्मिल्लाह ने राहुल जी की ऐसी समझ पर टिप्पणी करते हुए लिखा है कि ''बात सही है, मगर यह समझ में नहीं आता कि राहुल सांकृत्यायन जैसा मार्क्सवादी चिन्तक भाषा और साहित्य को धर्म से जोड़कर क्यों देख रहा था। शायद इसीलिए यह माना जाता है कि जो व्यक्ति जितना बड़ा होता है, उसके अन्तर्विरोध भी उतने ही बड़े होते हैं। सम्भवतः यही कारण है कि जिन रचनाकारों को 'हिन्दी कवि' कहा जाता है, उन्हीं को जब 'इस्लामीकरण' के घेरे में लाया जाता है तो पूरा का पूरा शीराजा ध्वस्त हो जाता है।''[36]

इन सब अंतर्विरोधों के बावजूद राहुल सांकृत्यायन की पुस्तक 'दक्खिनी हिन्दी काव्यधारा' के महत्व को यूँ ही नाकारा नहीं जा सकता। राहुल जी ने अपने आलोचनात्मक विवेक और शोधपरक विश्लेषण से यह स्थापित कर दिया कि खड़ी बोली साहित्य का प्रारम्भ 19वीं शताब्दी के अंत में नहीं, बल्कि उससे चार सौ-पाँच सौ वर्ष पहले ही अस्तित्व में आ गया था। अर्थात् खड़ी बोली हिन्दी का बीजवपन उत्तर के लेखन के परिणाम नहीं, बल्कि दक्षिण के हिन्दी कवियों का योगदान है। कवि निशाती (1656 ई.) का परिचय देते हुए राहुल जी ने स्पष्ट लिखा है कि ''उत्तर में खड़ी (हिन्दी) बोली की कविता 19वीं सदी के अंत में नाम मात्र और सो भी बेमन से हुई। वस्तुतः उसका आरम्भ 20वीं सदी के आरम्भ से होता है, जिसमें पहली दो शताब्दियाँ अभ्यास करने की थीं। लेकिन, अलाउद्दीन और मुहम्मद तुगलक की दक्षिण-विजय के साथ जो लाखों मुसलमान सामंत, सैनिक, शिल्पकार आदि के रूप में दक्षिण गए, उनके ही कारण दक्षिण में गुलबरगा, गोलकुंडा और बीजापुर में खड़ी हिन्दी की कविता उस वक्त शुरू हुई, जिस वक्त मैथिल कोकिल विद्यापति अपने मधुर गीतों से प्राची को मुखरित कर रहे थे।''[37] बात स्पष्ट है कि आज जब हम खड़ी बोली हिन्दी के इतिहास का अवलोकन करें तो उसे अमीर खुसरो या फिर द्विवेदीयुगीन कविता से न करके उसकी परम्परा की पड़ताल करते हुए दक्खिनी हिन्दी कविता से करें तो ज्यादा तार्किक, ज्यादा सामाजिक और ज्यादा प्रेरणादायक रहेगा। राहुल जी के साथ-साथ डॉ. सुनीति कुमार चटर्जी भी इस बात से सहमत हैं कि ''दक्षिण में प्रतिष्ठित हुई उत्तर भारतीय जनपद भाषा पंजाब एवं पश्चिमी उत्तर प्रदेश से उत्पन्न होने के कारण यदि बिलकुल हिन्दुस्तानी नहीं, तो उसका सहोदरा भाषा तो अवश्य थी।

लेकिन एक प्रश्न है जिसका जवाब हर साहित्य अध्येता के पास नहीं है। जब सुनीतिकुमार चटर्जी लिख रहे हैं कि ''16वीं शती का अंत होते-न-होते ही दक्षिण के उत्तर भारतीय मुसलमान, हिन्दू शैली में, हिन्दी देशज शब्दों में तथा अधिकांश संस्कृत एवं प्राकृत शब्दावली भाषा में धार्मिक कविता की रचना करने लगे थे। केवल लिपि को छोड़कर, यह सारा साहित्य बिल्कुल हिन्दू परम्परा का उसी प्रकार अनुकारी था, जैसा उत्तर भारत में आरम्भिक अवधी भाषा में रचित मलिक मुहम्मद जायसी का 'पद्मावती' (1545)''[38] लेकिन राहुल जी इस बात को नहीं मानते कि संस्कृत और हिन्दी के देशज शब्दों का प्रयोग काफी बढ़ गया था, उनका तो यह मानना है कि अरबी, फारसी का प्रयोग बहुत अधिक होने लगा था। दुविधा इस बात की है कि जिस तरह से हिन्दी साहित्य में जायसी, कुतुबन, मंझन जैसे कवि अवधी का प्रयोग करते हुए और लिपि अरबी होते हुए भी हिन्दी साहित्य के इतिहास में स्थान बना सके लेकिन दक्खिनी के कवि खड़ी (हिन्दी) बोली में लिखते हुए भी हिन्दी साहित्य के इतिहास में स्थान क्यों नहीं दिया गया? जबकि लिपि दोनों की अरबी थी।

## संदर्भ–सूची

1. रामचन्द्र शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ. 32
2. बहुवचन, अंतर्राष्ट्रीय त्रैमासिक, अंक 50 (जुलाई-सितम्बर, 2016), प्रकाशक : महात्मा गाँधी अंतर्राष्ट्रीय हिन्दी विश्वविद्यालय, वर्धा, सं. अशोक मिश्र, पृ. 23

3. राहुल सांकृत्यायन, दक्खिनी हिन्दी काव्यधारा, पृ. 6
4. श्रीराम शर्मा, दक्खिनी हिन्दी का उद्‌भव और विकास, हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग, पृ. 10
5. राहुल सांकृत्यायन, दक्खिनी हिन्दी-काव्यधारा, पृ. 5
6. सुनीतिकुमार चटर्जी, भारतीय-आर्य भाषा और हिन्दी, पृ. 209
7. राहुल सांकृत्यायन, दक्खिनी हिन्दी काव्यधारा, पृ. 2 (शब्द से)
8. सुनीतिकुमार चटर्जी, भारतीय- आर्यभाषा और हिन्दी, पृ. 210
9. राहुल सांकृत्यायन, दक्खिनी हिन्दी काव्यधारा, पृ. 2 (शब्द से)
10. राहुल सांकृत्यायन, दक्खिनी हिन्दी काव्यधारा, पृ. 2 (शब्द से)
11. रामचन्द्र शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ. 224
12. नामवर सिंह, जमाने से दो दो हाथ, पृ. 95
13. रामचन्द्र शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ. 224
14. राहुल सांकृत्यायन, दक्खिनी हिन्दी काव्यधारा, पृ. 251
15. बंचन
16. किया (पंजाबी)
17. कर्बला की कथा
18. पद्‌य
19. उचित
20. राहुल सांकृत्यायन, दक्खिनी हिन्दी काव्यधारा, पृ. 6
21. राहुल सांकृत्यायन, दक्खिनी हिन्दी काव्यधारा, पृ. 8
22. और
23. पारसी
24. काव्य-कला
25. राहुल सांकृत्यायन, दक्खिनी हिन्दी काव्यधारा, पृ. 128
26. मानो या जैसे
27. अंगूठी
28. चांदी
29. बांध
30. राहुल सांकृत्यायन, दक्खिनी हिन्दी काव्यधारा, पृ. 6
31. राहुल सांकृत्यायन, दक्खिनी हिन्दी काव्यधारा, पृ. 17
32. राहुल सांकृत्यायन, दक्खिनी हिन्दी काव्यधारा, पृ. 31
33. राहुल सांकृत्यायन, दक्खिनी हिन्दी काव्यधारा, पृ. 80
34. राहुल सांकृत्यायन, दक्खिनी हिन्दी काव्यधारा, पृ. 223
35. राहुल सांकृत्यायन, दक्खिनी हिन्दी काव्यधारा, पृ. 80
36. राहुल सांकृत्यायन, दक्खिनी हिन्दी काव्यधारा, पृ. 210
37. राहुल सांकृत्यायन, दक्खिनी हिन्दी काव्यधारा, पृ. 251
38. सुनीतिकुमार चटर्जी, भारतीय-आर्य भाषा और हिन्दी, पृ. 211
39. सुनीतिकुमार चटर्जी, भारतीय–आर्य भाषा और हिन्दी, पृ. 211

***

Hindi
Shodh Sandarsh-V, Vol.-XVI, Sept.-2017, Page : 62-63
ISSN No. - 2319–5908 (U.G.C. Approved Journal No. : 41329)

# कुबेरनाथ राय के निबन्धों में राष्ट्रबोध

*राजेश कुमार**

'राष्ट्र' शब्द से एक निश्चित भू-आकृति, मनुष्य जीवनचर्या, सांविधानिक खाँचों का चित्र उरभरता है। परन्तु यह चित्र भारतीय 'राष्ट्र' चिन्तन से अलहदा है। भारतीय चिन्तन राष्ट्र को एक भौतिक सूत्रबद्धता के साथ 'चिन्मय सत्ता' को स्वीकार करता है। जैसा कि कुबेरनाथ राय लिखते हैं कि ''आधुनिक राष्ट्रवाद उन्नीसवीं शती के पश्चिमी जगत की उपज है और 'राष्ट्र' देश या 'धरती' की हजार-हजार वर्षों से चली आ रही भारतीय अवधारणा से उसका कोई सम्बन्ध ही नहीं है। फलतः देश की आत्मा की मौलिक प्रवृत्ति को न समझते हुए, वह देश के स्वाभिमान का, उसके अंतर्निहित आत्मविश्वास का निरन्तर हनन करता जा रहा है। देश की आत्मा-हनन ही उसके बौद्धिक क्रियाकलाप की मूल विशिष्टता है। वह अपनी भीतर के शंका के भूतों से, अपनी ही परछाई से निरन्तर जूझ रहा है और पीछे घूमकर देख नहीं पाता कि वास्तविकता के असुर कहाँ-कहाँ हैं।''[1]

भारतीय दृष्टि राष्ट्र को सृष्टि या चराचर जगत के साथ 'आत्म' सम्बन्ध के रूप में व्याख्यायित करती है। वस्तुतः ''जिसे हम देश कहते हैं, भारत की 'धरती' कहते हैं, जिस पर हम बसे हैं और जो हमारी मातृभूमि है, उसे हम विश्व प्रकृति या परमा प्रकृति का एक स्वरूप मानने के आदी हैं। इसीलिए इसमें मातृभाव की प्रतिष्ठा है। यह धरती माँ है, यहाँ की वनस्पतियाँ माँ हैं। यहाँ की नदियाँ माँ हैं, यहाँ वृक्ष देवता हैं। पर्वत देवता हैं। यहाँ का दिवस पिता है, रात्रि माँ है। सूर्य, चन्द्र और ऋतुओं से हमारा वात्सल्य सम्बन्ध है और फूलों-पौधों और प्राणियों से भ्रातृत्व का सम्बन्ध है। हमारी संस्कृत ने इस मानसिकता का उत्तराधिकार हमें दिया है और इस उत्तराधिकार को समझकर ही हमारे 'भारत बोध' और 'भारत माता' के विचार का सही आकलन हो सकता है। बाहरी दृष्टि से यह सम्भव नहीं। भारतीय मन सबकुछ को, अर्थात् अपने को तथा अपने घर-द्वार, खेत-खलिहान, हल-बैल, यंत्र- औजार, नदी-आकाश सबको एक दिव्यता से संपृक्त मानता है और सबके प्रति श्रद्धाभाव रखता है। उसकी इस मानसिकता के सन्दर्भ में 'भारत माता' और 'देशमातृका' के विचार को परखना चाहिए, न कि आधुनिक यूरोप के इतिहास के माध्यम से। गंगा नदी 'गंगा मैया' कहना हमने हिटलर और मुसोलिनी से नहीं सीखा है।''[2] अर्थात् वर्तमान राष्ट्र की अवधारणा को ही सत्य मानना उचित नहीं है क्योंकि देशबोध का जो भाव हजारों साल की अनुभव परम्परा से भारत में विकसित हुआ, उसका आत्मीयकरण कर ही राष्ट्र के वास्तविक उद्देश्य को पूर्ण किया जा सकता है। अर्थात् भारत की राष्ट्र संकल्पना को ठीक-ठीक अनुभूत कर ही सत्य ध्येय की ओर अग्रसर हुआ जा सकता है। क्योंकि ''भारत को मात्र 'जन गण' मानना सही होते हुए भी अधूरी बात है, क्योंकि इसमें 'मातृशक्ति' के भाव को अस्वीकृत कर दिया गया और फला हुआ है कि 'जन गण' की जनशक्ति में 'भ्रातृशक्ति' का आवेश नहीं आ पाया है। 'माँ' के भाव की अनुपस्थिति में 'भाई' का भाव आ कैसे सकता है। फलतः आज भारतवर्ष में उत्तेजित 'जनशक्ति' तो है, परन्तु उसके भीतर 'भ्रातृत्व' यानी भाईचारे का भाव अनुपस्थित है। वह सत्तालोभी राजनीतिक द्वारा उत्तेजित की गई परस्पर के प्रति हिंसाकामी भीड़ मात्र हैं।''[3] कुबेरनाथ राय अपने निबन्धों में इस तथ्य की ओर यत्र-तत्र उल्लेख करते हैं कि करूणा, प्रेम भ्रातृत्व आदि मूल्यों के बिना देश में उपस्थित जन समूह मात्र भीड़ ही सिद्ध हुई है। क्योंकि बिना देश के प्रेम सजल सातत्य के यह सम्भव ही नहीं कि भीड़ या जन समूह करूणा से आप्लावित हो सके। 'भारत माता और कमठ खोल के बुद्धिजीवी' निबन्ध में कुबेरनाथ राय लिखते हैं कि ''भ्रातृ-भाव'' का जागरण तब तक नहीं होता, जब तक कि हम देश के प्रति मातृ-भावना से प्रेरणा न लें और अपनी पहचान को अपनी धरती और अपने 'इतिहास-भूगोल-सातत्य' में रखकर परिभाषित न करें। 'जन-गण' के स्थान पर 'भ्रातृगण' की प्रतिष्ठा के लिए है कि हम 'जन' को 'वर्ग' या 'पार्टी' की इकाई और समाजशास्त्र, अर्थशास्त्र की 'ईकाई' से अधिक प्राणवंत और सजीव सत्ता के रूप में देखें। यह तभी सम्भव है जब हम स्वीकार करके चलें कि मनुष्य की सत्ता 'मनुष्य, प्रकृति और ईश्वर के त्रिक के रूप में प्राणवंत है। हम यह समझें कि जिस भारत माता को हम 'जन-गण' की समाकृति मानते हैं, वह 'जन-गण' मानवीय संसाधन की इकाई मात्र नहीं बल्कि भारतीय मनुष्य, भारतीय पृथ्वी तथा भारतीय ईश्वर (अर्थात् संस्कृति और धर्म) का 'त्रिक' है जिसमें कोई भी उपेक्षणीय और महत्वहीन नहीं है।

* *शोध छात्र-हिन्दी,, बरकतउल्ला विश्वविद्यालय, भोपाल (म. प्र.)*

अतः यह धरती भी 'भारत माता' है और यह 'वंदेमातरम्' की दैवी शक्ति भी भारत माता है।''[4] श्री राय स्पष्ट करते हैं कि मनुष्य मात्र संसाधन नहीं है, वह ईश्वर और प्रकृति की सायुज्य जीवंत सत्ता है, वह संस्कृति और धर्मी जीव है। उसे भौतिक पिण्ड के रूप में ही देखे-परखे जाने से उसके प्रतिफल दृष्टिगोचर हो रहे हैं। तात्पर्य है कि मनुष्य को उसी ईश्वर-प्रकृति की भूमिका में ही देखा-परखा जाना चाहिए। क्योंकि आज इस जन गण की सत्ता को मात्र मतदाता सूची तक ही सीमित कर दिया गया है। देश की सत्ता को मतदान केन्द्र के रूप में परिणित कर दिया है, जिसके परिणाम रक्तबीजा हो उठे हैं। परन्तु अतीत पर दृष्टि डाले तो ''परम्परागत चिन्तन-पद्धति में जो 'देश' या 'राष्ट्र' का विचार है और जिसका सूत्रपात वैदिक युग से होता है, वह आज की पश्चिमी परिभाषाओं से नितानत भिन्न है। भारतीय दृष्टि 'राष्ट्र' और 'देश' को महापृथ्वी का अंग मानती है। ऋग्वेद में 'देश' या 'मातृभूमि' के लिए 'पृथ्वी' शब्द आता है और 'भारत' का विचार हमारे वांङ्मय में 'पृथ्वी' की समाकृति के रूप में विकसित हुआ है तथा यह पृथ्वी 'महापृथ्वी' का एक अंग है। महापृथ्वी में देश के प्राणी, जीव, वनस्पति, भौगोलिक और नाक्षत्रिक परिवेश, वातावरण और पर्यावरण, सब कुछ आ जाता है। इस शब्द का प्रयोग बौद्ध साहित्य में हुआ है। 'भारत' 'जम्बूद्वीप' 'पृथ्वी' महापृथ्वी' ये चारों शब्द एक ही भाव 'देश' के विस्तार की चार कोटियाँ हैं और 'पुरुष' इन चारों कोटियों से अंशभेद के साथ जुड़ा है। 'आत्मा' के रूप में वह 'महापृथ्वी' को भी अतिक्रांत कर 'विश्व' तथा 'ब्रह्म' से जुड़ा है। मनुष्य 'पुरुष' के रूप में महापृथ्वी में निवास करता है तथा आत्मा के रूप में वह 'ब्रह्म' है।''[5]

अर्थात् राष्ट्रबोध जो उदाहरण भारत के हजारों वर्षों से प्रस्तुत किया है, जिसका उल्लेख श्री राय करते हैं उस बोध से ही भारत अपितु विश्व के अन्य देशों का कल्याण निहित है। इस बोध पर प्रकाश डालते हुए श्री राय लिखते हैं कि ''हम भारत की सम्पूर्ण सत्ता को समझने के लिए उसे तीन कोणों से देखें तो ठीक-ठाक समझ सकते हैं। वे कोण हैं–(1) मृण्मय (अर्थात् भौगोलिक-आर्थिक-जैविक दृष्टि से), (2) शाश्वत (ऐतिहासिक अविच्छिन्न विकास की दृष्टि से), (3) चिन्मय (श्रुति अर्थात् 'अचल' मूल्यों की दृष्टि से यानी 'मूल प्रकृति' या essence की दृष्टि से। इन तीन कोणों से भारत का अध्ययन करके सम्पूर्ण भारतीय 'सत्ता' और भारतीय पुरुषार्थ को हम समझ सकते हैं। भारत का मृण्मय रूप हमारे गाँव-नगर, खेत-खलिहान, नदी-पहाड़ हाट-बाजार में उपस्थित हैं और इस रूप द्वारा भारत 'काम' और अर्थ की साधना कर रहा है। भारत का 'शाश्वत रूप' काल-प्रवाह अर्थात् इतिहास में हजार-हजार वर्षों से निरन्तर चलायमान है। यह 'शाश्वत' इस अर्थ में है कि यह अविच्छिन्न रहा है। 'शाश्वत' शब्द एक 'काल' सम्बन्धी 'आइडिया' देता, है, जैसे निरन्तर वर्तमान के अर्थ में लेते हैं। परन्तु निरन्तर मौजूद होते हुए भी यह सतत विकासशील या प्रवाहमान भी है, यह काल का स्थिर बिन्दु नहीं है। आज भी यह अविच्छिन्नता वर्तमान है।''[6] स्पष्ट है कि भारत बोध अर्थात राष्ट्र बोध हेतु भारत को मृण्मय, शाश्वत और चिन्मय के बोध को आत्मसात कर ही वास्तविक राष्ट्र के अर्थ को समझा जा सकता है। तात्पर्य है कि देश को इतिहास, भूगोल, धर्म, संस्कृति और समाज आदि के रूप में पहचानना होगा। यही वास्तविक देशबोध या राष्ट्रबोध को जन्म देता है। कुबेरनाथ राय के भारतबोध के विषय में हनुमान प्रसाद शुक्ल लिखते हैं कि ''कृण्वंतो विश्वमार्यम' का अर्थ परस्पर को पूर्णतर बनाने से है। अर्थात जो दूसरे को पूर्णतर बनाता है, बदले में स्वयं भी और पूर्णतर बनता है। अन्य से समक्षता का सनातन भारतीय तरीका यही है, जो अपनी 'सनातनता' को सार्थक करते हुए आज भी जारी है। इस महासमन्वय की सनातन प्रक्रिया से निर्मित भारत को कुबेरनाथ राय का 'महा' यानि 'विराट' भारत है।''[7]

स्पष्ट है कि भारत का यह चिन्तन मार्ग ही सत्य 'उजास' की ओर ले जाता है, जिसका बोध ही मनुष्य को सम्पूर्ण सृष्टि से अंश-अशी भाव से जोड़ता है। चिन्मय की अनुभूति कराता है। वस्तुतः यही वास्तविक राष्ट्रबोध है।

## संदर्भ ग्रन्थ


1. अंधकार में अग्निशिखा, कुबेरनाथ राय, प्रकाशक-ग्रन्थ अकादमी, पुराना दरियागंज, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण-1998. पृ. 135
2. वही, पृ. 136-137
3. वही, पृ. 135
4. वही, पृ. 135
5. वही, पृ. 136
6. कामधेनु, कुबेरनाथ राय, प्रकाशक–नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दरियागंज, नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण–1990, पृ. 94-95
7. कुबेरनाथ राय रचना संचयन, सम्पादक-हनुमान प्रसाद शुक्ल, प्रकाशक-साहित्य अकादमी, फिरोजशाह मार्ग नई दिल्ली, प्रथम संस्करण-2014, भूमिका, पृ. 17


***

**Hindi**

Shodh Sandarsh-V, Vol.-XVI, Sept.-2017, Page : 64-68
ISSN No. - 2319–5908 (U.G.C. Approved Journal No. : 41329)

# 'ख्वाजा, ओ मेरे पीर! : 'दाम्पत्य के 'अद्‌भुत' और 'जीवटपूर्ण' लय की अभिव्यक्ति'

## ( शिवमूर्ति की कहानी 'ख्वाजा, ओ मेरे पीर! के विशेष संदर्भ में )

*प्रमोद कुमार यादव**

"वैसे भी यथार्थ को समझने के लिए बाजार से किसी सूक्ष्मदर्शक यंत्र को खरीरकर नहीं लाना पड़ता, बस अपनी संवेदना को ही व्यापक जीवन से जोड़ना होता है और शिवमूर्ति की भाव-संवेदना इस योग्य उन्हें बनाती है कि वे साहित्य को वृहत्तर जीवन से जोड़ सकें। शिवमूर्ति की कहानियों में अनुभव का सच भी इसलिए जटिल है और ऐसा अनुभव सत्य है जो जीवन-जगत की कल्पना पर नहीं बल्कि उसकी प्रत्यक्ष अनुभूति पर आधारित है।"[1]

आजादी के बाद का भारत वो भी ग्रामीण भारत अपनी तमाम विद्रूपताओं और जटिलताओं के साथ यदि किसी कथाकार के कथा-साहित्य में संजीदगी और व्यापकता के साथ अभिव्यक्त हुआ है तो वह कथाकार हैं–शिवमूर्ति। शिवमूर्ति की कहानियाँ पढ़ते हुए बार-बार स्वयं को रोकना पड़ता है, दिलासा देना पड़ता है। मन को पत्थर बनाना पड़ता है आँखों के सामने इस देश के उस कारुणिक जीवन को हटाना पड़ता है जो हर पल शिवमूर्ति की कहानियों के माध्यम से आत्मा को कोंचता रहता है। इसी वेदना को उजागर करती शिवमूर्ति की यह कहानी 'ख्वाजा, ओ मेरे पीर!' यह जिन्दगी के अभावों से जूझते, असीम जिजीविषा वाले, संघर्षशील पात्रों की कथा है। इस कथा में मामा-मामी का प्रेम वस्तुतः 'गोदान' की होरी-धनिया के प्रेम का अगला विकसित रूप है, लेकिन एक वेदना के साथ।

कहानी की शुरुआत कुछ इस तरह से होती है, "माधोपुर से शिवगढ़ तक सड़क पास हो गयी तो सरकार ने आखिर मान ही लिया कि ऊसर जंगल का यह इलाका भी हिन्दुस्तान का ही हिस्सा है। पिछले पचास बरस में कितनी दरखास्तें दी गयीं। दरखास्त देने वाले नौजवान बूढ़े हो चले तब जाकर.. चलो सुध तो आयी, वरना छः-सात किमी. लम्बी इस पट्टी पर आबादी कहाँ है। एक भी गाँव अगर होता रास्ते में। विधायक को हजार-दो हजार का भी लालच होता। दो जिलों की सीमा होने के चलते भी यह हिस्सा उपेक्षित रह गया। मामा के घर से निकलते ही मामी के जिले की शुरुआत हो जाती है। मामा का घर एक जिले में और सामने के खेतों में से आधे दूसरे जिले में।"[2]

अगर संक्षेप में 'ख्वाजा, ओ मेरे पीर!' को समझा जाए तो कहा जा सकता है कि शादी के बाद से ही नियमित रूप से अलग रह रही मामी जिस प्रकार से केवल पुत्र-प्राप्ति के उद्देश्य को मन में रखकर रोज रात को खेत के मचान पर मामा से यौन-सम्बन्ध बनाने के लिए आती है, वह प्रसंग भी अद्‌भुत एवं रोचक है, 'शाम को गाय-बैलों को चारा-पानी देकर, मा-बाप को खिला-पिलाकर पहर रात बीते लाठी लेकर निकलती मामी। सांप-बिच्छू और सियार-भेड़ियों को धता बताती, आधी रात के पहल-पहले जा पहुँचती मामा के माचे पर। पहर-डेढ़ पहर का अभिसार चौथे पहर मायके के लिए वापसी। अंधेरी रात हो या चाँदनी, जाड़े की ठिठुरन हो या बरसात के गरजते-बरसते बादल, मामी के लिए पति की सेज हमेशा डेढ़-दो घंटे की दूरी पर रही।' मामी अपने मन का दर्द भांजे को खुलकर बताती है- "बिना मरद का परिवार बेसहारा होता है। मुझे सहारे की जरूतर थी। पति का सहारा नहीं मिला तो बेटे के सहारे की आस में अंधेरी-उजेरी रात में दो कोस बीहड़ पार करके उनके पास पहुँचती रही। अपनी पंसद के किसी भी आदमी से बेटा पाने की राह दुनिया ने रूंध न रखी होती तो मैं उतनी दूर दौड़कर क्यों जाती?.. उन्हें मुझसे प्रेम होता तो जिस राह से औरत जात होकर मैं आती-जाती रही, वह क्या उनके लिए अनजान थी?"[3] और जब भांजा

* *शोधार्थी, पी.एच.डी. (हिन्दी विभाग), हैदराबाद विश्वविद्यालय, हैदराबाद*

कहता है-''चाहिए तो यही था मामी लेकिन ऐसा हो सकता है कि लाजवश ऐसा न कर पाए हों।''[4] तो मामी कितनी स्वाभाविकता के साथ पूछती हैं- ''अपने परानी के पास आते किस बात की लाज भी भैने?''[5] बाद में भांजा अपनी पत्नी से जो प्रतिक्रिया देता है, वह काबिले-गौर है–''भाई, बच्चे पैदा होना तो यांत्रिक क्रिया है। बिना प्रेम के भी बच्चे पैदा हो सकते हैं। बलात्कार से भी बच्चे पैदा हो जाते हैं। प्रेम या चाहना तो अलग चीज हुई। मामी कह रही थीं कि जब औरत होकर रात में अंधेरे में मैं उनके पास जा सकती थी तो वे मर्द होकर क्यों न आते, अगर उन्हें मुझसे प्रेम होता।''[6] यहाँ निश्चित ही शिवमूर्ति स्त्री-पुरुष सम्बन्धों की एक नई मीमांसा करते हुए नजर आते हैं।

दरअसल, यहाँ पर यह स्पष्ट करना जरूरी है कि अभिसारिका मामी का चित्रण करना कहानीकार का प्रमुख उद्देश्य नहीं है और न ही यह कहानी का चरमोत्कर्ष या केन्द्रीय बिन्दु है। वस्तुतः यह तो कहानी की शुरुआत है। हिन्दी कथा-जगत में वृद्ध जीवन से सम्बन्धित सार्थक कहानियाँ बहुत कम हैं। उस कमी को 'ख्वाजा' ओ मेरे पीर!' पूरी करती है। वृद्ध-जीवन की समस्याओं, आत्मीय जन की स्वार्थपरता और घोर संवेदनशीलता को बड़ी बारीकी तथा कलात्मक ढंग से प्रस्तुत किया गया है। यहाँ पर सुशीला पुरी का वक्तव्य उद्धृत करना प्रासंगिक होगा कि ''आदर्शों के विघटन के क्रम में संयुक्त परिवारों की टूटन और वरिष्ठजनों के प्रति असंवेदनशीता आज चरम पर है। शहरी क्षेत्रों में वृद्धाश्रम जैसे केंन्द्रों का उगना त्रासद ही नहीं, दुखद और निराशा का प्रमुख कारण भी हे। जिन माँ-बाप ने अपने खून-पसीने की कमाई से अपने बच्चों की परवरिश की होती है, वही बच्चे बुढ़ापे में उन्हें दो वक्त की रोटी देने में 'ओसरी' (पारी) लगाते हैं।''[7] इसके साथ ही साथ कहानी के भीतर गाँव की भीषण दुर्दशा का जीवन्त चित्रण है–गाँव की सड़कें खराब हैं, गाँव में गरीबों के खेत दबंग हड़प रहे हैं, जो जीवित हैं उन्हें मृतक दिखाकर भी उनकी जमीन को दबंग लोग हड़प रहे हैं, उम्र बढ़ने के साथ लोग मोतियाबिंद से ग्रस्त होकर दृष्टिहीन हो रहे हैं, औरतें अतिश्रम की शिकार हैं, घर की दीवाल बनाने के लिए ताल-पोखर से सिर पर मिट्टी ढोती हैं। मजदूरी करती है, गाँव का सरकारी कोटेदार मिट्टी का तेल हड़प जाता है।

कहते हैं, कि बारह साल बाद घूर के दिन भी फिरते हैं। फिरते होंगे। पर अपने देश के किसान घूरे जैसे भाग्यशाली नहीं हैं। स्वतंत्रता संग्राम की लड़ाई जमींदारी उन्मूलन और भूमि के पुनर्वितरण के आश्वासन पर लड़ी गई थी। गाँव का किसान इस लड़ाई में इसी उम्मीद के साथ शामिल हुआ था कि आजादी मिलते ही उसे सामंतों, सेठों, साहूकारों एवं जमींदारों के अत्याचार एवं दमन से मुक्ति मिलेगी, आर्थिक विषमता खत्म होगी, जमींदारी टूटेगी, सामाजिक भेदभाव खत्म होगा। न सही धन, धरती तो बँटेगी। लेकिन 1947 में देखा गया सपना आज भी महज एक सपना ही बनकर रह गया है। लेकिन इस कहानी में भारतीय किसान का एक ऐसा चेहरा दिखता है जो तमाम अभावों के बीच ही जिन्दगी जीने को अभिशप्त है, समाज से, सरकार से, सेठ एवं साहूकार से, जमींदार से मिलने वाले कष्टों को अपनी नियति मान बैठा है और उसी अभाव में मगन रहते हुए लठैती करता है, तम्बाकू-चिलमपीता है, आल्हा और चैती गाता है और मचान पर पूरा जीवन गुजार देता है। बिरहा का एक उदाहरण देखिए–

**''रतिया आया विरतिया भाग्या**
**कोरवा ना सोया हमार**
**एक दिन आवा खड़ी दुपहरिया**
**देखी सुरतिया तोहार।''[8]**

सुशीला पुरी ने लिखा है कि- ''इस कहानी में एक भारतीय किसान की ऐसी जीवन-गाथा है, जो अपने जीवन का 'स्वर्णिम-खण्ड' माचे पर गुजार देता है। माचा यहाँ रूपक की तरह मौजूद है, जो किसान जमीन से कुछ फिट की ऊँचाई पर सपनों की गठरी लिए रात बीत जाने की प्रतिक्षा में है। माचा वह ठांव है जहाँ किसान लगभग अपना पूरा जीवन फसल की रखवाली करते हुए बिता देता है और अंत में उसे मिलता है एक ऐसा जीवन जहाँ दो जून की रोटी को भी लाले हैं।''[9]

रिश्तों और सम्बन्धों के टूटने, भावों और रस के स्रोत के सूखने तथा हरियाली के और मन के विस्तार के सिमटने की कहानी भी है–'ख्वाजा, ओ मेरे पीर!'। बदलता हुआ नया गाँव न तीन में है न तेरह में बल्कि आधा-तीतर, आधा बटेर की स्थिति में है। इस गाँव का चित्र मामी के गाँव में मामा को लेकर जाते वाचक उकेरता है- ''एक पतला खड़ंजा गाँव में घुस रहा था। लगभग सारे कच्चे-पक्के घरों पर डी.टी.एच. की डिश लगी थी। गाँव के रास्ते बदल गए थे। असंख्य झोंपड़ियाँ उगी थीं। कुत्तों का झुण्ड गाँव के बाहर से ही भौंकते हुए जीप के पीछे लग गया। खड़न्जें पर कहीं बकरी बंधी थी कहीं खूँटा गड़ा था।''[10]

इसके बरक्स मामा के गाव-''पेड़ों की जड़े मिट्टी बह जाने के कारण बाहर निकल आयी थी। वह पुराना घर जिसके ओसारे और कोठरियों से मेरा परिचय था, खंडहर हो चुका था। सिर्फ अधगिरी नंगी दीवारें खड़ीं थीं। अंदर झाड़ियाँ उग आयी थी। इस

खंडहर के तीनों तरफ आठ-दस, मिट्टी की दीवार वाले खपड़ैल और चार-पांच फूस की छाजन और रहठे वाले झोंपड़े उग आये थे। बीच में दुआर के नाम पर ढाई तीन सौ गज जमीन खाली थी।''[11]

इस कहानी में मामी, जो पति की उदासीनता, माँ-बाप के दुरदुराने और अंधेरी सुनसान रात से प्रभावित नहीं होती है, वह जवान हो रहे बेटे के गायब होने से अंदर ही अंदर टूटने लगती है। मामी का व्यक्तित्व ऐसा है कि उसे गुस्सा शायद ही कभी आता है और शांत चित्त की है। लेकिन बेटे की गुमशुदगी का सारा दर्द पूरी जिंदगी की दुःखभरी व्यथा के रूप में बाहर आता है, 'मुझे सहारे की जरूरत थी। पति का सहारा नहीं मिला तो बेटे के सहारे की आस में अंधेरी उजेली रात में दो कोस बीहड़ पार करके उनके पास पहुँचती रही। अपनी पसंद के किसी भी आदमी से बेटा पाने की राह दुनिया ने रूंध न रखी तो मैं उतनी दूर दौड़कर क्यों जाती? उन्हें मुझसे प्रेम होता तो जिस राह से औरत जात होकर मैं आती जाती वह क्या उनके लिए अनजान थी?' वाकई ये रास्ते बड़के मामा के लिए भी उतने जाने-पहचाने थे, मगर गौरतलब यह है कि वे आसपास के गाँवों में 'पदी' अर्थात् पद या न्याय करने वाले के रूप में जाने जाते थे। उस दौर का सामाजिक यथार्थ यह था कि घर में रहने वाली पत्नी के पास भी पति रात के अंधरे में चुपके से जाता था और कुछ पल साथ बिताकर पुनः दालाने पर अपने बिस्तर पर वापस लौट जाता था। तो ऐसे दौर में अपने पिता को 'पार-घाट लगाने' का वचन दे चुके बड़के मामा, जो आसपास के गाँवों के 'पदी' भी थे- भला कैसे सम्भव था। सो उनका यह दर्द बिरहा के इन बोलों में बयान होता है, 'रतिया आया बिरतिया भाग्या, कोरवा न सोया हमार, एक दिन आवा खड़ी दुपहरिया, देखी सुरतिया तोहार' यानी रात और रात बीतने के पहले भाग गये। मेरी गोद में सिर रखकर सो तक न सके। एक दिन खड़ी दोपहरी में आओ तो तुम्हारी सूरत देख सकूं। यह साध बड़के मामा की कभी पूरी नहीं होती है। इसलिए उम्र ढलने के साथ ही यह विरह उनके चित्त से उतर जाता है। यह संतुलन कथाकार शिवमूर्ति ने बहुत बेजोड़ साधा है कि हालात के हाथों मजबूर मामा और मामी दोनों पर एक साथ प्यार और तरस दोनों आता है।

वस्तुतः यह कहानी पितृसत्ता के मातृसत्ता को गुणती है। मतलब कि मातृसत्ता को नए रूप में स्थापित करती है। इस तरह प्राचीन मातृसत्तात्मक व्यवस्था से जुड़ती है। हम सभी जानते हैं कि मामा की महत्ता आज भी रूढ़ि के रूप में शादी-ब्याह के मौके पर दिख जाती है। इस तरह यह कहानी व्यक्तियों की न होकर उनके सम्बन्धों की कहानी है। नैरेटर को वर्तमान पितृसत्तात्मक व्यवस्था की जगह मातृसत्तात्मक व्यवस्था अधिक आकर्षित करती है, इसीलिए वह वर्तमान से उसे गुणने लगता है। यह गुणन लड़के और कारुणिक होने के बावजूद जीवन-रस से समृद्ध है। कितनी कठिनाई से हम वर्तमान व्यवस्था तक पहुँचे हैं। इस कहानी का स्वरूप आत्मकथात्मक इसलिए है कि लेखक इससे खुद को अलग नहीं सकता। स्त्री विमर्श का शोर जितना ही बढ़ रहा है, पुरुष सत्ता उतनी ही मजबूत होती जा रही है। इस सम्बन्ध में श्रीराम त्रिपाठी ने लिखा है–''स्त्री-विमर्श में जो स्त्रीत्व पर न होकर स्त्री पर है। आज स्त्री-पुरुष शब्द मात्र निर्गुण (गुणहीन) रूप में परिचायक हो गए हैं सगुण रूप के नहीं। इस तरह स्त्रीतत्व से हीन स्त्री और पुरुषत्व से हीन पुरुष के वाहक हो गए हैं, जिससे अधिकांश स्त्री विमर्श मातृसत्ता के बदले पितृसत्ता को मजबूत कर रहे हैं। सभी जानते हैं कि महत्व सगुण रूप का होता है, निर्गुण रूप का नहीं, बावजूद इसके निर्गुण रूप का ही जोर बढ़ता जा रहा है। अब समझदारों को भला कौन समझाये कि निर्गुण रूप खोखला होता है। यह कहानी बाहर से तो मामा की लगती है, परन्तु भीतर घुसने पर पता चलता है कि यह तो मामी की कहानी है। मामा के भीतर संचरती मामी की कहानी! स्त्री रूपी मामी के पुरुष, अर्थात् मामा को स्त्री रूपांतरित करती है। मामा स्त्रीत्व से सम्पन्न स्त्री हैं। वे पराश्रित नहीं रही। न पति पर, न पुत्र पर। वे अपने पौरुष पर आश्रित रही हैं और उसी के बल से आज भी पकाती-खाती हैं।''[12] भारत में स्त्री को शक्ति कहा गया है। प्रेमचंद की तरह शिवमूर्ति भी स्त्री को शक्ति मानने लगते हैं। पुरुष के शक्तिशाली होने का मतलब उसका स्त्रीत्व से सम्पन्न होना है। मामी अंत में भी स्वाश्रित ही रहीं, जबकि मामा तो पराश्रित हैं। इस तरह यह कहानी स्त्रीत्व की पौरुषता को रचती है।

इस कहानी में शिवमूर्ति जो चैतू मल्लाह के माध्यम से मामा-मामी की प्रणय-कथा को एक नया मोड़ देते हैं। एक दिन मामी द्वारा निरंतर की जा रही मनुहार के वशीभूत हो, मामा रात में उनके गाँव की तरफ जाते हैं, लेकिन काफी देरी से। मामी तक उनकी तरफ आने का दो-तिहाई रास्ता पार कर चुकी होती है। बीच में ही दोनों की भेंट होती है। मामा का आग्रह मानकर मामी वापस चल पड़ती हैं। मामा उनका पीछा करते हैं। यही सामने आती है, शिवमूर्ति की रोमांटिकता का एक उत्कृष्ट अभिव्यक्ति, 'देर तक पियारी के किनारे दूर तक मामी के पैरों की 'पयरी बजती रही। वे आगे मामा पीछे-पीछे। पकड़ पाए तो मुख, वक्ष और नाभि से लेकर जाँधों के मध्य तक चुम्बनों की झड़ी लगाकर देर तक डूबते-उतराते रहे। 'पियारी' के किनारे खादर में उगी ऊँची हरी घास की सेज ही उनका रंगमहल बन गई। अचानक भरे बादलों के पहाड़ ने चाँद ढक लिया। तेज हवा चलने लगी। जंगल हरहराने लगा। मामा ने अलसायी पड़ी मामी को कंधे पर लादा और माचे की ओर लपके। नीचे सिर किए लटकी मामी मामा का पीठ पर मुक्के मारती रही।''[13] चैतू यह वृतान्त सुनकर जब बूढ़े मँगरू से कहता है, ''काले मेघों से घिरा आसमान।

धारोधार बरसता पानी। मक्के की फसल से घिरा माचा और रात का तीसरा पहर। ऐसा 'संजोग' हर गृहस्थ के नसीब में कहाँ''[14] तो लगता है कि शिवमूर्ति इस कहानी के माध्यम से हमें रूमानियत के जिस पायदान पर ले जाकर सहजता से खड़ा कर देते हैं, वह उनके बिना हमारे नसीब में कभी संभव नहीं हो सकता था। बूढ़ा मंगरू जब चैतू के वृत्तांत की सत्यता पर संदेह व्यक्त करता है तो शिवमूर्ति चैतू के मुंह से, ''चूतड़ में हल्दी लगी नहीं। औरत का दर्शन पाए नहीं। तुम क्या जानो?''[15] कहलाकर अपनी बिन्दास व मुंहफट भाषा से हमे आश्चर्य में डाल देते हैं। यह बिन्दास भाषा ही उनके कथा-पात्रों को यथार्थ की दुनिया का वाशिन्दा बना देती है और उनके कथावस्तु को स्वाभाविकता प्रदान करती है।

शिवमूर्ति की कहानी कला की एक जबर्दस्त खूबी यह है कि वे मार्मिक-से-मार्मिक वर्णन के समय भी बिल्कुल संतुलित रहते हैं और पूरे दृश्य से जैसे खुद को विलगा लेते हैं। इसलिए नैरेटर कभी अतिरिक्त भावुकता से ग्रस्त नहीं होता और पूरी तटस्थता से परिस्थितियों को बयान करता है। मसलन, इस कहानी का सबसे हिला देने वाला प्रसंग है। वह जब हम कथांत पर पहुँचते हैं। जिस ससुराल में जवानी में कभी मामा ने कदम नहीं रखा, वहाँ अफसर भाँजे के कारण उसकी गाड़ी में बैठकर मामी से मिलने जाना सम्भव हो पाता है। भतीजों की पत्नियाँ खुश हैं कि अब इस बूढ़े से छुट्टी मिली, पर ऊपर से दिखावे के लिए कहती हैं कि बेटे को भेजूंगी उसके साथ आ जाइएगा। तो कुछ लोग मसखरी करते हैं कि बाबा ससुराल जा रहे हैं। वे भांजे के साथ ससुराल पहुँचते हैं तो पहली बार ससुराल में नब्बे साल की हो चुकी पत्नी से मिलते हैं–जो अब अशक्त, निरूपाय और हालात के हाथों बेबस हो चुकी है। बेटे-बहू ने घर से निकाल दिया हुआ है और कोई आर्थिक जरिया नहीं जिसके सहारे जीवन की गाड़ी चले। यही आर्थिक विवशता पति की भी है, जो भतीजों पर आश्रित है। खाना मिल गया तो ठीक, नहीं तो नब्बे साल की उम्र में भी चना-चबेना या फाकाकशी। मगर बच्चों की संवेदनशीलता की इंतेहा यह है कि दोनों ओर से चाहते हैं कि इनसे मुक्ति मिले तो चैन मिले।

'लमही' पत्रिका में पंकज पाराशर ने लिखा है कि–''जीवन में पहली बार ससुराल गए मामा जब सबसे मिलकर पत्नी के पास लैटते हैं तो रात हो चुकी है। बूढ़ी ने पति के लिए खटिया पर बिस्तर बिछा दिया और खुद के लिए नीचे कथरी बिछा ली है। भांजा जब मामा से सुबह ऑफिस जाने की बात कहकर जाने की अनुमति माँगता है, तो मामा कहते हैं, 'ऐसा है भैने, यहाँ की हाल चाल, राजी-खुशी मिल गयी। अब मैं भी चलूंगा''[16] और यह कहकर वे खटिया के नीचे लाठी उठाते हैं और चलने के लिए तैयार हो जाते हैं। पत्नी से मुखातिब होकर कहते हैं, 'चलत अही।' यानी चलता हूँ। जवाब में मामी के ओंठ थरथराते हैं लेकिन आवाज नहीं निकल पाती है। आवाज भला निकलती भी कैसे? पहली बार पति ससुराल आता है और स्थितियों ने उसे उस मोड़ पर ला खड़ा किया कि वह पति को रोक नहीं पा रही। जीवन की एक रात भी ससुराल में बिता लेने तक का अनुरोध करने की हालत उसकी नहीं रह गई है–इससे बड़ी विवशता और क्या हो सकती है? यही वह प्रसंग है जो पाठकों को विचलित कर देता है।

सुशीला पुरी लिखती हैं, ''भारतीय समाज स्त्री के लिए आज भी लगभग वैसा वही सदियों पुराना ही है..। सामाजिक मान्यतायें आज भी सदियों पुरानी हैं, जहाँ एक स्त्री के लिए अपनी पसंद के किसी भी पुरुष से बेटा पाने की राह दुनियाँ ने रोक रखी होती हैं, और उसे अपनी पति के पास ही जाना होता है, बड़ा सवाल है, आज जब लिब-इन-रिलेशन का फैशन जोरों पर है, और सामाजिक मान्यताएं निरंतर खुद में ही प्रश्न छेड़ते हैं, जिसका उत्तर न कहानी ही खोज पाती है और न ही अभी हमारा समाज और यह उत्तर आधुनिक समय ही खोज पाया है। आज भी स्त्री-पुरुष सम्बन्धों के लिए एक सामाजिक रिश्ते की जरूरत होती है, दरकार होती है समाज को..। 'रखैल' शब्द आज भी गाली की तरह प्रयुक्त होता है और स्त्री के समूचे अस्तित्व को तार-तार करता है। हालांकि इस कहानी में ऐसा कोई प्रसंग नहीं है फिर भी उपरोक्त प्रश्न का सिरा वहाँ तक जाता जरूर है।''[17]

इस कहानी की खुदमुख्तार 'मामी' रोज-रोज उतनी दूर मात्र संतान प्राप्ति की लालसा में नहीं जाती, बल्कि दुर्गम दुरूह, संघर्षरत समयों के लिए संजीवनी भी खुद जुटाती हैं। ''स्त्री-विमर्श के इस हाहाकारी समय में, जहाँ स्त्री चेतना का तमाशा बनाया जा रहा हो, स्त्री-अस्तित्व की धज्जियाँ उड़ाई जा रही हों, स्त्री को मात्र 'देह' में तब्दील करने की साजिशें चल रही हों, विज्ञापनों से लेकर बाजार तक स्त्री की बोली लगाई जा रही हो, ऐसे भीषण समय में शिवमूर्ति की यह कहानी सुकून की तरह दाखिल होती है और खुद ही सारे फैसले लेते हुए पिछली कई सदियों के संकोचों की धज्जियाँ उड़ाते हुए एक ऐसे समय में प्रवेश करती हैं जहाँ उसका पुरुष उसकी मुठ्ठी में होता है, और वहाँ कोई विवशता या कुंठा नहीं होती। वहाँ होता है मात्र प्रेम, प्रेम भी ऐसा जो सिर्फ देना जानता है, कुछ पा लेने का उसका कोई स्वप्न नही।''[18] 'ख्वाजा, ओ मेरे पीर!' की स्त्री अपने लिए एक ऐसी दुनिया का सृजन करती है जहाँ मानुष-गंध महफूज मिलती है और वह मानुष-गंध दुनिया को सँवारने, सजाने एवं बचाने के लिए पल-पल प्रतिबद्ध है।

जिस ससुराल में लोक-लाज और वचनबद्धता के कारण कभी कदम नहीं रखा और जब रखा तो उम्र नब्बे की हो चुकी थी। जिस स्त्री ने पति-सुख और अवलंब के बगैर जीवन-बसर किया, उस स्त्री को पति का साथ मिलने की जब स्थितियाँ बनीं, तो वह पति को रोक पाने की स्थिति में नहीं रही। पति भी चाहे कि पत्नी को साथ रखे, तो शरीर और आर्थिक स्थिति दोनों से लाचार हो चुके हैं। यह कितना त्रासद है कि जीवन की संध्या में जब समय ने उन्हें उस मोड़ पर ला खड़ा किया कि वे साथ रह सकते हैं, तो स्थितियाँ आड़े आ गईं और जब जिम्मेदारियों से मुक्ति मिली, तो यौवन और धन नहीं रहा। 'अपनी ही याद नहीं रह गयी तो फगुआ क्या याद रहेगा?' और इस जिंदगी के अछोर वियोग की व्यथा को इस जवाब से संतुष्ट करने की असफल चेष्टा करते हैं। अब तो मिलना शायद अगले जनम में ही होगा। पर जिन्हें मालूम है जन्नत की हकीकत, उनके साथ-साथ पाठकों के दिल को खुश रखने का भी ये ख्याल अच्छा है कि पुनर्जन्म होगा ही और अगले जनम में मिलेंगे ही। तो यह कहना शायद गैर-मुनासिब न होगा कि ये कहानी पाठकों को जिस अनुभव संसार में ले जाती है, जिस दलित अंचल की कथा सांस्कृतिक परिवेश की समग्रता को पूरी तरह समेटे हुए बयान करती है, वैसी कहानी लिखने वाला शिवमूर्मि के टक्कर का शायद ही कोई कथाकार हिन्दी में इस समय कोई मिले।

## संदर्भ -सूची


1. ऋत्विक राय (सं.) लमही, अक्टूबर-दिसम्बर,: 2012, श्रीमंत शिवम् आर्ट्स लखनऊ, पृष्ठ 53
2. http:/ shivmurti. blogspot. in/ 2012/01 blog-post,html, शिवमूर्ति, ख्वाजा, ओ मेरे पीर!,
3. वही,
4. वहीं,
5. वही,
6. वही,
7. ऋत्विक राय (सं.), लमही, अक्टूबर-दिसम्बर : 2012, श्रीमंत शिवम् आर्टस, लखनऊ, पृष्ठ, 91
8. hhtp ://shivmurti. vlogspot. in /2012/01/blog-post. hml. शिवमूर्ति,ख्वाजा, ओ मेरे पीर!,
9. ऋत्विक राय (सं.) लमही, अक्टूबर-दिसम्बर : 2012, श्रीमंत शिवम् आर्टस, लखनऊ , पृष्ठ 92
10. http://shivmurti. vlogspot. in/2012/01 blog-post.html, शिवमूर्ति, ख्वाज, ओ मेरे पीर!
11. वहीं,
12. किशन कालजयी (सं.) संवेद-73-75 : परवरी-अप्रैल-2014,स्वामी प्रकाशन, दिल्ली, पृष्ठ 38
13. http://shivmurti. blogspot.in?2012/01/blog-post.html, शिवमूर्ति, ख्वाजा, ओ मेरे पीर!,
14. वही,
15. वही,
16. ऋत्विक राय (सं.) लमही, अक्टूबर-दिसम्बरः 2012, श्रीमंत शिवम् आर्ट्स, लखनऊ, पृष्ठ 90
17. ऋत्विक राय (सं.) अक्टूबर-दिसम्बर : 2012, श्रीमंत शिवम् आर्ट्स, लखनऊ, पृष्ठ 92
18. ऋत्विक राय (सं.), लमही, अक्टूबर-दिसम्बर : 2012, श्रीमंत शिवम् आर्ट्स लखनऊ, पृष्ठ 92


***

Hindi

Shodh Sandarsh-V, Vol.-XVI, Sept.-2017, Page : 69-70

ISSN No. - 2319–5908 (U.G.C. Approved Journal No. : 41329)

# सुमित्रानन्दन पन्त का काव्य-बिम्ब : परिचयात्मक एवं आलोचनात्मक अध्ययन

*डॉ. सत्यप्रकाश शुक्ल**

डॉ. कमलाकर पाण्डेय की 2004 ई. में प्रकाशित पुस्तक 'सुमित्रानन्दन पन्त का काव्य-बिम्ब' वस्तुतः कुछ संशोधनों के साथ उसका शोध-प्रबन्ध ही है। शोध-प्रबन्ध के रूप में उक्त पुस्तक का नाम था- 'पन्त के काव्य-बिम्बों का अनुशीलन'। पन्त अपने समय के सर्वाधिक महत्वपूर्ण कवियों में से एक थे। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने ऐतिहासिक और कलात्मक मूल्यांकन में सुमित्रानन्दन पन्त को आधुनिक युग की नयी धारा का सबसे महत्वपूर्ण कवि माना।[1] यही कारण है कि उनके इतिहास में गोस्वामी तुलसीदास के बराबर (19 पृष्ठों में) सुमित्रानन्दन पन्त के काव्य का विवेचन है। यह अलग बात है कि परवर्ती आलोचना ने प्रसाद और निराला के बाद पन्त को स्थान दिया। प्रस्तुत पुस्तक में पन्त के काव्यबिम्बों को सुपुष्ट एवं तर्क संगत ढंग से विश्लेषित किया गया है।

आधुनिक कविता के विकास में पाश्चात्य काव्य-दर्शन की महत्वपूर्ण भूमिका रही है, बिम्बवादी काव्यान्दोलन उक्त दर्शन का सबल पक्ष है। पाश्चात्य से लेकर भारतीय साहित्य तक की बिम्बों की विकास-यात्रा का उल्लेख करते हुए लेखक ने निवेदन में स्वीकार किया है कि 'हमारे यहाँ हिन्दी काव्य-रचना में आचार्य शुक्ल की चित्र-भाषा को अपनी व्याख्या–व्यवस्था के साथ साहित्य में प्रतिष्ठा कर नवीनता लाने की बात की और 'नवगति, नव-लय, ताल-छन्द नव' के सरगम पर बिम्ब का मयूर–नृत्य छायावादी काव्य-मंच पर विविध भाव-मुद्राओं, भावाकुल प्रवाहों, प्रचण्ड पदाक्षेपों और कोमल-कान्त झंकृति में मुद्रांकित हो गया।[2]

'सुमित्रानन्दन पन्त का काव्य-बिम्ब' में कुल 10 अध्याय हैं– 1. काव्य बिम्ब : सैदान्तिक विवेचन, 2. पन्त : व्यक्तित्व और कृतित्व, 3. पन्त : कवि-प्रकृति का अध्ययन, 4. प्रकृति सम्बन्धी बिम्ब, 5. विचार-बिम्ब, 6. मानव-व्यापार सम्बन्धी बिम्ब, 7. दैनन्दिन अनुभव तथा बहिर्गत जीवन के आधार पर निर्मित बिम्ब, 8. अंतरंग जीवन और अन्तश्चेतनामूलक बिम्ब, 9. बिम्बों का विकासात्मक अध्ययन, 10. पन्त के बिम्बों का योग।

यद्यपि समस्त मानव-संवेदना में परिव्याप्त होने के कारण बिम्ब शब्द इतना विशाल हो गया है कि किसी निश्चित शब्दावली में पूरी तरह नहीं समा पाता, फिर भी डॉ. पाण्डेय में विभिन्न भारतीय एवं पाश्चात्य साहित्यशास्त्रियों की मान्यताओं का उल्लेख करते हुए बिम्ब की परिभाषा इस प्रकार दी है–''मानव की तीव्रतम वासना व अनुभूति से युगनद्ध इन्द्रिय-संवेद्य शब्द-चित्र ही काव्य-बिम्ब है।[3] प्रथम अध्याय में ही बिम्ब, के स्वरूप, प्रकृति, प्रकार, रचना प्रक्रिया और महत्व का प्रतिपादन किया गया है। सबसे महत्वपूर्ण बात तो यह है कि बिम्ब, चित्र और प्रतीक में सात्य-वैषम्य का उद्घाटन करते हुए बिम्ब की सीमाएँ भी निर्धारित की गई हैं, इतना ही नहीं बिम्ब के अवचेतनीय अध्ययन तथा कवि की प्रकृति और काव्य-बिम्बों के अन्तरावलम्बन को स्पष्ट करते हुए भारतीय काव्य में बिम्ब की उपलब्धता-अनुपलब्धता पर भी प्रकाश डाला गया है। किसी भी कृति के अध्ययन के लिए कृतिकार का अध्ययन और कृतिकार के अध्ययन के लिए उसके जीवन-परिवेश और परम्परा का अध्ययन आवश्यक है, क्योंकि प्रत्येक कृति या कृतिकार पर अपने विशिष्ट काल की विशेषता की छाप रहती है, इसलिए उसे देशकाल एवं परिवेश से अलग करके नहीं परखा जा सकता है। सम्भवतः उक्त तथ्य-सत्य को ही ध्यान में रखकर डॉ. पाण्डेय ने अपनी पुस्तक में पन्त का विस्तृत जीवन-परिचय देते हुए उनके काव्य-विकास को चार चरणों में विभाजित किया है। दूसरे अध्याय के अन्त में लेखक ने स्वीकार किया है कि पंत का कवि क्रमशः चिन्तन की उच्च से उच्चतर भूमि पर चढ़ता गया है।

तीसरे अध्याय में पन्त की कवि-प्रकृति को विश्लेषित किया गया है। पन्त की काव्य-यात्रा बहुआयामी है, यह कई चरणों में पूर्ण होती है। प्रथमतः कवि प्रकृति के सान्निध्य में रहकर कविता लिखता है, प्रकृति में वह पूर्णतः घुल-मिल जाता है प्रकृति के साथ तादात्म्य स्थापित हो जाता है। दूसरे चरण में 'मानुष-प्रेम' उस पर हावी हो जाता है। वस्तुतः श्रेष्ठ साहित्य वही है, जो मनुष्य (प्राणिमात्र) को नव-चेतना, नयी ऊर्जा प्रदान कर उसके ज्ञान-क्षेत्र को विस्तीर्ण करे। पन्त की काव्य-यात्रा के तीसरे चरण की शुरूआत नारी के मांसल शरीर के प्रति आकर्षण से होती है। परन्तु परवर्ती काल में नारी के प्रति कवि की दृष्टि अति व्यापक हो जाती है, अब वह पुरुष और नारी के सम्बन्धों पर बड़ी गहराई से सोचने लगता है और नारी के विविध रूप उसकी चेतना पर छा जाते हैं। यद्यपि आलोचकों ने पन्त के जागरण-गीतों की उपेक्षा की है, लेकिन डॉ. पाण्डेय की दृष्टि इन पर एक

सजग अनुसन्धाता के रूप में गयी है। पुस्तककार की मान्यता है– ''सन 1942 के स्वातंत्र्य आन्दोलन के साथ पंत में भी राष्ट्र-भावना की तीव्रता मिलती है। इसका प्रथम रूप आता है-पराधीनता की बेड़ी से निकलकर स्वतंत्र सास लेने की इच्छा में।''[4]

सत्य तो यह है कि अनुसंधानपरक कृतियों में बहुत-सा अंश तथ्यपरक होता है, जिसे आलोचना कहा ही नहीं जा सकता किन्तु उससे भी बड़ा सत्य है कि आलोचना-दृष्टि के अभाव में शोध-प्रबन्ध लिखा ही नहीं जा सकता।[5] प्रस्तुत पुस्तक में अध्ययन से लेखक की शोध-क्षमता के साथ-साथ उसकी आलोचना-दृष्टि का भी पता चलता है। पन्त की कलात्मकता पर मुग्ध होकर लेखक अपनी राय जाहिर करता है–''पन्त शब्दशक्ति के पारखी हैं। काव्य में उनकी शब्दों की चयन-प्रक्रिया छायावादी कवियों में सबसे भिन्न है। एक-एक शब्द को अपने काव्य में कवि ने इस तरह चुन-चुन कर रखा है कि एक भी शब्द निकाल देने से कविता की मूर्ति भंग हो जाती है।''[6]

महान कलाकार की विवचेना करने का अर्थ होता है, 'उसके प्रगतिशील और ह्रासोन्मुखी तत्वों को पहचानना।'[7] प्रस्तुत पुस्तक में पंत के प्रगतिशील तत्वों की पड़ताल तो की ही गयी है, साथ-ही-साथ ह्रासोन्मुखी तत्वों की भी विवेचना की गयी है। उदाहरणार्थ-लोकायतन में सूर्य को मक्खन की गेंद कहकर कवि ने उसके शुक्ल वर्ण की ओर विशेष संकेत दिया है। रूप-साम्य की दृष्टि से उपयुक्त होते हुए भी इस बिम्ब के युगपत् उपादानों में गुणसाम्य नहीं है।[8]

आलोच्य पुस्तक में गम्भीर मुद्दों पर अत्यन्त ही संवेदनशीलता और सूक्ष्मग्राहिता से चर्चा की गयी है। एक आलोचक का दायित्व है कि वह तथ्य-कथ्य का तुलनात्मक अध्ययन करते हुए बात को स्पष्ट करता चले। लेखक ने 'गुंजन' और 'पल्लव' के बिम्बों को विश्लेषित किया, तत्पश्चात् निर्णय दिया कि ''इन बिम्बों पर विचार करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि गुंजनकालीन कवि के सौन्दर्यबोध में पल्लवकालीन सौन्दर्यबोध से अधिक गहनता आयी है।''[9]

पन्त पर पाश्चात्य और बंगला साहित्य का अनुसरण करने और रहस्यवाद, गाँधी वाद और अरविन्दवाद से प्रभावित होने का आरोप लगाया जाता है, लेकिन लेखक ने अत्यन्त तार्किक ढंग से इस आरोप का खण्डन किया है– ''वस्तुतः पन्त का कवि बहुग्राही है, बहुदर्शी है फिर भी मौलिक है। इन सम्पूर्ण जीवन-दर्शनों के समानान्तर उसका अपना जीवन-दर्शन है, अपनी चिन्तन-प्रक्रिया है।''[10] डॉ. पाण्डेय स्वभावतः कवि हैं साथ-साथ भावुक भी हैं, लेकिन प्रस्तुत शोध-ग्रन्थ को लिखते समय आपने कहीं भी रंचमात्र भी अपने ऊपर भावुकता को हावी नहीं होने दिया है। हाँ, कवित्व अलबत्ता हावी है, परिणामतः ग्रन्थ की भाषा में निखार आ गया है। आलोचकीय समझ के चलते भाषा निर्दोष, तथ्य-निरूपिणी एवं प्राणवती भी हो गयी है। लेखक की वस्तुनिष्ठता एवं ईमानदारी संदेहातीत है। डॉ. पाण्डेय की शैली इतनी सारग्राहिणी, तथ्यात्मक और सीधी है कि वह पाठक और वर्ण्य-विषय के बीच में दिखायी नहीं पड़ती। लगता है कि परिदृश्य, घटनाओं और तथ्यों को कोई गद्यकार अपनी दृष्टि से आपके सामने प्रस्तुत कर रहा है। ये सभी आपके सामने स्वयं प्रतिभासित होते हुए प्रतीत होते हैं। यथा-'उत्तरा' में सस्मिता उषा का मनोरम बिम्ब उपस्थित करते हुए कवि ने ओस की जलद से उपमा दी है। प्रातःकाल ओस पर उषा की लालिमा बिखर जाती है। इस पर कवि उत्प्रेक्षा करता है कि लज्जा से लाल कपोलों वाली उषा के अरुणिम अधरों पर ईषत् मुस्कान बिखर गयी है। यह बिम्ब कवि के सौन्दर्य बोध की चरम गहनता का द्योतक है। हिन्दी साहित्य में ऐसे ललित बिम्बों की उपलब्धि कम ही हुई है।

डॉ. पाण्डेय ने पन्त के काव्य-बिम्बों को बाद के सात अध्यायों में विश्लेषित किया है। बिम्बों का वैज्ञानिक विभाजन करके पाठक को एक ही जगह ढ़ेर सारी सामग्री उपलब्ध करा दी गयी है, किस कविता में किस तरह का बिम्ब है, इसे भी स्पष्ट कर दिया गया है। समूची सामग्री इतने अनौपचारिक, सहज और अनाडम्बर भाव से प्रस्तुत की गयी है कि इस सबकी जानकारी के लिए किया गया परिश्रम प्रकट नहीं होता। कहने की आवश्यकता नहीं की यह सरलता और सहजता लेखक को परिश्रम, प्रतिभा और ईमानदारी से ही प्राप्त होती है। सुखद आश्चर्य होता है यह देखकर कि डॉ. पाण्डेय ने गद्य की यह प्रौढ़ शिक्षा एवं अचूक शैली अपने लेखक-जीवन के अल्पवय में ही प्राप्त कर ली थी।

## सन्दर्भ-सूची


1. हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास, रामस्वरूप चतुर्वेदी, पृष्ठ-131
2. आलोच्य पुस्तक के निवेदन भाग
3. आलोच्य पुस्तक के पृष्ठ-1
4. आलोच्य पुस्तक के पृष्ठ-74
5. हिन्दी गद्य साहित्य, डॉ. रामचन्द्र तिवारी, पृष्ठ-98
6. आलोच्य पुस्तक के पृष्ठ-79
7. हिन्दी आलोचना, डॉ. विश्वनाथ त्रिपाठी, पृष्ठ-196
8. आलोच्य पुस्तक के पृष्ठ-113
9. आलोच्य पुस्तक के पृष्ठ-120
10. वही।


***

Hindi
Shodh Sandarsh-V, Vol.-XVI, Sept.-2017, Page : 71-74
ISSN No. - 2319–5908 (U.G.C. Approved Journal No. : 41329)

# उदय प्रकाश का काव्य-वैशिष्ट्य

*सुजाता**

उदयप्रकाश समकालीन हिन्दी कविता के चर्चित रचनाकार हैं। उन्होंने जिस तत्परता से हिन्दी कथा-साहित्य को शब्द-समृद्धि प्रदान की है, उसी भावमयता से हिन्दी कविता को भी अभिसिंचित किया है, उसके पुष्पन-पल्लवन में अपनी भागीदारी सुनिश्चित की है। समकालीन कवियों गोरखपाण्डेय, ऋतुराज, सोमदत्त, राजेश जोशी, मंगलेश डबराल तथा वेणु गोपाल आदि की तरह उदय प्रकाश ने भी अपने अन्दर की आग को बचाये रखकर जन की पक्षधरता में स्वयं को उपस्थित किया है। मानवीय पीड़ाओं और यातनाओं की निर्भय अभिव्यक्ति उदय प्रकाश का महत्वपूर्ण वैशिष्ट्य है। उदय प्रकाश इस लिए भी महत्वपूर्ण हो जाते हैं क्योंकि उनके यहाँ यथार्थवादी दृष्टि है। विचारों में विचलन का अभाव है, रूढ़िवादिता व जड़ता को तोड़कर मानवता को बचाने की पुरजोर कोशिश है। कवि केदारनाथ सिंह भी उनके काव्य-वैशिष्ट्य का निरूपण करते हुए कहते हैं कि- ''उदय प्रकाश के भीतर का कवि हर बार कविता को वहाँ से पकड़ने की कोशिश करता है, जहाँ उसका मूल उत्स है। इसलिए वह अपने अनुभव-लोक में हमेशा इस तरह प्रवेश करता है–''विकसित सभ्यताएं जिस तरह लौट जाती है धरती के गर्भ में या इतिहास जिस तरह विलीन हो जाता है समूह की मिथक गाथा में'', में हमारी चेतना पर निरन्तर जमती जाती समय की धूल को हटाकर उसके अन्दर झाँकने का यह उनका अपना ढंग है, जहाँ यथार्थ और स्वप्न के बीच के सारे कामचलाऊ विभाजन व्यर्थ हो जाते हैं। यह कवि उदय प्रकाश की एक ऐसी काव्य युक्ति है, जिसे उन्होंने अपने लम्बे आत्मसंघर्ष के भीतर से अर्जित किया है। 'मैं लौट जाऊँगा, 'ढेला', 'चन्द्रमा' या 'बचाओं' जैसी कविताओं में उनके इस काव्य कौशल के उत्कृष्ट उदाहरण देखे जा सकते हैं।''[1]

उदय प्रकाश अपनी विशेष कलात्मकता से दलितों, उपेक्षितों और आदिवासियों द्वारा किये जाने वाले प्रतिरोध की पहचान भी करते हैं। उदाहरणार्थ 'सुनो कारीगर' नामक कविता-संग्रह की सरकार शीर्षक कविता में दुक्खन बहू के वक्तव्य को देखा जा सकता है–

**ये तुम कौन से सरकार हो जी**
**राच्क्षस की तरह आते हो**
**तबाही मचाते हो**
**सब समेट-बटोर कर ले जाते हो।**[2]

उदय प्रकाश से पूर्व अनेक कवियों ने विभिन्न पारिवारिक सम्बन्धों को आधार बनाकर कविताएं लिखी हैं। विशेषतः माँ पिता, भाई, पुत्र, पुत्री आदि कविताओं के कथ्य बनते रहे हैं। किन्तु 'दीदी' पर सम्भवतः किसी ने कविता नहीं लिखी है। उदय प्रकाश ने अपने कविता संग्रह 'अबूतर-कबूतर' की कविता 'नीव की ईंट हो तुम दीदी' में दीदी के प्रति अपनी आत्मीयता को उजागर किया है। आज के समय में मीडिया और संचार माध्यमों की सक्रियता के कारण तथा टी.वी. और छविगृहों की बहुलता के भी कारण मानवता जैसे महत्वपूर्ण मानवीय मूल्य नित-निरन्तर क्षारित होते जा रहे हैं। अब सम्बन्धों की उष्णता समाप्त होती हुई दिख रही है। हाय! हेलो! की संस्कृति प्रभावित होती जा रही है। ऐसी दशा में उदय प्रकाश की नींव की ईट हो तुम दीदी शीर्षक कविता एक आश्वस्तिपरक संदेश देती हुई दिखायी देती है–

**पीपल होती तुम**
**पीपल, दीदी**
**पिछवाड़े का, तो**
**तुम्हारी खूब घनी-हरी टहनियों में**
**हारिल हम**
**बसेरा लेते।**

**हारिल होते हैं हमारी तरह ही**
**घोंसले नहीं बनाते कहीं**
**बसते नहीं कभी**
**दूर पहाड़ों से आते हैं**
**दूर जंगलों को उड़ जाते हैं?**

समकालीन साहित्य में नारी-विमर्श एक मुख्यधारा के रूप में प्रवाहित है। उदय प्रकाश भी स्वयं को इस धारा में बहने से नहीं रोक सकें। उन्होंने अपनी कविताओं में नगरीय जीवन जी रही उन स्त्रियों को बखूबी चित्रित किया है, जो रोज कुआँ खोदती हैं और तब पानी पीती हैं। एक कविता में उद्घाटित करते हुए कहते हैं–

**अस्पताल में हजार प्रतिशत जली हुई**
**औरत का कोयला दर्ज कराता है**
**अपना मृत्यु-पूर्व बयान**
**कि उसे नहीं जलाया किसी ने**
**उसके अलावा हर कोई है निर्दोष**
**गलती से उसके हाथों फूट गयी किस्मत**
**और फूट गया स्तोव्ह।**[4]

उदय प्रकाश की व्यंग्यात्मकता कबीर और नागार्जुन की याद दिलाती है। अत्यल्प शब्दों में उन्होंने गाँधी जी के अन्तर्विरोध को अत्यन्त ही बेधकता के साथ प्रस्तुत किया है–

**गाँधी जी**
**कहते थे–**
**'अहिंसा'**
**और डंडा लेकर पैदल घूमते थे।**[5]

उदय प्रकाश का जीवन एक 'एकिटविस्ट' का जीवन रहा है। लेकिन जड़-कट्टरता का उनके यहाँ नितान्त अभाव रहा है। उन्हें जहाँ भी खोट दिखायी देती है वे वहीं पर चोट करते हैं। वस्तुतः वे न तो दक्षिण के हैं और न ही वाम के, वे हैं आवाम के। उनके मते एक व्यक्ति के लिए वैचारिक सक्रियता अत्यावश्यक है, इसके अभाव में वह जड़-तुल्य है। उनके ही शब्दों में–

**आदमी**
**मरने के बाद**
**कुछ नहीं सोचता है।**
**आदमी**
**मरने के बाद**
**कुछ नहीं बोलता।**
**कुछ  नहीं सोचने,**
**और कुछ नहीं बोलने पर**
**आदमी**
**मर जाता है।**[6]

शिल्प के क्षेत्र में भी उदय प्रकाश प्रयोगधर्मी सिद्ध होते हैं उनकी भाषा में स्थानीय शब्दावली को प्रश्रय मिला है। उदय प्रकाश समकालीन जरुर हैं लेकिन परम्परा उनकी कविताओं का एक महत्वपूर्ण वैशिष्ट्य है। अपनी संस्कृति की मुख्य धरोहरों को बचाना उसका महत्वपूर्ण उद्देश्य है। भाषा को भी उदय प्रकाश संस्कृति का एक अंग मानते हैं। कवि केदारनाथ सिंह के

शब्दों में–''बचाना समकालीन कविता का लगभग एक बीजशब्द बन गया है। पर यह देखना दिलचस्प हो सकता है कि बचा लेने की इस लड़ाई में उदय प्रकाश की चिन्ता के मूल बिन्दु क्या हैं? उनके लिए महत्वपूर्ण है अमरूद के पेड़, लोहार, किताब, भड़भूँजा, सच्चाई और हाँ, दाल में हल्दी भी। पर शायद सबसे महत्वपूर्ण वे मूल ध्वनियाँ जो हमारे जातीय ध्वनि समुदाय से धीरे-धीरे लुप्त होती जा रही है, जैसे-ङ.ष, ऋ इत्यादि। इस तरह उदय प्रकाश की कविता मानो यह सवाल उठाती है कि हमारे सामूहिक कंठ से ध्वनियों का यह लोप क्या केवल एक सामान्य भाषिक क्रिया है या यह किसी गहरे आंतरिक क्षरण की सूचना देता है?

उदय प्रकाश की मिथकीय चेतना अत्यन्त प्रखर है बिम्बों के प्रयोग में भी वे सिद्धहस्त हैं। उनके यहाँ प्रायः सभी प्रकार के बिम्ब देखने को मिल जाते हैं। चाक्षुष और स्पर्श बिम्ब का एक उदाहरण द्रष्टव्य है।

**मालिक, यह धूप है**
**जेठ की असल**
**जैसे-जैसे सूरज चढ़ेगा और धरती घूमेगी**
**यह और तपतपाएगी**
**गर्म लाल लोहे की तरह**

उदय प्रकाश की प्रतीकधर्मिता भी आश्चर्य-विस्मित करने वाली है। अपनी 'अजगर की नींद' कविता में वे कहते हैं–

**अजगर की तरह**
**सोते हैं दिन**
**सूँसट अंधेरी जगहों में**
**किसी बांबी या खोह में छुपकर**
**झाग और भाप जैसी**
**साँस छोड़ते हैं।**[9]

उदय प्रकाश प्रायः मुक्त छन्द के प्रयोक्ता हैं। इसके बाद भी इनकी कविताओं में हृदय को झंकृत करने वाली लयात्मकता है। वे जब मौंज में आते हैं तो संतों की छन्द-शैली की तर्ज पर भी कवित रचने लगते हैं। उदाहरणार्थ 'रात में हारमोनियम' संग्रह की कविता 'हम हैं ताना हम है बाना' की पंक्तियों को देखा जा सकता है–

**हम हैं ताना, हम हैं बाना।**
**हमीं चदरिया हमीं जुलाहा, हम गजीं, हम थाना**
**हम हैं ताना...... ।**
**नाद हमीं, अनुनाद हमीं, निःशब्द हमीं गंभीरा,**
**अंधकार हम, चाँद-सूरज हम, हम कान्हा हम मीरा।**[10]
**हमीं अकेले, हमीं दुकेले, हम चुग्गा, हम दाना।। हम हैं ताना...।।**

उपरोक्त पंक्तियाँ कविवर निराला की याद दिला देती हैं। निराला जी ने भी कहा था– मैं ही हूँ बसंत का अग्रदूत। यह आत्माशा यह विश्वास निराला और उदय जैसे कवियों में हो सकता है। प्रखर आलोचक परमानन्द श्रीवास्तव भी अपने ग्रन्थ समकालीन हिन्दी कविता में समकालीन अन्य अनेक कवियों के साथ उदय प्रकाश की चर्चा करते हुए लिखते हैं कि ''1980 के बाद की कविता सच्चे अर्थों में जीवनधर्मी कही जा सकती है। कुमार विकल, आलोक धन्वा, मंगलेश डबराल, का प्रमाण देते है। आधुनिकतावाद के दौर में जिस हताशा अजनबीपन, अनास्था, संतास, निस्सारता को कविता में नयी संवेदना का मुख्य आधार माना गया है। उससे मुक्ति के प्रयत्न आज की नयी काव्य-क्षमता का आभास कराते हैं। इस पर बल देना जरूरी है कि आज की कविता की आधुनिकता अपनी देशी जमीन के स्पर्श से वंचित नहीं है। उससे काव्य-रुचि की विविधता अपने अनुभव और कथ्य के पहचान के अनुरूप है। आत्मीयता के साथ एक नयी ऐन्द्रियकता उसे अर्थसघनता देती है जो सहजता में बाधक नहीं है।''

## सन्दर्भ-सूची

1. उदय प्रकाश, रात में हारमोनियम, प्रथम संस्करण, 1998 वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, फलैप से।
2. उदय प्रकाश, सुनो कारीगर, प्रथम संस्करण 2001 वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ-39
3. उदय प्रकाश, अबूतर-कबूतर, प्रथम संस्करण–2005 स्वर्ण जयंती प्रकाशन, दिल्ली, पृष्ठ-14
4. उदय प्रकाश, रात में हारमोनियम, प्रथम संस्करण–1998, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ 32
5. उदय प्रकाश, अबूतर-कबूतर प्रथम संस्करण–2005, स्वर्ण जयंती प्रकाशन, दिल्ली, पृष्ठ-84
6. उदय प्रकाश, सुनो कारीगर प्रथम संस्करण–2001 वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ – 93
7. उदय प्रकाश, रात में हारमोनियम, प्रथम संस्करण–1998, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, फलैप से
8. उदय प्रकाश, सुनो कारीगर, प्रथम संस्करण, 2005, स्वर्ण जयंती प्रकाशन, दिल्ली, पृष्ठ–44
9. उदय प्रकाश, अबूतर-कबूतर, प्रथम संस्करण, 2005, स्वर्ण जयंती प्रकाशन, दिल्ली पृष्ठ-45
10. उदय प्रकाश, रात में हारमोनियम, प्रथम संस्करण, 1998, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ – 144
11. परमानंद श्रीवास्तव, समकालीन हिन्दी कविता, 2012, साहित्य अकादमी, नई दिल्ली, पृष्ठ–13

***

Hindi
Shodh Sandarsh-V, Vol.-XVI, Sept.-2017, Page : 75-77
ISSN No. - 2319–5908 (U.G.C. Approved Journal No. : 41329)

# सूरदास के काव्य में प्रकृति वर्णन

*डॉ. नीतू कौशल**

प्रकृति का मानव के जीवन के साथ अटूट सम्बन्ध है। यह मानव के जीवन के साथ जन्म से लेकर मृत्यु तक किसी न किसी रूप में सदैव जुड़ी रहती है। इसलिए मानव और प्रकृति के सम्बन्ध को अनादि और अनन्त माना गया है। मानव अपने जीवन के प्रत्येक सुख-दुख, हर्ष, उल्लास इत्यादि को प्रकृति के साथ ही साझा करता है। वह प्रकृति की गोद में जाकर स्वयं को सम्पूर्ण पाता है। इसीलिए प्रकृति के साथ हमारा रागात्मक सम्बन्ध बना हुआ है। मानव चाहता है कि उसका सम्बन्ध चिरस्थाई बना रहे। इसीलिए मानव सदैव प्रकृति के सौन्दर्य को बनाए रखना चाहता है। ''भारतीय साहित्य में प्रकृति मानव-जीवन की सहचरी बनी हुई है। उसमें मानव की भाँति ही अनुभूति की क्षमता दिखाई गई है। यहाँ का जन-समुदाय पौ फटते ही उठ बैठता है। वेद की कई ऋचाओं में भी ऊषा का मनोरम वर्णन उपलब्ध होता है।''[1] अर्थात् प्रकृति का मानव के जीवन से गहरा रिश्ता है। मानव भी प्रकृति के सानिध्य में आनंद की अनुभूति पाता है।

भारत में प्रारम्भ से कवियों ने प्रकृति को भिन्न-भिन्न रूपों के माध्यम से अपने काव्य में दिखाने का प्रयास किया है। सूरदास भी इस धारा में पीछे नहीं रहे। उन्होंने अपने काव्य में प्रकृति को विशेष स्थान दिया है। रामरतन भटनागर के अनुसार, ''कृष्ण का विकास जैसे ब्रज की प्रकृति में होता है उसी प्रकार सूर साहित्य का विकास भी ब्रज प्रकृति की छाया में ही होता है। ब्रज की प्रकृति ने उन्हें केवल उपमाओं और उत्प्रेक्षाओं के लिए ही सामग्री नहीं दी है वह उनके काव्य के केन्द्र में प्रतिष्ठित हुई है।''[2] सूरदास और उनके कृष्ण ब्रज भूमि से सम्बन्ध रखते हैं।

इसीलिए सूरदास के काव्य में ब्रज की प्रकृति का एक-एक दृश्य दृष्टिगोचर होता है। ब्रज भूमि से सम्बन्धित होने के कारण सूरदास को इसके आगे सभी सुख तुच्छ प्रतीत होते हैं क्योंकि मातृ-भूमि से लगाव मानव की सहज प्रवृत्ति है। मानव भले ही कहीं भी क्यों ना चला जाए परन्तु वह अपनी मातृ-भूमि के कसाव को अंतर्मन में सदैव महसूस करता है। जो सुख मातृ-भूमि का है, वह अकथनीय है। यही खिंचाव सूरदास को भी अपनी मातृ-भूमि से जोड़े हुए है। सूरदास ने प्रकृति की प्रत्येक वस्तु जैसे यमुना नदी, वन, तरुवर, गनन, वर्षा, पवन आदि को बहुत ही सहजता एवं सुगमता के साथ अपने काव्य में दर्शाया है। सूर काव्य में प्रकृति चित्रण आलम्बन और उद्दीपन दोनों रूपों में हुआ है। कृष्ण जन्म के साथ ही प्रकृति अपने पूरे यौवन के साथ आनंदमयी हो जाती है और देवता स्वर्ग में दुन्दुभिनाद करके पुष्पों की बारिश करते हैं-

**आनंदै आनंद बढ़्यो अति**
**देवनि दिवि दुंदुभी बजाई, सुनि मथुरा प्रगटे जादवपति।**
**विद्याधर किन्नर कलोल मन उपजावत मिलि कंठ अमित गति।**
**गावत गुन गंधर्व पुलकि तन नाचतिं सब सुर-नारि रसिक अति।**
**बरषत सुमन सुदेस सुर सूर, जय जयकार करत मानत रति।**
**सिव-बिरंचि-इन्द्रादि अमर मुनि फूले सुख न समात मुदित मति।।**[3]

कृष्ण जन्म के बारे में सुनकर सम्पूर्ण प्रकृति भी मदमस्त होकर नाचने लगती है। चारों ओर फूल खिलने लगते हैं। हवा गाने लगती है। प्रकृति भी श्रीकृष्ण के रंग में रंगने लगती है।

प्रकृति श्रीकृष्ण के साथ तादात्मय स्थापित कर लेती है। जब श्रीकृष्ण मुरली की मधुर धुन बजाते हैं तब सम्पूर्ण वातावरण मुरली की धुन सुनकर नाचने लगता है-

---

* *सहायक प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, पंजाबी विश्वविद्यालय, पटियाला*

**जब हरि मुरली अधर धरत।**
**थिर चर, चर थिर, पवन थकित रहै, जमुनाजल न बहत।**
**खग मौहे, मृग-जूथ भुलाहीं, निरखि मदन-छबि छरत।**
**पसु मौहे सुरभी विथकित, तृन दंतनि टेकि रहत।**
**सुन सनकादि सकल मुनि मौहे, ध्यान न तनक गहत।**
**सूरदास भाग है तिनके जे या सुखहिं लहत ।।**[4]

जब श्री कृष्ण मुरली की मधुर तान छेड़ देते हैं तब सम्पूर्ण प्रकृति जैसे थम सी जाती है। उनकी यह मधुर ध्वनि सुनकर जो जहाँ खड़ा है, वह वहीं रुक जाता है। सभी उनकी मुरली की गूंज में इतना खो जाते हैं कि अपनी सुध-बुध खो बैठते हैं, यमुना का जल बहते-बहते रुक जाता है। पशु-पक्षी सभी मोहित हो जाते हैं। मुरली की धुन सम्पूर्ण प्रकृति को आनंदमय कर देती है और यह धुन सम्पूर्ण प्रकृति को सुख प्रदान करने वाली है।

प्रकृति के सुन्दर प्रांगण में श्रीकृष्ण, राधा और गोपियों के साथ लीला करते हैं। श्रीकृष्ण उनके बीच बादलों में बिजली की भाँति प्रतीत हो रहे हैं। गोपियाँ प्रकृति की सुनहरी गोद में श्रीकृष्ण के साथ अत्यंत आनंदमयी होकर रास रचा रही हैं।

**मानो माई घन घन अंतर, दामिनि।**
**घन दामिनि दामिनि घन अंतर, सोभित हरि-ब्रज भामिनि।**
**जमुन पुलिन मल्लिका मनोहर, सरद-सुहाई-जामिनि।**
**सुंदर ससि गुन रूप-राग-निधि, अंग-अंग अभिरामिनि।**
**रच्यौ रास मिलि रसिक राई सों, मुदित भई गुन ग्रामिनि।**
**रूप निधान स्याम सुंदर तन, आनंद मन विस्रामिनि।**
**खंजन-मीन-मयूर-हंस-पिक, भाइ-भेद गज-गामिनि।**
**को गति गनै सूर मोहन संग, काम बिमोह्यो कामिनी।**[5]

शरद ऋतु की सुहावनी रात्रि में यमुना के किनारे प्रकृति के मनभावन सौन्दर्य का आनंद उठाते हुए श्रीकृष्ण गोपियों के साथ रास लीला में मग्न हैं। उन्हें प्रकृति का प्रत्येक कण आनंदमयी प्रतीत हो रहा है। गोपियों के साथ लीला करते समय प्रकृति भी उनके इस मिलन में सुखमयी प्रतीत हो रही है।

प्रकृति के इन संयोग-शृंगार के चित्रों के साथ सूरदास ने वियोग शृंगार का भी अपने काव्य में पूर्णतः निर्वाह किया है। संयोग में जो पल सुखदायी एवं आनंदमयी प्रतीत होते हैं वहीं वियोग में दुखदायी लगने लगते हैं। जिस वातावरण में नायक-नायिका एक-दूसरे के साथ एकाकार होकर अपने को विस्मृत कर देते हैं, और स्वर्गिक सुख का अनुभव करते हैं, वहीं वातावरण वियुक्त होने पर खाने को दौड़ता है। प्रकृति के इस उद्दीपक रूप का चित्रण महाकवि सूर ने यत्रतत्र सभी स्थलों पर किया है।''[6] जो वातावरण राधा को श्रीकृष्ण के साथ होने पर स्वर्ग के सुख की भाँति अनुभव हो रहा था वही वातावरण श्रीकृष्ण के साथ ना होने पर उसे दावाग्नि की भांति प्रतीत होता है।

**देखियति कालिंदी अति कारि।**
**अहो पथिक कहियौ उन हरि सों भई बिरह जुर जारी।**
**गिरि प्रजंक तें गिरति धरनि धँस तरंग तरफ तन भारी।**
**तट बारू उपचार चूर जल पूर प्रस्वेद पनारी।**
**बिगलित कच कुस कांस कूल पर पंक जु काजल सारी।**
**भौंर भ्रमत अति फिरति भ्रमित गति दिसि दिसि दीन दुखारी।**
**निसि दिन चकई पिय जु रटति है भई मनौ अनुहारी।**
**सूरदास प्रभु जो जुमना गति सो गति भई हमारी।**[7]

प्रकृति श्रीकृष्ण के विरह में व्यथित हो गई है। जिस दिन से श्रीकृष्ण मथुरा गए हैं यमुना नदी काली पड़ गयी है। वह श्री कृष्ण के विरह में ज्वर में पूरी तरह से जल गई है। अर्थात् श्रीकृष्ण के अभाव में सभी वस्तुएँ अंधकारमयी प्रतीत हो रही हैं। यमुना की दशा को सूरदास ने बहुत ही प्रभावशाली ढंग से व्यक्त किया है। सूरदास ने प्रकृति का चित्रण पूरी तल्लीनता के साथ प्रस्तुत किया है। सूरदास प्रकृति वर्णन में पूरी तरह से रम गए हैं।

अतः कहा जा सकता है कि सूरदास का प्रकृति वर्णन बहुत ही अद्भुत है। उन्होंने अपने काव्य के माध्यम से प्रकृति के मनोहारी और हृदयहारी चित्र प्रस्तुत किए हैं। सूरदास ने प्रकृति को संयोग और वियोग दोनों रूपों के माध्यम से रेखांकित किया है, जो प्रकृति श्री कृष्ण के साथ होने पर मनोभावनी लगती है वही प्रकृति श्रीकृष्ण के दूर जाने पर दावाग्नि की भाँति प्रतीत होने लगती है। सूरदास की श्री कृष्ण के प्रति अनन्य भक्ति एवं प्रेम उस सीमा तक पहुँच जाता है कि उन्हें प्रकृति भी श्रीकृष्ण के रंग में रंगी प्रतीत होती है। इसीलिए सूरदास का प्रकृति वर्णन भक्तिकालीन कवियों में सर्वाधिक व्यापकता और मौलिकता को द्योतित करता है।

## संदर्भ-सूची

1. मुंशीराम शर्मा, सूरदास का काव्य वैभव, ग्रन्थम प्रकाशन, कानपुर, पृ. 72
2. उद्धृत हरबंसलाल शर्मा (सं) सूरदास, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, पृ. 205
3. ब्रजेश्वर वर्मा (सं) सूरसागर, ज्ञानमंडल लिमिटेड, वाराणसी, पद सं. 6
4. वही, पद सं. 30
5. ब्रजेश्वर वर्मा (सं), सूरसागर, ज्ञानमण्डल लिमिटेड, वाराणसी, पद सं. 1860
6. हरबंसलाल शर्मा (सं.) सूरदास, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली पृ. 207
7. ब्रजेश्वर वर्मा (सं.) सूरसागर, ज्ञानमण्डल, वाराणसी पद, सं. 2864

***

Hindi

Shodh Sandarsh-V, Vol.-XVI, Sept.-2017, Page : 78-80
ISSN No. - 2319–5908 (U.G.C. Approved Journal No. : 41329)

# संघर्ष के पथ पर राष्ट्र चिंतक

*डॉ. दिलीप कुमार अवस्थी**

"हम किसी खास समुदाय व वर्ग का नहीं बल्कि सम्पूर्ण देश की सेवा के प्रति वचनबद्ध हैं। हर देशवासी का खून हमारा है और हमारे शरीर का कतरा है। जब तक हम एक भारतवासी में इस भावना को जगा नहीं देते कि वे भारतमाता की संतान है यदि हम चाहें तो अपने वास्तविक अर्थों में माँ भारती को सुजलां और सुफलां बना सके। दशप्रहारना धारिणी देवी यानि माँ दुर्गा अपने 10 अस्त्रों सहित बुराई को जीतने में सक्षम होंगी और सरस्वती के रूप में वह अज्ञानता की उदासी को दूर करेंगे और ज्ञान की ज्योति फैल रही होगी। चिर विषय पर विश्वास के साथ आइए अपने आप को इस कार्य के लिए समर्पित करें।"

उक्त पंक्तियाँ मुगलसराय उत्तर प्रदेश के चन्दौली जिले के शहर, जो वाराणसी से पूर्णतः जुड़ा है, यहाँ भारतीय रेलवे के एक वर्ग– 'क' का महत्त्वपूर्ण स्टेशन है जो एशिया के सबसे बड़े मार्शलिंग यार्ड के नाम से जाना जाता है। यहीं भारत के द्वितीय प्रधानमंत्री लाल बहादुर शास्त्री की जन्मभूमि है। रेलवे लाइन से 150 गज दूरी पर बिजली का खम्भा नं0 1267 से तीन फीट की दूरी पर जिस महान आत्मा को काल ने निगल लिया वह महान विचारक अर्थशास्त्री, समाजशास्त्री, इतिहासकार एवं पत्रकार पं0 दीनदयाल उपाध्याय जी हैं, जिन्हें लोग समाज को दिशा एवं दशा पर चिन्तन करने वाले ध्रुव तारा के रूप में आज भी आकाश में ढूढ़ते रहते हैं। 11 फरवरी, 1968 की वह रात भारतीय जनसंघ के अध्यक्ष पण्डित दीनदयाल उपाध्याय जी का मृत शरीर इसी मुगलसराय स्टेशन के यार्ड में पड़ा मिला था। यह षडयन्त्रकारी घटना आज भी रहस्य बनी हुयी है। 10 फरवरी, 1968 को पं0 दीनदयाल उपाध्याय जी अपनी मुँह बोली बहन लता खन्ना के घर लखनऊ में ठहरे हुये थे। वहीं जनसंघ बिहार के प्रदेश अध्यक्ष अश्विनी कुमार का फोन आया और अनुरोध किया कि वह प्रदेश कार्यकारिणी की बैठक में शामिल होकर हम सभी को दिशा–निर्देश दें। वहीं दूसरी तरफ दिल्ली में शीतकालीन बजटसत्र पर रणनीति के लिये उन्हें दिल्ली बुलाया गया था, जहाँ उन्हें राष्ट्रीय अध्यक्ष के रूप में शामिल होना था, जिसमें अति महत्त्वपूर्ण मुद्दों पर विचार–विमर्श किया जाना था। अश्वनी कुमार का अनुरोध स्वीकार करके पं0 दीनदयाल उपाध्याय जी ने दिल्ली में सुन्दर सिंह भण्डारी को फोन कर बताया कि वह पटना बिहार प्रदेश कार्यकारिणी की बैठक में शामिल होने जा रहे हैं। पठानकोट सियालदा की बोगी नं0–04747 (प्रथम श्रेणी की बोगी) में आरक्षण हुआ। राम प्रकाश गुप्त तथा पीताम्बर दास उन्हें गाड़ी में बैठाने के लिए आये। पं0 जी अपने ए–ब्लाक की सीट पर बैठ गये। उनके सहयात्री बने एम0पी0 सिंह जो जियोलॉजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया में बड़े पद पर कार्यरत थे। दूसरी तरफ "बी" ब्लाक में गौरी शंकर राय जो उस समय के विधान परिषद के सदस्य थे सहयात्री बने। गाड़ी समय से चल दी, जौनपुर होते हुए गाड़ी को 2.14 मिनट पर मुगलसराय पहुँचना था तथा दिल्ली हावड़ा एक्सप्रेस में यह डिब्बा लगकर 2.50 मिनट पर मुगलसराय से चलना था। गाड़ी जौनपुर स्टेशन पर पहुँची, तो जौनपुर महराज का सेवक कन्हैया पं0 दीनदयाल उपाध्याय के लिए एक खत लाया, चश्मा गाड़ी के डिब्बे में छूट गया था, तब उन्होंने कहा महाराज को कहना कि लिखित जवाब आपके पास पहुँच जायेगा, उस समय घड़ी में 12.12 मिनट बज रहे थे। गाड़ी जब सुबह 6:00 बजे पटना पहुँची तब राष्ट्रीय स्वयं सेवकसंघ के नेता कैलाश पति मिश्र उन्हें लेने स्टेशन पहुँचे, परन्तु गाड़ी की बोगी नं0–04748 में पं0 दीनदयाल उपाध्याय जी नहीं मिले, तब उन्होंने सोचा शायद पं0 जी दिल्ली चले गये होंगे, लेकिन होनी को क्या मंजूर है शायद किसी को नहीं मालूम। रेलवे के लाइन मैन ईश्वरी दयाल लाइन चेक करते हुए खम्भा नं0–1267 के पास पहुँचा, तब उसे एक मृत शरीर पड़ा मिला, उसने सहायक

* *प्रवक्ता, ब्वायज इण्टर कॉलेज, सी.ओ.डी. छिवकी, इलाहाबाद*

स्टेशन मास्टर को इसकी सूचना दी। सहायक स्टेशन मास्टर ने 3.15 मिनट पर कार्यवाही रजिस्टर में एक मृत शरीर All most dead मिला अंकित किया।

राजकीय रेलवे पुलिस को सूचित किया तब उनके दो सिपाही अब्दुल गफूर तथा राम प्रसाद मृत शरीर के पास आये, थोड़ी ही देर में दरोगा फतेह बहादुर भी आ गये, मृत शरीर को कब्जे में ले लिया। प्रातः 6:00 बजे रेलवे के डाक्टर आये, उन्होंने मृत शरीर का मुआयना किया और कार्यवाही रजिस्टर में मृत शरीर को मृत घोषित किया तथा समय 5:55 मिनट डाला, जिसे बाद में काटकर 3:55 मिनट कर दिया गया। पुलिस को उनके जेब से चार चीजें रेलवे का प्रथम श्रेणी का टिकट, रेलवे की पावती, एक घड़ी जिसमें नानाजी देशमुख लिखा था तथा 26 रूपये नगद प्राप्त हुये। शरीर में कोई पहचान पत्र न होने के कारण पुलिस उसे लावारिश समझ रही थी। मृत शरीर को रेलवे प्लेटफार्म पर लाया गया। सुबह की किरणों के साथ चहल–पहल प्रारम्भ हुई। लोग मृत शरीर पर नजर डालकर चले जाते थे, किन्तु कोई पहचान नहीं पा रहा था। कुछ समय पश्चात् रेलवे कर्मचारी वनमाली भट्टाचार्य जी भी उधर से गुजरे तब उन्होंने मृत शरीर पर नजर डाली तो वे सदमे में आ गये और अचानक उन्होंने कहा कि हम इन्हें अच्छी तरह पहचानते हैं ये तो पण्डित जी हैं, जो राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ के राष्ट्रीय अध्यक्ष हैं। इनकी बात की तस्दीक के लिए संघ के स्थानीय कार्यकर्त्ताओं को बुलाया गया, उन्होंने भी इन्हें पहचाना, तकनीकी तौर पर आरक्षण लिस्ट से मिलान किया गया तो बात पूर्णतः सिद्ध हो गयी। यह घटना पूरे देश में आग की तरह फैल गयी कि पं0 दीनदयाल उपाध्याय जी की असामयिक मृत्यु हो गयी है। यह एक ऐसा सितारा जो देश को नयी दिशा तथा दशा देने के लिए पैदा हुआ था वह आसमान में कहीं विलीन हो गया, जिसके विचारों से आज समाज पल्लवित एवं पुष्पित हो रहा है तथा देश प्रतिदिन प्रगति की ओर बढ़ता जा रहा है।

आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक सभी क्षेत्रों में जनसाधारण के सुख–दुःख में समरस हुये, नेतृत्व का सूत्र धारण करने वाले महान राजनेता, समस्याओं से भरे देश में विश्वास दिलाने वाले, सरल व्यवहार, सादा जीवन उच्च विचार, प्रदीप्त अन्तःकरण और कर्मठता की मूर्ति, सरल और नम्र स्वभाव को धारण करने वाले पं0 दीनदयाल उपाध्याय जी का जन्म 25 सितम्बर, 1916 ई0 को उनके नाना पं0 चुन्नी लाल शुक्ल के यहाँ जयपुर अजमेर रेलवे लाइन पर स्थित ग्राम धनकिया में हुआ था जो प्यार से इन्हें "दीना" नाम से पुकारते थे। इनके पिता श्री भगवती प्रसाद उपाध्याय तथा माता रामप्यारी उत्तर प्रदेश के मथुरा जिले के ग्राम नगला चन्द्रभान, (फरह) के रहने वाले थे। इनके पितामह पं0 हरीराम जी शास्त्री ज्योतिष शास्त्र में अपने समय के अतिप्रसिद्ध विद्वान माने जाते थे। पं0 दीनदयाल उपाध्याय जी जब मात्र तीन वर्ष के थे तब इनके पिता का देहान्त हो गया तथा पिता के देहान्त के बाद 08 अगस्त, 1924 को माता की भी बीमारी के कारण आकस्मिक मृत्यु हो गयी। उनका पालन–पोषण उनके मामा जी राधारमण जी शुक्ल के घर में हुआ, विपत्तियाँ एवं प्रतिकूल परिस्थितियों से जूझने का क्रम बचपन से ही प्रारम्भ हो गया। दुर्भाग्यपूर्ण ऐसी घटनाओं से बिरले ही उबर पाते हैं। कोमल आयु में स्वावलम्बन और कष्ट सहने की परीक्षा निःसन्देह ईश्वर की कठोरता ही कही जायेगी। अपने प्रति कठोरता बरतने और कर्म में ध्यान एकाग्र करने का मंत्र पं0 दीनदयाल उपाध्याय जी ने बचपन में ही ग्रहण कर लिया था। शिक्षा प्राप्त करने के क्रम में उन्होंने अजमेर बोर्ड की मैट्रिक की परीक्षा सीकर के कल्याण हाईस्कूल से प्राप्त की, जिसमें सर्वाधिक अंक प्राप्त करने के कारण उन्हें स्वर्णपदक प्रदान किया गया। दो वर्ष पश्चात् पिलानी राजस्थान से उन्होंने इण्टर की परीक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की। कानपुर के सनातन धर्म कालेज से स्नातक की परीक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की साथ ही साथ गरीब तथा निर्धन बच्चों को निःशुल्क पढ़ाया भी करते थे।

युवावस्था में आते–आते उन्होंने अपने आपको राष्ट्र की सेवा में समर्पित करने का लक्ष्य निर्धारित कर लिया था। सन् 1937 में राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ के सम्पर्क में आये। उत्तर प्रदेश के संघ कार्य की नींव रखने वाले माननीय श्री भाऊ राव जी देवरस से उनका महामंगल क्षण में परिचय हुआ। अब उनकी सकारात्मक ऊर्जा राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ के कार्यों में अधिकाधिक नियोजित होने लगी। आगरा में अंग्रेजी साहित्य में परास्नातक करने के लिए सेन्ट जॉन कॉलेज में प्रवेश लिया तथा बहन के यहाँ रहकर शिक्षा प्राप्त करने लगे। एम0ए0 प्रथम वर्ष की परीक्षा उत्तीर्ण की तथा द्वितीय वर्ष में प्रवेश ले लिया। बहन का स्वास्थ्य ठीक न होने के कारण उनकी देखभाल में इतने लीन हो गये कि आगे की पढ़ाई स्थगित हो गयी। संघ के प्रचारक होने के नाते वे सन् 1942 में लखीमपुर जिले में नियुक्त हुए तथा वहाँ एक हाईस्कूल में निःशुल्क शिक्षा देने लगे। अपनी अद्वितीय प्रतिभा उच्च चरित्र और व्यवहार कुशलता से सभी लोगों को प्रभावित किया। तीन वर्ष के कार्यकाल में ही वे उत्तर प्रदेश राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ के प्रचारक बन गये। सन् 1951 में जनसंघ की स्थापना तक वे इसी दायित्व से कार्य करते रहे। इन्होंने समाचार पत्रों, पत्रिकाओं तथा पुस्तकों का लेखन भी किया। लखनऊ में पब्लिशिंग हाउस राष्ट्रध र्म प्रकाशन की स्थापना की और मासिक पत्रिका राष्ट्रधर्म का शुभारम्भ किया ताकि वे अपने सिद्धातों का प्रचार कर सकें।

उन्होंने साहित्यिक 'पंचजन्य' की शुरूआत की, फिर भी बाद में दैनिक 'स्वदेश' भी प्रारम्भ किया, आगे चलकर स्वदेश का नाम बदलकर तरूण भारत कर दिया गया। सन् 1950 में केन्द्र के तत्कालीन मंत्री डॉ0 श्यामा प्रसाद मुखर्जी ने नेहरू लियाकत पैक्ट का विरोध किया और अपने कैबिनेट पद से इस्तीफा दे दिया और लोकतांत्रिक शक्तियों को एकत्रित करने हेतु विपक्ष में शामिल हो गये। डॉ0 मुखर्जी ने राजनीतिक स्तर पर काम करने के लिए समर्पित युवा पुरूषों को संगठित करने के लिए पं0 दीनदयाल उपाध्याय को मदद दी।

भारतवर्ष की राजनीति में कांग्रेस की राष्ट्र नाशक और अदूरदर्शी नीतियों के कारण पाकिस्तान निर्माण तथा सत्ता की राजनीति की दौड़ प्रारम्भ हो गयी। देश की आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक, शैक्षणिक, औद्योगिक सभी क्षेत्रों में गिरावट दिखायी देने लगी। ऐसी परिस्थितियों के कारण राजनीतिक क्षेत्र में नये नेतृत्व की आवश्यकता महसूस होने लगी, इसी आवश्यकता की पूर्ति हेतु सन् 1951 में डॉ0 श्यामा प्रसाद मुखर्जी के नेतृत्व में अखिल भारतीय जनसंघ के निर्माण का विचार किया जा रहा था। पं0 दीनदयाल उपाध्याय जी ने 21 सितम्बर, 1951 में लखनऊ में प्रादेशिक सम्मेलन बुलाकर प्रदेश जनसंघ की स्थापना की। ठीक एक माह बाद 21 अक्टूबर, 1951 में दिल्ली में अखिल भारतीय जनसंघ की स्थापना हुयी। सन् 1952 में जनसंघ का प्रथम अखिल भारतीय सम्मेलन, कानपुर में आयोजित किया गया। पं0 दीनदयाल उपाध्याय की संगठन कुशलता से जनसंघ का यह पहला अधिवेशन अत्यन्त सफल रहा। इस सम्मेलन में पं0 दीनदयाल उपाध्याय को अखिल भारतीय महामंत्री पद सौंपा गया, जिसे उन्होंने जनसंघ के कालीकट अधिवेशन सन् 1967 तक पूरी कर्त्तव्य निष्ठा और लगन से निभाया। पं0 दीनदयाल उपाध्याय जी ही ऐसे व्यक्तित्व थे जो इस रिक्तता के समय आशा और विश्वास की ज्योति स्तम्भ बनकर मार्गदर्शन का दायित्व निभाया। कश्मीर आन्दोलन हो या किसान मजदूरों का मोर्चा, पंचवर्षीय योजनायें हो या सामाजिक गुत्थी, सभी स्थानों व कार्यों में पं0 दीनदयाल उपाध्याय जी का मार्गदर्शन पूरे प्रदेश को मिलता रहा। पं0 दीनदयाल जी ने देश के सभी महत्वपूर्ण क्षेत्रों के लिए गम्भीर सारयुक्त विचार मन्थन किया। यह सब में उनकी विशेषता थी कि वे तात्कालिक और छोटे से विषय को भी सैद्धान्तिक अधिष्ठान देकर लिखा बोला करते थे। पं0 दीनदयाल जी ने एकात्मवाद के आधार पर एक ऐसे राष्ट्र की कल्पना की जिसमें विभिन्न राज्यों की संस्कृतियाँ विकसित हों जिसमें सभी ध र्मों का समावेश हो, जिसमें व्यक्ति को समान अवसर और स्वतंत्रता प्राप्त हो, जो सुदृढ़ सम्पन्न एवं जागरूक राष्ट्र कहलाये। पं0 दीनदयाल उपाध्याय जी का कहना है कि हमारी सम्पूर्ण व्यवस्था का केन्द्र 'मानव' होना चाहिए जो 'यत्र पिण्डे तत्र ब्रह्माण्डे' के न्याय के अनुसार समिष्ट का जीवमान प्रतिनिधि एवं उनका उपकरण है, भौतिक चीजें मानव के सुख का साध न है, साध्य नहीं। पं0 दीनदयाल उपाध्याय जी का मानना था कि व्यक्ति का अर्थ उसका शरीर नहीं बल्कि उसका मन, बुद्धि और आत्मा भी है, यदि न चारों में से किसी एक को निकाल दिया जाय तो व्यक्ति का सुख विकलांग हो जायेगा।

विधाता ने उन्हें बचपन में ही अनाथ बना दिया, छात्र जीवन में उनके स्नेह के एकमात्र आश्रय स्थान उनकी बहन के मृत्यु में उन्हें विक्षिप्त बनाने की ठानी और जबकि वे यश, गरिमा के क्षितिज पर अहम रूप से प्रतिष्ठित हुए थे, उन पर कालपाश ने चिरनिद्रा डालकर उन्हें लावारिश बना दिया। विधाता की क्रूरता ने उन्हें गुमनाम लाश बना दिया, ताकि उनका कोई पता न जान सके। किन्तु हर बार वे अपने कर्त्तव्य के बल पर कुछ और बनते चले गये। वे सामाजिक कार्यकर्त्ता के रूप में सर्वत्यागी सन्यासी बन गये। उन्होंने संघर्ष पूर्णजीवन में सदैव कर्म की श्रेष्ठता को स्थापित किया और उनका सम्पूर्ण जीवन एक आदर्श बन गया। जो सम्पूर्ण समाज तथा देश को विकास के पथ पर चलने के लिए एक मार्गदर्शक की भूमिका में है।

## सन्दर्भ ग्रन्थ–सूची


1. पं0 दीन दयान उपाध्याय–एम0सी0 शर्मा
2. पं0 दीन दयाल उपाध्याय की चेतनदृष्टि– डॉ0दीना नाथ सिंह
3. पं0 दीन दयाल उपाध्याय – अनिल कुमार सलिल
4. पं0 दीन दयाल उपाध्याय – विजय कुमार मल्होत्रा


***

History
Shodh Sandarsh-V, Vol.-XVI, Sept.-2017, Page : 81-84
ISSN No. - 2319–5908 (U.G.C. Approved Journal No. : 41329)

# हिन्दी सिनेमा द्वारा राजस्थान लोक कथाओं का विश्लेषण

*एकता सिंह**

लोक-कथाएँ जन साधारण द्वारा निम्रित सर्वाधिक लोकप्रिय साहित्य हैं। मानव हृदय की सरल एवं सहज अभिव्यक्ति लोक-साहित्य में ही उपलब्ध होती है। यह साहित्य मौखिक परम्परा से प्राप्त होता है तथा इसका सम्पूर्ण रूप व्यक्ति विशेष द्वारा रचित न होकर काल परम्परा के अनुसार जन समुदाय द्वारा रचित एवं परिमार्जित होता है।[1]

लोक कथाओं की परम्परा अत्यन्त प्राचीन है। सृष्टि की उत्पत्ति के साथ ही लोक कथाओं का प्रादुर्भाव हुआ है। अतः ये लोक कथाएँ जनजीवन से जुड़ी हैं। इनमें धरती की सौंधी महक है। लोक कथाओं में समाज की राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक स्थितियों का सजीव चित्रण मिलता है। लोक कथाओं के निर्मल दर्पण में हम समाज के आचार-विचार, खान-पान, रहन-सहन, रीति-रिवाज, वेशभूषा और उत्सव-त्यौहार आदि का प्रतिबिम्ब भली भाँति देख सकते हैं।[2]

लोक कथाओं में राजस्थानी जनजीवन की समस्त भावधाराएँ उद्दाम वेग से प्रवाहित होती हैं। किसी महान चरित्र की चारित्रिक लीलाओं को गद्य रूप में प्रस्तुत करना ही लोक कथाएँ हैं। लोक कथाएँ श्रव्य विधा है। ये पीढ़ी दर पीढ़ी मौखिक परम्परा में जीवित रहती है। इनमें जनजीवन की झाँकी होती है। लोक कथाओं के रचनाकार अज्ञात होते हैं। वे लोक कथाओं की रचना कर समाज को सौंप देते हैं।[3]

लोक साहित्य और सिनेमा का सम्बन्ध उतना ही पुराना है जितना स्वयं सिनेमा के इतिहास का है। सिनेमा का प्रारम्भिक दौर, सन् 1951 में डी. डब्ल्यू. ग्रिफिथ ने टॉमस डिक्शन के उपन्यास 'द क्लैसमैन' पर 'द बर्थ ऑफ ए नेशन' नाम से चलचित्र बनायी थी। हिन्दी साहित्य में प्रेमचन्द्र की प्रख्यात कृति 'गोदान' पर तथा उनकी ही कहानियों पर 'शतरंज के खिलाड़ी[4], और 'सद्गति' (1981), पर सत्यजीत रे ने फिल्में बनायी थी।[5] इसके बाद निर्मल वर्मा, भीष्म साहनी, मोहन राकेश, कमलेश्वर, मन्नू भण्डारी, जैसे साहित्यकारों की विभिन्न रचनाओं पर फिल्में बनना प्रारम्भ हो गयी थीं।

फिल्म निर्माताओं ने सिर्फ हिन्दी भाषी साहित्य पर ही नहीं बल्कि विभिन्न भारतीय भाषाओं के साहित्य पर भी फिल्मों का निर्माण हुआ है। मुजफ्फर अली की 'उमराव जान' (मिर्जा हादी रुसवा की 'उमराव जान अदा' पर) श्याम बेनेगल की 'मंडी' (हसन अब्बास की 'आनंदी' पर) आदि फिल्में जो उर्दू साहित्य से सम्बद्ध हैं। वहीं विमल राय की 'देवदास' शरतचन्द्र की बाँग्ला कृति 'देवदास' पर आधारित है। इसके अलावा विजयदान देथा जो एक राजस्थानी भाषा के साहित्यकार हैं उनकी कथाओं पर प्रकाश झा ने 'परिणती', अमोल पलेकर ने 'पहेली' तथा मणिकौल ने 'दुविधा'[6] फिल्म का निर्माण कर, राजस्थानी लोक साहित्य को जन मानस तक पहुँचाने का कार्य किया है। इनमें लोक जीवन की झाँकियाँ, त्यौहार, रीति-रिवाज, भूत-प्रेत, खान-पान, पहनावा आदि प्रदर्शित होता है।

**परिणति ( 1986 )**—यह विजयदान देथा की लघुकथा पर आधारित फिल्म है इसके निर्माण में राष्ट्रीय फिल्म विकास निगम द्वारा वित्तीय सहायता दी गयी थी। इसे राजस्थान के हर रंग को ध्यान में रखकर बनाया गया है। प्रारम्भ से ही राजस्थानी संगीत तथा यहाँ का अत्यन्त उपयोगी पशु ऊँट, रेगिस्तान को दिखाया गया है। गणेश कुम्हार और उसकी पत्नी कुर्जा जो हर कार्य में निपुण है। उनका बेटा लक्ष्मण अत्यन्त भाग्यवान है उनके माता-पिता ने उसका विवाह बचपन में ही करा दिया था। कुम्हारों की सबसे ऊँची कुल देवी से प्रार्थना करने के पश्चात् वधू और वर वापिस अपने घर लौट जाते हैं।

गणेश वापिस जाकर वही पुराना पारम्परिक व्यवसाय मिट्टी के घड़ा बनाने का कार्य आरम्भ कर देते हैं तभी वहाँ धनवान सेठ पहुँचता है जो कि पुत्रप्राप्ति से अत्यन्त प्रसन्न है। इसी प्रसन्नता के कारण वह गाँव के बाहर सरायें और पियाऊ बनवाना चाहता है तथा इसकी देखरेख करने के लिए ईमानदार गणेश को कहता है। वह प्रारम्भ में इस कार्य के लिए मना कर देता है

* ***शोधार्थी, इतिहास विभाग, बनस्थली विद्यापीठ, राजस्थान***

क्योंकि वह परम्परागत व्यवसाय नहीं छोड़ना चाहता है। कुछ समय बाद विचार-विमर्श करने के उपरान्त वह इस कार्य को करने के लिए तैयार हो जाता है। गणेश पूरे परिवार के साथ तथा पारम्परिक व्यवसाय के साथ सराय की देखभाल करने लगता है उसका पूरा परिवार हर आने वाले यात्री की बड़ी लगन के साथ सेवा करता है।

एक बार बहुत धनवान सेठ उसकी सराय पर आता है वह सेठ लक्ष्मण को देखता है और उसके भाग्यवान होने का अंदाजा लगाता है वह सेठ तथा सेठानी लक्ष्मण को साथ दिसावर ले जाने की बात उसके माता-पिता से करते हैं, बहुत मुश्किल से लछमण की माँ राजी होती है ताकि उसका भविष्य सुधर सके। सुबह होते ही सेठ-सेठानी लछमण को लेकर दिसावर निकल जाते हैं।

बहुत साल बीतते गये लछमण के माता-पिता उसका इंतजार हर रोज करते थे। लछमण की माँ दीवार पर हर रोज लकीर खींचा करती थी और दिन गिना करती थी, कि कितने साल तथा दिन हो गये हैं। जब उसकी कोई खोज-खबर नहीं मिलती तब कुर्जा कहती है कि यदि कहीं से बहुत सारा धन प्राप्त हो जाये, तो हम अपने बेटे को देखने दिसावर जा सकते हैं। तभी एक नव विवाहित जोड़ा सराय में रुकने के लिए आता है कुर्जा नव विवाहित दुल्हन के आभूषण देखकर लालायित हो जाती है तब वह अपने पति से कहती है कि हमें इस घड़ी का फायदा उठाना चाहिए, लक्ष्मी स्वयं चलकर हमारे पास आयी है। गणेश भी यही सोचता है और उन यात्रियों की हत्याकर आभूषणों को अपने पास रख लेते हैं।

दिसावर से लछमण के दादा आते हैं तब गणेश और कुर्जा को लछमण के बारे में शुभ संदेश देते हैं, वह बताते हैं कि लछमण सुबह-शाम अपने माता-पिता को याद करता है। खूब मन लगाकर कार्य करता है, राज दरबार में भी उसकी पहुँच है। संदेश कहने के बाद लक्ष्मण के दादा जी वापिस लौट जाते हैं। कुर्जा कहती है कि हमने जिस धन के लिए बेटे को भेजा है वह तो हमारे पास है ही लछमण को दिसावर से वापिस बुला लेते हैं। गणेश का मानना था कि यदि ऐसा किया तो सभी को भेद का पता लग जायेगा, जब लछमण आयेगा तब इस धन को लछमण द्वारा अर्जित धन में मिला देंगे, जिससे किसी को भी हत्या तथा लूट के रहस्य का पता नहीं चलेगा। इसी तरह गणेश आने वाले अमीर यात्रियों की हत्या करने लगता है। इसी धोखे में वह अपने बेटे को भी नहीं पहचान पाता और धन के लिए बेटे को भी मार देता है। सुबह होते ही लछमण की पत्नी सराय में आते ही, उनके आये हुये बेटे के बारे में पूंछती है। यह सुनकर गणेश तथा कुर्जा आश्चर्य में पड़ जाते हैं। बहू से बिना कुछ कहे ही वह घर के अन्दर आते हैं और दोनों ही आत्महत्या कर लेते हैं। बहू यह देख बहुत विलाप करती है।

राजस्थान में व्यापारियों के द्वारा कई सुन्दर सरायों का निर्माण किया गया है ताकि दूर देश से आये यात्री यहाँ आराम से ठहर सकें। उदयपुर में रामचंद्र चंपालाल महेश्वरी धर्मशाला, जैसलमेर में काशीराम व्यास धर्मशाला, भाटिया बगीची, महेश्वरी सेवा सदन, महावीर सेवा सदन, बीकानेर में मोहता धर्मशाला, बिश्नोई धर्मशाला, जयपुर में पंचायती धर्मशाला, जोधपुर में जसवंत सराय आदि का निर्माण समय-समय पर होता है इन सरायों में आम आदमी अपनी सुख-सुविधा के अनुसार वर्षों से ठहरता आया है 'परिणति' फिल्म में भी अमर वीर सराय का नाम आता है जो कि धनी सेठ द्वारा बनवायी गयी थी।[7]

इस फिल्म में राजस्थान की लोक संस्कृति के रूप में मांडणां के दृश्य भी दिखाई पड़ते हैं। धर्मशाला में आने वाला हर यात्री यहाँ पर रेखांकित मांडणां देखकर प्रसन्नता तथा स्वच्छता का अनुभव कर तारीफ करता है। मांडणां राजस्थानी लोक कलाएँ उनके सौंदर्य बोध, सुरुचिसम्पन्नता एवं कलात्मक अभिरुचि की प्रतीक है। ये इस बात की भी सूचक है कि उन्हें अपनी परम्पराओं, रीति-रिवाजों में निष्ठा रही है। मांडणां आड़ी-तिरछी रेखाएँ मात्र नहीं हैं। इनका अपना एक निश्चित रूप है ये अवसर विशेष की प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति है। राजस्थान में इस कार्य को महिलाओं द्वारा किया जाता है वे घर को लीप-पोत कर घर के आंगन को सुन्दर मांडणों, रंगोली, चौक पूरनों एवं अल्पनाओं से सुसज्जित करती हैं। राजस्थान में खड़िया, गेरू के बनाने का प्रचलन है। मांडणें के ये रूपाकार जीवन की नीरसता को कम करता है।[8] मांडणां राजस्थान की लोक कला है। लोक कला ग्राम्य जीवन की धरोहर है। लोक रंग में शास्त्रीय बंधन होते हैं, लोक समूह उसे स्वरूप देता है। संस्कार देता है, जीवन शक्ति देता है, लय व रूपाकार देता है। लोक कला में संस्कृति एवं परम्पराओं की जीवन्तता देने तथा सुरक्षित करने की उनमें अद्‌भुत क्षमता है।

**दुविधा ( 1973 )**—यह कहानी राजस्थान के प्रसिद्ध हिन्दी और राजस्थानी लेखक विजयदान देथा की कहानी 'दुविधा' पर आधारित है। फिल्म निर्देशक मणि कौल ने इसको भी उसी के अनुसार बनाने का प्रयास किया है। कहानी की शुरुआत बरगद के पेड़ से होती है, जिसमें एक भूत निवास करता था। एक दिन बैलगाड़ी उसी पेड़ के नीचे ठहरती है इस बैलगाड़ी में नवविवाहित जोड़ा नीचे उतरता है भूत की नजर दुल्हन पर पड़ती है जिसे देख उसे दुल्हन के शरीर में प्रवेश कर जाने की प्रबल इच्छा होती है लेकिन दयाभाव का विचार करके उसके मन में उलझन पैदा हो जाती है और अपनी इच्छा को वहीं त्याग कर देता है।[9]

बैलगाड़ी आगे बढ़ती है तब दुल्हन को ढालू (फल) खाने की तीव्र इच्छा होती है और अपने दुल्हे को ढालू लाने के लिए कहती है तब दुल्हा कहता है कि ढालू फल तो गवारों की पसंद है। उसकी ख्वाहिश तुम्हें कैसे हुयी यदि खाने की इतनी ही इच्छा है तो खजूर, नारियल, केला आदि खा लो, जो कि पास ही रखे हैं। दुल्हन कहती है कि आप नहीं जाते तो मैं ही तोड़कर लाती हूँ और फिर वह ढालू तोड़कर खाने लगती है। दुल्हा शादी में हुये खर्च का हिसाब किताब लगा रहा होता है। उसे अपने पिता का बहुत डर सताता है कि यदि हिसाब बिगड़ जायेगा तो पिता जी नाराज हो जायेंगे। दुल्हा बताता है कि वह हिसाब-किताब करके इसी तीज को दिसावर जाने के लिए रवाना हो जायेगा। यह सुनते ही नव विवाहित दुल्हन ढालूओं को फेंक देती है। इसे देख दुल्हा कहता है कि मैंने तो पहले ही कह दिया था कि ढालू तो गवारों की चीज है। बड़े आदमियों को अच्छा नहीं लगता। खाते नहीं बन पड़ा तो तुमने फेंक दिया, तेज धूप में जली सो अलग।

दुल्हन अपने पीहर के बारे में सोचती है कि माँ-बाप का वियोग सहा, सहेलियों का साथ छूटा, भाई-भतीजे, तालाब का किनारा, गीत, गुड्डा-गुड्डी का खेल, आदि सभी का वियोग सहा और अब पति व्यापार के लिए दिसावर चला जायेगा, इसका वियोग भी सहन करना पड़ेगा। जैसे ही बारात वापिस लौटकर घर आती है। विवाह के समय गाये जाने वाले गीतों के साथ, तानपुरे, ढोल, मंजीरा आदि के स्वर भी गूँजते हैं। सुबह होते ही नवविवाहित पुरुष जाने के लिए तैयार हो जाता है और पत्नी को समझाता है कि घर की मर्यादा का अच्छी तरह ध्यान रखना, सास-ससुर की सेवा करना, इन्सान की इज्जत उसके हाथ में होती है। दो दिन का प्यार पांच वर्ष तक कष्ट पहुँचायेगा और समय गुजरते क्या देर लगती है। देखते ही देखते पाँच साल भी बीत जायेंगे। इतना कहकर वह दिसावर के लिए निकल पड़ता है उसके कमर में पैसे की थैली बंधी थी, कंधे पर एक पोटली तथा कुछ अन्य समान भी था। बरगद के पेड़ के पास से जब वह गुजरता है तो भूत उसे देख लेता और समझ जाता है कि व्यापार के लिए दिसावर ही जा रहा होगा। भूत उसका रूप धरण करके वापिस घर आता है। जिसे देख उसके पिता नाराज हो जाते हैं। तब वह पिता को झूठी कहानी सुनाता है कि वह दिसावर के लिए ही जा रहा था लेकिन रास्ते में एक महात्मा की समाधि लगी मिली थी उनकी देह पर दीमक चिपकी हुयी थी। उसने दीमक साफ किया तथा उन्हें नहलवाया, खाना खिलाया था तब महात्मा ने खुश होकर वरदान दिया कि सवेरे पलंग से नीचे उतरते ही मुझे पाँच मुहरें हमेशा मिलती रहेंगी। दिसावर जाने से यह वरदान नहीं फलेगा। यह सुनते ही पिता खुश हो जाते हैं।

भूत दुल्हन के पास जाता है तब वह कहती है कि मुझे पता था कि तुम बीच रास्ते से लौट आओगे, तब भूत कहता है कि पहले पता कर लो कि मैं कोई दूसरा तो नहीं हूँ, शायद तुम्हारे पति का रूप धर कर कोई और तुम्हें छलने तो नहीं आया है। दुल्हन कहती है कि हूबहू वही शक्ल और सूरत, वही रंग, वही नजर, वही बोली, वही हुलिया। लेकिन भूत ने सारी बात बता दी तथा कहता है कि माँ-बाप को पाँच मुहरें और दुकान की कमाई में रुचि है भेद का खुलासा नहीं करता तो पाँच साल तक इस रहस्य का, सपने में भी किसी को पता नहीं चलता। भूत होकर भी मैंने कोई बात नहीं छिपायी। दुल्हन कहती है कि अब भी यह बात समझ में नहीं आयी कि भेद प्रकट करना ठीक रहेगा या नहीं। व्यापार में डूबा पति जब रवाना हुआ तो वह मेरे वश में नहीं था कि उसे रोक लू, जाते हुए को रोक न सकी, सामने प्रकट भूत को किस प्रकार मना करूँ। सुबह होते ही पिता के पास भूत जा कर उसके हाथ में पाँच मुहरें दे देता है। जिसे देख वह अत्यन्त प्रसन्न हो जाते हैं। समय बीतता गया दुल्हन को अपनी असली पति का इंतजार ही नहीं करना पड़ा और वह गर्भवती हो जाती है।

दिसावर में व्यापार कर रहे दुल्हे को इस बात की बड़ी हैरानी होती है कि मैं यहाँ हूँ तो वह गर्भवती कैसे हो सकती है। इसकी जाँच करने वह दिसावर से वापसि लौटकर आ जाता है उसी समय बहू को बच्चा हो रहा होता है। वह भूत को देखकर आश्चर्य में पड़ जाता है कि हुबहू उसी के शक्ल, सूरत जैसा ही है। पिता उससे पूछते हैं कि कौन है तू बेहरूपिया, मेरा लड़का तो तीसरे दिन ही घर वापिस आ गया था।

बेटा बताता है कि मैंने दिसावर से बेशुमार दौलत कमाई करके अपने घर आया हूँ इसमें बदनामी कैसी/ आपने ही तो जबरन व्यापार करने भेजा था। माँ क्या तुम भी मुझे नहीं पहचान सकती? पिता कहते हैं कि नहीं चाहिए ऐसी कमाई तू कमाई का क्या रोब दिखा रहा है जिस मार्ग से आया है, उसी मार्ग से वापिस चला जा।

मामला नहीं सुलझता तब दोनों को राजा के पास ले जाते हैं लेकिन बीच में ही एक गरेड़ियाँ उन्हें मिलता है और उन दोनों से कुछ सवाल पूंछता है। वह कहता है कि जो सात चुटकियों में जो इस पानी की थैली (छागल) में घुस जायेगा वही सच्चा है। भूत तुरंत उसमें चला जाता है तब सभी लोग मिलकर उस छागल का मुँह बन्द कर कुएं में फेंक देते हैं। इस तरह समस्या समाप्त हो जाती है।

लड़का हवेली में आते ही अपने कक्ष में जाता है और अपनी पत्नी से कहता है कि जब मुझे जन्म देने वाले माँ-बाप नहीं

में फेंक कर ही पीछा छुड़ाया है। उसकी पत्नी ने कभी भी विरोध प्रकट नहीं किया, सास-ससुर ने जैसा उससे कहा उसने वैसा ही किया।[10]

सिनेमा और साहित्य के बीच बुनियादी रूप से बिम्ब और शब्द का होता है। सिनेमा अपने आरम्भ से लेकर अंत तक साहित्य से जुड़ा हुआ होता है समाज को साहित्य और सिनेमा दोनों की आवश्यकता है, दोनों ही समाज में जागरुकता, लाते हैं। राजस्थान में भी कई महत्वपूर्ण साहित्यकार हुये हैं जिनकी कलम से राजस्थान के रंगों की छटा बिखरी है। विजयदान देथा ऐसे ही साहित्यकार रहे हैं जिन्होंने राजस्थान की लोक भावना को अपनी लेखन कला में शामिल कर सभी को प्रभावित किया है। यह प्रभाव हिन्दी सिनेमा पर भी देखा जा सकता है और उन्हीं के ग्रन्थ 'दुविधा' पर दो फिल्में 'दुविधा' और 'पहेली' का निर्माण किया गया है। एक अन्य फिल्म 'परिणति' भी इनकी लघु कथाओं पर आधारित कहानी है।

## सन्दर्भ सूची

1. सुषमा सोलंकी : लोक साहित्य में मरु–गुर्जर प्रदेश के प्रेमाख्यान, राजस्थानी ग्रन्थागार, जोधपुर, 2011, पृ. 10
2. नन्दलाल कल्ला : राजस्थानी लोक साहित्य एवं संस्कृति, राजस्थान ग्रन्थागार, जोधपुर, 1981, पृ. 28
3. वही, पृ. 41
4. चिदानन्द दास गुप्ता : सत्यजीत राय का सिनेमा, नेशनल बुक ट्रस्ट इण्डिया, नई दिल्ली, 1997, पृ. 93
5. वही, पृ. 98
6. अनिल भार्गव : हिन्दी सिनेमा सदी का सफर, पृ. 262
7. चन्द्रमणि सिंह : राजस्थान की सांस्कृतिक परम्परा, राजस्थान पत्रिका प्रकाशन, 2000, पृ. 24-39
8. भवानीशंकर शर्मा : लोक कला में माण्डवों, नवजीवन पब्लिकेशन, जयपुर, 2011, पृ. 6-7
9. विनोद भरद्वाज : नया सिनेमा, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 1985, पृ. 48
10. www.youtube.com/watch?v=CuN2U4-njjQ.26.8.2015

***

History

Shodh Sandarsh-V, Vol.-XVI, Sept.-2017, Page : 85-89
ISSN No. - 2319–5908 (U.G.C. Approved Journal No. : 41329)

# 1857 की क्रांति में रुहेलखण्ड परिक्षेत्र की भूमिका

*अलका यादव* हरस्वरूप** अनूप कुमार****

सन् 1857 की क्रान्ति के पीछे भारतीयों में व्याप्त वह आक्रोश काम कर रहा था, जो अंग्रेजी शासकों की अमानवीय नीति को सहन करते-करते उपजा था। सब्र-संतोष की तमाम सीमाओं से आगे जाकर जब सहने की तमाम सीमाएँ समाप्त हो गयीं, तो संतोष, आक्रोश का रूप धारण करके, किसी भी प्रकार अंग्रेजों को भारत से बाहर खदेड़ कर स्वाधीनता को प्राप्त करने के निमित्त पूरी तरह आतुर था। यह दूसरी बात है कि अनेक कारणों के वशीभूत क्रान्ति सफलता को नहीं छू सकी। लेकिन इस क्रान्ति के उपरांत अंग्रेजों ने भारतीयों के साथ आतंक और मृत्यु के जो नंगे नाच का खेल खेला, उससे भारत की आत्मा दहल उठी, विश्व समुदाय दांतों तले अंगुली दबा उठा, जबकि अंग्रेजों का पक्ष भारत में जबरदस्ती सत्ता कब्जाने हेतु लुटेरा का था और भारतीयों का पक्ष अपना अधिकार प्राप्त करने हेतु सत्य पर टिका था। साधनहीन भारतीय विशाल साम्राज्य से टक्कर लेने के लिए उठ खड़े हुए थे तथा क्रान्ति की असफलता के बाद वे सहर्ष फांसियों पर झूलते चले गये। इस बात को स्वयं अंग्रेजों ने भी स्वीकार किया है। अंग्रेज लेखक चार्ल्स बाल लिखता है–

''जनरल हैवलाक ने सर ह्यू व्हीर की मृत्यु का भयंकर बदला चुकाना शुरू किया। हिन्दुस्तानियों के गिरोह के गिरोह खुशी-खुशी फांसी पर चढ़ गये। मरते समय कुछ क्रान्तिकारियों ने जिस तरह हृदय की शांति और व्यवहार में ओजस्विता का परिचय दिया, वह उन लोगों में ही हो सकता है, जो किसी ऊँचे सिद्धान्त के लिए शहीद होते हैं।''[1] चार्ल्स पुनः लिखता है कि 'फांसी पर चढ़ने वाला व्यक्ति बिना जरा सी घबराहट के ठीक इस तरह फांसी के तख्ते पर चढ़ गया, जिस तरह एक योगी समाधि में प्रवेश करता है।''[2]

स्पष्ट है कि क्रान्तिकारियों को शासकों के विरुद्ध हथियार उठाने का तनिक भी पश्चाताप नहीं था। इसीलिए वे गर्वोन्मत्त होकर फांसी के फंदों पर झूलते जा रहे थे। ये वीर भारतीय केवल अंग्रेजों से अपने देश को स्वाधीन कराना चाहते थे, अन्यथा अंग्रेजों से उन्हें कोई भी जातीय दुश्मनी नहीं थी। यदि ऐसा नहीं होता, तो क्रान्तिकारी तमाम अंग्रेजों को मार सकते थे। भारतीयों को अपनी उस भारतीयता पर भी गर्व था, जिसकी मिट्टी के द्वारा 'सर्वे भवन्तु सुखिनः' की ध्वनि निरन्तर उद्घोषित होती रहती है। जबकि ऐसा अवसर यदि अंग्रेजों को मिलता, तो वे कभी भी बिना रक्त बहाए नहीं मानते और उन्होंने क्रान्ति की असफलता के उपरांत भारतीयों के साथ ऐसा ही व्यवहार किया भी। दोनों पक्षों में यही बुनियादी अन्तर था। इसके लिए अंग्रेज लेखक जस्टिन मैकार्थी का प्रस्तुत कथन दृष्टव्य है–

''लोगों की क्रोधाग्नि को इस तरह अफवाहें उड़ा-उड़ा कर भड़काया गया कि आमतौर पर स्त्रियों की बेइज्जती की गयी और निर्दयता के साथ उनके अंग-भंग किये गये। सौभाग्यवश ये झूठी थीं............सच यह है कि सिवाय उनसे अनाज पिसाने के और किसी तरह का भी अपमान अंग्रेज स्त्रियों का नहीं किया गया।

...........सामान्य अर्थों में किसी स्त्री पर अत्याचार नहीं किया गया। न किसी अंग्रेज स्त्री के कपड़े उतारे गये, न किसी की बेइज्जती की गयी और न जानबूझ कर किसी का अंग-भंग किया गया।''[3]

मुख्य क्रान्तिकारियों में से एक का जिक्र करें, तो नाना साहब धुन्धुपंत पेशवा, बड़ी वीरता और चतुराई से अन्त तक ब्रिटिश शासकों से लड़ता रहा, लेकिन वह अंग्रेजों के समान अपने वीरता भरे चरित्र से नहीं गिरा। इसीलिए जब – ''सत्तीचौरा घाट के हत्याकाण्ड के शुरू की गड़बड़ में कुछ हिन्दुस्तानी सिपाही चार अंग्रेज स्त्रियों को पकड़ कर ले गये थे, तो समाचार पाते ही नाना ने तुरंत उन सिपाहियों को कड़ा दण्ड दिया और चारों अंग्रेज स्त्रियों को उनसे वापस ले लिया।''[4]

* *राजनीति विज्ञान विभाग, एन.एम.एस.एन. दास कॉलेज, बदायूँ, उ.प्र.*

** *राजनीति विज्ञान विभाग, एन.एम.एस.एन. दास कॉलेज, बदायूँ, उ.प्र.*

*** *इतिहास विभाग, गाँधी फैज़-ए-आम कॉलेज, शाहजहाँपुर*

भारतीयों का व्यवहार अंग्रेजों के साथ नैतिकता से गिरा हुआ और अमानवीय कदापि नहीं था, जबकि अंग्रेज विदेशी होकर भी उनके ऊपर तथा उनके देश पर कब्जा करके उन्हें चारों तरफ से लूट-खसोट रहे थे। अंग्रेजों का व्यवहार भारतीयों के विरुद्ध नितांत अनैतिक व अमानवीय था। इस बात को भारतवासी किसी भी तरह भुला नहीं पा रहे थे। यह बात उनके तथा उनकी आने वाली पीढ़ियों के दिलों में निरंतर सुलगती रही। कहना न होगा कि राष्ट्रवादी आंदोलन में यही आग निरंतर आंदोलनकारियों को ऊर्जा प्रदान करती रही है।

1857 की क्रान्ति के उपरांत यद्यपि ईस्ट इण्डिया कम्पनी का वर्चस्व नहीं रहा था और महारानी विक्टोरिया की तरफ से भारतीय शासन की बागडोर अपने हाथों में लेते हुए भारतीयों की सुख-सुविधा के वायदे किये गये, लेकिन भारत के निवासी किसी भी तरह अपने भीतर के उन जख्मों की टीस से मुक्ति नहीं पा सके, जो 1857 की क्रान्ति को कुचलते हुए अंग्रेजी साम्राज्यवादियों ने उनके गांव के गांव जलाकर उनके निर्दोष परिवारजनों की हत्या करके दी थी। 1857 की क्रान्ति का यह प्रभाव उस समय तक किसी न किसी तरह भारतीय जनमानस में जम कर बैठा रहा, जब तक भारत को स्वाधीनता की प्राप्ति नहीं हो गयी। भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन को उस पीढ़ी ने प्रारम्भ किया, जिसके पुरखे निर्दोष होते हुए भी क्रूर अंग्रेजों द्वारा मार डाले गये, तथा जिनकी जायदादें क्रान्ति के उपरांत जब्त कर ली गयी थीं। यही कारण था कि जहाँ 1857 की क्रान्ति में जनता की सम्पूर्ण भागीदारी नहीं थी, वहीं राष्ट्रीय आंदोलन में प्रत्येक भारतीय की अपनी एक भूमिका थी। भारतीयों की प्रत्येक आने वाली पीढ़ी इस बात को जानकर आक्रोशित हो उठती थी कि ''जनरल नील की सेना ने क्रान्ति को कुचलते हुए दोषी-निर्दोष, बालक-बूढ़े और स्त्री-पुरुष का कोई ख्याल नहीं रखा। अच्छा यह है कि जनरल नील के प्रतिकार के बारे में कुछ नहीं लिखा जाए।''[5] अंग्रेज लेखक 'सन जॉन के' के अनुसार–

''फौजी और सिविल, दोनों तरह के अंग्रेज अफसर अपनी-अपनी खूनी अदालतें लगा रहे थे अथवा बिना किसी तरह के मुकदमे का ढोंग रचे और बिना मर्द-औरत या छोटे-बड़े का विचार किए, भारतवासियों का संहार कर रहे थे। इसके बाद खून की प्यास और अधिक भड़की। भारत के गवर्नर जनरल ने जो पत्र इंगलिस्तान भेजे, उनमें हमारी ब्रिटिश पार्लियामेंट के कागजों में यह बात दर्ज है कि 'बूढ़ी औरतों और बच्चों का उसी तरह वध किया गया है, जिस तरह उन लोगों का, जो विप्लव के अपराधी थे।' उन लोगों को बहुत बुरे ढंग से फांसी ही नहीं दी गयी, बल्कि उन्हें गांव के अन्दर जला कर मार डाला गया। शायद कहीं-कहीं उन्हें गोली से भी उड़ा दिया गया। अंगरेजों को गर्व के साथ यह कहते हुए अथवा पत्रों में लिखते हुए भी संकोच न हुआ कि हमने एक भी हिन्दोस्तानी को नहीं छोड़ा और काले हिन्दोस्तानियों को गोली से उड़ाने में हमें बड़ा विनोद और आश्चर्यजनक आनन्द का अनुभव होता था।..........सड़कों के चौरस्तों पर और बाजारों में जो लाशें टांगी हुई थीं, उनको उतारने में सूर्योदय से सूर्यास्त तक मुर्दे ढोने वाली आठ-आठ गाड़ियाँ बराबर तीन-तीन महीने तक लगी रहीं और इस तरह केवल एक स्थान पर छः हजार मनुष्यों को झटपट कर, परलोक भेज दिया गया।''[6]

इस अत्याचार का दर्द भारतीयों के अन्तस में निरन्तर टीस बनकर रह गया था। वे नयी पीढ़ियां, जो अपने पुरखों को ब्रिटिश शासकों के अत्याचारों के हाथों खो चुकी थीं, किसी प्रकार गहरी वेदना लेकर बड़ी हुई अपने आक्रोश को कुछ छिपाते हुए, कुछ प्रकट करते हुए अंग्रेजों के विरुद्ध छुट-पुट संघर्ष चलते रहे। 1857 की क्रान्ति की ढेर सारी राख में यही वेदना चिंगारी बन कर सुलगती रही और कथाओं, लोककथाओं, दंतकथाओं, काव्य तथा लोक काव्य आदि के माध्यम से अगली से अगली पीढ़ी तक इसकी तपिश पहुँचती रही। कहना न होगा कि यही चिंगारियां ब्रिटिश शासकों की दमन नीति रूपी ईंधन को प्राप्त करते हुए स्वाधीनता आंदोलन का रूप धारण करती चली गयी थीं। भारतीय जनमानस अंग्रेजों के प्रति भीतर ही भीतर सुलग रहा था। उधर ब्रिटिश शासक दमन नीति को आधार बनाकर अपने साम्राज्य की मजबूती को कायम रखना चाहते थे, लेकिन प्रस्तुत रूप में दोनों ही पक्ष परस्पर सहयोगी होने की भूमिका का निर्वहन कर रहे थे। जहाँ शासन की तरफ से अनेक मिथ्या घोषणाएँ की जा रही थीं, वहीं भारतीय लोग अंग्रेजों के उस दमन से प्राप्त जख्मों को भुला नहीं पा रहे थे। अपनी क्रूरता का वर्णन करते हुए एक अंग्रेज लिखता है कि–

''एक यात्रा में मुझे अद्‌भुत आनन्द आया। हम लोग एक तोप लेकर एक स्टीमर पर चढ़ गये। सिख और गोरे सिपाही शहर की तरफ बढ़े। हमारी किश्ती ऊपर को चलती जाती थी और हम अपनी तोप से दाएं और बाएं गोले फेंकते जाते थे। यहाँ तक कि हम ग्रामों में पहुँचे। किनारे पर जाकर हमने अपनी बन्दूकों से गोलियां बरसानी शुरू कीं। मेरी पुरानी दोनाली बन्दूक ने कई काले आदमियों को गिरा दिया। मैं बदला लेने का इतना प्यासा था। हमने दाएं के और बाएं के गांवों में आग लगानी शुरू की। लपटें आसमान तक पहुँचीं और चारों ओर फैल गयीं।

..........हर रोज हम विद्रोही ग्रामों को जलाने और मिटा देने के लिए निकलते थे और हमने बदला ले लिया है। .......... लोगों की जान हमारे हाथों में होती है और मैं तुम्हें विश्वास दिलाता हूँ कि हम किसी को नहीं छोड़ते। .......... अपराधी को एक गाड़ी के ऊपर बिठाकर किसी दरख्त के नीचे ले जाया जाता था। उसकी गर्दन में रस्सी का फंदा डाल दिया जाता है, फिर गाड़ी हटा ली जाती है और वह लटका हुआ रह जाता है।''[7]

अंग्रेजों द्वारा किये गये इन अत्याचारों को पढ़-सुनकर भारतीय जनता भी प्रतिशोध के लिए आतुर होती जा रही थी, लेकिन वह इस प्रकार की क्रान्ति नहीं करना चाहती थी, जैसी 1857 में हुई थी। उसकी तैयारियाँ अधूरी थीं, जिस कारण वह असफल रही थी। इसलिए भीतर ही भीतर अनेकानेक संगठन–संस्थाएँ बनने लगीं, जिनके माध्यम से भारतीय जनता को उसके गौरवशाली अतीत और ब्रिटिश साम्राज्य की नीति को सामने रखकर जाग्रत किया जाने लगा। जनता के सामने अंग्रेजों के उन काले व अमानवीय कारनामों को प्रस्तुत करके उनके सोए हुए स्वाभिमान को जगाया गया, जिनके बारे में स्वयं अंग्रेजों ने अपनी क्रूरता का बखान किया है। अंग्रेज इतिहासकार होम्स लिखता है–''बूढ़े आदमियों ने हमें कोई नुकसान नहीं पहुँचाया था। असहाय स्त्रियों से, जिनकी गोद में दूध पीते बच्चे थे, हमने उसी तरह बदला लिया, जिस तरह बुरे से बुरे अपराधियों से।''[8] सर जार्ज कैंपबेल लिखता है–''और मैं जानता हूँ कि इलाहाबाद में बिल्कुल बिना किसी वजह के कत्लेआम किया गया था।.......... और इसके बाद नील ने वे काम किये, जो कत्लेआम से भी अधिक भयंकर मालूम होते थे। उसने लोगों को जान बूझ कर इस तरह की यातनाएँ दे-देकर मारा, जिस तरह की यातनाएँ, जहाँ तक हमें सबूत मिले हैं, भारतवासियों ने कभी किसी को नहीं दीं।''[9]

इस प्रकार यह बात तो साफ है कि अंग्रेजों ने क्रान्ति के उपरान्त भारतीयों पर ऐसे जुल्म ढहाए, जैसे विश्व इतिहास में अन्यत्र शायद ही कहीं मिल सकें और प्रस्तुत शोध पत्र में इतिहास लेखक लुडलो की यह राय भी अंकित कर आये हैं कि ''यदि इन हालात में उन लोगों के पक्ष में, जिनकी रियासतें छीन ली गयी थीं और छीनने वालों के विरुद्ध भारतवासियों के भाव न भड़क उठते, तो भारतवासी मनुष्यत्व से गिरे हुए समझे जाते।'' इसी तरह भारतीय सम्राट बहादुरशाह का अंग्रेजों द्वारा अपमान करने आदि स्थितियों को देखकर भी यदि भारतवासी मौन ही रह जाते, तो निश्चित ही उन्हें मनुष्य कहना बड़ा मुश्किल होता, किन्तु भारतीय लम्बी पराधीनता के बाद भी स्वाभिमान से शून्य नहीं हुए थे। क्रान्ति की असफलता के बाद भी वे भले ही तत्काल अंग्रेजों का मुकाबला भले ही न कर पाये हों, लेकिन 'उपरोक्त घटनाओं से जो जख्म उन्हें प्राप्त हुए थे, उनकी औषधि एकमात्र स्वाधीनता है', इस बात को भारतवासी अवश्य समझ चुके थे और इसकी प्राप्ति के लिए उन्होंने अपने प्रयास कभी भी शून्य नहीं होने दिये। इस सम्बन्ध में पं. सुन्दरलाल का कथन दृष्टव्य है–

''ऐसी अवस्था में यदि भारतवासियों में मनुष्यत्व बाकी था, तो सन् 1857 की क्रान्ति स्वाभाविक और अनिवार्य थी। उस क्रान्ति के आदर्शों के बारे में या क्रान्तिकारियों के सम्मुख वास्तविक आदर्शों के बारे में हम चाहें कुछ भी क्यों न कहें, किन्तु इसमें सन्देह नहीं कि यदि 1857 की क्रान्ति नहीं हुई होती, तो उसका यही अर्थ होता कि भारतवासियों में से सहनशीलता, स्वाभिमान, कर्तव्यपरायणता और जीवन शक्ति का अन्त हो चुका। अंग्रेज शासकों के हौंसले फिर हजारों गुना बढ़ गये होते और भारतवासियों के जीवन में आशा की छटा तक कहीं दिखाई न देती। इसमें तो कुछ भी संदेह नहीं कि फिर उसी समय हिन्दू या मुसलमान, एक भी देशी रियासत भारत में न बची होती। भारतवासियों की हालत फिर करीब-करीब वैसी ही हो जाती, जैसी अनीका और अमरीका के उन आदिम निवासियों की, जिनके हजारों वर्षों के अस्तित्व को यूरोपियन जातियों ने मिटा दिया और जिनके प्रदेशों में अब यूरोपीय जातियों के उपनिवेश बने हुए हैं। इन सब दृष्टियों से सन् 1857 के क्रान्तिकारियों का भीषण बलिदान हरगिज व्यर्थ नहीं गया। उन लोगों के असफल प्रयत्नों ने एक तरफ तो अंग्रेजी शासकों की आँखें खोल दीं और उन्हें सावधान कर दिया और दूसरी तरफ उन्होंने भारतवासियों के राष्ट्रीय जीवन में आशा और आत्मविश्वास की झलक पैदा कर दी, जो सत्तर वर्ष बाद तक भी फीकी नहीं पड़ी और सौ वर्ष तक भी धीमी नहीं पड़ सकती।''[10]

10 मई, 1857 के रविवार को मेरठ से क्रान्ति का श्रीगणेश हुआ। क्रान्ति ने प्रारम्भ होते ही भयंकर रूप धारण कर लिया, क्योंकि इसमें सैनिकों के साथ शहरी क्षेत्र के व्यापारी वर्ग और ग्रामीण क्षेत्र की साधारण जनता ने अपनी भागीदारी कर ली थी। देखते ही देखते मेरठ से अंग्रेजों का कम्पनी राज समाप्त हो गया। क्रान्तिकारी सैनिकों और जनता, दोनों में ही अभूतपूर्व उत्साह पहली बार देखा जा रहा था। मेरठ तो स्वतंत्र हो गया, लेकिन क्या इतने भर से क्रान्तिकारियों का कार्य समाप्त हो गया? नहीं, अभी तो कार्य का प्रारम्भ हुआ था, क्योंकि क्रान्तिकारी सैनिकों का विचार था कि ''जब तक मुगल बादशाह बहादुरशाह को फिर से स्वतंत्र भारत का सम्राट नहीं बना दिया जाता, तब तक इन यूरोपियनों से स्वतंत्रता नहीं मिल सकती।''[11] इसी उत्साह को दिलो-दिमाग में बसाकर क्रान्तिकारी दिल्ली की तरफ चल पड़े थे। रातों-रात ये उद्‌भट क्रान्तिकारी बिना किसी बाधा के दिल्ली की तरफ कूच कर गये तथा सबेरे तक दिल्ली पहुँच भी गये। वहाँ पर दिल्ली की जनता और भारतीय सेना ने उनका हार्दिक

स्वागत किया। ऐसा प्रतीत होता था, मानो सब कुछ सबको पहले से ही ज्ञात रहा हो और यह सब एक योजनाबद्ध तरीके से हो रहा हो। ऐसे में यह भी नहीं कहा जा सकता कि यह सब अनायास हो रहा था।

इस क्रान्ति की योजना पहले से ही तैयार थी। सारे देश में एक साथ 31 मई को क्रान्ति होनी थी, लेकिन परिस्थितिवश 31 तक सैनिक अपने आप को नहीं रोक सके और पहले ही क्रान्ति पर बैठे। इसकी हानि भी क्रान्ति को उठानी पड़ी, अन्यथा मौलवी अहमद उल्ला शाह तथा धुन्धुपंत नाना साहब अपनी कितनी ही यात्राओं के द्वारा तमाम उत्तरी भारत में क्रान्ति की अलख जगा चुके थे। मध्य भारत और पूर्वी तथा दक्षिणी पूर्व तक क्रान्ति की अलख जगायी गयी थी। दक्षिण भारत भी इससे अछूता नहीं रहा था। ऐसे में उत्तरी भारत का दिल और अवध के साथ लगा रुहेलखण्ड कैसे क्रान्ति की तैयारी से पीछे रह सकता था।

रुहेलखण्ड में रुहेला सरदार खान बहादुर खान, क्रान्तिकारी सैनिकों और जनता में भी राष्ट्रीयता की भावना जन्म ले चुकी थी और जब दिल्ली के सैनिकों का पत्र वहाँ पहुँचा, तो उसका स्वागत किया गया। रहस्यमयी चपातियाँ रुहेलखण्ड के भी गाँव-गाँव में बांटी गयी थीं। साधु तथा फकीर भी रुहेलखण्ड में क्रान्ति का प्रचार कर रहे थे। इस संदर्भ में सुन्दरलाल लिखते हैं कि ''जिस आश्चर्यजनक ढंग से यह समस्त षड्यंत्र चलाया गया, जितनी दूरदर्शिता के साथ योजनाएँ तैयार की गयीं, जिस सावधानी के साथ इस संगठन के विविध समूह एक-दूसरे के साथ काम करते थे, एक समूह का दूसरे के साथ सम्बन्ध रखने वाले लोगों का किसी को पता न चलता था और इन लोगों को केवल इतनी ही सूचना दी जाती थी, जितनी उनके कार्यों के लिए आवश्यक होती थी। इन सब बातों का वर्णन कर सकना कठिन है। ये लोग एक दूसरे के साथ आश्चर्यजनक वफादारी का व्यवहार करते थे। कुछ लोगों का विचार है कि चपातियों द्वारा एक गाँव से दूसरे गाँव में पत्र भेजे जाते थे।........... इतना तो निश्चय ही कहा जा सकता है कि ये रोटियाँ जहाँ भी पहुँचती थीं, वहाँ नयी चेतना जाग्रत कर देती थीं।''[12]

रुहेलखण्ड में भी यही स्थिति थी। बरेली, शाहजहाँपुर, मुरादाबाद, पीलीभीत, बदायूं, बिजनौर तथा अन्य क्षेत्रों में उपरोक्त तैयारी के कारण ही क्रान्ति में महत्वपूर्ण भागीदारी निभाते हुए कम्पनी राज को धराशायी करने में कामयाब हुए थे। इतना ही नहीं, रुहेलखण्ड की स्वतंत्रता की भावना का पता उस घटना से भी चलता है, जब बख्त खां, बहादुरशाह जफर को अंग्रेजों के चंगुल से बचाने का प्रयास करता है। वह लालकिले से निस्कासित सम्राट को हुमायूँ के मकबरे से अपने साथ किसी सुरक्षित स्थान पर ले जाना चाहता है, किन्तु अंग्रेजों के खरीदे हुए इलाहीबख्श की झूठी बातों में आकर सम्राट बख्त खां के साथ नहीं जाता, और बख्त खां के चले जाने के बाद अंग्रेजों द्वारा गिरफ्तार कर लिये जाने के साथ ही भारत से मुगल साम्राज्य का अन्त हो जाता है। यदि सम्राट बहादुर शाह रुहेलखण्ड के इस स्वाधीनता के दीवाने की बात मान लेता, तो यह निश्चित था कि क्रान्ति सफल हो गयी होती। यह सारा विवरण पुनः प्रस्तुत करने का अर्थ यह है कि जिस प्रकार रुहेलखण्ड ने 1857 की क्रान्ति में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन किया था, उसी प्रकार क्रान्ति की असफलता के बाद जब तक भारत आजाद नहीं हुआ, तब तक रुहेलखण्ड न केवल स्वाधीनता के सपने देखता रहा, बल्कि उसने स्वाधीनता आंदोलन में बढ़-चढ़कर भागीदारी निभायी। स्वतंत्रता के लिए फांसी के फंदे पर झूलने वाले शहीद भी रुहेलखण्ड में जन्मे हैं। काकोरी काण्ड के शहीद रोशन सिंह रुहेलखण्ड के नगर शाहजहाँपुर के थे। रोशन सिंह ने अपनी शहादत से छः दिन पूर्व जो खत लिखा था, उससे उनके विचारों का पता चलता है। साथ ही राष्ट्रीय आंदोलन में रुहेलखण्ड की भूमिका भी स्वतः उभर आती है–''इस हफ्ते फांसी हो जाएगी। ईश्वर के आगे विनती है कि आपके प्रेम का आपको फल दे। आप मेरे लिए कुछ गम न करना। मेरी मौत तो खुशी वाली है। चाहिए तो यह कि कोई बदफैली करके बदनाम होकर न मरे।''[13]

1857 की क्रांति भारतीयों में राष्ट्रवाद की भावना के लिए अंकुरण कर गयी थी। यद्यपि क्रान्ति के बाद सरकारी दमन-चक्र बहुत उग्र हो चला था और जिसका उद्देश्य राष्ट्रीयता की भावना को समूल उखाड़ फेंकना था। ऐसे में जब भारतीय जनमानस बाहर से अवसादग्रस्त हो रहा था, उसे भीतर से चेतन किये रखने में भारतीय पत्रकार जुटे हुए थे। अनेक संस्थाओं, पत्र-पत्रिकाओं आदि के द्वारा देश में राष्ट्रीय आंदोलन का वातावरण बनता जा रहा था। रुहेलखण्ड भी इस मामले में पीछे नहीं रहा था। 1857 की क्रान्ति के बाद तमाम परिस्थितियां बदली हुई थीं। यद्यपि भारत के जागरूक लोग अंग्रेज शासकों के साथ दिल से नहीं थे, किन्तु यह भी सच था कि वे सरकार का खुला विरोध करके दमन का शिकार भी नहीं बनना चाहते थे। इसलिए उन्होंने जो रास्ता अपनाया, वह क्रान्तिकारी आंदोलन से हटकर एक सामाजिक आंदोलन के रूप में सामने आता है। वैसे भी यह कतई सत्य है कि कोई भी नया आंदोलन पिछले आंदोलन से हटकर रास्ता अपनाता है। नये आन्दोलनकारी उन गलतियों को दोहराने से परहेज करते हैं, जिनके कारण क्रान्तियाँ असफल हो जाया करती हैं। भारत का राष्ट्रीय आंदोलन भी इस आधार को स्वीकार करके आगे बढ़ रहा था। इस आंदोलन में मैनहिम की इस मान्यता को सामने रखा गया था कि ''प्रत्येक पीढ़ी द्वारा शुरू किया गया सामाजिक आंदोलन अपनी पूर्ववर्ती पीढ़ी से भिन्न हुआ करता है। नयी पीढ़ी के सदस्य सामाजिक विरासत के तत्वों का

पुनर्मूल्यांकन करके उसके अनुरूप व्यवहार करने को तैयार होते हैं। यह पुनर्मूल्यांकन की प्रक्रिया सामाजिक आन्दोलन के लिए बाध्य करती है, जिसके कारण सामाजिक तथा सांस्कृतिक परिवर्तन होता है। अतः यह कहा जा सकता है कि समय-समय पर एक ऐसी पीढ़ी अवतरित होती है, जिसका दृष्टिकोण तथा विचार अपनी पहली पीढ़ी की अपेक्षा भिन्न हुआ करता है। भविष्य के बारे में उनका व्यवहार आदर्शात्मक होगा, इस प्रकार का आशावादी विचार लेकर वे आगे बढ़ते हैं। वास्तव में कोई भी समाज तब तक अपनी सभ्यता का विकास नहीं कर सकता, जब तक कि वह अपने सदस्यों के व्यवहार को निर्देशित करने के लिए एक उच्चकोटि का आदर्श नहीं स्वीकार कर लेता। किसी भी सामाजिक आंदोलन का वास्तविक प्रभाव समाज पर पड़ा है, इसका निर्धारण इस बात से होता है कि सामाजिक संस्थाएँ किन अंशों में इस आंदोलन से प्रभावित हुई हैं।''[14]

## सन्दर्भ–सूची


1. Charles Ball : Indian Mutiny, V-I, p. 388
2. Ibid, p. 388
3. Justin, M.C. Carthy : History of Our Own Times, Vol-III.
4. Sir George : Trevelyan's Cawnpore, p. 299
5. सुन्दरलाल : भारत में अंग्रेजी राज, द्वितीय खण्ड, पृ. 31
6. Sir John Kaye : History of the Sepoy War, Vol-II, p. 526
7. Charles Ball : Indian Mutiny, V-I, p. 257
8. Homes : Sepoy War, p. 229-230
9. Sir George Campbell : Provisional Civil Commissioner in the Mutiny, as Quoted in the other side of the Model by Edward Thompson, p. 81
10. पं. सुन्दर लाल : 1857 के स्वाधीनता संग्राम पर एक दृष्टि, उद्भावना, अंक 75, निरन्तरता और परिवर्तन, अप्रैल-जून, 2007, पृ. 133
11. उत्तर प्रदेश पत्रिका, अगस्त 1984, अंक-3, पृ. 3, सूचना एवं जनसम्पर्क विभाग , उत्तर प्रदेश का प्रकाशन
12. पं0 सुन्दरलाल : 1857 के स्वाधीनता संग्राम पर एक दृष्टि, उद्भावना, अंक 75, निरन्तरता और परिवर्तन, अप्रैल-जून, 2007
13. विनोद मिश्र : शहीदों के खत, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, पृ0 10
14. डॉ. शिव बहादुर का लेखांश : सामाजिक आन्दोलन–एक समाजशास्त्रीय अध्ययन, उत्तर प्रदेश पत्रिका, अगस्त 1984, अंक-3, पृ. 8 से उद्धृत, सूचना एवं जनसम्पर्क विभाग, उत्तर प्रदेश सरकार का प्रकाशन।


***

History
Shodh Sandarsh-V, Vol.-XVI, Sept.-2017, Page : 90-93
ISSN No. - 2319–5908 (U.G.C. Approved Journal No. : 41329)

# प्राचीन युग में भारतीय महिलाओं के कानूनी अधिकार

*ओम प्रभा**

प्रागैतिहासिक काल में लड़की को चल-सम्पत्ति माना जाता था। वह अपने पिता के घर में एवं घर के कामों में माता-पिता का सहयोग करती थी। अतः जब वर शादी करके उसे अपने साथ ले जाता था तो पिता पुत्री की सेवा से मुक्त होने के बदले में कुछ धन देता था। पुत्री को उस समय पिता की संपत्ति में कोई अधिकार न था। इस प्रकार इस काल में दहेज की प्रथा बिल्कुल नहीं थी। पिता विवाह के समय अपनी पुत्री को बहुमूल्य उपहार अवश्य देता था, किन्तु उपहारों को दहेज नहीं कहा जा सकता था, क्योंकि पिता स्वेच्छा से अपनी आर्थिक स्थिति के अनुरूप इन उपहारों को पुत्री को देता था। इसके लिए वर पक्ष से कोई ठहराव नहीं होता था।

**विवाह विच्छेद करने का अधिकार :** प्राचीन भारत में विवाह को ऐसा संस्कार समझा जाता था जिसमें किसी भी परिस्थिति में विच्छेद संभव न था। स्त्री को किसी भी दशा में पति को तलाक देने का अधिकार न था। मनु के अनुसार तो पति यदि पत्नी को बेच दे या छोड़ दे तो भी पत्नी को उसको तलाक देने का अधिकार नहीं था। कन्यादान केवल एक बार होता है। उनके अनुसार पति-पत्नी का सम्बन्ध जीवनभर के लिए होता है। अन्य धर्मशास्त्रों से विदित होता है कि कुछ खास परिस्थितियों में पत्नी को छोडने का अधिकार था। मनु ने स्वयं वर्णन किया है कि यदि पति नपुंसक हो, छूत का रोगी अथवा पागल हो या ऐसे किसी तरह के रोग से ग्रसित हो जिसका उपचार न हो सके तो यदि पत्नी उसका परित्याग कर दे तो उसे दोषी नहीं ठहराया जा सकता। मनु ऐसी स्त्री को जिसने पहले पति के साथ संसर्ग अथवा सहवास न किया हो दूसरे पुरुष से विवाह करने का अधिकार देता है। इसके अनुसार जिस स्त्री को पति ने त्याग दिया हो, या जो विधवा हो, यदि वह इच्छा से दूसरा विवाह करे और पुत्र उत्पन्न करे तो उस संतान को पौनर्भव कहते हैं। इस दूसरे विवाह से उत्पन्न संतान को पिता का कानूनी उत्तराधिकारी समझा जाता था।

धार्मिक सूत्र के अनुसार यदि किसी ब्राह्मणी स्त्री का पति विदेश गया हो तो उसे पाँच साल तक पति के विदेश से वापस लौटने की प्रतीक्षा करनी चाहिए। इसके बाद वह दूसरे पुरुष से शादी कर सकती थी। कौटिल्य के अनुसार स्त्री को केवल 10 महीने पति के लौटने का इंतजार करना चाहिए। उसके बाद वह स्त्री को न्यायालय से अनुमति लेकर दूसरे पुरुष से विवाह करने का अधिकार है। कौटिल्य के अनुसार गांधर्व, राक्षस और पैशाच विवाहों में विवाह-विच्छेदन की अनुमति दी है। उसने निम्न परिस्थितियों में तलाक वैध माना है। जब पति या पत्नी एक दूसरे से घृणा करते हों। यदि पति को पत्नी से अपने जीवन को खतरा हो।

ब्राह्मण साहित्य विवाह-विच्छेदन के उदाहरण नहीं मिलते किन्तु बौद्ध साहित्य में ऐसे कुछ उदाहरण मिलते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि साधारणतया विवाह-विच्छेद का प्रचलन केवल समाज के निम्न वर्गों में था।

पाँचवीं सदी ई0पू0 में स्त्रियों का दूसरा विवाह करना अनैतिक समझा जाने लगा। समाज के अनुसार पति कितना ही अनैतिक व्यवहार क्यों न करता हो पत्नी को उसका विवाह-विच्छेद नहीं करना चाहिए। किन्तु ऐसे विचार समाज के निम्न वर्ग ने स्वीकार नहीं किया। लेकिन पिता अपनी पुत्री का विवाह दूसरे पुरुष से कर देते थे अगर उसके पूर्व पति का आचरण ठीक नहीं होता था।

पतियों को अप्रिय वचन बोलने पर ही पत्नी को विवाह-विच्छेद करने का अधिकार था। धर्मशास्त्रकार आशा करते हैं कि पत्नी शराबी और रोगी पति की भी सेवा करे। यदि वह ऐसा करे तो पति उससे वस्त्राभूषण लेकर तीन माह बाद उसे छोड़ सकते हैं। चौथी सदी ई0 तक पत्नी की स्थिति पति की अपेक्षा बहुत भिन्न हो गई। इस पर भी पति के नष्ट हो जाने, संन्यासी हो जाने, नपुंसक होने और पतित होने पर स्त्री को दूसरे पुरुष से विवाह करने की अनुमति दी गई। इसका यह अर्थ है कि इन

* *प्राचीन इतिहास, गाजीपुर, उ.प्र.*

दशाओं में स्त्री अपने पति को छोड़ सकती थी किन्तु अर्थ विवाह-विच्छेद नहीं हो सकता। गौतम के अनुसार स्त्री का अस्तित्व नष्ट हो जाने पर भी पति को उसके भोजन, वस्त्र और सुरक्षा का प्रबन्ध करना चाहिए। व्यभिचारिणी पत्नी को भी गर्भवती होने पर ही परित्याग करने की अनुमति देते हैं। व्यास के अनुसार तो व्यभिचारिणी स्त्री भी मासिक धर्म के बाद सूद्र हो जाती है। ऐसी दशा में हिन्दू समाज में विवाह-विच्छेद का तो सवाल ही नहीं उठता।

उक्त विवेचन से स्पष्ट है कि हिन्दू विवाह के बाद विवाह-विच्छेद की स्थिति संभव नहीं है। पत्नी को त्याग देने के बाद भी पति को उसके भरण-पोषण और रक्षा का प्रबन्ध करना पड़ता था। किन्तु जब पत्नी दूसरा विवाह कर लेती थी तो उसके भरण-पोषण और रक्षा का उत्तरदायित्व पहले पति पर नहीं रहता है और पत्नी की भी पहले पति के प्रति कोई जिम्मेदारी नहीं रहती थी। इस परिस्थिति में हम विवाह-विच्छेद की स्थिति कह सकते हैं।

**विधवा विवाह का अधिकार :** मनु के अनुसार विधवा को विवाह का विचार भी नहीं करना चाहिए। विष्णु का भी मत था कि विधरा को ब्रह्मचर्य व्रच का ही पालन करना चाहिए। नारद के अनुसार कन्या का विवाह केवल एक बार ही होता है। परन्तु एक अन्य प्रसंग में नारद विधवा को विवाह करने का अधिकार देते हैं। इसका यह अर्थ है कि नारद के समय में कुछ विधवा विवाह होते थे किन्तु उन्हें समाज में अच्छा नहीं समझा जाता था। महाभारत में बाल विधवा के विवाह को वैध कहा गया है। वसिष्ठ के अनुसार भी यदि कन्या का विवाह हो गया हो किन्तु उसने पति के साथ सहवास न किया हो तो वह दूसरा विवाह कर सकती है। बौधायन ने भी ऐसे ही विचार व्यक्त किये हैं।

६00 ई. के बाद विधवा विवाह बहुत बुरा समझा जाने लगा। आदित्यपुराण में लिखा है कि विधवा विवाह कलियुग में वर्जित है। लगभग 1000 ई. के बाल विधवाओं को भी विवाह करने का अधिकार न रहा। देवण्णभट्ट ने लगभग 1150 ई0पू0 ने लिखा है कि कलियुग में विधवा विवाह वैध नहीं है। यदि विधवा मृत पति के परिरार में रहती तो उसे सेविका की तरह कड़ी मेहनत करना पड़ता था। यदि वह अलग रहती तो उसे केवल रोटी कपड़ा मिलता था।

**व्यवसाय करने की स्वतंत्रता** : निम्न जातियों में अपने पतियों के व्यवसाय में पूर्ण रूप से भाग लेती थी। वे पति के स्थान पर स्वयं इंकार भी कर सकती थी और पति की साख को गिरवी रख सकती थी।

**सम्पत्ति सम्बन्धी अधिकार पत्नी के रूप में :** वैदिक काल में स्त्रियों को उपहार रूप में दिया जाता था। महाभारत में भी धृतराष्ट्र कृष्ण का आदर करने के लिए एक सौ दासियाँ देने को उद्यत हो जाते थे। पति को पत्नी का पूर्ण रूप से स्वामी समझा जाता था। युधिष्ठिर ने जब जुएँ में दीपदी को दाँव पर लगाया था तो द्रोपदी पति के इस अधिकार के विषय में शंका नहीं करती वह केवल यह कहती है कि जब युधिष्ठिर ने ऐसा किया उस समय क्या वे स्वतंत्र व्यक्ति थे। किन्तु जिस समय युधिष्ठिर द6ोपदी को दाँव पर लगाने लगे तो सभासदों ने उनके इस कार्य का अनुमोदन नहीं किया। इसका यह अर्थ है कि सिद्धान्त रूप में पत्नी पर पति का पूर्ण स्वामित्व होता था किन्तु समाज पति के इस अधिकार को पूर्णतया स्वीकार नहीं करता।

वैदिक काल में ही पति और पत्नी दोनों को परिवार की सम्पत्ति का स्वामी समझा जाता था। पति को विवाह के समय प्रतिज्ञा करनी पड़ती थी कि वह पत्नी के आर्थिक अधिकारों की अवहेलना नहीं करेगा। आपस्तम्ब के अनुसार परिवार की सम्पत्ति के संयुक्त स्वामित्व का अर्थ यह है कि पति की अनुपस्थिति में पत्नी परिवार के लिए आवश्यक व्यय कर सकती थी।

**स्त्री धन :** जहाँ तक आभूषण, वस्त्र आदि चल सम्पत्ति का प्रश्न है, बहुत प्राचीन काल से ही स्त्री का उस पर पूर्ण स्वामित्व समझा जाता था। इसे स्मृतिकारों ने स्त्री धन कहा है। इसका मूल उस उपहार में है जो माता-पिता विवाह के समय अपनी पुत्री को देते थे। आपस्तम्ब सूत्र से ज्ञात होता है कि कुछ विद्वानों का मत था कि आभूषण और सम्बन्धियों से प्राप्त धन स्त्री का होता है। किन्तु आपस्तम्ब स्वयं इस मत के समर्थक न थे। कौटिल्य के अनुसार आजीविका और वस्त्र, आभूषणों को स्त्री का धन कहते हैं। आजीविका अधिक से अधिक दो हजार पण होनी चाहिए। स्मृति लेखकों के अनुसार असुर विवाह के द्वारा विवाहित पत्नी की मृत्यु के बाद उसकी कोई संतान न हो तो उसका स्त्री धन उसके भाई या माता-पिता को मिलना चाहिए।

मनु के अनुसार पत्नी की निजी कोई सम्पत्ति नहीं होती। उसकी समस्त सम्पत्ति उसके पति की होती है। किन्तु बौधायन व मनु दोनों के अनुसार पत्नी का स्त्रीधन पर स्वामित्व होता है। मनु के अनुसार स्त्री-धन में वे सब उपहार सम्मिलित होते हैं जो माता-पिता या भाई ने किसी बी समय दिये हों, ये उपहार जो किसी अन्य पुरुष ने भी विवाह के समय वधु को दिये हों और ये उपहार जो पति ने विवाह के बाद अपने प्रेम के प्रतीक के रूप में उसे दिये हों।

स्त्री-धन को खर्च करने के विषय में धर्मशास्त्रकारों के भिन्न-भिन्न मत हैं। मनु के अनुसार स्त्री को अपना धन भी बिना पति की अनुमति के खर्च नहीं करना चाहिए। बाद के धर्मशास्त्रकारों ने स्त्री-धन को दो भागों में बाँटा है–सौदायिक और असौदायिक। सौदायिक

स्त्री-धन में माता, पिता, पति और अन्य सम्बन्धियों से दिये हुए, उपहारों की गणना की गई है। स्त्रियों को सौदायिक स्त्री-धन की आय मात्र का उपयोग स्त्रियाँ केवल अपने जीवन में कर सकती थीं। उसे किसी को देने या बेचने का अधिकार उन्हें न था।

स्त्री-धन के अन्तर्गत आने वाली अचल-सम्पत्ति के विषय में धर्मशास्त्रकार एकमत न थे। कात्यायन के अनुसार स्त्री-धन में आने वाली अचल-सम्पत्ति को भी बेचने का अधिकार स्त्री को था। किन्तु नारद के अनुसार स्त्री को केवल चल-सम्पत्ति को ही दान देने या बेचने का अधिकार है। इसका कारण संभवतः यह था कि अचल-सम्पत्ति पर परिवार का सामूहिक स्वामित्व होता था और धर्मशास्त्रकार यह नहीं कहते थे कि पारिवारिक अचल-सम्पत्ति का विभाजन हो।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि जैसे-जैसे समय बीतता गया धर्मशास्त्रकारों ने स्त्री-धर्म को स्त्री को प्राप्त होने वाली सभी धनराशियों और संपत्ति को सम्मिलित कर लिया। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि प्राचीन भारत में स्मृतिकारों का दृष्टिकोण स्त्रियों को आर्थिक अधिकार देने के विषय में सहानुभूतिपूर्ण था।

**पुत्री के रूप में** : भैदिक साहित्य में अनेक प्रसंग हैं जिनसे ज्ञात होता है कि स्त्रियों को दाय का कोेई अधिकार नहीं था। पुत्री को पैतृक सम्पत्ति में से कोई भाग नहीं मिलता था। इसके विपरीत पिता को बहुधा पुत्री के विराह में वर से धन प्राप्त होता था। पुत्री को पिता, माता, भाई या पति से केवल उपहार के रूप में ही आभूषण, वस्त्र आदि प्राप्त होते थे। यदि किसी कन्या का भाई नहीं होता था, उसी दशा में उसे पिता की सम्पत्ति मिलती थी क्योंकि वह अपने पुत्र द्वारा श्राद्ध आदि करा सकती थी। थेरीगाथा में सुन्दरी नामक कन्या की माता उसे भिक्षुणी होने से रोकती है और कहती है कि पिता की संपत्ति की उत्तराधिकारिणी है क्योंकि उसका कोई भाई नहीं है और उसका भिक्षु हो गया है।

हिन्दू समाज में साया भी के जीवित रहते कन्या को उत्तराधिकारिणी नहीं माना जाता था। कौटिल्य का भी यही मत था। केवल शुक्र का मत था कि भाइयों के साथ बहन को भी पिता की संपत्ति का कुछ भाग मिलना चाहिए किन्तु धर्मशास्त्रकारों के अनुसार भाई पर बहन के विवाह का व्यय रहने का पूरा उत्तरदायित्व समझा जाता था। याज्ञवल्क्य के अनुसार भाई को अपने दाय का चौथा भाग बहन के विराह पर खर्च करना चाहिए।

**विधवा के रूप में** : वैदिक काल में नियोग की प्रथा विद्यमान थी। अतः ऐसी बहुत कम विधवा होंगी जिनके पुत्र न हो। अतः उन्हें स्वयं सम्पत्ति की आवश्यकता नहीं होती थी। इसीलिए 300 ऊ.पू. तक किसी भी धर्मशास्त्र में विधवा के दाय का उल्लेख नहीं है।

ईसा की प्रारम्भिक शताब्दियों में नियोग और विधवा दोनों प्रथाएँ समाप्त हो गयीं। विधवा के लिए अपने निर्वाह हेतु धन की आवश्यकता समझी गयी। अतः समाज ने विधवा के निर्वाह-मात्र के लिए धम देना आवश्यक समझा। प्रारम्भिक धर्मशास्त्रकारों और कौटिल्य ने विधवा को निर्वाह के लिए आवश्यक धन देने का विधान किया है। गौतम के अनुसार विधवा को पति की पूरी संपत्ति की उत्तराधिकारिणी माना जाना चाहिए। विष्णु के अनुसार विधवा को पति की पूरी सम्पत्ति की उत्तराधिकारिणी माना जाना चाहिए। याज्ञवल्क्य ने विषणु के मत का समर्थन किया है। इसके बाद के धर्मशास्त्रकार इस विषय में एकमत नहीं हैं। ऽ

**माता के रूप में** : मनु के अनुसार यदि पुत्र बिना संतान के मर जाये तो उसकी संपत्ति माता को मिलनी चाहिए। इसी विचार से प्रायः सभी धर्मशास्त्रकार सहमत हैं। याज्ञवल्क्य के अनुसार पुत्रों के जीवित होने पर भी माता को उनके बराबर सम्पत्ति का एक भाग मिलना चाहिए। शुक्र का मत है कि माता को पुत्र के भाग को चौथाई भाग मिलना चाहिए।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि परिस्थितियाँ बदलने पर समाज स्त्रियों की आर्थिक स्थिति में सुधार करना चाहिता था। पुरुषों को अपने अधिकारों को सुरक्षित रखने के आर्थिक अवसर प्राप्त थे और स्त्रियों को ये अवसर प्राप्त न थे किन्तु समाज की आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर धर्मशास्त्रकारों ने आवश्यक परिवर्तन किये। स्त्री-धन का क्षेत्र बारहीवीं शती ईस्वी तक बहुत विस्तृत हो गया। किन्तु पति से बँटवारा करने का अधिकार पत्नी को कभी नहीं दिया गया। पुत्री के विराह का उत्तरदायित्व पति पर था। उसकी मृत्यु होने पर भाई को बहन के विवाह का पूरा व्यय करना होता था। भाई न होने पर बहन दाय की स्वामिनी होती थी।

इस प्रकार हम देखते हैं कि प्राचीन भारत के धर्मशास्त्रकारों ने स्त्रियों के भरण-पोषण का उत्तरदायित्व सदा ही पति या उसके सम्बन्धियों पर रखा। जब संयुक्त परिवार में उनके भरण-पोषण की व्यवस्था करना कठिन हो गया तो धर्मशास्कारों ने स्त्री की प्रत्येक प्रकार की आय को चाहे वह चल सम्पत्ति हो या अचल स्त्री-धन में सम्मिलित कर दिया। विवा-विच्छेद की स्थिति हो जाने पर भी पति-पत्नी के भरण-पोषण के उत्तराधिकार से मुक्त नहीं होता था।

## सन्दर्भ ग्रन्थ

1. मनुस्मृति, 9.46
2. वही, 9.47
3. वही, 9.101
4. वही, 89.79

5. वही, 9.175-176
6. वसिष्ट धर्मसूत्र, 17.67
7. अंततः पर धर्मस्थर्विसृष्ठा यथेष्टं विदेत–अर्थशास्त्र, 3.4
8. वही, 3.3
9. संश्स्ततपप्रियवादिनी–मनुस्मृति, 9.81
10. न शूद्रायः समृति कालो न धर्म व्यतिक्रम।
विषेषतो प्रसूतायः स्त्रियाः संवतसराद्धिषिः।।–नारद शूद्राकमलाकर
11. नष्टे मृते प्र
12. गौतम धर्मसूत्र, 22.35
13. शूद्र, 78
14. याज्ञवल्क्यस्मृति, 1.70, 72
15. व्यासस्मृति, 2.49-50
16. मनुस्मृति, 5.158
17. स्मृति चंद्रिका, पृ0 211
18. वही, 12.97
19. महाभारत, 13.55.7
20. नारव स्मृति, 12.28
21. ऋग्वेद, 1.126.3
22. ऊदायाः पुनरुदादं ज्येष्ठाशं गोवधं तथा। फली पंच न कुर्वीत भ्रातृ जायां कमण्डूम।–आदित्यपुराण, 21.14
23. वसिष्ठ धर्मसूत्र, 17.66
24. विष्णुस्मृति, 6.21 ; याज्ञवल्क्यस्मृति, 2.74
25. बौधायन धर्मसूत्र, 2.24.7
26. महाभारत, 5.86.8
27. वही, 2.86.50.289.7
28. आपस्तम्ब धर्मसूत्र, 2.6.14.16-20
29. विज्ञानेश्वर टीकायाज्ञवल्क्य, 2.32
30. वही, 2.52
31. आपस्तंब धर्मसूत्र, 2.6.14.9
32. मनुस्मृति, 9.194
33. याज्ञवल्क्यस्मृति, 2.145
34. मनुस्मृति, 8.416
35. बौधायन धर्मसूत्र, 2.2.44
36. अर्थशास्त्र, 3.2
37. वही, 9.299
38. कात्यायनस्मृति, दाय भाग
39. वही
40. व्यवहारमयूख, पृ0 97 पर उद्धृत
41. याज्ञवल्क्यस्मृति, 2.124; मनुस्मृति, 9.118
42. ऋग्वेद, 7.4.8
43. थेरीगाथा, पृ0 327
44. अर्थशास्त्र, 2.6
45. तैत्तिरीय संहिता, 6.5.8.2; शतपथ ब्राह्मण, 4.4.2.13
46. अर्थशास्त्र, 3.5
47. पिंडगोत्रर्षि संबंधी–रिक्तं भेजरन स्त्री चानपत्यस्य।–गौतम धर्मसूत्र
48. विष्णुस्मृति, 17.43
49. याज्ञवल्क्यस्मृति, 2.135-36
50. मनुस्मृति, 9.217

***

History
Shodh Sandarsh-V, Vol.-XVI, Sept.-2017, Page : 94-96
ISSN No. - 2319–5908 (U.G.C. Approved Journal No. : 41329)

# इतिहास लेखन की पुराणेतिहासिक परम्परा की विशेषताएँ

*डॉ. विमलेश कुमार पाण्डेय**

पाश्चात्य जगत की अपेक्षा भारतीय मनीषा का इतिहास बोध नगण्य माना जाता है, कारण कि वहाँ की तरह यहाँ भारतीय इतिहासकार नहीं थे। पुराणेतिहासिक विवरणों को अनैतिहासिक माना जाता है। अतः भारतीयों द्वारा अपने अतीत को समझने की प्रवृत्ति इतिहास संरचना के सामान्य यूनानी-रोमन अथवा इस्लामिक परम्पराओं से भिज्ञ लोगों की सहजता से बोधगम्य नहीं थी, परन्तु इस आरोप पर कि प्राचीन भारतीय ऐतिहासिक चेतना से पूरी तरह विमुख या वंचित थे, आपत्ति की गई है और इस आपत्ति में निस्संदेह सच्चाई भी है। एफ. ई. पार्जिटर ने इस तथ्य को उद्घाटित करने का प्रयास किया।[1] हाल ही में रोमिला थापर द्वारा इतिहास-पुराण को अतीत का केवल कपोल-कल्पित चित्रण कहकर अस्वीकार कर देने की बजाय यदि उसे राज्य रूपी संस्था के निर्माण के भिन्न-भिन्न चरणों अर्थात् एक कालिक या वंशाधारित समाज से राज्य प्रणाली की ओर से संक्रमण से जोड़कर देखा जाय तो इसके एक सशक्त ऐतिहासिक आधार की झलक मिल सकती है।[2] ईस्वी सन् के लगभग आरम्भ के समय उद्भूत ऐतिहासिक काव्य ने इतिहास-पुराण परम्परा के अनेक वास्तविक ऐतिहासिक तत्त्वों को ग्रहण कर लिया। परिभाषा या वर्णन की दृष्टि से भी अत्यन्त कठिन शब्द काव्य का अर्थ एक आत्मकेन्द्रित आख्यान या वृत्तान्त है, जो रस अर्थात् मनोभाव या आवेग के अनुभव सम्प्रेषित करता है (वाक्यम् रसात्मकम् काव्यं)। इस परिवर्तित रूप में इतिहास को बहुत कम लाभ मिला, क्योंकि इतिहास और पुराण की तरह भारतीय जीवन और संस्कृति में विकसित होती काव्य परम्परा धर्मतन्त्रीय, पौराणिक और अधिकाधिक अर्द्ध-ऐतिहासिक थी। इतिहास-पुराण परम्परा के धर्मतन्त्रीय नैतिक ढाँचे को काव्य परम्परा ने अपना साहित्यिक आवरण प्रदान किया। इस परम्परा से सम्बद्ध लेखकों ने न तो अतीत में मानव जीवन के तथ्यों को लिपिबद्ध करने का कष्ट किया और न ही भारतीय ज्ञान को सुरक्षित रखने के उद्देश्य से समकालीन तथ्यों का वर्णन प्रस्तुत किया। नैतिक उत्थान की व्यग्रता में प्राचीन भारतीय इतिहास लेखन ने युक्तिपरता की घोर उपेक्षा की और स्वयं को धर्म तथा पौराणिक परम्परा से सम्बद्ध कर लिया। विश्वस्त और अविश्वस्त, सम्भव, और असम्भव, सांसारिक और अलौकिक के मध्य कोई भेद नहीं किया गया। राजनीति, युद्ध और कलह जैसे इतिहास के सामान्य विषय इतिहास-पुराण-काव्य परम्परा के लेखकों के लिए जीवन की सतही अभिव्यक्तियाँ मात्र थीं, जिनके भीतर मानव अस्तित्व के सबसे प्रमुख उद्देश्यों को पूरा करने का मनमोहक नाटक अन्तर्भूत था। उक्त परम्परा ने इस अन्तर्कथा तथा जीवन के अर्थ की गहन समझ पुरुषार्थों अर्थात् जीवन के चार सुत्रीय लक्ष्य के आलोक में विकसित की।[3] आत्मज्ञान और अस्मिता के लिए लोगों को उनके अतीत से अवगत कराने की आवश्यकता को ध्यानिस्थ कर भारतीय महाकाव्य परम्परा ने चिन्तन और साहित्य पर केन्द्रित अनेक उत्कृष्ट रचनाओं के सृजन का पथ प्रशस्त किया, किन्तु यह सब तथाकथित इतिहास की कीमत पर हुआ। यूनानी भाषा का शब्द इस्टोरिया (Istoria) मनुष्य के आत्मज्ञान के लिए उसके अतीत की पड़ताल के रूप में जिस धारणा को इंगित करता था, वह प्राचीन भारतीय मस्तिष्क में कभी उत्पन्न नहीं हो सकी। 1500 ई.पू. से 1200 ई. के मध्य के दीर्घकाल के दौरान इतिहास-पुराण-काव्य परम्परा ने वास्तविक इतिहास की दिशा में प्रगति का कोई संकेत नहीं दिया, इस दृष्टि से एकमात्र महत्वपूर्ण अपवाद राजतरंगिणी है। इतिहास लेखन की इतिहास-पुराण-काव्य परम्परा की अपनी कतिपय विशेषताएँ हैं, जो अधोलिखित हैं–

( 1 ) **प्रतिमानाधारित इतिहास–**विषयवस्तु, प्रस्तुति की पद्धति और निष्कर्षों की दृष्टि से प्राचीन भारतीय (हिन्दू) इतिहास लेखन एक निश्चित प्रतिमान का अनुसरण करता दृष्टिगोचर होता है। इत प्रतिमान (Pattern) के सन्दर्भ में कालक्रम या तिथिक्रम, तथ्यों की अभिव्यक्ति और उनकी व्याख्या जैसी इतिहास लेखन सम्बन्धी समस्याओं का अधिक महत्व नहीं था, कल्हण इसके एकमात्र अपवाद थे।

* *एसोसिएट प्रोफेसर, प्रा. इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्त्व विभाग, स.ब.पी.जी. कॉलेज, बदलापुर, जौनपुर*

**( 2 ) विषयवस्तु**—जहाँ तक विषयवस्तु का प्रश्न है, इस परम्परा के इतिहास चरित या आलंकारिक जीवनियाँ थीं जिनमें से अधिकांश राजाओं से सम्बद्ध थीं। हर्षचरित, विक्रमांकदेवचरित और पृथ्वीराज विजय इनके उदाहरण हैं, किन्तु चरित ऐतिहासिक दृष्टिकोण से पूरी तरह चरित जीवनियाँ नहीं थीं। इनकी विषयवस्तु राजा के किसी पक्ष तक ही सीमित होती थीं, जो सामान्यतः राजसी गरिमा की प्राप्ति या किसी शत्रु पर विजय चरित के वर्ण्य विषय थे। प्राचीन चक्रवर्तिन का पारम्परिक दिग्विजय और स्वयंवर, जो तथ्य होने की सीमा तक सत्य हो यह आवश्यक नहीं है, इस प्रतिमान की महत्वपूर्ण विशेषताएँ थीं।

**( 3 ) कारणात्मकता और कारणमूलक व्याख्या**—मध्यकालीन भारतीय चिन्तकों द्वारा दिये गये कारणात्मकता सम्बन्धी निर्देश का पालन करते हुए इतिहास लेखकों ने अदृष्ट (अदृश्य) कारणों की कोटि को उस स्थिति में मान्यता दी है, जहाँ दृश्य कारण किसी प्रघटना से सम्बन्ध नहीं दर्शा पाते या उसकी व्याख्या करने में सहायक नहीं हो पाते।[4] इसका तात्पर्य यह था कि अलौकिक कारणों की संकल्पना को ऐतिहासिक विवेचनों का आधार बनाया जा सकता था। इस प्रवृत्ति ने मिथकीकरण को जन्म दिया, जैसा कि चार राजपूत राजवंशों के अग्निकुल मूल की धारणा के परिप्रेक्ष्य में देखा जा सकता है। मिथ गढ़ने की इस प्रवृत्ति का प्रसार इतनी तेजी से हुआ कि आरम्भिक मध्यकालीन भारत के लगभग प्रत्येक राजवंश को एक क्षत्रिय परम्परा के साथ सूर्य या चन्द्रवंश से जोड़ा गया। अलौकिक कारणात्मकता कल्हण की कृति में भी दिखायी देती है। कर्म और पुनर्जन्म के सिद्धान्तों में और नियति के विधान की अपरिहार्यता में अटूट विश्वास के कारण भारतीय मस्तिष्क की धार्मिकता और अलौकिक सत्ता के प्रति निष्ठा से उत्पन्न लोकाचार इतने जड़ीभूत हो गये कि स्वाभाविक-सहज कारणों द्वारा ऐतिहासिक व्याख्याओं की आसानी से उपेक्षा कर दी गयी। पूर्वनिश्चित व्याख्याएँ और सत्ता एवं परम्परा पर निरन्तर निर्भरता ने इन विषयों पर सन्देह को निरस्त कर दिया और नियति हमेशा इसका एक सशक्त कारण रहा।

**( 4 ) तथ्य**—मानवीय गतिविधियों में दैवी हस्तक्षेप और अलौकिक घटनाएँ, कर्म और पुनर्जन्म के सिद्धान्त तथा भाग्य की भूमिका–इन सभी नकारात्मक तत्वों ने प्राचीन हिन्दू इतिहास लेखन को दूषित कर दिया। मानवीय क्रियाकलापों का अर्थ उन क्रियाकलापों से बाहर खोजना एवं इतिहास के केन्द्रस्थल से वास्तविक तथ्यों को निष्कासित करना है। यह इतिहासकार को तथ्यों की खोज नहीं करने के लिए बाध्य करने जैसा है। केवल कल्हण ही तथ्यों को तथ्यों के रूप में स्वीकार करते थे और राजतरंगिणी विस्तृत आख्यान या वृत्तान्त के अर्थ में अपवादस्वरूप है तथा किंवदन्तियों और जनश्रुतियों से लगभग पूरी तरह स्वतन्त्र है। जब बिल्हण या अतुल या जयानक घटनाओं का वर्णन करते हैं तो वर्णन में काल और स्थान का कोई बोध नहीं है जिसके कारण जिन वास्तविक घटनाओं के थोड़े बहुत अंश को उन्होंने प्रस्तुत करने का प्रयास भी किया है, उन पर पौराणिकता का एक आवरण चढ़ जाता है। विक्रमादित्य षष्ठ चालुक्य राम था, जिसकी दिग्विजय ने अगस्त्य को बाध्य किया कि वह महासागर के तटों का त्याग कर दें। पृथ्वीराज तृतीय चाहमान भी राम था, जिसके क्रोध से भयाक्रान्त होकर महासागर ने जल बरसाने वाले बादलों को केवल उतना ही जल दिया कि न तो पृथ्वीराज द्वारा अधिकृत भूमि पर बाढ़ आये और न ही वहाँ अनावृष्टि का प्रकोप हो। गल्प और किस्सों ने तथ्यों का स्थान ले लिया। सिन्धुराज परमार की जीवनी नवसाहसाँकचरित, जो दसवीं या ग्यारहवीं शताब्दी में उसके दरबारी कवि पद्मगुप्त द्वारा लिखी गयी थी, में इसका चरम परिपाक है। लेखक ने पशुओं और अलौकिक जीव-जन्तुओं के रूप में अपने ऐतिहासिक चरित्रों को निरूपित करना गलत नहीं समझा और परी-कथाओं की तरह ऐतिहासिक घटनाओं को एक औपन्यासिक चरित्र प्रदान किया। उनके सटीक होने की बात को छोड़ भी दें तो तथ्यों की दृष्टि से चरितों को ऐतिहासिक लेख नहीं माना जा सकता है।

**5. कालक्रम**—ऐतिहासिक तथ्यों को केवल कालक्रम व्यवस्था के ढाँचे में ही जाना जा सकता है। परन्तु अतीत की एक ऐसी संकलप्ना जिसने सामान्यतः वास्तविक घटनाओं की खोजबीन नहीं की, तिथियों और वर्षों में उनके घटित होने के सही समय पर बल नहीं दिया। कीथ के अनुसार कालक्रम के प्रति भारतीयों के उपेक्षापूर्ण दृष्टिकोण के लिए उनका दर्शन जिम्मेदार था, जिन्होंने काल की संकल्पना को बहुत कम महत्त्व दिया।[5] प्राचीन भारतीयों ने कालक्रम की एक व्यवस्था अवश्य विकसित की थी, जिसमें आरम्भ, प्रयास, सफलता की आशा, सफलता की निश्चितता और सफलता की प्राप्ति–ये भिन्न-भिन्न चरण थे। परन्तु ये विकास के केवल स्थूल, तर्कसंगत चरण थे और किसी निश्चित कालबिन्दु से प्रत्यक्षतः सम्बद्ध नहीं हैं–वे कालक्रम व्यवस्था के सर्वांगिक रूप के स्वीकृत अर्थ से इतने अधिक भिन्न हैं कि वे इतिहास की आवश्यकताओं को पूरा नहीं कर सकते।

**( 6 ) ऐतिहासिक चरित्रों का कालविहीन चित्रण**—प्राचीन भारत के लोगों में अतीत का जीवन्त बोध, जो वस्तुतः उनका अतीतमोह था, में रञ्चमात्र की भी ऐतिहासिकता नहीं थी। उन्होंने धार्मिक और पौराणिक मॉडलों को आधार बनाकर समकालीन इतिहास को चित्रित किया, जो धर्म और पौराणिकता के लिए उतना ही घातक था जितना इतिहास के लिए। परिणामस्वरूप धर्म-पुराण के सन्दर्भ में समकालीन राजाओं का नायकों के रूप में कालविहीन निरूपण हुआ। हम भगवान राम

की भूमिका में विक्रमादित्य षष्ठ–चालुक्य और पृथ्वीराज तृतीय चाहमान को पहले ही देख चुके हैं। व्यक्तियों को ही नहीं, बल्कि मुद्दों और घटनाओं को भी कालविहीन और अनैतिहासिक ढंग से निरूपित किया गया है। पृथ्वीराज तृतीय ने राम के अवतार के रूप में जन्म लिया, जिसका उद्देश्य धार्मिक और सामाजिक व्यवस्था को पुनर्स्थापित और संरक्षित करना था, जिसके लिए मुहम्मद गोरी और उसके मेजबानों, जिन्हें स्वाभाविक रूप से रावण और उसके राक्षस अनुचरों के रूप में निरूपित किया गया, ने खतरा उत्पन्न कर दिया था। यदि जयानक ने तराइन के द्वितीय युद्ध के बाद अपने फूहड़ कालविहीन चित्रण को बढ़ाकर इसे अद्यतन कर दिया होता, तो वे राम द्वारा रावण को पराजित करने और उसका संहार करने की कहानी नहीं कह पाते, बल्कि स्थिति ठीक इसके विपरीत होती।

**( 7 ) अतीत और वर्तमान का संयोजन–**चूँकि हिन्दुओं की दृष्टि में कलियुग पूर्ववर्ती युगों की गरिमा की अपेक्षा पतनोन्मुख और क्षीणप्राय था, अतीत के परिप्रेक्ष्य में वर्तमान का सिंहावलोकन करना असंगत था। वी. एस. पाठक का मन्तव्य है कि मध्यकालीन इतिहासकारों ने समकालीन इतिहास को प्राचीन रूपों तथा आदर्शों की सहायता से समझने का प्रयत्न किया है। यहाँ अतीत के आलोक में वर्तमान का अध्ययन करने के प्रयास में उन आधुनिक इतिहासकारों से स्पष्ट विरोधाभास दर्शाते हैं, जिन्होंने वर्तमान के सन्दर्भ का प्रत्यक्ष और निरन्तर संकेत देते हुए अतीत का अध्ययन करने की प्रवृत्ति दिखाई।[6]

**( 8 ) भाषा और शैली–**इतिहास जैसे किसी आख्यानपरक विषय का सही रूप गद्य है न कि पद्य। सच केवल इतना ही नहीं है कि सभी तथ्यों को काव्य के रूप में व्यक्त नहीं किया जा सकता है, बल्कि यह भी है कि जब किसी ऐतिहासिक वृत्तान्त को काव्य में ढाला जाता है तो यह नाटकीय और काव्यात्मक अलंकारों के रंग में रंग जायेगा, इसकी पर्याप्त संभावना होती है। उल्लेखनीय है कि प्राचीन भारतीयों के लिए पद्य उतना ही जाना-पहचाना और सामान्य था जितना गद्य, अभारतीय जनसमुदायों के लिए वस्तुतः संस्कृत में प्रयुक्त अनुष्टुप छन्द अन्य भाषाओं में गद्य हो सकता था, फिर भी प्राचीन भारतीय पहले कवि और सबसे अन्त में इतिहासकार थे–साहित्यिक रीतियाँ, अतिरंजनापूर्ण अभिव्यक्तियाँ और शोर्यपूर्ण, नाटकीय तथा काव्यात्मक साज-सज्जा नष्ट कर देते हैं, जिसे उन्होंने लिखने का न्यूनाधिक प्रयास किया। हर्षचरित वस्तुतः एक आख्यायिका या जीवनीपरक आख्यान अथवा जीवन वृत्तान्त नहीं था, जैसा कि बाण ने इसे कहा, बल्कि गद्य में एक काव्य था। यद्यपि राजतरंगिणी पद्य में लिखी गई, किन्तु इसे सहजता से ऐतिहासिक तथ्यों का एक आख्यान माना जा सकता है।[7]

उक्त विमर्श के आलोक में निष्कर्षतः यह कहना अपरिहार्य प्रतीत होता है कि, प्राचीन भारतीय इतिहास लेखन ने सही अर्थ में इतिहास लेखन की दिशा में कोई प्रगति नहीं की। कल्हण के एकमात्र अपवाद, जो अब भी एक सुखद रहस्य है, के अतिरिक्त प्राचीन भारतीयों ने ऐसी किसी रचना का प्रणयन नहीं किया, जिसे हम इतिहास कह सकें। पश्चिम से आयातित इतिहास की आधुनिक संकल्पना ने इतिहास-पुराण-काव्य परम्परा या इसके किसी पक्ष को इतिहास मानने से स्वाभाविक रूप से इन्कार कर दिया और प्राचीन भारत के अधिकांश आधुनिक इतिहासकारों ने भी तिरस्कारपूर्वक इसकी उपेक्षा ही की है।

## सन्दर्भ-सूची


1. पार्जिटर, एफ. ई., इण्डियन हिस्टॉरिकल ट्रेडीशन, मोतीलाल बनारसीदास, नई दिल्ली, 1947
2. थापर, रोमिला, फ्राम लिनिएज टू स्टेट, आक्सफोर्ड प्रेस, मुम्बई, 1984
3. पाठक, वी. एस., एन्श्यण्ट हिस्टोरियन्स ऑफ इण्डिया, एशिया पब्लिसिंग हाउस, लन्दन, 1963
4. उपर्युक्त
5. कीथ, ए. वी., हिस्ट्री ऑफ संस्कृत लिट्रेचर, मोतीलाल बनारसीदास, नई दिल्ली, 1993
6. पाठक; उपर्युक्त
7. श्रीधरन, ई., हिस्टोरियोग्रॉफी, ओरिएण्टल ब्लैक स्वान, नई दिल्ली, 2011


***

History
Shodh Sandarsh-V, Vol.-XVI, Sept.-2017, Page : 97-98
ISSN No. - 2319–5908 (U.G.C. Approved Journal No. : 41329)

# महाकाव्य काल में नारी की स्थिति

*डॉ. राजीव शुक्ला**

**यत्र नार्यस्तु पूज्यन्त, रमन्ते तत्र देवताः ।।**

अर्थात् जहाँ नारी की पूजा होती है वहाँ देवता निवास करते हैं।

नारी के महत्व को लेकर इस प्रकार आदर्श प्राचीन भारतीय समाज में था। किन्तु समय-समय पर नारी की स्थिति में उतार-चढ़ाव देखने को मिलता है। ऋग्वैदिक काल में शतपथ ब्राह्मण में पत्नी की पति की अर्द्धांगिनी कहा गया है। ऋग्वेद में जायेदस्तम अर्थात् पत्नी ही गृह है कहकर उसके महत्व को स्पष्टतः स्वीकार किया गया है। वहीं कन्या के जन्म को अभीष्ट नहीं माना गया है। इसके बावजूद वैदिक काल में नारियों की स्थिति अच्छी थी। किन्तु महाकाव्य काल एवं बौद्ध काल तक नारी की स्थिति में गिरावट देखने को मिलती है। रामायण और महाभारत दोनों महाकाव्यों में नारी के सम्बन्ध में जितने भी वर्णन मिलते हैं वे सभी एक दूसरे के अन्तविरोधी से लगते हैं। एक ओर नारी को पूजने की बात कही गयी है वहीं दूसरी ओर उसे सामाजिक बुराई भी कहा गया है। जहाँ तक बौद्ध काल का सवाल है तो इस काल में नारियों की स्थिति भारतीय समाज में बहुत संतोषजनक नहीं थी और उन्हें उतना सम्मान भी प्राप्त नहीं था।

महाकाव्य काल में विवाह अर्थात् नारी और पुरूष के मिलने से गृहस्थाश्रम का निर्माण होता था। जिमसें नारी का स्थान महत्वपूर्ण था। महाभारत में नारी पर किसी भी प्रकार के प्रतिबंध का वर्णन नहीं मिलता। महाभारत की भाँति रामायण में भी कन्या को दुःख का विषय माना जाता है। इसके अतिरिक्त जितने भी उदाहरण है उससे स्पष्ट होता है कि कन्या का जन्म यदि सुख का विषय नहीं था तो दुःख का भी विषय नहीं था। महाभारत कालीन कर्मकांडों में पुरुषों के साथ नारी को अनिवार्य रूप से स्वीकार किया गया है। महाभारत में तो सर्वत्र नारी का सहयोग ही दिखाई पड़ता है। गान्धारी, कुन्ती, द्रौपदी, सुभद्रा, सत्यभामा और विहुला आदि नारियों के चरित्र में जो ओजस्विता और कर्मनिष्ठा का सम्मिश्रण देखने को मिलता है वहीं उस काल में नारी का स्थान निरूपित करने में हमारा मुख्य आधार बन गया है। किन्तु ऐसी धारणा उस काल की सभी नारियों के बारे में नहीं बनायी जा सकती क्यों कि समाज को निम्न वर्ग की नारियों के सम्बन्ध में कोई उदाहरण नही मिलता। महाभारत में जिन नारी चरित्रों से हमारा साक्षात् परिचय होता है। वह मात्रा नारीत्व में सीमित नहीं बल्कि परिपूर्ण मानवता के रूप में वर्णित है।

इस काल में पुत्र और पुत्री में कोई भी अंतर नहीं समझा जाता था। जिस प्रकार पुत्रों के लिए संस्कार किये जाते थे। उसी प्रकार पुत्री का भी संस्कार होता था। महाभारत शान्तनु वन में पड़े हुए कृप अथवा कृपी जो गौतम पुत्र कन्या थी को उठाकर अपने राजमहल में लाये और शास्त्रानुसार उनका नामकरण संस्कार किये। महराज अश्वपति ने भी सावित्री के लिए जातकर्म आदि। सभी संस्कार किये थे। विवाह के पूर्व कन्या को अनेक विषयों की शिक्षा दी जाती थी। कन्या पूजा-पाठ भी करती थी। पिता के घर गान्धरी के शिव पूजा का उल्लेख मिलता है।

इस काल में संतानहीन व्यक्ति दूसरे की कन्या गोद भी लेता था। इस प्रकार की प्रथा बहुत अंशों तक दत्तक ग्रहण के समान थी। युद्ध श्रेष्ठ शूर ने अपनी कन्या पृथा अपने फुफेरे भाई भोजके दे दी थी। भोज ने उसकाा पुत्री की तरह पालन पोषण किया और स्वयंवर विधान की तरहा उसका विवाह किया। कन्याएँ विवाह पूर्व अपने घर में पारिवारिक कार्यों में सहायता भी करती थी। धीवर कन्या सत्यवती पिता के आदेश से नदी पार करने वाली मल्लाह का कार्य करती थी। महर्षि कण्व फसल संग्रह के लिए जाते समय अतिथि संस्कार का काम शकुन्तला पर छोड़कर जाते थे।

साधारणतः विवाह काल तक कन्या का पिता के घर ही पालन-पोषण होता था। महाभारत और रामायण में विवाह का स्थान सर्वश्रेष्ठ बताया गया है। स्वयंवर प्रथा इस युग में प्रचलित थी। रामायण में सीता का स्वयंवर एवं महाभारत में द्रौपदी के स्वयंवर का विशेष रूप से उल्लेख किया जा सकता है। उत्तर कुरु में यह प्रथा काफी दिनों तक विद्यमान रही। कालांतर में विवाह की प्रथा शुरु हुई उद्दालक

* *असिस्टेण्ट प्रोफेसर, प्राचीन इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्त्व विभाग, मुरली मनोहर टाउन स्नातकोत्तर महाविद्यालय, बलिया*

ऋषि पुत्र श्वेतुकेतु ने सर्वप्रथम विवाह का नियम बनाया। यदि कोई नारी पुत्रोंत्पादन के निमित्त पति के आदेश मिलने पर भी दूसरे पुरुष के साथ-संभोग न करके आदेश का उल्लंघन करती तो वह पाप की भागिनी होती थी। पति के मर जाने के बाद जो नारी दूसरे पुरुष से सम्बन्ध स्थापित करती थी, वह समाज में निन्दित समझी जाती थी। आज भी हमारे समाज में ऐसा प्रचलन है। विवाह बहुत ही पवित्र बंधन माना जाने लगा। विवाह का प्रमुख उद्देश्य पितृ ऋण का परिशोध करना था। संतान उत्पत्ति द्वारा ऋण उतरता था नारी को कन्यारूप सहधर्मिनी का रूप और माता के रूप में महाकाव्य में निरूपित किया जाता है तथा स्नेह, प्रेम और भाक्ति का प्रतीक माना जाता है। महाकाव्य काल में साधारणतः बाल विवाह का प्रचलन नहीं हो पाया था। शकुन्तला, दमयंती, सावित्री, देवयानी और सर्वनिष्ठा, आदि कोई विवाह के समय नाग्निका नहीं थी। सत्यवती, अम्बिका, अंबालिका, गान्धारी, कुन्ती, माद्री, द्रौपदी, सुभद्रा, चित्रांगदा आदि महिलाओं का विवाह यौवन काल में हुआ था, इसी प्रकार रामायण में सीता का विवाह भी यौवन काल में हुआ था। ये चारों विवाह शास्त्र सम्मत नहीं थे तथा समाज में इन्हें निन्दनीय माना जाता था। महाभारत में विधवा स्त्रियों को द्वितीय बार विवाह करने का विधान तो नहीं मिलता लेकिन वैसी स्थिति में देवर को पति के रूप में ग्रहण करने की बात कही गयी है। नियोग प्रथा को धर्मसम्मत माना गया है। विचित्रवीर्य के निःसंतान मर जाने पर उसकी रानियों के वेदव्यास से नियोग करने धृतराष्ट्र एवं पाण्डु को उत्पन्न करने का उदाहरण मिलता है। पाण्डु के अयोग्य होने पर कुन्ती तथा माद्री के नियोग द्वारा पुत्र उत्पन्न किया था। परशुराम ने जब अनेक क्षत्रियों का वध कर दिया तो पत्नियाँ ब्राह्मणों से पुत्र उत्पन्न करने लगी थी।

लेकिन महाकाव्य काल में स्त्रियों को पूर्ण स्वतंत्रता प्राप्त नहीं थी, वे बाल्यावस्था में पिता के अधीन यौवनावस्था में पति के अधीन एवं वृद्धवस्था में पुत्र के अधीन रहती थी। विवाहित स्त्री का पिता के घर देर तक रहना अच्छी दृष्टि से नहीं देखा जाता था, किन्तु संतानहीन निराश्रित विधवा का पिता के घर रहना ही अधिक प्रचलित था। सतीत्व परम धर्म समझा जाता था। सतीत्व की रक्षा में नारी का चरित्र अधिक उज्ज्वल हो उठता था, सावित्री, दमयंती, शकुन्तला, गान्धारी, द्रौपदी, सुभद्राा आदि नारियों के चरित्र पर दृष्टिपात करने पर पता चलता है कि महाभारत में वेदव्यास ने आदर्श सतीत्व का चित्रण किया है।

शिक्षा के क्षेत्र में इस काल की नारियों को पूर्ण स्वतंत्रता एवं प्रतिष्ठा प्राप्त थी। विशिष्टता प्राप्त करने पर उन्हें सम्मानित किया जाता था। वास्तव में वह यज्ञ में भी भाग लेती थी तथा राम के युवराज पद पर अभिषेक के समय तक कौशल्या ने यज्ञ किया था। महाभारत से ज्ञात होता है कि कुन्ती अथर्ववेद में पारंगत थी। इससे स्पष्ट होता है कि स्त्रियाँ विद् एवं पण्डित हुआ करती थी। कुछ ऐसी भी नारियों थी जो जीवन पर्यन्त अध्ययन में लीन रहती थी और अविवाहित रह जाती थी।

ऋषि कुशध्वज की कन्या वेदवती ऐसी ही थी ऐसी स्त्रियाँ बहुमुखी प्रतिभा सम्पन्न होती थी जो ज्ञान और बुद्धि में पारंगत ही नहीं अपितु अनेक मंत्रों की अद्रात्री भी होती थी। वे दर्शन, तर्क, मीमांसा जैसे जटिल एवं गूढ़ विषय की अत्यधिक पंडित होती थी। काश कृत्सना ने मीमांसा जैसे जटिल एवं गूढ़ विषय का अत्यधिक अध्ययन किया था, जिसके कारण कालान्तर में उसी के नाम पर वह विख्यात हो गयी। याज्ञवल्क्य की पत्नी गार्गी विख्यात दार्शनिक थी। उपर्युक्त तथ्यों के विश्लेषण से यह स्पष्ट होता है कि नारी की स्थिति में पतन होने के पश्चात भी शिक्षा के क्षेत्र में उनकी अवस्था दयनीय नहीं हो पायी थी। अब भी समाज में उनका ऊँचा स्थान था लेकिन इस काल में कहीं-कहीं नारी की काफी निन्दा की गयी है। श्री मदभागवत् गीता में एक जगह उल्लेख है कि इस जन्म के पापों के साथ ही अगला जीवन स्त्री के रूप में जन्म ग्रहण करते हैं। इस काव्य में स्त्रियों को समस्त पापों का मूल समझा जाता था तथा इस लड़की के जन्म पर शोक प्रकट किया जाता था। कहीं कहीं तो उनका घोर तिरस्कार भी होता था। उदाहरणतः दुर्योधन ने भी सभा के बीच द्रौपदी का अपमान किया किन्तु किसी भी व्यक्ति ने उसका विरोध नहीं किया तथा सीता को भी पवित्रता साबित करने के लिए अग्नि परीक्षा देनी पड़ी थी। किन्तु समाज में इस प्रकार के उदाहरण बहुत कम थे। उन्हें काफी स्वतंत्रता प्राप्त थी और सम्मान की दृष्टि से देखा जाता था। पर्दा प्रथा का विकास नहीं होने के कारण वे स्वतंत्रता पूर्वक घर के बाहर जाती थी। कैकेयी तो दशरथ के साथ के साथ युद्ध में भी गई थी। यज्ञों में पति के साथ उसकी उपस्थिति अब भी अनिवार्य थी। सब मिलाकर यही कहा जा सकता है कि उनकी स्थिति महाकाव्य काल में अच्छी थी।

## सन्दर्भ ग्रन्थ सूची


1. भट्टाचार्य सुखराम : महाभारत कालीन समाज इलाहाबाद 1966, पृष्ठ 62
2. आर.पी. एच गिफिथ, रामायण, उत्तरकाण्ड गीता प्रेस, गोरखपुर 1985
3. पी.पी. शास्त्री महाभारत, अनुशासन पर्व, मद्रास 1931, 03.05.20
4. उपरोक्त वनपर्व, 292, 231
5. महाभारत आदिपर्व 95, 103, 104 अनुशासन पर्व 344, 52-53
6. पराशर ग्रन्थसूत्र : गुजराती प्रेसस संस्करण 1966-69
7. महाभारत वनपर्व 13,2,9
8. महाभारत आदि पर्व 69,18
9. आर.टी.एच. ग्रिफिथ, रामायण पूर्वधृत 2, 20 15


***

History
Shodh Sandarsh-V, Vol.-XVI, Sept.-2017, Page : 99-102
ISSN No. - 2319–5908 (U.G.C. Approved Journal No. : 41329)

# मौर्य एवं मौर्योत्तर कालीन रेशमी एवं क्षौम वस्त्र उद्योग

*डॉ. मनोज कुमार दुबे**

प्राचीन काल से ही आर्थिक गतिविधियाँ मानव जीवन में एक महत्वपूर्ण भूमिका में रही हैं। जिसके अन्तर्गत विभिन्न प्रकार के उद्योगों तथा उससे जुड़े वर्ग की विशिष्ट भूमिका होती है। भारत में प्राचीन काल से ही विभिन्न उद्योगों का आविर्भाव हुआ और इस क्षेत्र में निरन्तर प्रगति होती रही। इसमें एक वस्त्र उद्योग महत्वपूर्ण उद्योग था। प्राचीन भारत के मौर्य एवं मौर्योत्तर काल में रेशमी एवं क्षौम वस्त्र उद्योग का अध्ययन एवं विश्लेषण किया जा रहा है।

भारतीय साक्ष्यों में रेशम/रेशमी वस्त्रों के स्पष्ट विवरण सबसे पहले वेदोत्तरकाल के साक्ष्यों में मिलते हैं,[1] और अनुवर्ती कालों में उनकी लोकप्रियता बढ़ती गयी। मौर्ययुग में ऊनी, सूती, रेशमी, क्षौम आदि सभी प्रकार के वस्त्रों के उत्पादन में अभिरुचि दिखाई गई। मौर्यों ने पहली बार वस्त्र-उद्योग में लगे शिल्पियों के वेतन पारिश्रमिक की दरें निर्धारित की थी और उन्हें प्रोत्साहन भी दिया था। अर्थशास्त्र में रेशमी वस्त्रों की बुनाई की मजदूरी सूती वस्त्रों से डेढ़ गुनी और पत्रोंण (रेशम का एक प्रकार) की ऊनी वस्त्रों (कंबल, दुशालों) से दो गुनी बतायी गयी है।[2] सूत्राध्यक्ष से यह अपेक्षित था कि वह क्षौम, दुकूल, कीटज रेशम एवं कपास के मोटे, मध्यम एवं महीन प्रकार के वस्त्र बुनने वालों को इत्र, फूलमालाएँ तथा अन्य वस्तुएँ देकर प्रसन्न रखें।[3] कौटिल्य ने क्षौम, दुकूल, कृतांतक (कीटज रेशम) के वस्त्रों/धागों पर चुंगी उनके विक्रय मूल्य का दसवाँ या पन्द्रहवाँ भाग निर्धारित की थी।[4]

विभिन्न स्रोतों में वर्णित विभिन्न प्रकार के रेशम/रेशमी वस्त्रों के लिए 'कोशेय', तार्प्य, अंशुक एवं पट्ट, 'चीनांशुक/चीनपट्ट', नेत्र एवं पट्ट/गंगापट्ट; 'पत्रोंण', 'दुकूल' शब्दों का प्रयोग किया गया है। 'कोशेय' का सबसे पहले स्पष्ट उल्लेख पाणिनि[5] की अष्टाध्यायी में आया है। पाणिनि तथा पतंजलि ने इसे व्यापारिक वस्तुओं में शामिल किया गया है।

कोशेय शब्द शहतूत की पत्तियों पर पलने वाले कीड़ों के कोए से निर्मित रेशम के लिए प्रयुक्त हुआ है। सबसे पहले वार्तिककार कात्यायन ने इसे रेशम के कीड़ों से जनित रेशम बताया।[6] महाभारत में इसे 'कीटज' कहा गया है,[7] अर्थशास्त्र में 'कृमीतान'[8] और पंचतंत्र में 'कृमिज'।[9]

अवंति के शासक के विषय में कहा गया है कि उसके पास शिवि जनपद (उत्तरी पंजाब) में बनी रेशम मिश्रित एक कीमती चादर थी। वैद्यराज जीवन ने अवंति शासक को पांडु रोग से मुक्त किया था। इसलिए प्रसन्न होकर प्रद्योग ने वह चादर उसे भेंट कर दी।[10] शिक्खु पात्तिमोक्ख में भी कोशेय मिश्रित वस्त्र का उल्लेख है।[11] एक अन्य संदर्भ में बताया गया है कि कुछ बौद्ध भिक्षुओं ने रेशम के बुनकरों (कोसकार) से रेशम मिश्रित कंबल आदि बनाने के लिए कहा था। इस काल में भिक्षुओं की उक्त माँग पर आश्चर्य हुआ था।[12] कौटिल्य के अर्थशास्त्र में उल्लिखित कोशेय को गणपति शास्त्री ने कोशकार देश में उत्पादित रेशम माना है।[13]

भारतीय साक्ष्यों में चीन के रेशम के प्राचीनतम उल्लेख कौटिल्य के अर्थशास्त्र और जैन आचारांगसूत्र में मिलते हैं। कौटिल्य के अर्थशास्त्र[14] में इसके लिए 'चीनपट्ट' शब्द आया है और इसे चीन भूमिज (चीन में उत्पादित) बताया गया है। आचारांगसूत्र[15] में इसे 'चीनांशुक' कहा गया है। ये दोनों उल्लेख प्रथम द्वितीय सदी ईसवी के आस-पास के हैं। चौथी तथा बाद की सदियों के भारतीय साक्ष्यों में चीनांशुक के उल्लेख में पर्याप्त वृद्धि दिखाई पड़ती है।

के. पी. जायसवाल[16] तथा वी. आर. दीक्षितार[17] ने अर्थशास्त्र में उल्लिखित चीन भूमि को चीन देश के बजाय जम्मू के गिलगित प्रदेश की 'शीन' नामक जनजाति मानी है। लेकिन मेरा अपना मत है कि चीनपट्ट या चीनभूमिज का सीधा अर्थ चीन का रेशम है जिसे अन्य साक्ष्यों में चीनांशुक कहा गया है।

* *प्राचीन इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्त्व विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद*

'पत्रोंण' नामक रेशमी वस्त्र का विवरण अर्थशास्त्र[16] में प्राप्त होता है। इस ग्रंथ में मगध (दक्षिणी बिहार), पुण्ड्र (उत्तरी बंगाल) और सुवर्णकुड्य (असम)[19] पत्रोर्ण के उत्पादन के प्रसिद्ध केन्द्र बताये गये हैं। साथ ही यह भी वर्णित है कि नागवृक्ष (की छाल के रेशों) से बनाया जाने वाला पत्रोर्ण दुधिया/मक्खनी रंग का होता है। यह रंगभेद स्पष्टतः उपर्युक्त वृक्षों के रेशों के भिन्न-भिन्न रंग होने का कारण ही था।[20] कौटिल्य (4.1) ने पत्रोर्ण की बुनाई की पारिश्रमिक सूती कपड़ों की बुनाई दो गुना निर्धारित किया था। महाभारत[21] में भी पत्रोर्ण का उल्लेख है।

दुकूल वस्त्र वेदोत्तर काल से सामान्य प्रचलन में आ गये थे। उनके प्राचीनतम उल्लेख जातक कथाओं[22] तथा कौटिल्य के अर्थशास्त्र में मिलते हैं। जोगेसचन्द्र राय[23] के अनुसार सर्वोत्तम क्षौम को ही दुकूल कहा जाता था और यह रेशम की तरह बारीक होता था। आचारांगसूत्र[24] के टीकाकार ने दुकूल को गौड़ विषय में पैदा होने वाले एक विशिष्ट प्रकार के कपास का वस्त्र माना है। वासुदेवशरण अग्रवाल[25] के अनुसार दोहरी चादर अथवा थान के रूप में विक्रय के लिये जाने के कारण इसे पट्टदुकूल या दुकूल कहा जाने लगा। वार्मिंगटन[26] के अनुसार शायद दुकूल का ही रोमन लेखकों ने बाइस्सॉस के नाम से उल्लेख किया है।

कई साक्ष्यों[27] में दुकूल तथा क्षौम पृथक वस्त्रों के रूप में वर्णित है। इसलिए दोनों को एक ही नहीं माना जा सकता। वासुदेव शरण अग्रवाल का उपर्युक्त मत किसी स्पष्ट साक्ष्य पर आधारित न होने के कारण ग्राह्य नहीं है। बाइस्सॉस तथा दुकूल ये दोनों नाम नितांत भिन्न प्रतीत होते हैं। इसलिए दोनों को एक मानना उचित नहीं लगता। दुकूल वस्तुतः इसी नाम के वृक्ष की छाल को कूटकर इसके रेशे से बनाया जाता था[28] विभिन्न प्रकार के दुकूल वस्त्रों के लिए बंगाल सर्वाधिक प्रसिद्ध था। अर्थशास्त्र[29] के विवरणानुसार बंग (पूर्वी बंगाल) में बने दुकूल वस्त्र सफेद तथा मुलायम होते थे। पौण्ड्र देश (उत्तरी बंगाल) के दुकूल नीले एवं चिकने होते थे। जबकि सुवर्णकुड्य (असम) के दुकूल हल्के लाल रंग (सूर्य वर्ण) के होते थे। दुकूल का प्राकृतिक रंग हल्का पीला होता था।

क्षौम वस्त्रों की लोकप्रियता वेदोत्तरकाल में बढ़ी। जातक कथाओं[30] में क्षौम वस्त्रों के उल्लेख हैं। दीघनिकाय के विवरणानुसार शाक्य जनपद का खोमदुस्सनगर क्षौम वस्त्रों के लिए प्रसिद्ध था।[31] कोटुम्बर जनपद के क्षौम वस्त्रों का भी उल्लेख है। अर्थशास्त्र[32] में काशी तथा पुण्ड्र (उत्तरी बंगाल) क्षौम वस्त्रों के महत्वपूर्ण केन्द्र बताये गये हैं। मौर्यकाल तक अतसी की खेती बड़े पैमाने पर की जाने लगी थी। कौटिल्य ने सीताध्यक्ष (कृषि विभाग का प्रधान) को उचित समय पर अतसी के बीज-संग्रह करने की सलाह दी थी।[33] तक्षशिला के राजा के विषय में भी बताया गया है कि उसने अपोलियोनस को क्षौम वस्त्र भेंट किये थे।[34] अर्थशास्त्र[35] में क्षौम, कीटन आदि के बुनकरों का वेतन/मजदूरी सूती वस्त्रों से डेढ़ गुनी बताई गई है। साथ ही सूत्राध्यक्ष को सलाह दी गयी है कि वह राजकीय सूत्रशाला में क्षौम, दुकूल, रेशम, रंकु कपास के सूत कातने वाले शिल्पियों को इत्र, फूल, मालाएँ एवं अन्य वस्तुएँ देकर प्रसन्न रखे।[36]

मौर्योत्तर काल में रेशमी वस्त्रों की गुणवत्ता में पर्याप्त वृद्धि हुई। पतंजलि ने व्यापारिक वस्तुओं में रेशम को भी शामिल किया था[37] और पुहार नगर में दुकानों के अतिरिक्त बुनकर सड़कों पर सूती तथा लोम के वस्त्रों के साथ रेशमी वस्त्र भी बेचते थे।[38] रेशम के बुनकरों (कौशाविक) के श्रेणी-संगठनों के उल्लेख सबसे पहले इसी काल के साहित्य में मिलते हैं।[39] महावस्तु अवदान में उल्लेख है कि कांपिल्यनगर (उत्तर प्रदेश के फर्रुखाबाद जिले में) की एक गणिका ने एक युवक को काशी के मूल्यवान रेशमी वस्त्र भेंट किये थे।[40] प्रथम सदी ईस्वी के आसपास भारत का चीन के साथ संपर्क स्थापित हुआ, और शायद इसी काल में भारत के बुनकरों ने शहतूत पर पलने वाले रेशम के कीड़ों से रेशम-उत्पादन की तकनीकी सीखी थी।[41] पेरिप्लस के लेखक के अनुसार चीन से कच्चा रेशम तथा रेशम के धागे स्थल मार्ग से बैक्ट्रिया के रास्ते से बेरीगजा लाए जाते थे, और गंगा के रास्ते से नेलकिंडा, मुजिरिस तथा मालावार तट के अन्य बंदरगाहों में पहुँचाये जाते थे। कावेरीपत्तन भी रेशम क्रय-विक्रय का एक महत्वपूर्ण केन्द्र था।[42] इन व्यापारिक केन्द्रों से रेशम विदेशों को निर्यात किया जाता था।[43] भारतीय व्यापारी इसमें बिचौलिए के रूप में लाभ कमाते होंगे।

आगस्टस के राज्यकाल (ईसा पूर्व 31-14 ई.) में रोमन साम्राज्य में विदेशों से भारी मात्रा में रेशम का आयात किया जाता था, और बदले में रेशम के वजन के बराबर सोना दिया जाता था। इसके कारण रोमन अर्थव्यवस्था गिरती जा रही है। अतः रोम के शासक तिबेरियस (14-37 ई.) ने यह प्रचार कराया कि रेशमी वस्त्र पहनने से शरीर अशुद्ध हो जाता है और त्वचा की बीमारी भी हो जाती है।[44] इसलिए रेशमी वस्त्र का परित्याग करना चाहिए। जस्टीनियन के राज्यकाल में पार्थिया तथा अन्य देशों के व्यापारियों ने रेशम की कीमतें बहुत बढ़ा दी थी। इससे तंग आकर उसने आयातित रेशम का मूल्य आठ दीनार निर्धारित कर दिया।[45]

मौर्योत्तर काल के स्रोतों में वर्णित विभिन्न प्रकार के रेशम/रेशमी वस्त्रों का विवरण मिलता है। इनमें कोशेय, तार्प्य, अंशुक एवं पट्ट, चीनांशुक/चीनपट्ट, नेत्र एवं पट्ट/गंगापट्ट, पत्रोर्ण, दुकूल हैं। कात्यायन के वार्तिक, महाभारत, पंचतंत्र और अमरकोष में कोशेय वस्त्र का उल्लेख मिलता है। विभिन्न टीकाकारों ने तार्प्य नामक वस्त्र को 'मलमल का वस्त्र' त्रिपर्ण नामक पौधे की

छाल से बना वस्त्र, अथवा 'जंगली सन' बताया है। एन.सी. बंद्योपाध्याय[46] तथा मोतीचंद्र[47] ने तार्प्य नामक वस्त्र को 'टसर' माना है जबकि वैदिक इंडेक्स के लेखकों[48] ने इसे केवल रेशमी वस्त्र बताया है और इसके प्रकार के सम्बन्ध में कुछ नहीं कहा। कात्यायन श्रोतसूत्र में यज्ञीय उपकरणों की आकृतियों से अलंकृत तार्प्य का उल्लेख है।[49] इससे बने वस्त्रों को धार्मिक कृत्यों को संपन्न करते समय पहना जाता था। वृहत्कल्पभाष्य (2.36.62) में वर्णित कीटज रेशम के पाँच प्रकारों (पट्ट, मलय, अंशुक, चीनांशुक और कृमिराग) में पट्ट तथा अंशुक भी शामिल हैं।[50] वृहतकल्पभाष्य[51] में चीनांशुक को कोशकार नामक कीड़े से बना रेशम या चीन जनपद के रेशम से बना वस्त्र बताया गया है। महाभारत[52] में पत्रोर्ण का उल्लेख मिलता है। जोगेसचन्द्र राय[53] के अनुसार सर्वोत्तम क्षौम को ही दुकूल कहा जाता था और यह रेशम की तरह बारीक होता था। आचारांग सूत्र[54] के टीकाकार ने दुकूल को गौड़ विषय में पैदा होने वाले एक विशिष्ट प्रकार के कपास का वस्त्र माना है। विभिन्न प्रकार के दुकूल वस्त्रों के लिए बंगाल सर्वाधिक प्रसिद्ध था। दिव्यावदान[55] में ऊन तथा दुकूल के रेशों को मिलाकर आकर्षक वस्त्र बनाने का विवरण है– उर्णा दुकूलमय–शोभन-वस्त्राणि।

अतसी (लिन्सीड) के भीतरी छाल के रेशों से बने वस्त्रों को प्राचीन भारतीय साक्ष्यों में क्षौम वस्त्र रेशमी से कम नहीं थे। मौर्योत्तर काल से बौद्ध[56] एवं जैन भिक्षुओं[57] को भी कौशेय तथा क्षौम वस्त्र पहनने की अनुमति दे दी गयी थी। महाकाव्यों में राजाओं, राजकुमारों तथा रानियों को अधिकांशतः क्षौम वस्त्र पहने दिखाया गया है। रामायण में कौशल्या, सीता, दशरथ, भरत, रावण तथा राजपरिवार के अन्य सदस्यों को विभिन्न रंगों के आकर्षक क्षौम वस्त्र पहने दिखाया गया है। मरणोपरांत रावण का शव भी क्षौम वस्त्रों में लपेटा गया था।[58] मनु[59] के अनुसार क्षौम चोरी करने वाले को अगले जन्म में मेढक की योनि मिलती है। तथापि आपत्तिकाल में भी ब्राह्मण के लिए क्षौम के विक्रय द्वारा जीवन यापन करना वर्जित था।[60]

औद्योगिक विकास में उद्योगों एवं व्यापार के लिए पूँजी तथा अनुभव के साथ-साथ कुशल शिल्पी या कारीगर एवं अकुशल श्रमिक वर्ग का विशेष-महत्व होता है। यातायात के साधन से उद्योगों का विकास हुआ। कच्चा माल प्राप्त करने तथा तैयार माल के विक्रय के लिए बाजार की आवश्यकता होती है। ये सभी परिस्थितियाँ मौर्य एवं मौर्योत्तर काल में प्राचीन भारत में मौर्ययुग में पहली बार वस्त्र उद्योग के विकास के लिए प्रभावी नीति अपनाई गई थी। वस्त्र उद्योग में कार्यरत कुशल एवं अकुशल कारीगरों के वेतन/पारिश्रमिक भी पहली बार मौर्यकाल में ही निर्धारित किये गये थे। रेशमी एवं क्षौम वस्त्रों की विदेशी बाजारों में अत्यधिक माँग थी। शकों एवं कुषाणों के शासनकाल में रेशम मार्ग को प्रसिद्धि मिली। रेशम उद्योग के श्रेणी संगठनों को राजाओं से प्रोत्साहन एवं संरक्षण मिला। जिसके कारण मौर्य एवं मौर्योत्तर काल में यह उद्योग विकसित उद्योग बन गया था।

## सन्दर्भ-सूची


1. अष्टाध्यायी, 4.3.42; कप्पास कोस्सेयं खोम कोटुम्बरानि–जातक, भाग 3, पृ. 296; जातक 6, पृ. 47; सिंह, एम.एम. : लाइफ इन नार्दन इण्डिया इन प्री मौर्यान टाइम्स, पृ. 220.
2. अर्थशास्त्र, 4.1
3. वही, 2.23
4. वही, 2.22
5. अष्टाध्यायी, 4.3, 4.2; अग्रवाल, वी.एस. : इण्डिया एज नोन टू पाणिनि, पृ. 245-246
6. अग्रवाल, वी. एस. : पूर्वोद्धरित, पृ. 125
7. महाभारत, सभापर्व, अध्याय 50
8. अर्थशास्त्र, 2.22 तथा 2.23
9. पंचतंत्र, पृ. 38
10. टेक्सटाइल इन दि विनय, इन बुलेटिन ऑव दक्कन कालेज, पूना, 49, पृ. 233
11. बंद्योपाध्याय, एन.सी. : इकॉनामिक लाइफ एण्ड प्रोग्रेस इन एन्श्येन्ट इण्डिया, कलकत्ता, 1945, पृ. 218
12. विनयपिटक, (सं. ओल्डेनबर्ग), भाग-1, पृ. 195-196
13. अर्थशास्त्र (सं. गणपति शास्त्री), भाग-1, पृ. 195-196
14. चीनपट्टाश्च चीन भूमिजा व्याख्याता; अर्थशास्त्र 2.11
15. आचारांगसूत्र, से.बु.ई. 22, पृ. 157-158
16. जायसवाल, के.पी. : हिन्दू पॉलिटी, पार्ट-2, एपेन्डिक्स सी
17. दिक्षितार, वि. आर. : मौर्यन पॉलिटी, पृ. 6-7

18. मागधिका, पौण्ड्रिका सौवर्णकुड्यका च पत्रोर्ण–अर्थशास्त्र, 2.2
19. अर्थशास्त्र (सं. कांगले), भाग-2, पृ. 104
20. अर्थशास्त्र, 2.11
21. महाभारत, 2.48.17
22. जातक, 1, पृ. 16
23. जे.बी.ओ. आर.एस. 3, पृ. 191-192
24. गौड़ विषय विशिष्ट कापासिक, आचारांगसूत्र, 1.7.5.1
25. अग्रवाल, वासुदेव शरण : हर्षचरित एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ. 78
26. वार्मिंगटन, ई.एच. : दि कामर्स बिट्वीन दि रोमन एम्पायर एण्ड इण्डिया दिल्ली, 1974, पृ. 212
27. क्षौम-दुकूल–क्रिमितान, अर्थशास्त्र 2.22, हर्षचरित 4, पृ. 245, याज्ञवल्क्य 2.61
28. निशीथपूर्ण 7, पृ. 10-12
29. जातक, भाग-6, पृ. 47
30. उपाध्याय, भरत सिंह : बुद्धकालीन भारतीय भूगोल, पृ. 526
31. तेन काशिकं पौण्ड्रक च क्षौमं व्याख्यातम् । अर्थशास्त्र, 2.11
32. अर्थशास्त्र, 2.24
33. मजूमदार, आर.सी. : क्लासिकल एकाउण्ट्स ऑफ इण्डिया, पृ. 393
34. क्षौमकौशेयानां-ध्यर्धगुणम् – अर्थशास्त्र, 4.1
35. क्षौमंदुकूल–क्रिमितानरांकव–कार्पास–सूत्रपान–कर्मान्ताश्चप्रियु जनों गंधमाल्यदानेर यैश्चौप ग्राहिकैराराधयेत – अर्थशास्त्र, 2.23
36. अर्थशास्त्र, 2.23
37. अग्निहोत्री, प्रभुदयाल : पतंजलि कालीन भारत, पृ. 329.31
38. शिलप्पादिकारम् : 14.180.200
39. महावस्तु, भाग-3, पृ. 442; ललितविस्तार (हिन्दी अनुवाद), पृ. 298-99
40. बसाक, आर.जी. : महावस्तु अवदान, जे. एन. बनर्जी, वाल्यूम, 1960, पृ. 26
41. शर्मा, आर.एस. : अर्बन डिके, पृ. 145
42. वार्मिंगटन, इ.एच. : दि कामर्स बिट्वीन दि रोमन एम्पायर एण्ड इण्डिया, दिल्ली 1974, पृ. 176-77
43. आद्या, जी. एल. : अर्ली इण्डियन इकॉनामिक्स, पृ. 161
44. चक्रवर्ती, एच. : ट्रेड एण्ड कामर्स इन एन्श्येन्ट इण्डिया, पृ. 223
45. मैटी, एस.के. : इकॉनामिक लाइफ इन नादर्न इण्डिया, पृ. 97
46. बंद्योपाध्याय, एन.सी. : इकॉनामिक लाइफ एण्ड प्रोग्रेस इन एन्श्येन्ट इण्डिया, पुर्नमुद्रित, इलाहाबाद, 19.92.93, पृ. 151
47. मोतीचंद्र : प्राचीन भारतीय वेशभूषा, पृ. 13
48. वैदिक इंडेक्स-I, पृ. 308
49. कात्यायन, श्रोतसूत्र, 15.5.11
50. जैन, जे.सी. : लाइफ इन एन्श्येन्ट इण्डिया एज डेपिक्टेड इन जैन केनन एण्ड कमेंट्रिज, पृ. 364
51. वृहत्कल्पभाष्य, 4.3361
52. महाभारत, 2.48.17
53. जे.बी.ओ.आर.एस., 3, पृ. 191-192
54. गौड़ विषय विशिष्ट, कार्पासिक–आचारांगसूत्र, 1.7.5.1
55. दिव्यावदान, पृ. 316
56. महावग्ग, 8.8.36
57. आचारांगसूत्र, 17.4.1; 2.5.1.1
58. लंकाकाण्ड, अध्याय 6, पृ. 113
59. मनुस्मृति, 12.64
60. मनुस्मृति, 10.87; तुलनीय नारदस्मृति, 1.62-63

***

History

Shodh Sandarsh-V, Vol.-XVI, Sept.-2017, Page : 103-105
ISSN No. - 2319–5908 (U.G.C. Approved Journal No. : 41329)

# प्रयाग परम्परा

*डॉ. अनूप कुमार**

भारतीय परम्परा बहुआयामी सांस्कृतिक विधाओं का ही हिस्सा है जो अलिखित होते हुए भी इतनी समृद्ध है कि उसकी अपेक्षा करना सम्भव नहीं है। यही कारण है कि इस राष्ट्र के अतीत एवं वर्तमान का इतना घनिष्ठ सम्बन्ध है कि इसके अतीत को जाने बिना वर्तमान को समझ पाना तथा भविष्य की कल्पना बहुत कठिन है। निःसंदेह वर्तमान और अतीत के संवाद से ही संस्कृति एवं इतिहास का जन्म होता है, जो हमारे पारम्परिक मूल्यों की निधि ही नहीं है बल्कि मनुष्य को सभ्य समाज के लिए परिमार्जित कर उसे संस्कारवान बनाने का कारण भी है। भारतीय संस्कृति ने अपने सहस्राब्दियों में जिन सांस्कृतिक एवं दार्शनिक मूल्यों को जन्म दिया, जिन जीवन-मूल्यों और जीवन-शैलियों की रचना की, उनके समवाय की झलक तीर्थराज प्रयाग में मिलती है। प्राचीन साहित्य की दृष्टि से प्रयाग गंगा-यमुना नदियों के संगम पर स्थित है, लेकिन त्रिवेणी अथवा गंगा-यमुना-सरस्वती नदियों के संगम की कल्पना मध्ययुगीन प्रतीत होती है। वाल्मीकि रामायण, महाभारत, प्राचीन पुराणों व कालिदास के ग्रन्थों में गंगा-यमुना के ही संगम का वर्णन मिलता है। वाल्मीकि-रामायण में प्रयाग का उल्लेख भारद्वाज के आश्रम के सम्बन्ध में है और इस स्थान पर घने जंगल की स्थिति बतायी गयी है।[1] इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि प्रयाग में रामायण की कथा के समय घने जंगल तथा ऋषि-मुनियों के आश्रम थे। महाभारत में भी गंगा-यमुना के संगम का उल्लेख तीर्थ के रूप में हुआ है, यद्यपि यह क्षेत्र किसी नगर या जनसंकुल क्षेत्र के रूप में नहीं प्रतीत होता है।[2] सम्राट अशोक ने अपना प्रसिद्ध प्रयाग-स्तम्भ यहीं स्थापित किया था, इसी पर गुप्तराजवंश के सम्राट समुद्रगुप्त की प्रसिद्ध प्रयाग-प्रशस्ति अंकित है। कालिदास के रघुवंश के 13वें सर्ग में गंगा-यमुना के संगम का मनोहारी वर्णन करते हुए यहाँ किये स्नान को मुक्तिदायक माना है।[3] विष्णुपुराण में प्रयाग में गुप्त नरेशों का शासन तथा इसे उच्चकोटि के तीर्थ होने की बात कही गयी है।[4] चीनी यात्री युवानच्वांग ने कन्नौज के प्रसिद्ध शासक हर्ष का प्रति पांचवें वर्ष प्रयाग के मेले में जाकर सर्वस्व दान करने का अपूर्व वर्णन मिलता है। एक पौराणिक कथा के अनुसार ऐसा माना जाता है कि प्रतिष्ठानपुर वर्तमान झूँसी, प्रयाग व संगम क्षेत्र से लगा गंगा के उस पार का क्षेत्र, चन्द्रवंशी राजा पुरु की राजधानी थी। इनके वंशज पुरुरवा थे जो मनु की पुत्री इला और बुध के पुत्र थे।[5] इला के नाम पर ही प्रयाग को इलाबास कहा जाता है। बौद्ध ग्रंथ अंगुत्तर निकाय में जिन सोलह महाजनपदों की सूची प्राप्त होती है उसमें वत्स महाजनपद भी था। जिसकी राजधानी कौशाम्बी थी। यहाँ का शासक उदयन चन्द्रवंश से था, इस तथ्य से भी प्रयाग में चन्द्रवंशी शासकों के शासन की पौराणिक कथा की पुष्टि होती है। इस प्रकार इस तथ्य का भी प्रमाण मिल जाता है कि प्रयाग का एक प्राचीन नाम इलाबास भी था जिसे कालांतर में मुगलशासक अकबर ने इसी नाम को थोड़ा बदलकर इलाहाबाद कर दिया। अकबर के समकालीन इतिहास लेखक बदाँयूनी के वृत्तांत से भी सूचना मिलती है कि अकबर ने यहाँ एक राजमहल की नींव रखी तथा नगर का नाम इलाहाबाद कर दिया। अकबर ने संगम पर स्थित किसी पुराने किले का जीर्णोद्वार करके उसका विस्तार करवाया और उसे वर्तमान सुदृढ़ किले का रूप दिया।[6] इस तथ्य की पुष्टि तुलसीदास के वर्णन से होती है, जिसमें प्रयाग में एक सुदृढ़ गढ़ का वर्णन है।[7] अकबर के समय ही अशोक का स्तम्भ कौशाम्बी से प्रयाग लाया गया वर्तमान में यह इलाहाबाद के किले में सुरक्षित है। अशोक और समुद्रगुप्त के लेखों के अतिरिक्त इस पर जहाँगीर तथा बीरबल के भी लेख अंकित हैं। 64 एकड़ में फैला चौकोर खुसरोबाग भी इसी क्षेत्र है, जिसका निर्माण जहाँगीर के समय किया गया था। इस बाग में अनेक मकबरों के साथ खुसरो का भी गुंबद वाला मकबरा है। उल्लेखनीय है कि 1662 ई. में जहाँगीर ने अपने विद्रोही पुत्र खुसरो को मृत्युदण्ड दे दिया था। अभी तक चौक क्षेत्र में वह नीम के पेड़ भी थे जिन पर 1857 के स्वतंत्रता संग्राम के जांबाज़ राष्ट्रभक्तों को फांसी दी गयी थी। प्रयाग की इसी धरा पर वह पार्क भी मौजूद है जहाँ राष्ट्रभक्त चन्द्रशेखर आज़ाद शहीद हुए थे, अब उस अल्फ्रेड पार्क का नाम बदलकर चन्द्रशेखर आज़ाद पार्क कर दिया गया है। मेरी मातृ शिक्षण संस्था जो विश्व में इलाहाबाद विश्वविद्यालय के नाम से प्रसिद्ध है, से लगा हुआ यह स्वराजभवन तथा आनंदभवन है जहाँ से अंग्रेजों

* *विभागाध्यक्ष, पी.जी. डिपार्टमेंट ऑफ हिस्ट्री, गाँधी फेज-ए-आम कॉलेज, शाहजहाँपुर*

के विरुद्ध राष्ट्रभक्तों द्वारा योजनायें तैयार की जाती थीं। इसी तरह अनेकानेक ऐसी धरोहरें उपलब्ध हैं जिनके चलते भारत ही नहीं वरन् सम्पूर्ण विश्व के पर्यटकों को अपनी ओर आकर्षित करती हैं।

प्रयाग भूमि के उक्त ऐतिहासिक पृष्ठभूमि के वर्णन के उपरांत उन परम्पराओं का विश्लेषण होगा जो करोड़ों देशवाशियों की आस्था की गहराइयों में उतर गयी हैं और जिन्होंने एक विशाल जन समुदाय को एक सूत्र में पिरोकर सांस्कृतिक अविच्छिन्नता व राष्ट्रीय एकता का आश्चर्यजनक उदाहरण प्रस्तुत किया है। तीर्थ मानव-मूल्यों के स्रोत स्वरूप ही नहीं बल्कि अनेक सामाजिक बुराइयों को समाप्त कर सकने में सक्षम भी हैं। सत्य, क्षमा, इन्द्रियनिग्रह, दया, दान, संतोष, मृदुता, ब्रह्मचर्य, तपस, भाव की विशुद्धता, मन की पवित्रता, तीर्थ के दर्शन की योग्यता और परिणाम दोनों हैं। अनेक धार्मिक कर्मकाण्डों, यज्ञ आदि आयोजन सभी लोगों के लिए सुलभ नहीं हो पाते हैं। लेकिन तीर्थाटन बच्चे, वृद्ध, गृहस्थ, संन्यासी, भिखारी, राजा, अज्ञानी, विद्वान आदि सबके लिए सुलभ व सबको समान फल प्रदान करने वाला होता है। महाभारत में भी कहा गया है कि तीर्थाटन के समय द्विज और शूद्र, पुरुष और स्त्री का भेद मिट जाता है, छुआ-छूत का भाव स्थगित रहता है। उस समय न तो कोई शूद्र होता है और न ही कोई अछूत।[8] भारतीय संस्कृति संकीर्णता व कट्टरता को नहीं बल्कि सर्वकल्याण सहिष्णुता को अपनाये रखा। उन्होंने जिन क्षेत्रों पर अधिकार किया या उपनिवेश स्थापित किये वहाँ भी सांस्कृतिक नगरों, तीर्थों की स्थापना की। जैसे दक्षिण-पूर्व एशिया में भारतीयों द्वारा स्थापित उपनिवेश आज के प्रचलित अर्थों में उपनिवेश नहीं थे बल्कि वहाँ की धरती को भी पुण्य व पवित्र भूमि में बदल दिया। तीर्थ उस स्थल को कहते हैं जहाँ से पार किया जा सके। यह स्थान नदी, आश्रम, अरण्य, पर्वत आदि हो सकते हैं, यही नहीं ऋषियों व महापुरुष का सानिध्य भी तीर्थ जैसा माना जाता है। यही कारण है कि भारत भूमि का कण-कण पवित्र एवं तीर्थवत् है और पुण्य का स्रोत माना जाता है।[9] जिस प्रकार शरीर में मस्तिष्क आदि कुछ अंग पवित्र माने गये हैं उसी प्रकार इस धरती पर भी कुछ स्थान विशिष्ट व पवित्र माने गये हैं। मत्स्य पुराण में कहा गया है कि भारतवर्ष में तीर्थराज प्रयाग पवित्र एवं श्रेष्ठ है, प्रज्ञावान मनुष्य तीर्थराज प्रयाग की विशेष रूप से अर्चना करते हैं, पितामह ब्रह्म भी इसका नित्य स्मरण करते हैं, तीर्थराज को प्राप्त कर मानव को किसी अन्य वस्तु की कामना नहीं रहती है।[10] महाभारत में भी कहा गया है कि इस तीर्थ में जाने से या उसके नाम स्मरण मात्र से मानव मृत्यु के भय एवं पापों से मुक्त हो जाता है।[11]

प्रयाग की स्थिति बताते हुए महाभारत में कहा गया है कि प्रयाग पूर्व में प्रतिष्ठानपुर, उत्तर में वासुकिह्रद पश्चिम में कंबलाश्वतर नागद्वय और दक्षिण में बहुमूलक नाग की सीमाओं में आबद्ध है।[12] इन्हीं भौगोलिक सीमाओं को पद्मपुराण[13], मत्स्यपुराण[14] नारदीय पुराण[15] आदि में भी बताया गया है। प्रयाग को प्रजापति क्षेत्र कहा गया है क्योंकि ऐसा माना जाता है कि यहाँ पर प्रजापति ने सृष्टि के आरम्भ में 'प्रकृष्ट यज्ञ' किया था। इसी कारण इस क्षेत्र का नाम प्रयाग पड़ा।[16] इसलिए तीनों लोकों में सब तीर्थों की अपेक्षा प्रयाग पुण्यतम तीर्थ है।[17] वस्तुतः प्रयाग की पवित्रता, पूज्यता व प्रसिद्धि के मूल में यहाँ नैसर्गिक छटा व पारिस्थितिकीय अनूभूति है। यहाँ के भूविन्यास में भौतिक एवं आध्यात्मिक सामंजस्य की अनुभूति होती है। धर्मशास्त्रीय प्रमाणों के आधार पर प्रयाग क्षेत्र को तीन भागों में व्यवस्थित पाते हैं। संगम केन्द्र है, उसके चारों ओर षट्कूलोपलक्षित भूमि प्रयाग है तथा प्रयाग का चतुर्दिक प्रभाव क्षेत्र प्रयागमण्डल है। उक्त तीनों में परिणाम की दृष्टि से संगम से बड़ा प्रयाग और प्रयाग से बड़ा प्रयागमंडल है, लेकिन प्रभाव एवं पवित्रता की दृष्टि से इनके क्रम विपरीत हैं।

गंगा-यमुना दैव नदियों की संगमस्थलीय प्रयाग का ह्रदय है। संगम के कारण ही प्रयाग तीर्थराज है। महाभारत में कहा गया है कि विख्यात संगम में जो स्नान करता है वह राजसूय व अश्वमेघ यज्ञों के सम्पादन जन्य फलों को प्राप्त कर लेता है।[18] इसी ग्रन्थ में संगम का माहात्म्य बताते हुए आगे कहा गया है कि चारों विधाओं के ज्ञान से जो पुण्य होता है तथा सत्य बोलने वाले व्यक्ति को जिस पुण्य की प्राप्ति होती है वह सब गंगा और यमुना के संगम में स्नान करने से प्राप्त हो जाता है।[19] संगम में माहात्म्य का बखान करते हुए मत्स्य पुराण कहता है कि रोगी, दीन-दुखी, वृद्ध, नर-नारी को संगम क्षेत्र में प्राण त्यागने पर स्वर्ग की प्राप्ति होती है।[20] शायद इसी परम्परा के चलते गुप्त सम्राट कुमारगुप्त, धंगदेव, चंदेल, प्रकाण्ड विद्वान कुमारिल भट्ट आदि ने यहाँ अपने प्राण त्यागे थे। गंगा-यमुना संमग पर यज्ञ, श्राद्ध, तर्पण, दान आदि कृत्य से इहलौकिक एवं पारलौकिक दोनों प्रकार के सुखों की प्राप्ति होती है। हिमालय से निकली यह नदियाँ सम्पूर्ण उत्तर भारत के सामाजिक, आर्थिक व धार्मिक जीवन की रीढ़ हैं।

वस्तुतः भारतीय संस्कृति में जल को अतिविशिष्ट माना गया है, सृष्टि जीवन, पूजा-कर्मकाण्ड से लेकर महाविनाश अथवा महाप्रलय तक जल की ही भूमिका देखी गयी है। बृहदारण्यक उपनिषद् में कहा गया है कि जल से सत्य की उत्पत्ति हुई, सत्य से ब्रह्म का, ब्रह्म से प्रजापति का प्रादुर्भाव हुआ और प्रजापति से देवताओं की सृष्टि हुई।[21] ऐसी मान्यता है कि सरस्वती नदी यहाँ अंतःसलिला होकर मिलती है इसी परम्परा के कारण संगम को त्रिवेणी भी कहते हैं। यद्यपि यहाँ सरस्वती नदी, गंगा व यमुना से मिलती है, इसका उल्लेख वेद, महाभारत, रामायण आदि में प्राप्त नहीं होता है। वैदिक सरस्वती नदी के संदर्भ में ऋग्वेद में उल्लेख मिलता है कि हे सरस्वती! तू पूर्व पर्वत से निकलकर पश्चिम सागर में गिरती है।[22] ताण्ड्य ब्राह्मण में कहा गया है कि–'सरस्वत्या विनशने दीक्षन्ते'।[23] हिसार के पास विनशन तीर्थ में सरस्वती नदी के अदृश्य होने का उल्लेख महाभारत में भी हुआ है।[24] अनेक साक्ष्य व भौगोलिक परिस्थितियाँ यह स्पष्ट करती हैं कि सरस्वती नदी प्रयाग की ओर नहीं मुड़ी। प्रयाग सरस्वती नदी के प्रवाह मार्ग के विपरीत दिशा में है तथा विनशन से काफी दूर है।

वस्तुतः सरस्वती नदी वैदिक काल की पवित्रतम् नदी थ। वैदिक ऋषियों ने सरस्वती नदी को अधिकृत करके सस्वर स्त्रोत पाठ किये। यह नदी पुण्य, यज्ञ, तप आदि की प्रतीक थी। इस बात का उल्लेख पहले भी किया जा चुका है कि प्रयाग का नामकरण प्रकृष्ट यज्ञों के आयोजनों के कारण हुआ है। प्रयाग के यजनभूमि होने की सार्थकता यज्ञों से जुड़ी हुई सरस्वती नदी की कल्पना के बिना अधूरी रहती, इसलिए पौराणिकों ने इस तीर्थ की ओर श्रद्धालु जन-मन को आकर्षित करने हेतु प्रयाग में सरस्वती नदी की परिकल्पना की, पद्म पुराण में कहा गया कि सरस्वती गंगा व यमुना के संगम में अक्षत, यज्ञ के रूप में विद्यमान है।[25] इसी तरह स्कन्दपुराण में कहा गया है कि प्रयाग में सरस्वती राजोरूपा है, यमुना मतोरूपा है और गंगा सत्वगुण का प्रतीत है। इन तीनों का संगम निर्गुण ब्रह्म की प्राप्ति का साधन है।[26] उक्त विवेचना से स्पष्ट होता है कि सरस्वती नदी के विषय में कल्पना कर ली गयी कि वह प्रयाग में अदृश्य भाव से प्रवाहमान है। लेकिन यहाँ प्राचीनकाल से केवल गंगा-यमुना का ही संगम दृश्यमान है। संगम पर तीन श्रेणियाँ स्पष्ट दिखायी देती हैं, प्रथम गंगा की धारा की, दूसरी यमुना की धारा की, तीसरी त्रिवेणी गंगा-यमुना की सम्मिलित धारा की। इसलिए भी संगम को त्रिवेणी कहा जाता है।

## सन्दर्भ एवं टिप्पणियाँ


1. वाल्मीकि रामायण–
   यत्र भागीरथी गंगा यमुनाभिप्रवर्तते, जग्मुस्तं देशमुद्धिश्य विगाह्य सुमहद्वनम् ।।
   प्रयागमभितः पश्च सौमित्रे धूममुत्तमम्, अग्रेर्भगवतः केतुं मन्ये संनिहितो मुनिः।।
   धन्विनौ तौ सुखं गत्वा लंबमाने दिवाकरे, गंगायमुनयो संधौ प्रापतुर्निलय मुनेः ।।
   अवकाशों विविक्तों यं महानद्योः समागमे, पुण्ययश्चरमणीयश्च वसत्विह भवान् सुखम् ।। (54, 2-5-8-22)
2. महाभारत–
   पवित्रमृपिभिर्जुष्टं पुण्यं पावनमुत्तमम्, गंगायमुनयोर्वीर संगमं लोक विश्रुतम् ।। (87, 18)
   गंगायमुनयोमर्हध्ये स्नाति यः संगमेनरः, दशाश्वमेधनाप्नोति कुलं चैव सामुद्धरेत।। (84, 35)
3. कालिदास – रघुवंश, 13, 58
4. विष्णु पुराण –6,8,28
5. बाल्मीकि रामायण – वही, 89
6. वी.के. माथुर, ऐतिहासिक स्थानावली, 1990, पृ. 586
7. तुलसीदास, श्रीरामचरितमानस, अयोध्याकाण्ड–
   श्रेत्रं अगम गढ़ गाढ़ सुहावा। सपनेहु नाहिं प्रतिपच्छहिं पावा।।
8. महाभारत, वन पर्व–
   ब्राह्मणः क्षत्रियों वैश्यः शूद्रो वा राजसत्तम्, न वियोनिं व्रजन्त्येते स्नातास्तीर्थे महात्मन ।।
9. ब्रह्म पुराण, 70,20,21,24
10. मत्स्य पुराण–
    तथा सर्वेषु लोकेषु प्रयागं पुज्येत बुधः, पूज्यते तीर्थराजस्तु सत्यमेव युधुष्ठिर ।।
    ब्रह्मापि स्मरते प्रयागं तीर्थमुत्तमम, तीर्थराजमनुप्राप्य न चान्यत् किंचिदर्हति।। (108,15,16)
11. महाभारत–
    श्रवणत्तस्य तीर्थस्य नाम संकीर्तनादपि, मृत्यकालभयाच्चापि नरः पापात् प्रमुच्यते।। (3,85,80)
12. महाभारत–
    प्रयागं सप्रतिष्ठानं कम्बलाश्वतरौ तथा, तीर्थं भोगवही चैव वेदिरेषा प्रजापते।। (3,85,76,77)
13. पदम् पुराण, 3,39,72
14. मत्स्य पुराण, 120,3-4
15. नारदीय पुराण, 2, 63, 129
16. महाभारत, 3,87,19
17. वही, 3, 85,79
18. वही, 3, 85, 81
19. वही, 3, 85, 84
20. मत्स्य पुराण, 104, 3-4
21. वृहदारण्यक उपनिषद्, 5,5,1
22. ऋग्वेद, 7,95,2
23. ताण्ड्य ब्राह्मण, 24,10,1.
24. महाभारत –
    ततो विनशनं गच्छेन्नियतो नियताशनः।
    गच्छत्यन्तर्हिता यत्र मेरुपृष्ठे सरस्वती।। (3,85,111)
25. पदमपुराण, 6,23,34
26. स्कन्दपुराण, 4,7, 64


***

Education

Shodh Sandarsh-V, Vol.-XVI, Sept.-2017, Page : 106-107
ISSN No. - 2319–5908 (U.G.C. Approved Journal No. : 41329)

# Professional Ethic in Teacher Education

***Dr. Girja Prasad Mishra****

An old Indian prayer says "The teacher is god Brahma; he is a god Vishnu, he is a god Maheswar." According to Indian culture a chil receives his first physical birth from the parents and the second birth at the hand of teacher. The teacher is giving a higher position than parents because he open the pupils eyes of knowledge and mould his character. As it is said that god created mam after his own image so also the teacher fashions his student after his own image. Hency Vanonce said, "I sing the praise of the unknown teacher, king of himself and the leader of manking." Really speaking the teacher is the backbone of the whole educational system, maker of the mankind and the architect of the society. The American commission of the teacher education rightly observes, "the quality of the nation depends upon the quality of its citizens, the quality of its citizens depends not exclusively, but in critical measures upon the quality of their education. The quality of their education depends more then upon the quality of their teacher qualified teacher educators, "The concept of quality has very interesting origin." This ideas was first developed in 1940 by American Mr. Edward Derming who tested the quality on industrial process using statistical techniques.

Premises and equipment are needed in the education enterprise but person are vital to them and a teacher is the supreme factor. There is no exaggeration that a spacious building, costly equipment and sound sylabus will serve some useful purpose only when there are teachers who are fully alive to the nobility of the profession and its accompanying responsibilities. The teacher play an important role in moulding and shaping attitudes, habbits, manners and above all, the character and personality of the students. According to the great philosopher John Adams "A teacher affect seternity; he can never tell where his influence stops."

A teacher can play an important role in the progress and welfare of the society. A teacher is a member of the society. He lives and work in the society yet, in view of its special responsibilities and roles, he is expected to rise above the average members of society. His general attitude in society should be of enthusiasm and optimism. He is expected to be quite sensitive to its needs. He should be guided by the ideals of democracy, secularism and socialism. He is to be sufficiently appreciative of the changing needs and problem of society and play a dynamic and positive role.

A teacher plays his role towards society in two ways (a) inside the school by preparing students for effective citizens and (b) outside the school by assuming the role of a social worker and an agent of social change.

* *Principal, Shambhunath College of Education, Allahabad*

Major function and responsibilities of a teacher is to concern himself with the total development of the child and not only with one or two aspects. He must be friend him and help him is his emotional and social development. He must be a philsopher illumining the way of this intellectual and spiritual progress. He must be his guide in his moral and aesthetic advancement. In fact, he must be 'all things' to all his pupils - a physician concerned about their physical health, a mental hygienist leading them carefully to sound mental health, a philosopher guiding them painstakingly intheir search for truth, a moralist assesting and encouraging them to acquire goodness, an artist helping them to find beauty. In fact, he must be a minister ministering to their every need.

The quality of a Indian teacher education after independence reflected in report of various commissions appointed by UGC. If the quality of teacher education is not assured than the teacher education which he considered as a solution of social problems may itself become the problem. The support and satisfy the need of our student parents and society, the role of teacher educators is very important. Our teacher educators only can support our educational system for the development of the country.

**Reference Books :**

Dewey, J. (1916), Education and Democracy, Newyork Free Press.

Galtung, J. (1969), Violence, Peace and Peace Research. Journal of Peace Research 6 (3) : 167-191

Harries, I. (2004), Peace Education Theory. Journal of Peace Education 1(1) : 5-20

***

Education
Shodh Sandarsh-V, Vol.-XVI, Sept.-2017, Page : 108-111
ISSN No. - 2319–5908 (U.G.C. Approved Journal No. : 41329)

# Exclusion by Inclusion: A Critical Review of Education for All Program in India

*Karunesh Kumar Pandey*

**Abstract**

The ambitious Education for All Program of India is facing serious quality challenges. Evaluation of achievements of students by different agencies provides a gloomy picture. Over Rs 12,00,000 Cr has been spent to establish more than 5 lakh schools in the last two decades. More than 14 lakh contract teachers have been appointed to fill the manpower gap. Over 18 crore students are enrolled in different primary and upper primary schools in India. The problem of accessibility has been solved but the education being accessed is less likely to provide any kind of entitlement in competitive labour market. Based on the data provided by NCERT, PRATHAM, and U-Dise, the present study evaluates the achievements of the learners to find out if the present system of education offers opportunities of inclusion.

**Introduction**

India adopted an ambitious Education for All (EFA) programme in 2000 with an objective of educating its entire population under age group 6-14 years in 'mission mode'. The target was to cover 586,986 villages with at least one primary school each. In the last two decades with an expenditure of INR 12, 51, 536 Cr some 2 lakh new primary and 3 lakh upper primary schools have been established. School enrolment ratio has also increased significantly. Drop out ratio has been controlled. However, the quality of education remains debatable. This presents a unique case of exclusion by inclusion wherein the younger generation is being deprived of opportunities to educate itself in a more productive way. The result of this 'mission mode' education sans quality would be a population having no training of social, emotional or life skills. It will have only certificates of being educated. The present study takes a look at the quality of education being offered to the students under Sarv Siksha Abhiyan.

**Methodology**

The study is based on data provided by PRATHAM, a non-government agency engaged in research on primary education in India, NCERT and U-Dise. A comparison of data provided by these organisations reveals the status of quality of education being imparted in the primary schools of the country. The quality of education is measured in terms of students' achievement. Different organisations use different methods for measuring achievements and each one contests other methods. However, on comparing their results, one finds a striking similarity in data.

**The Manpower Issue**

According Unesco report 2015 India faces acute shortage of teachers. Out of the 74 countries reported to have shortage of teachers, India ranks second after Nigeria. It is estimated that about 4 lakh fresh recruitments are needed in the country. This estimate is validated by MHRD report of 2015 which states that 42 percent of the schools in the country were being managed by just two teachers while 12 percent had only one teacher, and 1 percent do not have any teacher at all.

* *Research Scholar, GB Pant Social Science Institute, University of Allahabad*

Different strategies have been adopted to fill the gap of teaching manpower in the country. Majority of states have appointed Ad hoc teachers on contract basis. These teachers are paid in adequately. Table 1 given below presents the estimates on expenditure on teacher payments.

**Table 1: Expenditure on Teacher Salary**

| Year | Expenditure (In Cr INR) | No of Primary Teachers (in 1000) | No of Upper Primary Teachers (in 1000) | Average Expenditure on Teacher Salary (in Cr INR) | Per Teacher Salary (Annual in 1000 INR) |
|---|---|---|---|---|---|
| 2005-06 | 79001.00 | 2184 | 1617 | 16590.21 | 43.65 |
| 2006-07 | 113288.71 | 2323 | 1717 | 23790.63 | 58.89 |
| 2007-08 | 138022.04 | 2315 | 1780 | 28984.63 | 70.78 |
| 2008-09 | 157319.99 | 2229 | 1899 | 33037.20 | 80.03 |
| 2009-10 | 137383.56 | 2217 | 1778 | 28850.55 | 72.22 |
| 2010-11 | 123551.00 | 2099 | 1887 | 25945.71 | 65.09 |
| 2011-12 | 147947.00 | 2254 | 2057 | 31068.87 | 72.07 |
| 2012-13 | 169250.00 | 2656 | 2427 | 35542.50 | 69.92 |
| Total | 1065763.3 | | | 223810.29 | |
| Percent Change | | 21.61 | 50.09 | 114.24 | 60.20 |

*Source: HRD Ministry Report 2014(Education Statistics at a Glance); Bureau of Planning, Monitoring and Statistics.*

It is evident from the table that an average Indian teacher gets less than INR 6000 per month which is not sufficient for meeting even the basic needs. Because of this low salary, it is extremely difficult to find a good teacher and retain him. The shortage of teacher reflects on the achievement of students. The magnitude of the problem becomes more evident when we look at the actual numbers. According to the U-Dise estimates, there were in all 11,19,654 contract teachers in India out of which 4,96,434 were males while 6,23,220 were females. If we add 4 lakh new recruitments required to fill the gap, the number corsses 15 lakh. To make their salaries comparable to permanent teachers, we need INR 45000 million annually. Without making provison for this expenditure, expecting quality education will remain a distant dream.

**The Quality Issue :** If we look at the achievements of our students, we find that students are able to achieve less than 50 percent of the targeted learning (Table-2).

**Table 2: NCERT Survey of Achievements (2014)**

| Class | Language | | Maths | | EVS | | Social Science | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| | Round 1 | Round 2 | Round 1 | Round 2 | Round 1 | Round 2 | Round 1 | Round 2 |
| Class 3 | 63.12 | 67.84 | 58.25 | 61.89 | | | | |
| Class 5 | 58.57 | 60.31 | 46.51 | 48.46 | 50.3 | 52.19 | | |
| Class 7 | 52.24 | 57.35 | 30.5 | 40.38 | 37.78 | 42.86 | 34.04 | 44.73 |
| Class 8 | 53.86 | 56.49 | 39.17 | 42.57 | 41.3 | 42.71 | 46.19 | 47.89 |

Since the targets of learning are not explicit in official data, Table 4 does not give us the correct picture of achievements and we have to rely on the data offered by PRATHAM (Table 5) which is quite disturbing.

**Table 3: ASER Survey of Achievements (2014)**

| GRADE | Reading (Class II level text) | Stuck at Letter Recognition Level | Stuck at Word Recognition Level | Subtraction | Stuck at Number Recognition Level* |
|---|---|---|---|---|---|
| | Percent | Percent | Percent | Percent | Percent |
| III | 23.6 | 25 | 20 | 25.3 | 20 |
| IV | 48.1 | 17.5 | 17.9 | 40.2 | 40 |
| V | 74.6 | 12.8 | 14.3 | 50.5 | |

* Number Recognition Levels: 1-9 for class II and 1-100 for class II

It is evident from Table 5 that almost 25 percent students in Grade V are unable to read, 12.8 percent of them can recognise letter but cannot read words, and 14.3 percent of them can recognise words but cannot read a sentence. Altogether 50 percent of Grade V students cannot perform simple subtraction of Grade II level. Almost 20 percent of Grade II students do not recognise numbers 1-9 and 40 percent of Grade III students do not recognise numbers 1-100.

The poor quality of education further reflects in U-DISE data of repeaters in a grade. Table 4 presents grade-wise number of repeaters in our schools. It can be seen that almost one third of repeaters are present at the school exit class. This large proportion points towards a liberal evaluation system adopted in lower classes besides poor quality of education. Although in comparison to total enrolments, the number of repeaters comprises only 1.5 percent of total enrolments, the absolute number of failures is quite large.

**Table 4: Grade-wise repeaters in class in academic session 2014-15**

| GRADE | MALE | FEMALE | TOTAL |
|---|---|---|---|
| GRADE 1 | 159457 | 144631 | 304088 |
| GRADE2 | 101659 | 90601 | 192260 |
| GRADE 3 | 86428 | 77470 | 163898 |
| GRADE 4 | 85056 | 75914 | 160970 |
| GRADE 5 | 75137 | 66381 | 141518 |
| GRADE 6 | 61147 | 53398 | 114545 |
| GRADE 7 | 55550 | 48221 | 103771 |
| GRADE 8 | 55706 | 49931 | 105637 |
| GRADE 9 | 388159 | 332844 | 721003 |
| | | TOTAL | 2007690 |

*Source: UDISE 2014-15*

**Conclusion :** It is evident from these data that government has opted for inclusion by providing access to schools. The schools mad e available to majority of rural population neither has sufficient infrastructure nor manpower. There has been gross negligence on quality accounts. While this strategy may help in declaring people educated, the benefits of education may never accrue to the beneficiaries. It may help in acquiring certain entitlements but will eventually deny them opportunities particularly in a competitive labour market. This policy is creating only very basic infrastructure for inclusion without any control over the quality. The inclusion agenda includes first generation school-goers, unemployed youth who can, maybe, make up for missing number of teachers and local body representatives. In the process, it has diluted all its responsibilities towards quality of education.

## References

Chavan M. (2006): On a New Slate: Quality education, not just Education for all, is what is required in India.' India Today, 21 August, pp. 76–80.

Dreze J and Kingdom G (2001): School Participation in Rural India. Review of Development Economics. 5 (1): 1: 1–33.

Dreze J and Sen A (1995): Basic Education as a Political Issue, Journal of Educational Planning and Administration. 9(1): p1-26.

Fuller B (1986): Raising School Quality in Developing Countries: What Investments Boost Learning. World Bank Discussion Paper No. 2, World Bank, Washington.

GOI (2009): 10th Joint Review Mission of Sarva Shiksha Abhiyan Report.

Hanushek E (1986): The Economics of Schooling: Production and Efficiency in Public Schools. Journal of Economic Literature. 24 (3): 120-22.

Lewin MK (2011): Beyond Universal Access to Elementary Education in India: Is it Achievable at Affordable Cost? Research Monograph No 53. NUEPA, New Delhi. Mehta CA (2015): Progress Towards UEE: Analytical Tables, NEUPA, New Delhi.

MHRD (2014): Educational Statistics at a Glance, Bureau of Planning, Monitoring and Statistics, New Delhi. p 12-13.

MHRD (2014): Annual Report, Department of School Education and Literacy and Department of Higher Education. New Delhi.

NCERT (2002): Seventh All India Educational Survey Report. New Delhi. p 35-43.

Pangariya A (2010): India: The Emerging Giant, Oxford University Press, Canada

***

Education
Shodh Sandarsh-V, Vol.-XVI, Sept.-2017, Page : 112-115
ISSN No. - 2319–5908 (U.G.C. Approved Journal No. : 41329)

# इलाहाबाद जनपद के माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों की शैक्षिक रुचि पर अभिभावक प्रोत्साहन के मध्य सम्बन्ध का अध्ययन

*अनूप कुमार यादव**

मानव का विकास एक चरणबद्ध प्रक्रिया है जन्म से लेकर मृत्यु उपरान्त यह प्रक्रिया चलती रहती है। मनुष्य के विकासक्रम में उसकी सामाजिक पृष्ठभूमि अत्यन्त महत्वपूर्ण है और उसकी उपलब्धियों पर उसके परिवेश का प्रभाव निश्चित तौर पर पड़ता है किसी भी बालक के ऊपर उसके अभिभावक का प्रभाव सबसे अधिक पड़ता है क्योंकि वह उन्हीं के सन्निकट ज्यादा रहता है। परिवार बच्चे की सबसे पहली शिक्षण व्यवस्था है। शिक्षा की पहली कड़ी है और उसकी माता प्रथम शिक्षिका है।

महान सेनानायक नेपोलियन ने कहा था कि बालक का भावी भविष्य सदैव उसकी माता द्वारा निर्मित किया जाता है। बालक स्नेह का भूखा होता है। हर माता-पिता बालक को पर्याप्त स्नेह देते हैं, परिवार के अन्य सदस्य भी बच्चों से स्नेहिल व्यवहार करता है और यह स्नेह उसके व्यक्तित्व निर्माण में सहायक होता है और यही स्नेह-बालक के जीवन में आशा का संचार करता है, इसके अभाव में उसका जीवन नीरस हो जाता है।

अभिभावक के ऊपर उनके उस क्षेत्र का सीधा प्रभाव होता है जहाँ पर वे निवास करते हैं। शहरी क्षेत्र के अभिभावक शहरी आचरण की विधियाँ और ग्रामीण क्षेत्र का अभिभावक ग्रामीण क्रियाकलाप बच्चों को सिखाता है। बालक की सम्पूर्ण उपलब्धि पर उसकी सामाजिक पृष्ठभूमि का प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से प्रभाव पड़ता है।

अभिभावकों का छात्रों को अध्ययन के लिए प्रेरित न करने पर छात्र लापरवाह व कमजोर हो जाता है फलतः वह अध्ययन से जी चुराने लगता है। समग्र रूप से वे चाहे ग्रामीण क्षेत्र के अभिभावक हों अथवा अशिक्षित शहरी अभिभावक। प्रत्येक के द्वारा किये गये कार्य व्यवहार की उपलब्धि पर निश्चित तौर पर प्रभाव डालते हैं अगर अभिभावक अशिक्षित है तो उनके बच्चों का शैक्षिक स्तर ऊँचा नहीं उठ पाता। कारण यह है कि उनमें शिक्षा के प्रति जागरुकता का अभाव पाया जाता है और वे बच्चों को शिक्षित होने के लिए प्रोत्साहित नहीं कर पाते। यदि अभिभावक ग्रामीण क्षेत्र का है तो उसके कार्य व्यवहार ग्रामीण होंगे और वे अपने बच्चों को एक बेहतर शैक्षिक वातावरण नहीं उपलब्ध करा पायेंगे। अगर अभिभावक शहरी क्षेत्र का है तो वह बच्चों को शहरी वातावरण और वहाँ के साधन सुविधाओं को उपलब्ध करायेगा। छात्र चाहे ग्रामीण क्षेत्र का हो या शहरी क्षेत्र का उपयुक्त वातावरण पाकर साधारण छात्र भी उन्नति कर सकता है। निश्चित रूप से बालक में शैक्षिक रुचि उत्पन्न करने में पारिवारिक वातावरण एक अभिन्न अंग होता है क्योंकि पारिवारिक वातावरण से ही छात्र की उन्नति तथा समाज में समायोजन होता है। अतः वातावरण का तात्पर्य उन सम्यक् परिस्थितियों से है जिसमें विद्यार्थियों का वांछित विकास हो सके और जो उसके मन पर प्रभाव डालती हैं। छात्र समाज में रहकर बहुत कुछ सीखता है वह भाषा-रहन-सहन और व्यवहार के प्रति मानव को सीखता है। समाज उसके शारीरिक, मानसिक, नैतिक और चारित्रिक विकास में सहयोग करता है। **भागर्व ( 1986 )** ने परिणाम में पाया कि गृह पर्यावरण में व्यक्तित्व उस अवस्था की नैतिक दृष्टि पर भी धनात्मक अंक व्यक्त कर रहा था, जिसमें माता-पिता की स्वीकृति को नजर अंदाज किया गया था। **शंभुग, सुन्दरम ( 1986 )** ने माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों में शैक्षिक रुचियों पर अध्ययन करके ज्ञात किया कि उच्च उपलब्धि वाले विद्यार्थियों की तुलना में निम्न उपलब्धि वालों में बालिकाओं की रुचि कम है। **मलहोत्रा, एम. ( 1986 )**, ने अपने अध्ययन में पाया कि छात्रों के सामाजिक आर्थिक स्तर का शैक्षिक रुचि एवं सृजनात्मक शक्ति में सह-सम्बन्ध है। **वाजपेयी, दीप्ति ( 1996 )** ने निष्कर्ष में पाया कि मध्य सामाजिक स्तर वाले छात्रों में निम्न सामाजिक-आर्थिक स्तर वाले छात्रों से उच्च शैक्षिक रुचि पायी गयी। **सिंह, दीपक कुमार ( 2004 )** ने निष्कर्ष में पाया कि उच्च एवं मध्यम

* *असिस्टेण्ट प्रोफेसर, शिक्षक-शिक्षा संकाय, नेहरू ग्राम भारती विश्वविद्यालय, इलाहाबाद*

सामाजिक-आर्थिक स्तर के छात्रों के व्यवसायिक रुचि भी उच्च थी। **हरित, प्रकाश (2008-09)** ने अध्ययन के उपरान्त पाया कि ग्रामीण एवं शहरी शिक्षित अभिभावकों के पाल्यों का शैक्षिक रुचि में सार्थक अन्तर है।

हम यह निश्चित तौर पर कह सकते हैं कि विद्यार्थियों के अभिभावकों के प्रोत्साहन का उनकी शैक्षिक रुचि पर सकारात्मक प्रभाव पड़ता है क्योंकि जो माता-पिता शिक्षित हैं और उनके घर का वातावरण छात्रों को पढ़ने के लिए प्रोत्साहित करते हैं वे विद्यार्थी आगे बढ़ जाते हैं और समाज को एक आदर्श दिखाते हैं। परिस्थितियाँ चाहे ग्रामीण हों या शहरी, समाज सरल हो या कठिन, उसका आकार बड़ा हो या छोटा, विद्यार्थी अपने माता-पिता के सानिध्य में सदैव रहता है इस कारण से उनके विचारों का प्रभाव सदैव विद्यार्थियों पर पड़ता रहता है। यदि अभिभावक छात्रों को स्वस्थ वातावरण, शिक्षा प्राप्ति के लिए अनुकूल दशाएँ, आवश्यक संसाधन उपलब्ध न करा पायें और वे तनावग्रस्त कलह पूर्ण वातावरण में हैं तो ये छात्र शिक्षा के क्षेत्र से कुंठित हो जाते हैं और शिक्षा के प्रति इनकी रुचि समाप्त हो जाती है और इस कुंठित व्यक्तित्व के साथ विद्यार्थी अपने समाज, विद्यालय में सामंजस्य स्थापित नहीं कर पाता जिससे उनका शैक्षिक विकास रुक जाता है।

**अध्ययन का उद्देश्य–**शोधकर्ता द्वारा निम्न उद्देश्यों का निर्धारण किया गया है–

1. माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत छात्रों में शैक्षिक रुचि पर अभिभावक प्रोत्साहन के मध्य सम्बन्ध का अध्ययन करना।
2. माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत छात्रों के शैक्षिक रुचि पर अभिभावक प्रोत्साहन के मध्य सम्बन्ध का अध्ययन करना।
3. माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत छात्र-छात्राओं के शैक्षिक रुचि पर अभिभावक प्रोत्साहन के मध्य सम्बन्ध का अध्ययन करना।

**अध्ययन की परिकल्पनाएँ–**उद्देश्यों को ध्यान में रखते हुए शोधकर्ता ने निम्न परिकल्पनाओं का निर्माण किया है–

1. माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत छात्रों में शैक्षिक रुचि पर अभिभावक प्रोत्साहन के मध्य कोई सार्थक सहसम्बन्ध नहीं है।
2. माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत छात्राओं के शैक्षिक रुचि पर अभिभावक प्रोत्साहन के मध्य कोई सार्थक सहसम्बन्ध नहीं है।
3. माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत छात्र-छात्राओं के शैक्षिक रुचि पर अभिभावक प्रोत्साहन के मध्य कोई सार्थक सहसम्बन्ध नहीं है।

**प्रयुक्त शोध प्रविधि–**प्रस्तुत अध्ययन में वर्णनात्मक अनुसंधान के अन्तर्गत सर्वेक्षण विधि का प्रयोग किया गया है। प्रस्तुत अध्ययन में जनसंख्या के अन्तर्गत चयनित माध्यमिक विद्यालयों में से 4 विद्यालयों में अध्ययनरत् 100 छात्र-छात्राओं को सम्भाव्य प्रतिचयन के यादृच्छिक विधि के अन्तर्गत लाटरी विधि द्वारा चयनित किया गया जिसे निम्न तालिका में प्रदर्शित किया गया है। उपकरण के रूप में अभिभावक प्रोत्साहन के लिए 'डॉ. आर. आर. शर्मा, शिक्षाशास्त्र विभाग, एन.बी.पी. गड़वाल, विश्वविद्यालय, श्रीनगर, गढ़वाल (उत्तराखण्ड)' द्वारा निर्मित तथा शैक्षिक रुचि प्रपत्र 'एप.पी. कुलश्रेष्ठ' द्वारा निर्मित है। आँकड़ों के विश्लेषण के लिए प्रियर्सन आघूर्ण सहसमबन्ध गुणांक सांख्यिकी विधि का प्रयोग किया गया है।

**आँकड़ों का विश्लेषण एवं आख्या–**

**उद्देश्य 1 :** माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत छात्रों के शैक्षिक रुचि पर अभिभावक प्रोत्साहन के मध्य सम्बन्ध का अध्ययन करना।

**तालिका-1**

**माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत छात्रों में शैक्षिक रुचि पर अभिभावक प्रोत्साहन के मध्य सम्बन्ध**

| क्रमांक | शैक्षिक रुचि पर अभिभावक प्रोत्साहन के मध्य सम्बन्ध गुणांक | सहसम्बन्ध गुणांक का मान | स्वतंत्र्यांश (N-2) | सार्थकता स्तर |
|---|---|---|---|---|
| 1. | छात्र | 0.3294 | 48 | सार्थक |

यह प्राक्कल्पित किया गया कि माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत छात्रों के शैक्षिक रुचि पर अभिभावक प्रोत्साहन के मध्य कोई सार्थक सहसम्बन्ध नहीं होता है।' तालिका-1 से स्पष्ट है कि माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत छात्रों में शैक्षिक रुचि पर अभिभावक प्रोत्साहन के मध्य सहसम्बन्ध गुणांक का मान 0.3294 है जो 48 स्वतंत्र्यांश के लिए 0.05 स्तर पर सार्थकता हेतु आवश्यक मान 0.273 से अधिक है। यह मान 0.05 स्तर पर सार्थक है व शून्य परिकल्पना अस्वीकार्य है। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत छात्रों के शैक्षिक रुचि पर अभिभावक प्रोत्साहन के मध्य धनात्मक एवं सार्थक सहसम्बन्ध पाया गया।

**उद्देश्य 2 :** माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत छात्राओं की शैक्षिक रुचि पर अभिभावक प्रोत्साहन के मध्य सम्बन्ध का अध्ययन करना।

**तालिका-2**

**माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत छात्राओं के शैक्षिक रुचि पर अभिभावक प्रोत्साहन के मध्य सम्बन्ध**

| क्रमांक | शैक्षिक रुचि पर अभिभावक प्रोत्साहन के मध्य सम्बन्ध गुणांक | सहसम्बन्ध गुणांक का मान | स्वतंत्र्यांश (N-2) | सार्थकता स्तर |
|---|---|---|---|---|
| 1. | छात्राओं | 0.5302 | 48 | सार्थक |

यह प्राक्कल्पित किया गया कि माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत छात्राओं के शैक्षिक रुचि पर अभिभावक प्रोत्साहन के मध्य कोई सार्थक सहसम्बन्ध नहीं होता है। तालिका-2 से स्पष्ट है कि माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत छात्राओं के शैक्षिक रुचि पर अभिभावक प्रोत्साहन के मध्य सहसम्बन्ध गुणांक का मान 0.5302 है जो 48 स्वतंत्र्यांश के लिए 0.05 स्तर पर सार्थकता हेतु आवश्यक मान 0.273 से अधिक है। यह मान 0.05 स्तर पर सार्थक है व शून्य परिकल्पना अस्वीकार्य है। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत छात्राओं के शैक्षिक रुचि पर अभिभावक प्रोत्साहन के मध्य धनात्मक एवं सार्थक सहसम्बन्ध पाया गया है।

**उद्देश्य 3 :** माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत छात्राओं की शैक्षिक रुचि पर अभिभावक प्रोत्साहन के मध्य सम्बन्ध का अध्ययन करना।

**तालिका-3**

**माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत विद्यार्थियों के शैक्षिक रुचि पर अभिभावक प्रोत्साहन के मध्य सम्बन्ध**

| क्रमांक | शैक्षिक रुचि पर अभिभावक प्रोत्साहन के मध्य सम्बन्ध गुणांक | सहसम्बन्ध गुणांक का मान | स्वतंत्र्यांश (N-2) | सार्थकता स्तर |
|---|---|---|---|---|
| 1. | विद्यार्थी | 0.3954 | 98 | सार्थक |

यह प्राक्कल्पित किया गया कि माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत विद्यार्थियों के शैक्षिक रुचि पर अभिभावक प्रोत्साहन के मध्य कोई सार्थक सहसम्बन्ध नहीं होता है।' तालिका-3 से स्पष्ट है कि माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत विद्यार्थियों के शैक्षिक रुचि पर अभिभावक प्रोत्साहन के मध्य सहसम्बन्ध गुणांक का मान 0.5302 है जो 98 स्वतंत्र्यांश के लिए 0.05 स्तर पर सार्थकता हेतु आवश्यक मान 0.195 से अधिक है। यह मान 0.05 स्तर पर सार्थक है व शून्य परिकल्पना अस्वीकार्य है। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत विद्यार्थियों के शैक्षिक रुचि पर अभिभावक प्रोत्साहन के मध्य धनात्मक एवं सार्थक सहसम्बन्ध पाया गया।

**निष्कर्ष**–प्रस्तुत अध्ययन में निम्नलिखित निष्कर्ष प्राप्त हुये–माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत छात्र, छात्राओं एवं विद्यार्थियों के शैक्षिक रुचि पर अभिभावक प्रोत्साहन के मध्य धनात्मक एवं सार्थक सहसम्बन्ध पाया गया।

**सुझाव**–अभिभावकों को अपने विद्यार्थियों के साथ सदा अच्छा व्यवहार करना चाहिये, तथा उनके साथ मित्रवत् सम्बन्ध रखना चाहिए, जिससे विद्यार्थियों की जरूरतों एवं आवश्यकताओं के बारे में जानकारी प्राप्त होती रहे। माता-पिता को विद्यार्थियों की हर गतिविधि पर ध्यान रखना चाहिए तथा उनके अच्छे कार्यों के लिए हमेशा प्रोत्साहित करना चाहिए एवं समय-समय पर उत्कृष्ट कार्यों के लिए पुरस्कार भी देना चाहिए। छात्र-छात्राओं को ऐसे संस्कार देना चाहिए कि वे कभी भी गलत एवं अनैतिक

कार्यों की ओर उन्मुख न हों। अभिभावकों की विचारधारा सदा प्रगतिशील होनी चाहिए, समाज के बाह्य आडम्बर एवं अपनी बातें जबरदस्ती विद्यार्थियों पर थोपना नहीं चाहिए।

अभिभावकों को अपने बच्चों की शैक्षिक रुचि में उन्नति करने का हर संभव प्रयास करना चाहिए एवं उनकी शिक्षा में आने वाले बाधाओं को समय-समय पर ध्यान देकर उसे पूरा करने एवं बच्चों को उसे उचित दिशा-निर्देशन देना चाहिए जिससे उनकी शैक्षिक रुचि के प्रति नकारात्मक दृष्टिकोण को कम किया जा सके।

## सन्दर्भ-सूची

1. **सिंह, दीपक कुमार ( 2004 ) :** विभिन्न सामाजिक-आर्थिक स्थिति के छात्रों की शैक्षिक रुचि का अध्ययन, लघुशोध प्रबन्ध इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद।
2. **वाजपेयी, दीप्ति ( 1996 ) :** विभिन्न सामाजिक आर्थिक तथा बौद्धिक स्तर पर माध्यमिक विद्यालयों के छात्र/छात्राओं की शैक्षिक रुचि तथा अभिवृद्धि पर अध्ययन, छत्रपति शाहूजी महाराज विश्वविद्यालय, कानपुर।
3. **मलहोत्रा, एम. ( 1986 ) :** ''ए स्टडी ऑफ द रिलेशनशिप बिटविन इन्टेलीजेन्स सोसियो-इकोनॉमिक स्टेट्स एनजाइटी परसनालटी एडजेस्टमेन्ट एण्ड एकेडिमिक एचीवमेंट ऑफ हाईस्कूल स्टूडेन्ट्स', छत्रपति शाहूजी महाराज विश्वविद्यालय, कानपुर।
4. **शंभुग, सुन्दरम ( 1986 ) :** ''माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों ने शैक्षिक रुचियों पर एक अध्ययन'', एम.एड्. लघुशोध प्रबन्ध, छत्रपति शाहूजी महाराज विश्वविद्यालय, कानपुर।
5. **हरित, प्रकाश ( 2008-09 )** : ''ग्रामीण एवं शहरी अभिभावकों के माध्यमिक स्तर के अध्ययनरत् छात्र-छात्राओं की रुचियों का तुलनात्मक अध्ययन'' एम.एड., लघुशोध प्रबन्ध, छत्रपति शाहूजी महाराज विश्वविद्यालय, कानपुर।
6. **भार्गव I :** डेवलपमेन्ट ऑफ जजमेन्ट एमंग चिल्ड्रेन ऑफ कनक्रीट एण्ड फार्मल आपरेशन स्टेजेस एण्ड इट्स रिलेशनशिप विथ दी वैरीयेबल ऑफ होम एजूकेशनल एनवायरमेन्ट, पी-एच.डी. एजूकेशन, पंजाब विश्वविद्यालय, 1986

***

Education
Shodh Sandarsh-V, Vol.-XVI, Sept.-2017, Page : 116-118
ISSN No. - 2319–5908 (U.G.C. Approved Journal No. : 41329)

# जॉन डीवी के शैक्षिक विचारों की आधुनिक शैक्षिक जगत में प्रासंगिकता

*डॉ. महेन्द्र सिंह**

शिक्षा सामाजिक प्रक्रिया है, जो समाज को बनाये रखने तथा उसके विकास के लिए अति आवश्यक है। शिक्षा के द्वारा ही समाज अपनी संस्कृति की रक्षा करता है और उसे एक पीढ़ी से दूसरे पीढ़ी को हस्तान्तरित करता है। प्रत्येक समाज की पहचान अपनी संस्कृति और सभ्यता के कारण होती है और यह समय तथा काल के साथ-साथ परिवर्तित होती जाती है, जिससे समाज में परिवर्तन आ जाता है। यह परिवर्तन समाज की वर्तमान आवश्यकताओं के अनुरूप होना चाहिए जिसमें शिक्षा महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। शिक्षा उस समाज के आवश्यकताओं की वर्तमान समय में प्रासंगिकता को दृष्टिगत रखते हुए अपनी शिक्षा-प्रणाली के उद्देश्यों में परिवर्तन करती है, जिसके कारण समाज में परिवर्तन होता है।

**जॉन डीवी के शैक्षिक विचारों की प्रासंगिकता–**जॉन डीवी के शैक्षिक विचारों का वर्तमान शिक्षा के उद्देश्यों, पाठ्यक्रम, शिक्षण-विधि, शिक्षक शिक्षार्थी, विद्यालय अनुशासन के सन्दर्भ में प्रासंगिकता का निरूपण किया गया है, जो निम्नवत् है–

**शिक्षा के उद्देश्यों के सन्दर्भ में–**वर्तमान शिक्षा अपने मूलभूत उद्देश्यों से विमुख हो गयी है, जिसके कारण वह समाज की आवश्यकताओं की पूर्ति करने में असमर्थ है। जिसके परिणामस्वरूप समाज का नैतिक पतन होता जा रहा है और व्यक्ति डिग्रियाँ लेकर दर-दर की ठोकरें खा रहा है। अर्थात् वास्तविकता यह है कि आज हमारी शिक्षा का मात्र एक ही उद्देश्य रह गया है–येन-केन प्रकारेण छात्र सफलता प्राप्त कर ले और अपनी जीविका में लग जाय। आजीविका कमाने के अतिरिक्त अन्य सभी मानवीय गुणों का विकास करना इनके लिए गौण बात हो गयी है। जिसका दुष्परिणाम यह हुआ कि लोगों में स्नेह, प्रेम, सौहार्द, सहयोग, नैतिकता आदि का ह्रास होता जा रहा है। लोग संस्कार विहीन होते जा रहे हैं। भौतिकता तथा पाश्चात् संस्कृति का बोलबाला बढ़ता जा रहा है।

जॉन डीवी शिक्षा का कोई उद्देश्य निर्धारित नहीं करते हैं। उनका कहना है कि शिक्षा के उद्देश्य स्थायी रूप से नहीं बनाये जा सकते हैं, उनमें समय और मनुष्य की आवश्यकताओं के अनुसार परिवर्तन किया जाना आवश्यक है। जॉन डीवी ने स्पष्ट लिखा है कि "शिक्षा का उद्देश्य नहीं होते हैं। उद्देश्य केवल व्यक्तियों के होते हैं और व्यक्तियों के उद्देश्य बहुत अधिक भिन्न होते हैं। वे विभिन्न बालकों के लिए विभिन्न होते हैं। जैसे-जैसे बालकों और शिक्षकों का विकास होता है, वैसे-वैसे उद्देश्य बदलते जाते हैं।" जॉन डीवी अनुभव को शिक्षा का केन्द्र बिन्दु मानते हैं इनके अनुसार बालकों को केवल इन्हीं अनुभवों से ज्ञान प्राप्त करने का अवसर प्रदान करना चाहिए, जो उसके विकास के लिए सर्वाधिक उपयुक्त हो अर्थात् शिक्षा की प्रक्रिया व्यवस्थापन की एक सतत् प्रक्रिया है, जिसका प्रत्येक अवस्था में उद्देश्य होता है, विकास की क्षमता देना। अतः शिक्षा का उद्देश्य बालक की रुचि के अनुसार सम्यक् विकास है। सामाजिक कुशलता उसकी आधारशिला है। "भोजन तथा सन्तानोत्पत्ति जिस प्रकार भौतिक-शारीरिक जीवन के लिए उसी प्रकार शिक्षा समाज के लिए है।" उपयोगिता पर परखी हुई शक्तियों का विकास ही बालक में होना चाहिए।

**शिक्षार्थी के सन्दर्भ में–**अधिकांश शिक्षार्थी आजकल शिक्षा के क्षेत्र में कितने सक्रिय हैं, उनके व्यावहारिक कार्यों और सैद्धान्तिक क्रियाओं, कार्यकलापों से आंका जा सकता है। आज विद्यार्थी धनार्जन के उद्देश्य से शिक्षा ग्रहण करना चाहता है। वह ऐसी शिक्षा पाने या प्राप्त करने में विश्वास रखता है कि शिक्षा का कार्यकाल समाप्त होते-होते उसे कहीं न कहीं किसी न किसी विभाग में रोजगार (नौकरी) करने को मिल जाय। इस 'शिक्षा मोह' के जाल में फंसकर वह कहीं का नहीं होता। उसके पीछे कहीं न कहीं कमी जरुर है? यह चाहे वर्तमान नकारात्मक शिक्षा की हो या उसके अभिभावक की।

* *असिस्टेण्ट प्रोफेसर, बी.एड्. विभाग, सल्तनत बहादुर पी.जी. कॉलेज, बदलापुर, जौनपुर*

**शिक्षक के सन्दर्भ में—**शिक्षक शिक्षण प्रक्रिया का सूत्रधार है। शिक्षक के व्यक्तित्व का बालकों के ऊपर अमिट प्रभाव पड़ता है और वह भावी जीवन की नींव रखता है। कहा गया है कि किसी समाज में अध्यापक का दर्जा उसके सामाजिक, सांस्कृतिक, सांस्कृतिक लोकाचार को प्रतिबिम्बित करता है। प्राचीन काल में शिक्षक का समाज में बहुत ऊँचा स्थान था। समाज उन्हें आदर की दृष्टि से देखता था। आज शिक्षक एक वेतनभोगी नौकर मात्र बनकर रह गया है। शिक्षक अपनी गरिमा खो चुके हैं। आज समाज उन्हें शंका तथा संदेह की दृष्टि से देखता है। उसके पास न कोई जीवन दृष्टि है और न शुचिता, पवित्रता तथा उच्चादर्श। प्राचीन काल की गुरु-शिष्य परम्परा भी समाप्त हो गई है और गुरु तथा शिष्य के सम्बन्ध औपचारिक रह गये हैं।

जॉन डीवी के अनुसार शिक्षक मित्र, दार्शनिक तथा मार्गदर्शक हैं। शिक्षक विद्यालय में बालकों को समाजोन्मुख करने के लिए विशेष व्यक्ति है। वह समाज का प्रतिनिधि होता है, उसे केवल निरीक्षण करने, सहयोग देने तथा बालकों को प्रोत्साहित करने का अधिकार है, बालक के ऊपर अपने विचार लादने का नहीं। शिक्षक के सम्मुख बालकों की रुचियाँ तथा आवश्यकताएँ ही रहनी चाहिए। शिक्षक को अपनी परिष्कृत बुद्धि तथा परिमार्जित व्यक्तित्व द्वारा बालकों के ज्ञान में वृद्धि करनी चाहिए और उन्हें समाज के लिए तैयार करना चाहिए।

जॉन डीवी के अनुसार शिक्षक में दो बातों का ज्ञान होना अति आवश्यक है। पहला बालकों के साथ व्यक्तित्व सम्पर्क स्थापित कर उनकी रुचियों का ज्ञान तथा दूसरा परिवर्तनशील समाज की बदलती हुई परिस्थितियों का बोध। अध्यापक मैत्री तथा आत्मियता के द्वारा छात्रों में सामाजिक दृष्टिकोण, सामाजिक रुचियों तथा सामाजिक आदतों का विकास कर सकता है। अध्यापक को एक दार्शनिक के समान अपने छात्रों के हित तथा कल्याण पर विचार करना चाहिए और मार्गदर्शक के समान छात्रों को उचित सलाह देनी चाहिए।

**शिक्षण विधि के सन्दर्भ में—**वर्तमान शिक्षा व्यवस्था में शिक्षण की जितनी भी विधियाँ हैं, जितने भी नियम हैं, विद्यालयी पढ़ाई में उन पर कोई ध्यान नहीं दिया जाता। तोता-रटाई से छात्रों का बौद्धिक विकास रुक जाता है, सृजनात्मक तथा रचनात्मक शक्ति नष्ट हो जाती है। केवल कोर्स पूरा करने का प्रयास कहाँ तक उचित कहा जायेगा? जॉन डीवी ने शिक्षण-विधि के अर्थ को स्पष्ट करते हुए कहा है कि, "विधि का अर्थ पाठ्यक्रम वस्तु की उस अवस्था से है, जो उसको सर्वाधिक उपयोग के लिए व्यवस्थित करती है, विधि पाठ्य-वस्तु के विरुद्ध नहीं होती, वरन् यह तो वांछित परिणामों की ओर पाठ्य-वस्तु का प्रभावशाली निर्देशन है।" उनका मानना था कि बालकों को क्रिया करके, स्वानुभाव द्वारा, खोज करके तथा प्रयोग करके शिक्षा प्राप्त करनी चाहिए। उसके अनुसार इस प्रकार से प्राप्त ज्ञान ही उपयोगी होता है। डीवी का मानना था कि शिक्षा जीवन की पूर्व तैयारी नहीं है, अपितु प्रत्यक्ष जीवन है। विद्यार्थी को स्वानुभाव द्वारा अध्ययन करने का अवसर दिया जाना चाहिए। अर्थात् छात्रों को रट-रटाकर जो ज्ञान प्राप्त होता है, वह व्यवहारिक और मनोवैज्ञानिक नहीं होता है। 'करके सीखना' पद्धति के अनुसार एक क्रिया का बालक की अभिरुचि के अनुसार तथा उपयोगिता के आधार पर चुनाव होता है। बालक क्रिया से सम्बन्धित कुछ विषयों का ज्ञान भी प्राप्त कर लेता है। यह पद्धति बालक में आत्मविश्वास, आत्मनिर्भरता तथा मौलिकता लाती है। क्रिया के करने से नए-नए विचारों का जन्म होता है। अतः बालक के समक्ष ऐसी परिस्थितियाँ पैदा की जाती हैं जिनमें रहते हुए वह भौतिक तथा सामाजिक वातावरण की अनेक समस्याओं को सुलझा सके। अतः इस सिद्धान्त के अनुसार बालक की रचनात्मक क्रियाओं तथा प्रयोग द्वारा उसे विभिन्न बातों को सीखने का अवसर प्रदान किया जाता है। इस पद्धति में बालक को जीवन की वास्तविक परिस्थितियों में रखा जाता है। जिससे वह जीवन में आने वाली अनेक समस्याओं को सरलतापूर्वक सुलझा सके।

**पाठ्यक्रम के सन्दर्भ में—**वर्तमान पाठ्यक्रम में परीक्षा पर बहुत बल दिया गया है, इनमें तकनीकी और व्यावसायिक विषयों का समावेश नहीं किया गया है। ये विषय इस दृष्टि से बहुत आवश्यक हैं कि विद्यार्थी देश के औद्योगिक तथा आर्थिक विकास में भाग ले सके। अन्ततः पाठ्यक्रम वास्तविक जीवन से सम्बन्धित नहीं है। इसीलिए यह बालकों को जीवन के लिए तैयार करने में असफल रहा है। यह बालकों को वाह्य विश्व को समझने की सूझ-बूझ नहीं दे पाता है जिसमें उनको विद्यालय जीवन के पश्चात् प्रवेश करना है।

जॉन डीवी ने परम्परागत पाठ्यक्रम की तीव्र आलोचना की है। पुराने पाठ्यक्रम में ज्ञान का विभाजन भिन्न-भिन्न विषयों के रूप में कृत्रिम ढंग से किया गया है। वास्तव में ज्ञान अखण्ड है, उसे खण्डों में विभाजित करना उचित नहीं है। जॉन डीवी पाठ्यक्रम को विषयों में इसलिए विभाजित नहीं करना चाहते थे, क्योंकि हमें जीवन से जो अनुभव प्राप्त होते हैं, वे विषयवार नहीं होते। विद्यालय में दिये जाने वाले पुस्तकीय ज्ञान का प्रत्यक्ष जीवन से कोई सम्बन्ध नहीं रहता। अतः विषयों के माध्यम से शिक्षा न देकर कृति के माध्यम से शिक्षा दी जानी चाहिए। इस सम्बन्ध में जॉन डीवी ने कहा है "ज्ञान की आवश्यकता तथा उपयुक्तता छात्रों को स्वयं महसूस करनी चाहिए, ज्ञान जबरदस्ती लादा नहीं जाना चाहिए। जब विद्यार्थी स्वयं प्रेरणा से अपनी नैसर्गिक प्रवृत्ति के अनुसार कोई क्रिया करेगा, तब उसे ज्ञान प्राप्त होगा। इस प्रकार ज्ञान का सम्बन्ध क्रिया से होना चाहिए विभिन्न विषयों का ज्ञान से समन्वय भी होना चाहिए। ज्ञान प्रत्यक्ष अनुभव तथा सामाजिक आवश्यकताओं की पूर्ति के रूप में होना चाहिए। इसके लिए विद्यालय, घर तथा समाज में सरल और सीधा सम्बन्ध होना चाहिए। इस प्रकार विद्यार्थी अपना नैसर्गिक जीवन व्यतीत करते हुए नए अनुभव प्राप्त करेंगे, उनके ज्ञान में वृद्धि होगी और उनका शिक्षण स्वाभाविक पद्धति से होगा।"

**विद्यालय के सन्दर्भ में—**वर्ममान भारतीय विद्यालयों की स्थिति बड़ी गम्भीर है। विद्यालयों से जिन आदर्शों की अपेक्षा की जाती है वे (आदर्श) उनमें नहीं मिलते। विद्यालय को विद्या का मन्दिर, विद्या को आलय कहा जाता है, किन्तु क्या है आज ऐसी स्थिति? क्या आज विद्यालय सचमुच विद्या मन्दिर है? क्या उन्हें इस पवित्र नाम से सम्बोधित किया जा सकता है?

जॉन डीवी के अनुसार विद्यालय घर के समान ही स्नेहिल तथा आत्मीयतापूर्ण होना चाहिए। विद्यालय केवल बालक की शिक्षा का केन्द्र नहीं है अपितु सामुदायिक जीवन का भी केन्द्र है। जॉन डीवी ने कहा है, "विद्यालय को समाज का सच्चा प्रतिनिधि होना चाहिए। यदि विद्यालय में विद्यार्थी को अपनापन तथा पूर्ण स्वतन्त्रता मिलेगी तो वह अपने सुषुप्त गुणों का विकास कर सकेगा। यदि विद्यार्थी को जवाबदार नागरिक तथा स्वावलम्बी व्यक्ति के रूप में ढालना है तो उसमें परोपकार, सहयोग, सेवाभाव, प्रेम बन्धुता जैसे सामाजिक गुणों का विकास आवश्यक है क्योंकि बालक को जिस समाज में रहना है, विद्यालय उसका लघुरूप है।" जॉन डीवी ने कहा है, "विद्यालय मूलतः एक सामाजिक संस्था है तथा शिक्षा भी एक सामाजिक प्रक्रिया है। विद्यालय समाज जीवन का एक ऐसा रूप है जहाँ पर अनेक अभिकरणों का एकत्रीकरण हुआ है। इस स्थान में पुरानी पीढ़ी की आनुवंशिक धरोहरा सार रूप में तथा परिणामकारी रूप में दी जाती है और सामाजिक विकास के लिए वह अपनी शक्ति का उपयोग करता है।"

**अनुशासन के सन्दर्भ में—**आज सजा के रूप में स्कूलों में प्रायः दोषी को सबके सामने अपमानित किये जाने की प्रथा प्रचलित कटघरे की यातना के समतुल्य है। यह यातना बालक की अन्तर्रात्मा को एक ऐसी लोकधारणा के बारे में ऐसी सनक भरी अयौक्तिक भय से परिपूर्ण कर देती है जो स्पष्टतः अनुचित तथा गलत है।

बच्चों पर लादा गया कठोर अनुशासन उसके उत्साह को कुचल डालता है और उनके व्यक्तित्व के विकास में बाधक होता है। ऐसा बालक जिसने स्वयं ही अपनी क्रियाओं को दिशा देना तथा अपनी इच्छा को अनुशासित करना नहीं सीखा है, उसे सर्वदा दूसरों पर निर्भर होना पड़ता है। जो स्कूली बालक निरन्तर डाँटा और निरुत्साहित किया जाता है वह आगे चलकर अपनी शक्तियों में अविश्वास तथा भय के समिश्रण की उपलब्धि कर लेता है और वयस्क होने पर वह निरुत्साहित तथा दब्बू या बिल्कुल ही नैतिक प्रतिरोध कर पाने की अक्षमता का रूप ले लेता है।

जॉन डीवी की अनुशासन की संकल्पना एकदम नई है वह वाह्य नियंत्रण तथा शारीरिक दण्ड का विरोध करते हुए ऐसे सामाजिक अनुशासन को महत्व देते हैं जो बालक की रुचि, क्रिया तथा सामाजिक जवाबदारी के सिद्धान्तों पर आधारित है। उनके अनुसार अनुशासन एक मानसिक दशा है जिसको बनाने के लिए सामाजिक क्रियाएँ आवश्यक हैं। योजना पद्धति में सभी आवश्यक बातें सम्मिलित होती हैं। कार्य तथा खेल के मेल में बालक की मानसिक दशा इस प्रकार की बन जाएगी कि वह अन्य बालकों के कार्य में कोई हस्तक्षेप न करते हुए अपने कार्य को खेल समझते हुए पूरी लगन तथा वफादारी के साथ करेगा। इससे उसमें आत्मबल तथा आत्मनिर्भरता आएगी और दूसरे बालकों के प्रति प्रेम, सहानुभूति तथा सहयोग आदि सामाजिक गुणों का विकास होगा। इन सामाजिक गुणों के विकास होने से बालक में आत्मानुशासन तथा नैतिक अनुशासन का विकास होगा। विद्यालय के वातावरण में अपनी रुचि के अनुसार स्वतंत्रतापूर्वक सामूहिक कार्य करने से बच्चे में सामजिक अनुशासन पैदा होगा। विद्यालय ऐसे कार्यों का संयोजन करे जिससे विद्यार्थी एक साथ मिलकर काम करें। इससे बच्चों में सहनशीलता, संयम, श्रम-प्रतिष्ठा, सहयोग, बन्धुता एवं आत्मीयता के भाव पैदा होंगे। इससे सामाजिक गुणों का पोषण होगा और विद्यार्थी को विद्यालयीय जीवन के योग्य ढाला जा सकेगा। दूसरे शब्दों में उन्हें अनुशासित किया जा सकेगा।

निष्कर्षतः शोध-पत्र में कहा जा सकता है कि आज की वर्तमान परिस्थिति में जॉन डीवी के द्वारा प्रतिपादिता शिक्षा-प्राणाली की एक तात्कालिक आवश्यकता का बोध होता है।

## सन्दर्भ सूची

1. अग्रवाल, जे.सी.; नई शिक्षा नीति, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली, 1986.
2. ओड, एल.के.; शिक्षा की दार्शनिक पृष्ठभूमि, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर 1992.
3. डीवी, जॉन; इथिक्स ऑफ डेमोक्रेसी, युनिवर्सिटी ऑफ मिशीगन, न्यूयार्क, 1888.
4. डीवी, जॉन; द स्कूल्स एण्ड सोसाइटी, द युनिवर्सिटी ऑफ शिकागो प्रेस, शिकागो, 1900.
5. डीवी, जॉन; डेमोक्रेटिक फिलॉसफी ऑफ एजुकेशन, न्यूयार्क, मैकमिलन कं. 1916.
6. डीवी, जॉन; हाऊ वी थिंक्स, डी.सी. हेल्थ एण्ड कम्प., न्यूयार्क (एडी.) 1933
7. डीवी, जॉन; फिलॉसिफी ऑफ साइंस एण्ड फ्रीडम, एन. वाई. डीयल प्रेस, 1950.
8. पाण्डेय, रामशकल; उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा, 2008.

***

**Education**
Shodh Sandarsh-V, Vol.-XVI, Sept.-2017, Page : 119-120
ISSN No. - 2319–5908 (U.G.C. Approved Journal No. : 41329)

# पूर्वी उत्तर प्रदेश में इण्टरमीडिएट स्तर पर छात्रों की व्यावसायिक वरीयताओं का अध्ययन

*डॉ. राकेश प्रताप सिंह**

विज्ञान एवं तकनीकी के विकास ने वर्तमान विश्व को चकाचौंध कर दिया है। मानव इसके ऊपर इस प्रकार निर्भर हो गया है कि इसके बिना सही जीवन की कल्पना ही नहीं की जा सकती। मानव को विज्ञान एवं तकनीकी की आवश्यकता तथा उसके उपयोग के सन्दर्भ में बताने का शिक्षा ही एकमात्र और सबल माध्यम है। बदलती परिस्थितियों में एक ओर विज्ञान एवं तकनीकी का विकास हो रहा है, तो दूसरी तरफ हमारे देश में शिक्षा एवं शिक्षा की गुणवत्ता पिछड़ती जा रही है। इसके निराकरण के लिये यह आवश्यक है कि छात्रों को विभिन्न व्यवसायों की जानकारी देकर उसके प्रति प्रोत्साहित किया जाय। विज्ञान एवं तकनीकी अनुसंधानों के परिणामस्वरूप आज एक ओर विज्ञान जीवन समृद्ध एवं प्रगतिशील बना है तो दूसरी ओर अनेक मानसिक, सामाजिक और आर्थिक समस्याओं को भी जन्म मिला है। विशेष रूप से बालकों द्वारा अपने अध्ययन काल के दौरान व्यावसायिक विषयों के चयन में अनेक सुविधाएँ एवं जटिलताएँ अनुभव की जाती हैं। यही कारण है कि शिक्षा समाप्ति के उपरान्त जब वे वास्तविक जीवन के श्रम बाजार में पदार्पण करते हैं तो जीविकोपार्जन के लिए उन्हें विभिन्न बिन्दुओं से संघर्ष करना पड़ता है। आज का आर्थिक जीवन इतना जटिल हो गया है कि अनेक संभावित व्यवसायों में से किसी एक व्यवसाय के माधमय से अपनी जीविका का अर्जन करते हैं। माता-पिता की सहायता के बावजूद भी दिग्भ्रमित और अनिश्चय की भावना से ग्रसित नवयुवकों के लिए विशेष रूप से यह कार्य कठिन होता है कि वे अपने लिए यथार्थ की भूमि पर आधारित और समुचित व्यवसाय का चयन कर सके। व्यावहारिक रूप से यह देखा गया है कि जब व्यवसाय चुनने का समय आता है तो बहुत से छात्रों के सामने कठिनाई उत्पन्न हो जाती है कि कौन सा व्यवसाय चुना जाय। अधिकांश छात्र ऐसा व्यवसाय चुन लेते हैं जो उनकी रुचि अथवा संतुष्टि के अनुरूप नहीं होता है। निश्चय ही अधिकांश छात्र जो पढ़ाई समाप्त कर किसी न किसी व्यवसाय में पदार्पण करने की दिशा में अग्रसर होते हैं, तो इन्हें भी इस बात का ज्ञान नहीं होता है कि वे अपनी योग्यता, क्षमता एवं रुचि के अनुसार कौन सा व्यवसाय चुनेंगे। प्रायः यह देखा गया है कि अधिकांश छात्रों को स्वयं अपने बारे में गलत धारणा होती है। इनमें से कुछ अपनी क्षमता को बढ़ा-चढ़ाकर आँकते हैं और कुछ हीनभावना से ग्रसित होने के कारण क्षमता एवं योग्यता होते हुए भी अपने को साधारण व्यवसाय के लिए भी अक्षम एवं अयोग्य समझते हैं।

**उद्देश्य–**प्रस्तुत अध्ययन का उद्देश्य ''पूर्वी उ0प्र0 में इण्टरमीडिएट स्तर पर छात्रों की व्यावसायिक वरीयताओं का अध्ययन।''

**परिकल्पना–**प्रस्तुत अध्ययन में शून्य परिकल्पना बनायी गयी थी कि ''शासकीय एवं अशासकीय विद्यालयों के इण्टरमीडिएट स्तर के छात्रों की व्यावसायिक वरीयताओं में नगण्य अन्तर होता है।''

**शोधविधि–**प्रस्तुत अध्ययन में सर्वेक्षण विधि का अध्ययन किया गया है।

**समष्टि ( जनसंख्या )–**प्रस्तुत शोध में पूर्वी उ0प्र0 में कक्षा 12 के विद्यार्थी जनसंख्या का निर्धारण करते हैं।

**न्यादर्शन–**उपरोक्त परिभाषित जनसंख्या में से रेन्डम सेंपलिंग द्वारा 1100 विद्यार्थियों का चयन किया गया।

**शोध उपकरण–**प्रस्तुत शोध अध्ययन में आँकड़ों के संग्रह हेतु शोधकर्ता द्वारा निम्नलिखित उपकरणों का प्रयोग किया गया था–

1. प्रस्तुत अध्ययन हेतु शोधकर्ता द्वारा व्यावसायिक वरीयता से सम्बन्धित एक प्रश्नावली का निर्माण किया गया था।
2. प्रस्तुत अध्ययन हेतु मापनी मूल्य तथा औसत अपनी मूल्य का निर्धारण किया गया था।
3. प्रस्तुत अध्ययन हेतु प्रतिशतता का निर्धारण किया गया था।

* *विभागाध्यक्ष ( बी.एड्. ), स.ब.पी.जी. कालेज, बदलापुर, जौनपुर*

4. प्रस्तुत अध्ययन में कोटि निर्धारण किया गया।

छात्रों द्वारा दी गयी विभिन्न वरीयताओं के वेटेज के आधार पर व्यवसाय के क्षेत्रों के मापनी मूल्य का विवरण–

| क्र. सं. | व्यवसायों के क्षेत्र | प्रथम वरीयता के वेटेज | द्वितीय वरीयता के वेटेज | तृतीय वरीयता के वेटेज | चतुर्थ वरीयता के वेटेज | पंचम वरीयता के वेटेज | वेटेज का योग | मापनी मूल्य | रैंकिंग |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| 1. | न्याय एवं प्रशासन | 1075 | 460 | 129 | 126 | 53 | 1843 | 3.686 | 1 |
| 2. | कृषि एवं पशुपालन | 125 | 88 | 135 | 100 | 52 | 500 | 1.0 | 7 |
| 3. | अध्यापन | 150 | 140 | 129 | 200 | 32 | 651 | 1.302 | 4 |
| 4. | समाज सेवा | 35 | 72 | 150 | 187 | 87 | 528 | 0.056 | 6 |
| 5. | सामान्य व्यापार | 25 | 68 | 135 | 110 | 90 | 428 | 0.856 | 8 |
| 6. | साहित्य संगीत कला | 15 | 60 | 66 | 60 | 55 | 256 | 0.512 | 9 |
| 7. | घरेलू व्यापार | 50 | 60 | 24 | 50 | 24 | 208 | 0.416 | 10 |
| 8. | वैज्ञानिक क्षेत्र से सम्बन्धित व्यापार | 140 | 160 | 234 | 94 | 19 | 647 | 1.294 | 5 |
| 9. | यांत्रिक कार्य | 300 | 272 | 195 | 42 | 28 | 837 | 1.674 | 3 |
| 10. | चिकित्सा | 585 | 620 | 297 | 34 | 10 | 1546 | 3.092 | 2 |

## विश्लेषण एवं व्याख्या

ऊपर दी गई तालिका से स्पष्ट है कि व्यवसाय के क्षेत्रों में छात्रों ने प्रथम वरीयता के अन्तर्गत न्याय एवं प्रशासन, द्वितीय वरीयता के अन्तर्गत चिकित्सा एवं वरीयता तृतीय यांत्रिक कार्य को चुना। प्रथम, द्वितीय एवं तृतीय तो नहीं किन्तु चतुर्थ एवं पंचम वरीयता देकर अध्यापन एवं वैज्ञानिक क्षेत्र से सम्बन्धित व्यवसाय के प्रति भी छात्रों ने अपनी रुचि प्रकट की है। सामान्य व्यापार की तरफ जाना छात्रों ने कम पसन्द किया है जबकि साहित्य, कला, संगीत एवं घरेलू व्यापार को पसंदगी के वरीयता क्रम में अंतिम स्थान पर रखा है अर्थात् इस क्षेत्र में छात्रों की रुचि बहुत ही कम दिखायी दे रही है। शासकीय एवं अशासकीय दोनों ही क्षेत्रों के छात्रों ने लगभग एक समान व्यवसायों को वरीयता दी है। प्रस्तुत अध्ययन का समर्थन जे. एस. गुप्ता (1952) के अध्ययन से होता है जिन्होंने अपने शोध अध्ययन में पाया कि शासकीय एवं अशासकीय विद्यालयों के छात्रों की व्यावसायिक वरीयता में नगण्य अन्तर होता है। प्रस्तुत परिणाम से यह स्पष्ट होता है कि यदि छात्रों की योग्यता, क्षमताओं और रुचियों का अध्ययन करके तथा विभिन्न क्षेत्रों की जानकारी प्रदान करके व्यावसायिक क्षेत्रों का चयन कराया जाय तो छात्र व्यवसायों के क्षेत्र में महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर सकते हैं। उपर्युक्त उद्देश्यों की पूर्ति हेतु अमेरिका, रूस, फ्रांस, जापान, जर्मनी, आदि देशों में अनेक प्रयास किये गये हैं। इन देशों में राष्ट्रीय आवश्यकताओं तथा बालकों की व्यावसायिक रुचियों का अध्ययन करके उन्हें उसी के अनुसार शिक्षा प्रदान की जाती है। यदि अन्य दशों की भाँति हमारे देश में भी बालकों की व्यावसायिक क्षमताओं एवं रुचियों के अनुसार शिक्षा प्रदान की जाय तो निश्चित रूप से व्यावसायिक कुशलता के क्षेत्र में बालक उन्नति कर सकेंगे जिससे उनका व्यक्तिगत हित तो होगा ही साथ ही सम्पूर्ण समाज एवं राष्ट्र का भी विकास होगा।

## Reference

1. Agrawal, J.C. : Educational Research, 1966, Arya Book Depot, New Delhi, 1966.
2. Sukhia, S.P. : Elements of Educational Research, Calcutta, Allied Publication, 1966.
3. Singh, L. : Patterns of Education and Vocational Interest of Adolescents, Ph.D. (Psychology), Agra University, 1967.
4. Labh Singh and D. Prasad : Essentials of Guidance, Agra, (1971).
5. Gupta, G.S. : A Investigation into Vocational Interests of High School Boys of Kangra District, Delhi C.I.E., 1952.

Education
Shodh Sandarsh-V, Vol.-XVI, Sept.-2017, Page : 121-122
ISSN No. - 2319–5908 (U.G.C. Approved Journal No. : 41329)

# बौद्धकाल में नारी शिक्षा

*डॉ. ( श्रीमती ) रुचि मिश्रा**

बौद्ध साहित्य से स्पष्ट है कि स्त्री-पुरुषों के आर्थिक-सामाजिक अधिकारों में अन्तर हो सकता है, किन्तु धार्मिक क्षेत्र में इन दोनों के अधिकारों में समानता की घोषणा जेन और बौद्ध दोनों ही धर्म करते हैं।

वैदिक काल के अन्तिम चरण में लगभग 200 ई.पू. से स्त्री-शिक्षा के अवनति आरम्भ हो गई थी। महात्मा बुद्ध ने स्त्रियों को संघ में सम्मिलित कर उन्हें शिक्षा के क्षेत्र में नया जीवन प्रदान किया। प्रारम्भ में महात्मा बुद्ध ने स्त्रियों को संघ में सम्मिलित होने की अनुमति नहीं दी थी, किन्तु अपनी विमाता महाप्रजापति जो कि बाद में 500 शाक्य क्षकियों सहित संघ में प्रविष्ट हुईं तथा अपने प्रिय शिष्य आनन्द के आग्रह से बुद्ध ने स्त्रियों को प्रवेश करने की अनुमति दे दी थी जिससे स्त्रियाँ पुरुषों की भाँति ही ज्ञात तथा आध्यात्म के क्षेत्र में उतरती और कई बार उनको पीछे छोड़ जाती थीं।

कुछ ने धर्म प्रचार तथा समाज सेवा के कार्यों में भी महत्वपूर्ण भाग लिया और स्त्रियों के लिए पबज्जा संस्कार प्रतिपादित किया गया था। पबज्जा का शाब्दिक अर्थ ''बाहर जाना'' है। भावी भिक्षु इस प्रथा के अनुसार अपने पारिवारिक सम्बन्ध से विलग होकर बाहर आकर बौद्ध संघ में प्रविष्ट होता था। यह संस्कार 8 वर्ष की आयु में किया जाता था और वे बुद्धं शरणं गच्छामि, धम्मं शरणं गच्छामि, संघं शरणं गच्छामि, का व्रत लेकर श्रमण-श्रवणी कहलाने लगते थे। तब मठाधिकारी भिक्षु उन्हें बौद्ध धर्म का उपदेश देता था। धार्मिक शिक्षा के अतिरिक्त विविध कलाओं तथा विज्ञान की शिक्षा भी दी जाती थी। अधिक बल मौखिक शिक्षा पर ही था। प्रवचन, व्याख्यान, प्रश्नोत्तर, तक, विचार, विनिमय, देशाटन इत्यादि ज्ञान प्राप्त करने की विभिन्न विधियाँ थीं।

शिक्षा का अध्ययन लोक भाषा पाली सादर बाद में संस्कृति का भी प्रयोग किया जाता था। धार्मिक शिक्षा के साथ-साथ लौकिक विषयों की भी शिक्षा दी जाती थी।

पबज्जा संस्कार सभी वर्गों एवं जातियों के बालक-बालिकाओं की होती थी। पबज्जा के 12 वर्ष बाद अर्थात् 20 वर्ष की आयु में उपसम्बरा संस्कार लिया जाता था और संस्कारित व्यक्ति भिक्षु-भिक्षुणी कहलाने लगते थे। यह संस्कार संघ के कम से कम उपभिक्षुओं के सामने सम्पादित किया जाता था। इसके पश्चात् सामान्य शिक्षा समाप्त हो जाती थी और भिक्षु तथा भिक्षुणियाँ भक्तों में रहते हुए अपना जीवन धर्म के आचरण तथा उसके प्रसार में लगे रहते थे या फिर सांसारिक जीवन में जुट जाते थे।

शिक्षा प्राप्ति के समय नियमित एवं संयमित जीवन व्यतीत करना पड़ता था। स्त्रियों पर संघ के नियम अति कठोर थे। भिक्षुणि का परीक्षा काल 20 वर्ष का होता था। किसी को स्थायी भिक्षुणी बनने के लिए संघ की सहमति प्राप्त करनी आवश्यक थी। शिक्षा मठों तथा विहारों में जो शहरों से दूर हुआ करते थे दी जाती थी। विहारों में अध्ययनशील स्वभाव की महिलाओं को ही प्रवेश मिलता था। भिक्षणियों को भिक्षु से अलग रहना पड़ता था। आचार्यके साथ अकेले मिलना उनके लिए वर्जित था। एक विशेष भिक्षु द्वारा मास में दो बार दूसरे भिक्षु की उपस्थिति में उन्हें शिक्षा तथा उपदेश देने की व्यवस्था थी।

इस प्रकार हम देखते हैं कि दैनिक जीवन भिक्षु और भिक्षुणियों का समान होने पर भी ये सब प्रतिबंध संघ में नारियों पर थे फिर भी अनेक भिक्षुणियों के उच्च आत्मज्ञान तथा विद्वता के कारण संघ की प्रतिष्ठा में वृद्धि हुई।

भिक्षुणियों में अधिकतर दो प्रकार की महिलाएँ संघ में प्रविष्ट होती थीं। प्रथम प्रकार में वे महिलाएँ जो धार्मिक प्रेरणावश संघ में शामिल होती थीं। दूसरे प्रकार में वे महिलाएँ जो भौतिक जगत के संकटों से उठकर शान्ति प्राप्त करने के लिए भिक्षुणी बन जाती हैं। इस प्रकार की भिक्षुणी को 'थेरी' कहा जाता था। थेरी का अर्थ है ज्ञान-वृद्धा। भगवान बुद्ध ने अपनी सुयोग्य 13 थेरी का उल्लेख स्वयं किया है। जिसमें 'धम्मदिन्ना' प्रमुख थी। अन्य प्रख्यात महिलाओं में सोमा, चम्पा, किसा, गौतमी आदि महिलाएँ थीं। इन थेरियों ने जो आत्मकथा लिखी है। थेरी गाथा नाम से प्रख्यात है। कुछ उदाहरणों से ज्ञात होता है कि बौद्ध संघ अनेक भारतीय महिलाों को

* सहायक अध्यापिका, राजकीय बालिका इण्टर कालेज, जौनपुर

उच्चतम आध्यात्मिक प्रेरणा देते रहे। इन थेरी शिक्षा ने सांसारिक भोग विलास को ठुकराकर बौद्ध धर्म की दीक्षा ग्रहण की थी। जैसे महाप्रजापति, गौतमी और बहन नन्दा अतवीनृत, कन्या, सेला एवं सिंहा और जयन्ती आदि।

जातकों से ज्ञात होता है कि बौद्ध काल की अनेक महिलाओं ने दर्शनशास्त्र का अच्छा अध्ययन किया था। कुछ उच्चकोटि की कवयित्री एवं लेखिकाएँ भी थीं। कवयित्री के रूप में विजयका और कुछ महिलाएँ धर्म प्रतार के लिए विदेश भी गई थीं। जिसमें सम्राट अशोक की बेटी संघमित्रा के लंका अदि देशों में बौद्ध धर्म के प्रचार का उल्लेख मिलता है।

शुभा, अनुपमा, सुमेधा आदि ऐसी महिलाओं का उल्लेख है जिन्होंने आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत का पालन किया था। मथुरा से प्राप्त अभिलेखों में प्रतिष्ठित स्त्रियों के रूप में दीना, वसुला और बलहस्तिनी का उल्लेख है।

अनेक भिक्षुणियाँ शोकग्रस्त महिलाओं के कष्ट के निवारण के लिए तत्पर रहती थीं। 'पटचारा' नामक भिक्षुणि का नाम दयालु प्रकृति के लिए सराहनीय है। जातक कथाओं में अनेक महिलाओं की विद्वता के उदाहरण मिलते हैं। जैसे 'सरिपुत्त' भगवान बुद्ध के प्रधान शिष्य थे। वे एक अच्छे विद्वान थे। श्रावस्ती में चार स्त्रियों ने उन्हें शास्त्रार्थ के लिए ललकारा था। इससे ज्ञात के क्षेत्र में नारी की ओजस्विता का सहज अनुमान लगाया जा सकता है।

बुद्ध ने तिरस्कृताओं को भी संघ में प्रविष्ट कराके निर्वाण मार्ग पर अग्रसर कर दिया। जैसे राजकन्या सुमेधा ने जीवन को क्षणभंगुर समझकर वाराणसी की अधीश्वरी होने के बदले 'थेरी' जीवन चुका तीन पतियों द्वारा परित्यक्त श्रेष्ठि पुत्री 'इत्तिरासी' अन्त में थेरी बन गयी। वेश्या आम्रपाली अपनी सारी संपत्ति संघ को भेंट कर थेरी बनी थी। अर्धकेशी पद्मावती और गणिका विमला भी वेश्यावृत्ति त्यागकर थेरी बन गयी थी।

इससे यह स्पष्ट होता है कि थेरिया राजमहिषियों से लेकर वेश्याओं और अस्पृश्याओं के समाज के प्रत्येक वर्ग से आती थीं। नारियों में प्रवृजित होने के अनेक उदाहरण हैं। इससे पूर्व की अधिक संख्या में स्त्रियाँ संन्यासिनी नहीं हुआ करती थीं। इसका कारण था पुरुषों का अधिक संखया में प्रबज्जा का ग्रहण करनास एवं नारी की हेय रक्षा। भिक्षुणी नारियों को बौद्धयुगीन समाज में अति आदरणीय दृष्टि से देखा जाता था। इससे उस समय स्त्रियों की सामाजिक प्रतिष्ठा भी बढ़ी थी।

संघ के बाहर भी स्त्रियों में धर्म के प्रति बड़ी रुचि थी। विसाश्वा, सुपिया, आम्रपाली आदि महिलाएँ धमानुरागी थीं और उनकी दानशीलता बौद्ध संघ में प्रसिद्ध थी। भारतीय नारियों के मानसिक तथा नैतिक उत्थान में भिक्षुणियों की सेवा आत्मीयता एवं सहानुभूति ने पर्याप्त योग दिया। कभी-कभी पति-पत्नी दोनों अलग रहकर प्रव्रजित जीवन व्यतीत करते थे। कुछ भिक्षुणियाँ कभी-कभी पुनः गृहस्थ जीवन में प्रवेश कर जाती थीं। स्त्रियों को मठ में प्रेव की अनुमति तो मिल गई थी, किन्तु इसके दुष्परिणाम सामने आने लगे थे। एक जगह उल्लिखत है, गौतम वह विहार भला विहार कैसे कहला सकता है, जहाँ स्त्रियों द्वारा प्रयुक्त पापों का प्रयोग भिक्षु करते हैं। कालान्तर में बौद्ध श्रमिकों ने मठ मों होने वाले यौन अनाचारों को तन्त्र का जामा पहनाकर उन पर धार्मिकता की मुहर लगा दी। इतिहास इस बात का साक्षी है कि मठों तथा विहारों में होने वाले काममार्गी क्रियालापोंने किस तीव्र गति से इन सम्प्रदायों को पतन के गर्त में गिरा दिया। कालान्तर में इसके अनेक दुष्परिणाम हुए जिससे बौद्ध धर्म की प्रतिष्ठा कम होने लगी। मठ तथा विहार भ्रष्टाचार के स्थान बन गये। महात्मा बुद्ध को इसका आभास पहले से ही था। इसीलिए उन्होंने कहा "आनन्द"! मैंने जो धर्म चलाया था वह पाँच हजार वर्ष टिकने वाला था। लेकिन अब यह सिर्फ पाँच सौ वर्ष तक चलेगा, क्योंकि हमने स्त्रियों को संघ में सम्मिलित होने की आज्ञा दे दी है। महात्मा बुद्ध को इसके दुष्परिणाम अपने जीवकाल में ही दिखायी पड़ने लगे थे।

धीरे-धीरे यह इवश्वास अधिक पक्का होता गया और स्त्रियों का सम्मान घटने लगा। धार्मिक कृत्यों में भी उन्हें वही स्थान न दिया जाता था जो पहले दिया जाता था। डॉ0 एम0 एम0 अल्तेकर के शब्दों में सत्य ही कहा गया है।

"स्त्री शिक्षा को बौद्ध धर्म से किसी प्रकार की प्रेरणा प्राप्त न हो सकी। इस प्रकार ईसा की चतुर्थ शताब्दी के बाद बौद्ध शिक्षा व्यवस्था में स्त्री शिक्षा समाप्त कर दी गई। हम यह कह सकते हैं कि जिस प्रकार बौद्ध शिक्षा में स्त्री शिक्षा की उन्नति हुई उसी तरह अवनति हो गई।"

## सन्दर्भ ग्रन्थ

1. गुप्त, नाथू लाल : "जैन-बौद्ध शिक्षा पद्धति" विश्व भारती प्रकाशन, नागपुर, 1985, पृ0 105
2. चौबे, सरजू प्रसाद : "आदि और मध्ययुगीन भारत में शिक्षा" विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा, 1984, पृ0 85.
3. सिंघल, महेश चन्द्र : "भारतीय शिक्षा की वर्तमान समस्याएँ" राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, पृ0 4
4. शर्मा, गजानन : "प्राचीन भारतीय साहित्य में नारी" रचना प्रकाशन, इलाहाबाद, 1971, पृ0 135.

***

**Political Science**
Shodh Sandarsh-V, Vol.-XVI, Sept.-2017, Page : 123-130
ISSN No. - 2319–5908 (U.G.C. Approved Journal No. : 41329)

# भारत-नेपाल सम्बन्ध का विकास 1960 के बाद के विशेष सन्दर्भ में

*रामकृष्णा**

भारत नेपाल सम्बन्ध आज जिस रूप में विद्यमान है, वह दोनों देशों की भौगोलिक स्थिति तथा विशेष रूप से नेपाल की ऐतिहासिक परिस्थितियों एवं उनके विकास का परिणाम है इसलिए भारत-नेपाल के सम्बन्ध को उनके ऐतिहासिक परिवेश में ही भली-भाँति समझा जा सकता है।

हिमालय के दक्षिणी ढ़लान पर स्थित नेपाल विश्व का एक मात्र हिन्दु राज्य है, जिसकी स्थापना पृथ्वी नारायण द्वारा 1769 ई. में कि गयी। नेपाल की अवस्थिति एशिया के दो बड़े देशों चीन और भारत की सीमाएं नेपाल से लगी हुई हैं। इसी स्थिति को ध्यान में रखते हुए, नेपाल के जनक पृथ्वी नारायण शाह ने इसे "**दो चट्टानों के बीच खिले हुए फूल**" की संज्ञा प्रदान की। इस तरह से नेपाल और भारत की सीमा एक दूसरे से मिली हुई है, इसी कारण भारत नेपाल सम्बन्ध सृष्टि के प्रारम्भ से रहा है, और विशिष्ट भौगोलिक एवं सांस्कृतिक कारणों से अनंत काल तक बना रहेगा। भौगोलिक दृष्टिकोण से नेपाल भारत तिब्बत के बीच स्थित है, और अब तिब्बत पर चीन के आधिपत्य के बाद भारत चीन सम्बन्ध के बीच एक '**बफर स्टेट**' का कार्य कर रहा है। अतः नेपाल में होने वाली कोई भी राजनीतिक गतिविधि भारत विदेशी नीति को प्रभावित करती है।

भारत तथा नेपाल का सम्बन्ध प्राचीन काल से ही रहा है। चौदहवीं शताब्दी में हिन्दु राजपूतों ने इसके मूल निवासी मंगोलों को पराजित करके हिन्दु शासन की स्थापना की। शुरुआत में यक्षमल्य नेपाल पर शासन किया। यक्षमल्ल अपने मरने से पहले नेपाल की राजव्यवस्था को अपने पुत्रों में बांट दिया था। बांटे गए राज्यों काठमांडू, पट्टन, भटभंग और गोरखा जैसे क्षेत्र शामिला थे। 1488 से 1769 तक नेपाल के चारों राज्य काठमांडू, पट्टन, भटभंग और गोरखा राज्यों में बंटा गया। कुछ समय पश्चात् 1742 में नेपाल में पृथ्वी नारायण गोरखा शासक था, उसने नेपाल के छोटे-छोटे राज्यों को हराकर जीत लिया। इस विजय के बाद पृथ्वी नारायण गोरखा भारत के कुछ प्रदेश जैसे तराई प्रदेश, गढ़वाल, शिमला तथा सिक्किम के प्रदेश को अपने अधिकार में ले लिया। लेकिन इन विजयों के बाद काठमाण्डू के शासक ने पृथ्वीनारायण गोरखा का प्रतिरोध करने का फैसला किया उसने पृथ्वी नारायण के खिलाफ भारत के प्रभावशाली ईस्ट इंडिया कंपनी से सहायता की याचना की। कंपनी ने सहायता करने का फैसला किया। ईस्ट इंडिया कंपनी ने **कैप्टन किनलोच** को कुछ सेना सहिता पृथ्वीनारायण गोरखा के विरोध में नेपाल भेज दिया। परन्तु काठमांडु का शासक असफल रहा। कैप्टन **.किनलोच** के नेतृत्व में ब्रिटिश सेना दोनों मिलकर भी पृथ्वी नारायण गोरखा से पार न पा सकी। वह जो कि एक योग्य शासक था उसने राज्य का विस्तार किया था, उसको एकता के सूत्र में संगठित कर दिया।

अंग्रेजी ईस्ट इंडिया कंपनी नेपाल में व्यापारिक उद्देश्य से गयी थी। लेकिन यहाँ पर कुछ ऐसी परिस्थितियाँ बन गयी की ईस्ट इंडिया कम्पनी को राजनीतिक सत्ता प्रदान करने का अवसर मिल गया। किनलोच अभियान की असफलता के बाद ईस्ट इंडिया कम्पनी ने **जेम्स लोगन** को नेपाल में व्यापारिक सम्बन्ध सुधारने के लिए भेजा गया, परन्तु जेम्स लोगन भी असफल रहे। जेम्स लोगन के कुछ समय पश्चात् वारेन हेस्टिंग्ज नेपाल में व्यापारिक सम्बन्ध सुधारने के लिए भेजे गये। वारेन हेस्टिंग्ज ने नेपाल में अहस्तक्षेप की नीति अपनाते हुए हेस्टिंग्ज ने अपने कठिनाइयों के काल (1772-1785) में पृथ्वी नारायण, प्राताप सिंह व राणा बहादुर शाह (नेपाल के शासक) से मित्रता पूर्ण सम्बन्ध बनाये रखे। वारेन हेस्टिंग्ज के बाद आने वाले ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कम्पनी के नेतृत्व नेपाल में करने वाले गवर्नर कार्नवालिस शोर, और वेलेजली ने भी वारेन हेस्टिंग्ज द्वारा अपनाई गई '**अहस्तक्षेप की नीति**' के माध्यम से ही कार्य किया।

लार्ड कार्नवालिस के काल में '**अहस्तक्षेप की नीति**' एक मुख्य घटनाक्रम में दिखता है। कार्नवालिस के काल में 1787 में जब मुद्रा समस्या के कारण नेपाल और तिब्बत के बीच एक झड़प हो गयी। चीन ने नेपाल के विरोध में तिब्बत का पक्ष लिया।

* *शोध छात्र, जी.बी. पंत सामाजिक विज्ञान शोध संस्थान, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद*

नेपाल के वर्तमान शासक राणा बहादुर शाह ने अंग्रेजी ईस्ट इंडिया कम्पनी से सहायता मांगी। इस समय कार्नवालिस न तो नेपाल की सहायता करना चाहता था, और न ही सहायता करके चीन से दुश्मनी लेना चाहता था। इसलिए कार्नवालिस ने बीच का रास्ता निकालने के लिए **किर्कपैट्रिक** मिशन भेजा। परन्तु तब तक काफी देर हो चुकी थी। लेकिन इस मिशन के भेजने का कम्पनी को लाभ मिला। 1792 ई. में नेपाल और अंग्रेजी ईस्ट इंडिया कम्पनी के मध्य एक व्यापारिक संधि हो गयी। लेकिन इस संधि के हुए समझौते कागज तक ही सिमट कर रह गये।

नेपाल के शासक राजा बहादुर शाह ने कम्पनी से जो असम्मानपूर्ण संधि की और शाह द्वारा किए गए कुछ अन्य कार्य राजा बहादुर शाह की प्रतिष्ठा को मिट्टी में मिला दिया। इससे स्थिति यहाँ तक आ गयी की राजा बहादुर शाह को नेपाल छोड़कर भागने पर विवश होना पड़ा।

राजाबहादुर को नेपाल छोड़कर भाग जाने के बाद नेपाल के दरबार में दो अन्य परिवार राजनीतिक दृष्टिकोण से शक्तिशाली होने लगे। रानी राजेश्वरी के काल में **पांडे** परिवार तथा रानी त्रिपुर सुन्दरी के काल में थापा परिवारी काफी शक्तिशाली रूप से उभरे। इन दोनों राजपरिवारों में थापा परिवार काफी बढ़-चढ़कर राजनीतिक भागीदारी किया। 1806 में रानी संदुरी ने भीमसेन थापा को प्रधानमंत्री नियुक्त किया। 1806 से 1836 के बीच नेपाल ने ईस्ट इंडिया कम्पनी की बंगाल एवं अवध की विशृंखलित सीमा का अतिक्रमण करना प्रारम्भ कर दिया। इसके अलावा गोरखों ने भी अतिक्रमण में सक्रिय भाग लिया। गोरखों ने शिवराज नामक प्रदेश हथिया लिया तथा मई 1814 में गोरखपुर जिले में बुटवल नामक स्थान के तीन पुलिस स्टेशनों पर अकारण आक्रमण कर दिया तथा वहाँ के कई निवासियों को मौत के घाट उतार दिया। अतः नवम्बर 1814 में लार्ड हेस्टिंग्ज ने नेपाल के विरुद्ध युद्ध को घोषणा कर दी। लार्ड हेस्टिंग्ज ने स्वयं लड़ाई की योजना बनाई। उसने निर्णय किया कि सतलज से लेकर कोशी तक की समूची सीमा पंक्ति पर, चार विभिन्न स्थानों पर एक साथ शत्रु पर आक्रमण किया जाए। प्रथम युद्ध में अंग्रेजों को कुछ विशेष सफलता नहीं मिली। 1815 में दूसरा आक्रमण किया गया जो अधिक सफल रहा। कुमायूँ से अल्मोड़ा को जीत लिया गया, तथा मेजर जनरल आक्टरलोनी ने वीर गोरखा अमर **सिंह थापा** को मलाव का किला समर्पित करने को विवश किया। प्रतिरोध बेकार जानकर नेपाल के शासक के प्रतिनिधियों ने संधि कर ली।

आक्टरलोनी ब्रिटिश सैनिकों की सर्वोच्च कमान था। उसने कमावानपुर के महत्वपूर्ण प्रदेश पर अधिकार कर लिया, नेपाल की राजधानी काठमांडू अब सिर्फ 30 मील की दूरी पर थी। उसकी तेजी से घबराकर नेपाल के शासन ने मार्च 1816 में **'सुगौली'** की संधि को मान्यता प्रदान कर दी।

**सुगौली संधि के अनुसार,** गोरखों ने अपनी दक्षिणी सीमांत से लगती हुई तराई पर कम्पनी का प्रमुख स्वीकार कर लिया, तथा पश्चिमी कुमायूँ एवं गढ़वाल जिले भी कम्पनी को भेंट कर दिया। इस प्रकार अंग्रेजों को भावी ग्रीष्मकालीन राजधानी शिमला का प्रदेश प्राप्त हुआ। कम्पनी का अधिराज्य हिमालय का स्पर्श करने लगा।

**जंग बहादुर थापा—**भीमसेन थापा शक्तिशाली होने के बावजूद नेपाल दरबार में षड़यंत्रों पर नियंत्रण न रख सका। उसके कई दुश्मन बन गए। उसके पतन के पश्चात् नेपाल में थापा और पांडो के बीच शक्ति के लिए संघर्ष होने लगा। 1829-1843 के बीच ब्रिटिश रेजीडेंट **हौजसन** नेपाल की आंतरिक राजनीति में सक्रिय भाग लेता रहा। लार्ड एलेनबरो को यह पसन्द नहीं आया और उसने हौजसन को बुलाकर दूसरा रेजीमेंट भेज दिया। नेपाल की आंतरिक राजनीतिक स्थिरता 1846 में समाप्त हुई जब खूनी झगड़ों का अंत करते हुए जंग बहादुर प्रधानमंत्री बना।

जंगबहादुर के काल की महत्वपूर्ण घटना उसकी ब्रिटेन की पावा थी। नेपाल के साथ मिथक जुड़ा था कि बाहरी सभ्यता और संस्कृति के मेल-मिलाप से नेपाल की सभ्यता तथा संस्कृति का पतन हो सकता है। नेपाल के लोगों ने अपनी सभ्यता और संस्कृति को ही महान समझते थे। लेकिन जंगबहादुर ब्रिटेन सरकार के आमंत्रण पर 1850-51 में अपनी जाति के खो जाने के भय को समाप्त कर समुद्र पार इंग्लैण्ड गया। जब जंगबहादुर ब्रिटेन से लौटा तो वह यूरोप तथा ब्रिटेन की शक्ति से प्रभावित हुआ। अब उसे यह निर्णय लेना था कि वह नेपाल पर पाश्चात्य सभ्यता और संस्कृति का असर पड़ने दे की नहीं।

जंग बहादुर को इसी में अपनी भलाई और परिवारों की व देश की भलाई समझी की कम्पनी से मित्रता रखी जाए। किन्तु जंग बहादुर को यह भी एहसास था कि नेपाल का स्वतंत्र अस्तित्व या पृथकता पूर्ण रूप से बनी रहे तभी नेपाल ब्रिटेन के औपनिवेशिक विस्तार के चंगुल से बचा रह सकता है। नेपाल को जंग बहादुर नेपाल से मित्रता रखने का प्रयास किया, लेकिन इसके साथ वह नेपाल के पृथक अस्तित्व को बरकरार रखने के लिए गम्भीर बना रहा।

कहा जाता है कि 1857 के बार गदर के बाद नाना साहब ब्रिटेन हुकूमत के डर से नेपाल में ही भाग गये थे। नाना साहब के अन्य विद्रोही भी नेपाल में शरण ले चुके थे। लेकिन कम्पनी बहुत कोशिशों के बाद भी नाना साहब को ढूढ़ने में सफल न हो सकी।

जंग बहादुर के पश्चात् नेपाल में राजनीतिक शक्ति केवल राज-परिवार के सदस्यों तक ही सीमित रही। किन्तु नेपाल में केवल वही प्रधानमंत्री बन सकता था, जो योग्य व शक्तिशाली हो तथा षड्यंत्रों में विजयी हो सके। इस प्रकार इसी ही परिवार के अनुभवी योग्य सदस्य ही प्रधानमंत्री बनते रहे और वे नेपाल को सुदृढ़ शासन प्रबन्ध देने में सफल भी हुए। उन्होंने साधारणतः जंग बहादुर की ही नीति अपनाई। राज परिवार पर इस बात का आरोप लगाया जाता है कि उसने अपने स्वार्थ के कारण नेपाल को अंग्रेजों के हाथ का खिलौना बना दिया। किन्तु यदि वह अंग्रेजों का और विरोध करता तो ऐसी स्थिति थी कि वह अंग्रेजी को नेपाल से बाहर रखने में सफल न रह पाता। अफगानिस्तान जैसे बड़े राष्ट्रों की विदेश नीति पर भी उन्होंने नियंत्रण रखना था। इस प्रकार नेपाल के कुछ अंश तक विदेशी सम्बन्धों में भारतीय राज्यों की तुलना में अधिक स्वतंत्र था। नेपाल के प्रधानमंत्रियों ने भी भारत सरकार के साथ पत्र व्यवहार में नेपाल की स्वतंत्र स्थिति पर सदा बल दिया। संक्षेप में नेपाल सैद्धान्तिक रूप से स्वतंत्र था किन्तु वास्तविक रूप में भारत सरकार के प्रभाव के अधीन था तथा उसे किसी भी प्रकार नाराज करने की स्थिति में नहीं था।

राज परिवार ने नेपाल में पृथकता की नीति अपनाई। उसका मुख्य उद्देश्य अपने को शक्तिशाली बनाए रखना था। नेपाल की पुरानी परम्पराओं को बनाए रखनें में ही इस उद्देश्य की पूर्ति आसानी से हो सकती थी। वह समझता था कि यदि नेपाल को आधुनिक व पाश्चात्य हवा के सामने खुला छोड़ दिया गया तो इस परिवार के राज्य का अंत हो जाएगा।

साम्राज्यवाद सत्ता के सहयोग से प्राप्त आर्थिक विकास (रेल उद्योग) व शासन प्रबन्ध के आधुनिक विचारों से देश को वंचित रखने के लिए वह दोषी जरूर है किन्तु पृथकता के नीति के कारण ही नेपाल ब्रिटिश साम्राज्य का अंग बनने से बच गया।

भावी संधि-समझौते वाली व्यवस्थाओं के प्रकृति पर भारत तथा नेपाल देशों के दृष्टिकोण में अंतर होने के कारण भारत-नेपाल सम्बन्ध में दोनों देशों ने कुछ परिवर्तन की इच्छा व्यक्त की। भारत और नेपाल के सम्बन्ध में कुछ परिवर्तन के बाद तनावपूर्ण मुद्दे को सुलझाने में अधिक सुगमता होने की उम्मीद मानी जा रही है। भारत नेपाल सम्बन्ध के तनावपूर्ण मुद्दे इस प्रकार हैं–

नेपाल में आतंकवादी गतिविधियाँ संचालित करने के लिए भारतीय भूमि का प्रयोग, असम और पं. बंगाल के दार्जीलिंग जिले में नेपाली जनसंख्या की समस्या और नेपाल में भारतीय नागरिकों के साथ हुआ व्यवहार, नेपाल जनसंख्या की समस्या और नेपाल में भारतीय नागरिकों के साथ हुआ व्यवहार, नेपाल के साथ बढ़ते हुए सम्बन्ध से भारत और नेपाल के बीच सम्पन्न द्विपक्षीय नीति के स्पष्ट उल्लंघन के रूप में भारत देखता है।

इस तरह से नेपाल और भारत के बीच ये संघर्ष के रूप में कुछ मुद्दे थे। इस स्थिति से निपटने के लिए सकारात्मक प्रयास किये गये। जिसमें 1989 के राष्ट्रीय मोर्चा सरकार की स्थापना के साथ लोकतंत्र का प्रभाव, 1991 में व्यापारिक समझौते, इसके क्रियान्वयन की निगरानी हेतु आयोग का गठन, गुजराल की एक पत्रीयता की नीति, 1997 में वायु-सेवा सहयोग, 1990 के सचिव स्तरीय वार्ता का आयोजन, 1999 में पारगमन की नीति का सरलीकरण एवं उदारीकरण तथा सुरक्षा सम्बन्धी पारस्परिक वार्ता, 2000-2001 में वायु उड़ान की बहाली, 2001 में संसद को भंग करने की सक्रियता एवं शाही मौतें, 2001 में माओवादी हिंसा की असफलता, राजा की बरखास्तगी तथा 2003 में युद्धविराम और 2004 से 2007 के बीच तेजी से बढ़ती राजनीतिक एवं कूटनीतिक घटनाओं का विशेष योगदान रहा है।

भारत नेपाल सम्बन्ध के विकास का विश्लेषण करने के लिए नेपाल तथा भारत के सभी पत्रों, संवैधानिक विकास, राजनीतिक विकास तथा तत्कालीन घटनाक्रम, सांस्कृतिक विकास, आर्थिक और कूटनीतिक समझौते जैसे महत्वपूर्ण पत्रों की जानकारी आवश्यक है।

**संवैधानिक विकास से पूर्व की स्थिति–**एक केन्द्रीयकृत राज्य के रूप में नेपाल 1769 में अस्तित्व में आया किन्तु संविधान निर्माण की प्रक्रिया 1948 में जाकर ही शुरु हो सकी। 1769 से पहले नेपाल में राजनैतिक स्थिति बिखराव की स्थिति में था जहाँ पर अलग-अलग क्षेत्र में एक कुछ विशेष नियम कानून नैतिक आचार-विचार प्रचलना में रहे। लेकिन 1769 में केन्द्रीयकृत शासन प्रणाली के स्थापित होने के बाद पूरे देश में कुछ विशेष नियम और कायदे-कानून (अलिखित) प्रचलन में आये। जिसे राजा अपनी सुविधा तथा शासन व्यवस्था को सुचारु रूप से संचालन के लिए अपनाये थे। नेपाल को संगठित करने का क्षेत्र शाहों के शासनकाल में गोरखा शासक पृथ्वी नारायण शाह के हैं जिसने अनेक दूसरी रियासतों पर विजय प्राप्त करके 1767-69 में देश को अपने केन्द्रीकृत शासन के अधीन एकीकृत किया। इस समय शासन प्रणाली शक्ति पर आधारित थी। राजा के दरबारी परिवार, राजसी शक्तियाँ तथा अन्य राजनीतिक रूप से जुड़े प्रभावशाली वर्ग की गतिविधियों पर नजर पड़ती थी। कोई राजा के प्रति षड्यंत्र न रचे।

**संवैधानिक विकास**—नेपाल का प्रथम लिखित संविधान पद्मरामशेर द्वारा 1948 में लागू किया गया जो नेपाल सरकार अधिनियम 1948 राज्य का प्रथम लिखित संविधान था। इस अधिनियम का उद्देश्य नेपाली राज-व्यवस्था के जनतंत्रीकरण की प्रक्रिया की शुरुआत करना था। 1951 के अंतरिम संविधान ने नेपाल की जनता के लिए मौलिक अधिकार के अंतर्गत राष्ट्रीय शक्ति तथा सुरक्षा की सीमा के भीतर बोलने तथा अभिव्यक्ति, संगठित होने तथा सभा करने, देश के सभी भागों में आने-जाने, निजी सम्पत्ति के अधिकार जैसे प्रावधान बनाये गये, वहीं नीति निर्देशक तत्व में जनता के प्रति राज्य का कर्त्तव्य, सामाजिक सुरक्षा, न्याय तथा समानता को प्रोत्साहन देना सम्मिलित था। 1959 का संविधान इस दृष्टि से महत्वपूर्ण है कि इसमें पहली बार राज्य में संसदीय प्रणाली की स्थापना किये जाने की परिकल्पना की गयी थी।

संविधान ने राजसिंहासन की उत्तराधिकार से सम्बन्धित परम्परा को पूर्ववत जारी रखा है। इसके द्वारा राजा को सुविधाएं तथा करों से मुक्ति प्रदान की गयी।

संविधान ने एक राजपरिषद तथा उसकी स्थाई समिति के गठन का प्रावधान किया है। राजा की मृत्यु अथवा गद्दी का परित्याग, अथवा राजपरिषद् के कुल सदस्यों में से कम-से-कम एक चौथाई सदस्यों द्वारा यह करते हुए अनुरोध करने पर कि मानसिक अथवा शारीरिक कमजोरी के कारण राजा अपने कार्यों को पूरा करने में असमर्थ है। राजपरिषद का महत्वपूर्ण कर्तव्य प्रतिशासन व्यवस्था के बारे में निर्णय करना है। राजा को सौंपी गयी कार्यपालक शक्तियों का प्रयोग प्रधानमंत्री के नेतृत्व वाले मंत्रिमंडल की सलाह पर किया जाता है। इस तरह राजा कार्यपालिका का औपचारिक प्रमुख है।

संविधान ने एक द्विपक्षीय विधान मंडल के निर्माण के लिए प्रावधान किया है। हाउस ऑफ रिप्रेजेंटेटिव के द्वारा मौलिक अधिकारों की प्रभावशाली सूची प्रदान की गई। इसमें समानता का अधिकार, अपराधिक न्याय से सम्बन्धित अधिकार, नजरबंदी के विरुद्ध अधिकार, धर्म का अधिकार, शोषण के विरुद्ध अधिकार, निजी गोपनीयता का अधिकार तथा संवैधानिक समाधान का अधिकार सम्मिलित है।

नेपाल के इस सविधान में उल्लेख है कि राजा नेपाली राष्ट्र तथा नेपाली जनता की एकता का प्रतीक है।

न्यायिक व्यवस्था में एक सर्वोच्च न्यायालय, अपील सम्बन्धी न्यायालयों तथा जिला न्यायालयों से मिलकर बनी है। इसके अलावा विशेष मामलों की सुनवाई के लिए न्यायालयों तथा न्यायाधिकरणों (ट्रिव्यूनलों) का गठन किया जा सकता है। संविधान ने न्यायाधीशों की नियुक्ति तथा सेवा शर्तों के लिए विषय में पर्याप्त एवं आवश्यक प्रावधान किये हैं।

भारत-नेपाल सम्बन्ध के संवैधानिक विकास में 1948 के संविधान तथा उसके बाद 1959 के संविधान का प्रभाव नेपाल की राजनीति तथा भारत से चल रहे नेपाल के सम्बन्ध पर भी पड़ा। 1948 के संविधान के द्वारा जनतंत्रीकरण का प्रभाव नेपाल पर पड़ा। नेपाल की शासन व्यवस्था में राजा के अलावा अन्य लोगों को प्रभाव दिखने लगा, जो कि शासन में जनता की भागीदारी को बढ़ाने का प्रयत्न कर रहे थे। 1959 के संविधान को शासन व्यवस्था को और अधिक जनता के हित में कर दिया गया। अब 1959 का संविधान राजपरिषद तथा उसकी स्थाई समिति के गठन का प्रावधान किया गया। अब शासन व्यवस्था प्रजातांत्रिक मूल्यों को महत्वपूर्ण बनाने में अधिक सफल हो सकती थी। भारत में भी इस समय तक अंग्रेजों से आजादी मिल गयी थी तथा संविधान में लोकतांत्रिक मूल्यों और प्रजातांत्रिक मूल्यों से ओत-प्रोत भारतीय राजव्यवस्था का संचालन हो रहा था। इस तरह से दोनों देशों की संवैधानिक विकास 'लोकतांत्रिक मूल्यों' को क्रियाशील बनाने का प्रयास कर रहा था।

**1962 का संविधान**—इस संविधान को राजा महेन्द्र द्वारा 16 दिसम्बर, 1962 को लागू किया गया। इसका निर्माण पाकिस्तान में मूल लोकतंत्र, इंडोनेशिया का निर्देशित जनतंत्र या मिस्र की वर्ग संगठन प्रणाली की तर्ज पर किया गया था। इसे तीसरी दुनिया में लोकतंत्र का नमूना बताया गया। नेपाल में नई प्रणाली को पंचायत प्रणाली का नाम दिया गया।

1962 के संविधान की विशेषता यह थी कि इसने नेपाल में दलविहिन पंचायत प्रणाली स्थापित की। इस संविधान ने राजा के इस कृत्य का अनुमोदन कर दिया कि संविधान के द्वारा संवैधानिक कानूनों, रिवाजों तथा देश के प्रचलनों द्वारा प्रमुखता राजा के हाथों में केन्द्रित थी। इस संविधान ने राजा की शक्ति को बहुत ही बढ़ा दिया। संविधान ने राजा की शक्तियों का प्रयोग करों में सहायता करने के लिए 'मंत्रिमंडल' का प्रावधान किया। मंत्रियों की नियुक्ति राजा ही करता था। इसलिए मंत्रिमंडल राजा के हाथ का खिलौना मात्र बनकर रह गया। इसके अलावा एक मात्र सदन वाली राष्ट्रीय पंचायत नामक विधानमंडल गठित किया गया जिसमें 125 सदस्य थे। 90 सदस्य का 4 क्षेत्रों से 15 का 5 वर्षीय संगठनों से 4 का स्नातक चुनाव से निर्वाचित होना था 16 सदस्यों को राजा द्वारा सीधे निर्वाचित किया जाना था। राष्ट्रीय पंचायत के सदस्य राजा के प्रति जवाबदेह थे जिसे सभी विधानमंडल शक्तियाँ राजा के हाथ में ही रहीं। राज्यसभा के गठन का भी प्रावधान था, जिसका कार्य राजा को सलाह देना तथा राजा की मानसिक अथवा शारीरिक अस्वस्थता पर उसकी मृत्यु हो जाने पर राजकुमार के अवयस्क होने की स्थिति में प्रतिशासन व्यवस्था परिषद का इंतजाम करना था।

न्याय व्यवस्था में भी राजा सर्वोच्च शिखर पर था। नीचे गाँव अथवा नगर-न्यायालयों, जिला-न्यायालयों तथा क्षेत्रीय न्यायालय थे। राजा की शक्ति इसमें भी अन्तिम शक्ति थी। पंचायत प्रणाली विकेन्द्रित प्रणाली पर आधारित थी। इसमें चार स्तरीय पंचायत प्रणाली अपनायी गई। जिसके सबसे निचले स्तर पर गाँव अथवा नगर पंचायतें थी। संविधान में संशोधन की शक्तियाँ राजा को सौंपी गयी।

1962 का संविधान नेपाल में 'लोकतांत्रिक मूल्यों' को हतोत्साहित किया। लेकिन इस संविधान का भारत के सम्बन्ध पर कोई बुरा प्रभाव पड़ा। नेपाल तथा भारत के मध्य व्यापार तथा वाणिज्य और कूटनीतिक समझौते हुए। भारत-चीन युद्ध 1962 में नेपाल नरेश ने बराबर की दूरी रखने की नीति अपनाई।

**1990 का संविधान–**1980-81 में पंचायत प्रणाली का उन्मूलन कर दिया गया। नेपाल में 1990 में एक नया संविधान बनाया गया। यह संविधान नेपाल राज्य को एक बहु-जातीय, बहुभाषी स्वतंत्र जनतांत्रिक, अखंड, प्रभुसत्ता सम्पन्न हिन्दू तथा संवैधानिक राजतंत्रिक राज्य घोषित किया गया।

इस संविधान में मौलिक अधिकारों तथा राज्य के नीति निर्देशक तत्वों की सूची प्रदान की। संविधान कहता है कि राजा नेपाली राष्ट्र तथा नेपाली जनता की एकता का प्रतीक है। यह संविधान राजा की शक्ति को सीमित किया तथा मंत्रिमण्डल को भी प्रभावी शक्ति प्रदान की।

संविधान ने राज्यपरिषद् तथा उसकी स्थाई समिति के गठन का भी प्रावधान किया। मंत्रिमण्डल जो कि वास्तविक कार्यपालिका है कि नियुक्ति हाउस ऑफ रिप्रेजेंटेटिव में बहुमत प्राप्त राजनैतिक पार्टी के सदस्यों में से राजा द्वारा की जानी होगी। प्रधानमंत्री तथा मंत्रिमंडल अपनी गलतियों के लिए संयुक्त रूप से हाउस ऑफ रिप्रेजेंटेटिव (प्रतिनिधि सभा) के प्रति जवाबदेह होंगे।

हाउस आफ रिप्रेजेंटेटिव को राष्ट्रीय परिषद् की तुलना में अधिक शक्तिशाली बनाया गया है, जैसा की संसदीय प्रणाली में होता है।

न्यायिक व्यवस्था एक सर्वोच्च न्यायालय, अपील सम्बन्धी न्यायालयों तथा जिस न्यायालयों से मिलकर बना है।

इस तरह से 1990 का संविधान एक बार पुनः 'लोकतांत्रिक मूल्यों' को नेपाल में मजबूत किया। इस संविधान के बाद भारत-नेपाल सम्बन्ध की जो प्रक्रिया थी वह और अन्तर्सम्बन्ध हो गयी। अब नेपाल और भारत दोनों ही और प्रभावी ढंग से राजनयिक तथा कूटनीतिक सम्बन्ध करने लगे।

**1990 के बाद भारत-नेपाल सम्बन्ध तथा संवैधानिक स्थिति–**नेपाल में विगत 240 वर्षो से चली आ रही राजशाही का 28 मई, 2008 को अंत हो गया तथा इसके साथ ही नेपाल में संसदीय लोकतंत्र की शुरुआत हो गयी। अप्रैल, 2008 में नेपाल की निर्वाचित संविधान सभा ने अपनी प्रथम बैठक में प्रधानमंत्री गिरिजा प्रसाद कोईराला द्वारा प्रस्तुत प्रस्ताव को 28 मई, 2008 को लगभग सर्वसम्मति कर दिया, जिसमें देश को 'धर्म निरपेक्ष' संघीय लोकतांत्रिक गणराज्य' घोषित किया गया है। 205 सदस्यों से मिलकर गठित होगा जिन्हें सामान्य वयस्क मताधिकार के आधार पर पांच वर्ष की अवधि के लिए जनता द्वारा प्रत्यक्ष 84 से निर्वाचित किया जायेगा। आपात काल के दौरान इसका कार्यकाल अधिकतम एक वर्ष के लिए बढ़ाया जा सकता है। नेपाल का प्रत्येक नागरिक जिसकी आयु 18 वर्ष हो चुकी हो, मतदान करने के लिए होगा।

**राष्ट्रीय परिषद-**राष्ट्रीय परिषद् 60 सदस्यों से मिलकर निर्मित होगी जिसमें से 10 राजा द्वारा मनोनीत किये जाएंगे, 35 सदस्यों जिनमें से 10 राजा द्वारा मनोनीत किये जाएंगे। 35 सदस्यों में से कम-से-कम 3 सदस्य महिलाएं होगी। हाउस ऑफ रिप्रेजेंटेटिव (उच्च सदन) की तुलना में अधिक शक्तिशाली बनाया गया है, जैसा कि प्रायः संसदीय शासन प्रणाली में होता है।

प्रत्यक्ष मतदान प्रणाली के अन्तर्गत 240 सीटों में से 120 सीटें जीतकर पुष्प कुमार दहल (प्रचंड) के नेतृत्व वाली माओवादियों की कम्युनिस्ट पार्टी ऑफ नेपाल-सीपी एवं (माओवादी) सबसे बड़ी पार्टी के रूप में उभरी। नेपाली कांग्रेस 37 सीटें जीतकर दूसरे स्थान पर रही। जबकि 33 सीटों के साथ कम्युनिष्ट पार्टी आंकल अर्थात् सीपी एन (यू एम एल) तीसरे स्थान पर रही। इसके अतिरिक्त मधेश पीपुल्स राइट फोरम ने 30 तराई मधेशी लोकतांत्रिक पार्टी ने 9 व सदभावना पार्टी ने 4 सीटों पर विजय प्राप्त कर तथा शेष 7 सीटें 4 पार्टियों के खाते में गई। बाद में आनुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली के माध्यम से अप्रत्यक्ष चुनाव में कुल 335 सीटों में से सर्वाधिक 100 सीटें सीपी एन (माओवादी) को और 73 सीटें नेपाली कांग्रेस को प्राप्त हुईं। सीपी एवं (यू एम एल) को 70 पीपुल्स राइट्स राइट्स फोरम को 22 तथा तराई मधेसी लोकतांत्रिक पार्टी को 11 सीटें इस कोटे से प्राप्त हुईं। इस प्रकार संविधान साथ के वरिष्ठतम् सदस्य बहादुर गुढंग ने अंतरिम स्पीकर की हैसियत से नेपाल को गणतंत्र घोषित किया। प्रस्ताव के तहत अब राष्ट्रपति देश का प्रमुख होगा। लेकिन कार्यपालिका की शक्तियाँ प्रधानमंत्री के पास रहेंगी। 601 सदस्यीय संविधान सभा की बैठक में प्रस्ताव के पक्ष में 560 मत पड़े जबकि विरोध में केवल 4 मत पड़े।

**संविधान सभा का चुनाव—**नेपाल में 601 सदस्यीय संविधान सभा के लिए 10 अप्रैल, 2008 को सम्पन्न हुआ। इस ऐतिहासिक चुनाव में किसी भी पार्टी को बहुमत नहीं मिला। संविधान सभा के सीधे चुनाव वाली 240 सीटों के लिए 'फार्स्ट पास्ट पोस्ट सिस्टम के तहत मतदान हुआ जबकि आनुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली (पी आर सिस्टम) के आधार पर 355 सदस्यों का मनोनयन राजनीतिक दलों द्वारा किया गया। नया मंत्रिमंडल संविधान सभा की शेष 26 सीटों के लिए सदस्यों का मनोनयन करेगा। 604 सदस्यीय नेपाल की संविधान सभा में विभिन्न दलों की स्थिति निम्नवत् रही।

| पार्टी | सीट |
|---|---|
| कुल सीटें | 601 |
| साधारण बहुमत | 301 |
| सी पी एम (माओवादी) | 220 |
| नेपाली कांग्रेस | 110 |
| सीपीन एन (यूएमएल) | 103 |
| मधेसी पीपुल्स राइट्स फोरम | 52 |
| तराई मधेसी लोकतांत्रिक पार्टी | 20 |
| सद्भावना पार्टी | 09 |
| जनमोर्चा पार्टी | 07 |
| अन्य पार्टियाँ | 50 |
| मनोनयन वाली रिक्त सीटें | 26 |

**राजनैतिक विकास :** नेपाल में प्रारम्भिक राजनैतिक व्यवस्था शाहों के अधीन थी। गोरखा शासक पृथ्वीनारायण शाह के अनेक रियासतों पर विजय की। 1767 व 69 में देश को अपने केन्द्रीकृत शासन के अधीन किया। वह गोरखा राज्य के रूप में एकीकृत देश में स्वेच्छाचारी वंशानुगत शासन व्यवस्था कायम करना चाहता था। 1770 में राजधानी के काठमांडू स्थानान्तरित होने से लेकर 1775 में अपनी मृत्यु के समय तक वह ऐसा कर पाने में सफल भी रहा। उत्तर वर्ती काल में शासक परिवार के भीतर सत्ता के लिए आंतरिक संघर्ष में इसकी स्थिति को कमजोर बना दिया। अठारहवीं शताब्दी के अंतिम दशक में एक संक्षिप्त अव्यवस्था वाले अंतराल को छोड़कर 1777 से 1832 तक राजसिंहासन पर नाबालिक लोगों को बैठना पड़ा।

शाहों के शासनकाल के बाद राजशाही (1845-1950) शाह वंश के अन्तिम प्रभावी राजा राजेन्द्र ने स्वयं को अत्यधिक षड़यंत्रकारी राजनीति में फंसा लिया। जंगबहादुर तथा उसने बाद में शासन करने वाले लोगों की नागरिक तथा सैन्य प्रशासन, न्याय तथा विदेशी सम्बन्धों में निरंकुश सत्ता प्रदान कर दी, जिसमें राजा के आदेशों को भी यदि वे राष्ट्रीय हितों के लिए अपर्याप्त अथवा विरोधाभास युक्त समझते तो नजर अंदाज कर देने का अधिकार शामिल था।

राजाओं के शासन के बाद (1959-1991) में शासन व्यवस्था में परिवर्तन आया। नेपाली आंदोलन ने 1951 में राणा का तख्ता पलट दिया। संकट की घड़ी में नेपाल की राजनीति के तीन हिस्सों राजाओं, लोकप्रिय नेताओं तथा राजा ने भारत के प्रधानमंत्री नेहरु के मार्गदर्शन में, नई दिल्ली में एक समझौता तैयार किया। राजा त्रिभुवन को जो 1950 में देश छोड़कर भारत की शरण में आ गया था एक अंतरिम अवधि के लिए अर्थात् जनतांत्रिक तौर पर निर्वाचित सरकार के बनने तथा शपथ ग्रहण करने तक राजाओं तथा नेपाल कांग्रेस के नेताओं का एक मिला-जुला मंत्रिमण्डल फरवरी 1951 में गठित किया गया। 1 नवम्बर, 1951 में एक नई सरकार गठित की गई। लेकिन यह काल अस्थिरता के दौर से ही गुजरा।

**महेन्द्र युग ( 1960-1990 )—**राजा महेन्द्र ने नेपाल में एक नई शासन प्रणाली अपनायी। पंचायत (यहाँ की संसद) जनतंत्र को दिसम्बर, 1962 में देश में लागू किया गया। इस नई व्यवस्था को त्रिस्तरीय प्रणाली में संगठित किया। सबसे निचले स्तर पर गाँव तथा नगर पंचायतें थीं। दूसरे स्तर के तहत जिला पंचायत थीं, जो कि 75 विकासात्मक जिलों में से प्रत्येक में एक थी। सर्वोच्च स्तर पर राष्ट्रीय पंचायत थी। केवल प्राथमिक इकाईयाँ ही लोकप्रिय ढंग से निर्वाचित हुई थीं।

1962 के संविधान ने 14 क्षेत्रीय पंचायतों का भी प्रावधान किया था। हालांकि 1967 के संविधान संशोधन में इस निकाय को अचल समितियों में बदल दिया, जो कि जिला पंचायतों की आवाजें, वर्गीय तथा व्यावसायिक संगठनों तथा राजा द्वारा मनोनीत अधिकतम सदस्यों से मिलकर गठित की जाती थी।

**प्रभाव–**भारत नेपाल सम्बन्ध के राजनैतिक विकास के परिदृश्य में शाहों के शासनकाल में बहुत अधिक एवं राजनैतिक सम्बन्ध का प्रभाव नहीं दिखाई देता है इसका कारण यह है कि भारत में ब्रिटिश शासन था।

भारत-नेपाल संबंध में राजा महेन्द्र का शासन काल बहुत ही महत्वपूर्ण माना जा सकता है। राजा महेन्द्र का काल उनके अग्रगामी राजा त्रिभुवन के विपरीत भारत विरोधी थे। नेपाल नरेश भारत के प्रति उदासीन रहे तथा तिब्बत में चीन की शक्ति सुदृः हो रही थी। राजा महेन्द्र भारत के विपरीत चीन से अपने संबंध को मजबूत करने का सकारात्मक प्रयास किया तथा नेपाल के लोकतंत्रीय व्यवस्था को गहरा झटका दिया। महेन्द्र एक राष्ट्रीय पंचायत प्रणाली की स्थापना की योजना की जिससे राजशाही व्यवस्था को बल मिलाफ़रिणामस्वरूप नेपाली कांग्रेस के अनेक नेता और समर्थक जो नेपाल में संसदीय सरकार का समर्थन कर रहे थे, भागकर भारत आ गये। चीन से नेपाल नरेश ने आर्थिक सहयोग भी लिया। इस तरह से यह समय भारत विरोदी होने के कारण भारत-नेपाल सम्बन्ध सौहार्द्रपूर्ण न रहे। भारतीय राजनेता से सम्बन्ध प्रगाढ़ बनाने के लिए प्रयासरत थे। बाद में इसका सुखद परिणाम भी मिला।

**राजा वीरेन्द्र का शासन काल ( 1972-1990 ) :** 1972 में अपने पिता की मृत्यु के बाद वीरेन्द्र का पंचायत प्रणाली तथा निरंकुश सत्ता विरासत में मिली। किन्तु यह व्यवस्था में बदलाव के लिए पड़ने वाले दबावों का सामना नहीं कर पाया। 12 दिसम्बर, 1975 को उसने प्रणाली में अनेक परिवर्तनों की घोषणा की जो कि राजसी निरंकुशता को बरकरार रखने के लिए महज दिखावटी संवैधानिक कायदे-कानून ही थे। राष्ट्रीय पंचायत के सत्र जो अभी तक गुप्त तौर पर चलाये जाते थे, अब मंत्रियों तथा अधिकारियों द्वारा सत्ता के दुरुपयोग को रोकने के लिए राजा के प्रत्यक्ष नियंत्रण में स्थापित किए गए तथा आयोग के लिए खोल दिये गये।

राजा वीरेन्द्र का शासन काल इस दृष्टिकोम से महत्वपूर्ण है कि इन्होंने भारत-नेपाल संबंध को मजबूती प्रदान करने के लिए राजा वीरेन्द्र ने नापल को 'शान्ति क्षेत्र' घोषित करने की पेशकश की। हालांकि 58 देशों की सहमति प्राप्त हुई लेकिन भारत सोवियत संघ, चीन ने सहमति नहीं प्रदान किये थे। भारत पूरे उपमहाद्वीप को शान्ति क्षेत्र घोषित करने की बात कही। इनके काल में भारत-नेपाल संबंध काफी मधुर रहे। अनेक बार एक दूसरे देश में राजनीतिक दौरे हुए।

**1990 के बाद भारत-नेपाल सम्बन्ध :** 1990 के बाद नेपाल में लोकतंत्र की स्थापना के लिए लम्बे समय से माओबादी आन्दोलन को सफलता मिली तथा राजशाही का अन्त हो गया। वीरेन्द्र के बाद दीपेन्द्र विक्रम शाह (1 जून, 2001-4 जून, 2001) तथा ज्ञानेन्द्र वीर विक्रम शाह (4 जून, 2001-20 मई, 2008) रहे तथा माओवादी आन्दोलन के नेता पुष्प कुमार दहल उर्फ प्रचंड आसाधारण बहुमत से नेपाल के प्रधानमंत्री बन गये। नेपाल की 601 सदस्यीय संविधान सभा में 15 अगस्त, 2008 को हुए मतदान में प्रचंड को 464 मत मिले जबकि उनके प्रतिद्वन्द्वी नेपाली कांग्रेस के शेर बहादुर देऊवा को मात्र 113 मत प्राप्त हो सके।

**प्रभाव :** नेपाल में करीब 250 वर्ष के बाद राजशाही व्यवस्था का अन्त हो गया और लोकतंत्र की स्थापना का मार्ग प्रशस्त हुआ। चूँकि भारत अन्तर्राष्ट्रीय परिदृश्य में अपने लोकतंत्रीकरण व्यवस्था को मजबूत स्थिति में रखने के लिए जाना जाता है।

नेपाल में लोकतंत्र की स्थापना के बाद भारत और नेपाल सम्बन्ध और मजबूत होंगे। दोनों देश मिलकर एशिया में शान्ति और सौहार्द्र का वातावरण तैयार करने में काफी मदद कर सकते हैं। जिससे आतंकवादी गतिविधियाँ और अन्य उग्रवादी संगठन चल रहे हैं। उनसे निपटने में सहायता मिल सकती है। अब नेपाल और भारत राजनीतिक, आर्थिक तथा कूटनीतिक समझौते और अधिक सहज ढंग से कर सकेंगे और दोनों देश मिलकर अन्तर्राष्ट्रीय विकास में सक्रिय भूमिका अदा कर सकते हैं। भारत-नेपाल के परस्पर सम्बन्ध एक-दूसरे के और अधिक नजदीक और मधुर होंगे।

नेपाल के उत्तरी भाग में मंगोल मूल की तथा दक्षिणी क्षेत्र में भारतीय-आर्य जातियाँ रहती हैं। नेपाल में भारतीय आर्य जाति समूह नेपाल के इतिहास से सबसे बड़ा और प्रतिष्ठित समूह है। शाही घराने इसी समूह से रहे हैं। मंगोलाई मूल के लोग नेपाल में तिब्बत से आकर बसे थे। इन दो प्रमुख घटकों वाले करबी 10 से 12 और भी हैं। इनमें से मागर, गुरंग, लिम्बू राई तमंगोर, शेरपा, भोटिया तथा भकली अधिक महत्वपूर्ण हैं। नेपाल के मशहूर गोरखा मुख्यतः कुरंग तथा मायर जनजातियों से आते हैं। तमाम भिन्नताओं के बावजूद, लोगों का प्राकृतिक रुझान मुख्यतः हिन्दूवाद की ताज से है, जो कि नेपाल का राजधर्म भी है। 80 प्रतिशत से अधिक आबादी हिन्दू है, तथा शेष लोगों में अधिकांश बौद्ध धर्म के अनुयायी हैं।

आदिकाल से भारत और नेपाल के बाच सांस्कृतिक सम्बन्ध रहा है। पशुपतिनाथ का मंदिर जिसमें दक्षिण भारत के चार पुजारी रहते हैं। नेपाल के राजा को भारत में पुरी तथा रामेश्वरम् की मंदिरों में विशिष्ट सुविधाएँ प्राप्त हैं। भगवान बुद्ध का जन्म नेपाल में लुम्बिनी में हुआ था। किन्तु सारनाथ को जहाँ से उन्होंने अपना प्रथम धर्मोपदेश दिया था। बौद्ध अभिरुचि का पवित्र धार्मिक स्थल माना जाता है। नेपाल सभी शासकीय एवं गैर-शासकीय प्रयोजनों से संवत का प्रयोग करता है। अधिकांश भाषाओं की तरह नेपाली भाषा की उत्पत्ति भी संस्कृत से ही हुई है, जिसे देवनागरी लिपि में लिखी जाती है। एक नेपाली लेखक के अनुसार 'विश्वम्भर में ऐसे दो देशों के मिलने की कोई संभावना नहीं है। जिसकी संस्कृति, इतिहास तथा परम्पराएँ इतने लम्बे समय तक इस कदर घनिष्ठता के साथ परस्पर जुड़ी रही हों। शायद यह प्रकृति की ही देन है कि भारत और नेपाल आर्थिक और सामाजिक विकास की समान समस्याओं का सामना करते हुए सद्भाव के साथ रहते आये हैं।

**आर्थिक तथा कूटनीतिक सम्बन्ध :** भारत और नेपाल के बीच मजबूत आर्थिक एवं व्यापारिक सम्बन्ध रहे हैं। वर्ष 1950 में हुई व्यापार एवं पारगमन संधि का यही पर 1960 में नवीनीकरण किया गया। 1996 की व्यापारिक संधि और व्यापार सभी नेपाली वस्तुओं की एक नकारात्मक सूची में निहित वस्तुओं के सिवाय भारतीय वस्तुओं तक शुल्क पहुँच पर कोई मात्रात्मक प्रतिबंध नहीं लगाया है। इस संधि ने नापल का आर्थिक विकास एवं औद्योगिक संवृद्धि में भरपूर सहयोग किया है तथा द्विपक्षीय संबंधों को और मजबूत किया है। नेपाली रुपया भारतीय रुपये की तुलना में पूर्व दर पर ही निर्धारित है और यह विनिमय दर पूर्णतः प्रसासकीय है एवं बाजार प्रेरित नहीं है। नेपाल में बड़ी संख्याएँ भारतीय निवेश एवं संयुक्त उपक्रम है। नेपाल में भारत का निवेश नेपाल को प्राप्त होने वाले कुल विदेशी प्रत्यक्ष निवेश का 36-40 प्रतिशत है। भारत डैबर, एचएलसल, कोलगेट आदि कम्पनियों भी नेपाल में अपना संयंत्र लगा रखी हैं। वे अपने अंतिम उत्पादों को भारत भेजती जिससे नेपाल की आय में वृद्धि होती है। इसके अतिरिक्त निवेश संवर्द्धन एवं संरक्षण पर एक द्विपक्षीय समझौता किये जाने की संभावना है। भारत निवेश का प्रारम्भिक संरचनात्मक परियोजनाओं जैसे सड़क, सेतु, अस्पताल, हवाई अड्डे आदि में निर्माण पर था।

दोनों देश द्विपक्षीय व्यापार को 2008-09 के दैरान बढ़ाकर 186 करोड़ डालर का था। जिसे बढ़ाकर 3 अरब डालर हो जाने की उम्मीद है। नेपाल से भारत को मुख्य निर्यात है। वनस्पति घी, सूत, कपड़े, जी आई शीट और तार, जूस, कोरे और कुछ रसायन आदि। नेपाल अपनी सभी आवश्यकताओं के लिए भारत पर निर्भर करते जैसे चावल, दवाएँ, वाहन, पुर्जे, मशीन, रासायानिक, इलेक्ट्रानिक सामान और कृषि यंत्र आदि। भारत नेपाल का बड़ा निवेशक भी है। इस समय भारत की मदद से करीब 400 परियोजनाएँ नेपाल में चल रही हैं और नेपाल में एफ.डी.आई. का 44 प्रतिशत भारत का है।

## सन्दर्भ-सूची

1. ए. एफ. अरगेन्सकी, वर्ल्ड पोलिटिक्स-न्यूयार्क, 1954
2. क्वीन्स राइट, द स्टडी आफ इण्चरनेशनल रिलेशन, न्यूयार्क, 1965
3. कैप्लन, लैण्ड एण्ड सोशल चेंज इन ईस्ट नेपाल–काठमांडू : हिमालय बुक, 2000
4. वी. एन खन्ना एण्ड लिपाक्षी अरोड़ा, भारत की विदेश नीति–विकास पब्लिशिंग हाउस प्राइवेट लिमिटेड, 2001
5. ब्राउन, टी, लाउसे, द चैलेन्ज इ डेमोक्रेसी इन नेपाल, लन्दन एण्ड न्यूयार्क राडलटजे,1996
6. लावेटी, महेन्द्र, टूवर्डस ए डेमोक्रेटिक नेपाल–सेज पब्लिकेशन इण्डिया प्राइवेट लिमिटेड,2005
7. रेगमी महेश, लैंड टेनयोर एण्ड टेक्सेसन इन नेपाल–बर्कले, इंस्टीट्यूट ऑफ इंटरनेशनल स्टडीज, 1965
8. गुरांग डी.वी., नेपाली नेशनलिज्म इन नेपाल टुमारो : वाइस एण्ड विजन काठमाडू प्रकाशन, 2003
9. आचार्य मीना, पोलिटिकल पार्टी पार्टीशिपेशन ऑफ वोमेन इन नेपाल-येल यूनिवर्सिटी प्रेस, लंदन), 1994
10. डी. कुमार, क्लेश ऑफ वैल्यूज, गवर्नविलिटीए पोलिटिकल इलिट एण्ड डेमोक्रेसी इन नेपाल-काठमांडू, सी.एन.ए.एस., 2000
11. रामजे पैरायुले, द डेमोक्रेसी ट्रांजिसन इन नेपाल लेनहम : राउमैन एण्ड लिटिलफील्ड पब्लिशिंग कंपनी, 2000

***

**Political Science**
Shodh Sandarsh-V, Vol.-XVI, Sept.-2017, Page : 131-133
ISSN No. - 2319–5908 (U.G.C. Approved Journal No. : 41329)

# भारत में सामाजिक न्याय और कमजोर वर्ग

*डॉ. ब्रजेन्द्र सिंह**

आधुनिक युग लोक कल्याणकारी राज्य का युग है और भारत में जिस प्रकार के लोक कल्याणकारी की स्थापना की गयी है, उससे यह अपेक्षित है कि देश में सामाजिक न्याय प्रतिष्ठित हो और कमजोर वर्ग किसी भी रूप में दीन-हीनता तथा शोषण का शिकार न बनें।

स्वतंत्रता के पूर्व भारत में अंग्रेजी शासन तथा सामन्तवादी व्यवस्था इसी शोषण के आधार पर टिकी हुई थी। संविधान निर्माता इससे भली-भाँति परिचित थे। अतेव उन्होंने भारतीय संविधान की प्रस्तावना में ही सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक न्याय की संकल्पना की। सामाजिक आर्थिक एवं राजनीतिक न्याय एक-दूसरे के अन्योन्याश्रित हैं, आशय यह है कि यह एक के बिना एक अधूरा हो जाता है। सामाजिक न्याय की मांग है कि समाज के सुविधाहीन वर्गों को अपनी सामाजिक-आर्थिक असमर्थताओं पर काबू पाने और अपने जीवन स्तर में सुधार करने के योग्य बनाये जायें। समाज के गरीब स्तर से नीचे के सर्वाधिक सुविधा वंचित वर्गों विशेष रूप से गरीब के बच्चों, महिलाओं और असक्त व्यक्तियों की सहायता की जाय और इस प्रकार एक शोषणहीन समाज की स्थापना की जाय। समाज के कमजोर वर्गों को ऊँचा उठाये बिना, हरिजनों पर अत्याचार को रोके बिना, अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों का विकास किये बिना सामाजिक न्याय की स्थापना नहीं हो सकती।[1]

सामाजिक न्याय का अभिप्राय है कि मनुष्य-मनुष्य के बीच सामाजिक आधार पर किसी प्रकार भेद न माना जाय। प्रत्येक व्यक्ति को अपनी शक्तियों के समुचित विकास का समान अवसर उपलब्ध हो। किसी भी व्यक्ति का किसी भी रूप में शोषण न हो, समाज के प्रत्येक व्यक्ति के जीवन की न्यूनत आवश्यकताएँ पूरी हों।

व्यापक रूप में सामाजिक न्याय का सम्बन्ध व्यक्ति के अधिकारों और समुदायों के हितों के मध्य समन्वय पर निर्भर करता है। सामाजिक न्याय व्यक्ति के उत्तराधिकारों और सामाजिक नियंत्रण के मध्य सन्तुलन से है, ताकि मौजूदा कानूनों के अधीन व्यक्ति की आशाओं की पूर्ति सुनिश्चित किया जा सके।[2]

सतही धरातल पर देखने से यह लगता है कि सामाजिक न्याय व्यक्ति के कुछ अधिकारों को समाज की बलिदेवी पर न्यौछावर करना चाहता है, परन्तु व्यापक परिप्रेक्ष्य में विचार करने पर सामाजिक न्याय के विचार का उद्देश्य न केवल व्यक्ति और समाज के उद्देश्यों में उपयुक्त समाधान लाना है या इनमें विरोध की स्थिति में समाज के हित को अधिमान्यता प्रदान करना है, बल्कि यह समाज के परिवर्तन के महायज्ञ का एक आवश्यक अंग है, जिसके लिए बहुतों के हित के खातिर किसी वस्तु की कुर्बानी देनी पड़ेगी।[3] इस तरह स्पष्ट है कि सामाजिक न्याय की संकल्पना अति व्यापक है, जिसके अन्तर्गत "सामान्य हित" के मानव से सम्बन्धित सब कुछ आ जाता है, जो अल्पसंख्यकों के हितों की रक्षा से लेकर गरीबी और निरक्षरता उन्मूलन तक कुछ भी हो सकता है। आज सामाजिक न्याय की चर्चा विशेषकर विकासशील या अल्प विकसित राष्ट्रों में बहुतायत से सुनने को मिलती है, परन्तु यह कहना कठिन है कि कितने लोग इसका अभिप्राय समझते हैं। कुछ के लिए इसका अभिप्राय धन सम्पदा का वितरण या पुनर्वितरण करना है, कुछ इनकी व्याख्या अवसर की समानता के रूप में करते हैं। यह एक भ्रामक शब्द है, क्योंकि ऐसे मनुष्यों के मध्य अवसर समान नहीं हो सकते, जो इसका उपयोग करने में विशेष रूप में सक्षम हैं। अधिकांश इसका यह सामान्य अर्थ लगाते हैं कि यह अन्यायपूर्ण है कि उनकी अपेक्षा कोई अधिक भाग्यशाली है और अधिक बुद्धिमान लोग यह समझते हैं कि यह न्यायपूर्ण है।[4]

आर्थिक न्याय सामाजिक न्याय का सहगामी तत्व है। आर्थिक न्याय की संकल्पना के रूप में स्वतंत्रता का समस्त विचार ही राजनीति के क्षेत्र को पार करके आर्थिक और सामाजिक क्षेत्रों में पदार्पण करता है। यह कहा जाता है कि यह यदि स्वतंत्रता आर्थिक न्याय प्राप्त करने के मार्ग में बाधक है तो वह निरर्थक है। एक भूखे या ऐसे व्यक्ति के लिए जिसे मानव-गरिमा से वंचित किया गया है, राजनीतिक स्वतंत्रता एक खोखला शब्द है।[5]

* *एसोसिएट प्रोफेसर व अध्यक्ष, राजनीति विज्ञान विभाग, सल्तनत बहादुर पी.जी. कालेज, बदलापुर, जौनपुर*

सरल शब्दों में आर्थिक न्याय की संकल्पना का मूल मन्तव्य है कि आर्थिक मूल्यों के आधार पर लोगों के मध्य कोई भेद न किया जाय। सकारात्मक शब्दों में इसका अभिप्राय यह है कि किसी कृत्रिम आधार पर किये गये भेद-भाव के बिना काम करने पर उपयुक्त भुगतान किया जाय। यह सामान्य कल्याण के परिस्थितियों के अधीन उत्पादन और वितरण के क्षेत्रों में सबके लिए स्वतंत्रता की अपेक्षा करता है। साथ ही यह मांग करता है कि राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था को इस प्रकार स्वरूप प्रदान किया जाय कि जन सामान्य को उससे अधिकाधिक लाभ हो। इस प्रकार आर्थिक न्याय के विचार का निहितार्थ ''समाज का समतावादी ढाँचा'' हो जाता है। सामाजिक न्याय की भाँति आर्थिक न्याय की संकल्पना भी उदारवादी और मार्क्सवादी विचारकों के मध्य घोर विवाद का विषय रहा है। इस प्रकार हमें मानना पड़ेगा कि न्याय और उसके बारे में विचारों को एक ओर बड़े राष्ट्रीय आर्थिक एवं सामाजिक हितों और दूसरी ओर व्यक्तियों या सामूहिक अधिकारों और हितों के मध्य वर्तमान विरोधों में नया सन्तुलन और सामंजस्य पैदा करना होगा। इस प्रकार सामाजिक न्याय और आर्थिक न्याय में चोली-दामन का सम्बन्ध है। आज के युग में आर्थिक न्याय के अभाव में सामाजिक न्याय कल्पना मात्र है।

सामाजिक न्याय की स्थापना के लिए अनिवार्य है कि आर्थिक विकास का लाभ चन्द हाथों में केन्द्रित न हो। कमजोर तबका उससे भली भाँति लाभान्वित हो–इसीलिए संविधान निर्माताओं ने संवैधानिक संरक्षण प्रदाना किया तथा भारत सरकार ने अधिनियमित कर कमजोर वर्गों के हितों की रक्षा करने का प्रयास किया, जैसे–

**सांविधानिक संरक्षण–**भारत के संविधान में अनुसूचित, अनुसूचित जनजाति तथा पिछड़े वर्गों का शैक्षिक तथा आर्थिक दृष्टि से उत्थान करने, परम्परागत सामाजिक पिछड़ापन तथा उनकी सामाजिक असमर्थताओं को दूर करने के उद्देश्य से सुरक्षा एवं सुरक्षा की व्यवस्था की, जैसे–

1. अस्पृश्यता का उन्मूलन तथा किसी भी रूप में प्रचलन का निषेध (अनु0-17)।
2. इन जातियों के शैक्षिक एवं आर्थिक हितों की रक्षा तथा उनका सभी प्रकार के शोषण एवं सामाजिक अन्याय से बचाव (अनु0–46)।
3. हिन्दुओं के सार्वजनिक धार्मिक संस्थाओं को समस्त हिन्दुओं के लिए खोलना (अनु0-25)।
4. दुकानों, सार्वजनिक भोजनालयों, होटलों, तालाबों, स्नानघाटों आदि की रुकावटों को हटाना (अनु0-15)।
5. किसी भी अनुसूचित जनजाति के हितों में सभी कार्यों को स्वतंत्रतापूर्वक आने, जाने, बसने, जायदाद प्राप्त करने के अधिकारों पर प्रतिबन्ध लग सकने की व्यवस्था अनु0 (19)।
6. सरकार द्वारा मान्यता प्राप्त एवं सहायता प्राप्त शिक्षण संस्थाओं में प्रवेश पर किसी तरह के प्रतिबन्ध का निषेध (अनु0-29)।
7. राज्य को यह अधिकार देना कि वह जनसेवाओं में पिछड़े वर्गों का प्रतिनिधित्व अपर्याप्त होने पर उनके लिए स्थान सुरक्षित करे (अनु0-16 एवं 335)।
8. संसद तथा विधानसभाओं में अनुसूचित जातियों एवं अनूसूचित जनजातियों में विशेष प्रतिनिधित्व देना (अनु0–330, 321 एवं 34)।
9. उनमें कल्याण एवं हितों की रक्षा के लिए सलाहकार परिषद एवं आयोगों की स्थापना (अनु0-164 व 338)।
10. मनुष्यों के क्रय-विक्रय तथा बेगार पर रोक (अनु0–23)।

इस प्रकार भारत सरकार ने कमजोर कार्यों के हितों की रक्षा को और प्रभावी बनाने के लिए कठोर कदम उठाया, जैसे–

1. अस्पृश्यता के द्वारा निर्धारण विधान 1955 को 19 नवम्बर, 1976 को और प्रभावी बनाया गया।
2. नागरिक अधिकार संरक्षण अधिनियम, 1955 समय-समय पर राज्य सरकारों द्वारा लागू किया जाता है। जिसमें धारा 15 के अनुसार केन्द्र सरकार इसमें राज्यों की सहायता करेगा।
3. विधान मण्डलों के प्रतिनिधित्व में संविधान के अनु0 330, 332 के अन्तर्गत अनुसूचित एवं अनुसूचित जनजातियों को 10 वर्ष की अवधि के लिए थी, लेकिन अब तक चल रहा है।
4. सेवाओं में आरक्षण अनु0 335 एवं अनु0 16(4) के द्वारा पोषण किया जा रहा है, जो समय-समय पर बढ़ाया जाता रहा है।
5. भारत सरकार का गृहमंत्रालय अनुसूचित एवं अनुसूचित जनजातियों के हितों की रक्षा के लिए 1978 में आयोग की स्थापना की।
6. समय-समय पर भारत सरकार ने 1968, 1991, 1973 में संसदीय समितियों का गठन किया।

इस प्रकार राज्यों में भी समाज कल्याण विभाग, स्वयंसेवी संगठन आदि के द्वारा कमजोर वर्गों के हितों का संरक्षण एवं पोषण किया जा रहा है, लेकिन भारतीय कानून व्यवस्था सामाजिक न्याय के लिए एक चुनौती के रूप में देखा जाता है। 5 मार्च, 1984 को अपीलेट न्यायाधीशों के तृतीय अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन तथा राष्ट्रमण्डल के मुख्य न्यायाधीशों के सम्मेलन में प्रधानमंत्री इन्दिरा गाँधी ने अपने उद्‌घाटन भाषण में कानून और सामाजिक न्याय के सम्बन्ध में जो कुछ कहा, निश्चित रूप से वह दिशाबोधक है–

''कानून एक खास पेशा है, जिसमें अध्ययन और चिन्तन के उच्च गुणों की जरूरत होती है और इससे भी कहीं अधिक इसके लिए जरूरत होती है, न्याय के प्रति बचनबद्धता, मासूमों की रक्षा और अपराधियों के लिए सजा। कानून और न्याय के प्रति वचनबद्धता कानून केवल समुदाय तक ही सीमित नहीं है। यह हर मानव में पाई जाती है और पाई भी जानी चाहिए, क्योंकि बिना कानून और व्यवस्था के सम्पूर्ण जीवन सम्भव नहीं है। .. अपनी कठिन यात्रा में सामाजिक न्याय को कई बाधाओं का सामना और उस पर विजय प्राप्त करनी पड़ी। अभी यह संसार के बहुत से लोगों के पहुँच से बाहर है।''[6]

मौलिक अधिकारों और हमारे संविधान की विशिष्टता राज्य के नीति-निर्देशक सिद्धान्तों के अध्यायों में जोर सामाजिक न्याय पर है। हमारे मौलिक अधिकार विधि के समक्ष समानता और भाषण तथा अभिव्यक्ति की, एकत्र होने की, आवागमन की और किसी भी व्यवसाय को करने के अवसर की स्वतंत्रता सुनिश्चित करते हैं। वे धर्म, वंश, जाति, लिंग और जन्म स्थान के आधार पर भेदभाव करते हैं। निर्देशक सिद्धान्तों का उद्देश्य राष्ट्रीय जीवन के सभी पक्षों को न्याय की भावना से ओत-प्रोत करना है। वे राज्य के लिए यह आवश्यक कर देते हैं कि आप, स्तर और अवसरों में असमानता को कम करे। मौलिक अधिकार प्रवर्तनीय है, जबकि निर्देशक सिद्धान्त नहीं है, किन्तु न्यायालयों से, कार्यपालिका और विधायिका से किसी भी तरह से कम नहीं। यह अपेक्षा की जाती है कि उनकी न्याय भावना के अनुरूप ही कार्य करें।

लेकिन भारत अपने अपेक्षित सामाजिक न्याय के स्तर के आस-पास भी नहीं पहुँच पाया है। सामाजिक परिवर्तन का एक महत्वपूर्ण मुद्दा भूमि के पुनर्वितरण से है। स्वामित्व की पुरानी असमानता को दूर करने और उत्पादन क्षमता तथा जीवन स्तर को सुधारने के अलावा उत्पादक गतिविधियों को प्रोत्साहन देने के लिए आवश्यक समझा गया, लेकिन अक्सर कानूनी अड़चनें और पूर्वाग्रह विधायी प्रयासों के आड़े आते हैं। एक छोटे से न्यायालय द्वारा दिया गया स्थगन आदेश बड़े-बड़े प्रयासों को निष्फल कर सकता है। हमारी कानूनी प्रक्रियायें खर्चीली और धीमी है तथा लगता है कि अमीरों के पक्ष में है, जो कानून, निर्बलों के लिए स्टील की तरह कठोर होता है, वहीं अमीरों, नेताओं तथा लोकसेवकों के सामने मोम की तरह पिघल जाता है। इसके लिए आवश्यक है कि शासन के तीनों अंग जनता के सेवक तथा उसके भलाई के सधान हों।

न्यायाधीशों से अपेक्षा की जाती है कि वे राजनीतिक तथा व्यक्तिगत झुकाव से अपने को मुक्त रखे। केवल तर्क पर ही नहीं, बल्कि अनुभव, लोकहित की भावना और समय की आवश्यकताओं पर भी ध्यान देना चाहिए।

इस तरह न्याय को सुचार एवं कम खर्चीला बनाया जाय, लम्बित मामलों को शीघ्र निपटाया जाए एवं बदली हुई परिस्थितियों में कदम-से-कदम मिलाकर सामंजस्य बनाने का प्रयास किया जाय।

न्याय के समुदाय द्वारा दिया गया सृजनात्मक सुझाव का संसद एवं जनता द्वारा स्वागत किया जाये, क्योंकि न्यायपालिका सरकार का एक पार्ट है और सरकार का काम है लोक कल्याण करना, यदि ऐसा नहीं हो सकेगा तो राज्य की स्थिति एक (Welfare State) लोक-कल्याणकारी राज्य के स्थान पर (Farewell State) विदाई राज्य की स्थापना हो जायेगी।

अतः संक्षेप में हम यह कह सकते हैं कि स्वतंत्रता प्राप्ति से अब तक जनता में राजनीतिक जागरूकता तथा मताधिकार के विस्तार ने भारत सरकार तथा राज्य सरकारों को सामाजिक न्याय की दिशा में काम करने के लिए बाध्य कर दिया है। इस सन्दर्भ में नीति-निर्देशक तत्वों तथा पंचवर्षीय योजना ने सामाजिक-आर्थिक न्याय की स्थापना में अति महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया है।

## सन्दर्भ-सूची

1. डॉ. एम.पी. राय, भारतीय सरकार एवं राजनीति, कॉलेज बुक डिपो, जयपुर वर्ष 1998, पृ. 236
2. बक्श्शीय सिंह, दी सुप्रीम कोर्ट एज एन इन्स्टुमेण्ट ऑफ सोशल जस्टिस, नई दिल्ली, 1976, पृ. 73
3. के. वोल्डिंग, सोशल जस्टिस इन सोशल डायनामिक्स, रिचर्ड ब्राट–सोशल जस्टिस, न्यूयार्क 1975, पृ.92
4. सी.के एलेन, आस्पेक्ट्स ऑफ जस्टिस, लन्दन 1955, पृ. 4
5. एम.सी. छागला, दी इण्डिवीजुयल एण्ड दी स्टेट, बम्बई 1951, पृ. 8
6. सूचना एवं प्रसारण मन्त्रालय, भारत सरकार बुकलेट, मार्च 1984

***

**Political Science**
Shodh Sandarsh-V, Vol.-XVI, Sept.-2017, Page : 134-144
ISSN No. - 2319–5908 (U.G.C. Approved Journal No. : 41329)

# नरेन्द्र मोदी सरकार की लोककल्याणकारी योजनाएँ

*डॉ. राजेश कुमार सिंह**

## राष्ट्रीय 'रूर्बन' मिशन का शुभारम्भ

- 21 फरवरी, 2016 को प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी द्वारा छत्तीसगढ़ के राजनांदगांव जिले के कुरुभात से 'श्यामा प्रसाद मुखर्जी राष्ट्री रूर्बन (Rurban : Rural + Urban) मिशन' का शुभारम्भ किया गया।
- इस राष्ट्रीय मिशन का उद्देश्य देश के सभी राज्यों/संघीय क्षेत्रों में स्मार्ट ग्रामों के समूहों (रूर्बन क्लस्टर्स) का विकास कर देश के ग्रामीण क्षेत्रों को आर्थिक, सामाजिक एवं भौतिक रूप से संपोषणीय क्षेत्रों में रूपान्तरित करना है।
- इस मिशन के शुभारम्भ के अवसर पर प्रधानमंत्री ने अपने संबोधन में कहा कि रूर्बन मिशन 'ग्रामीण आत्मा एवं शहरी सुविधाओं' (Rural Soul & Urban Amenities) के साथ क्लस्टर आधारित विकास करने में सक्षम बनाएगा। उन्होंने रूर्बन क्लस्टरों को आर्थिक गतिविधियों का केन्द्र बताया जो विकास को प्रेरित करेंगे तथा समीप के ग्रामों में जीवन की गुणवत्ता में सुधार करेंगे।
- 21 फरवरी, 2016 को ही प्रधानमंत्री मोदी द्वारा छत्तीसगढ़ के नया रायपुर में 'प्रधानमंत्री आवास योजना' (2022 तक सभी के लिए आवास मिशन) के तहत निर्मित की जाने वाली आवासीय परियोजना का शिलान्यास किया गया (इस योजना का विस्तृत विवरण भी 'अवसंरचना एवं संचार' अध्याय में प्रस्तुत किया गया है)।
- साथ ही प्रधानमंत्री ने नया रायपुर में इलेक्ट्रॉनिक विनिर्माण क्लस्टर की आधारशिला भी रखी और उन्होंने छत्तीसगढ़ की नई 'नवाचार एवं उद्यमिता विकास नीति' का भी अनावरण किया।
- इससे पूर्व उसी दिन नया रायपुर में प्रधानमंत्री मोदी ने सत्य साईं बाबा की मूर्ति का अनावरण किया तथा उन्होंने 'श्री सत्य साईं सोभाग्य-मानव संसाधन विकास केन्द्र' के उद्घाटन के साथ 'श्री सत्य साईं संजीवनी चाइल्ड हेल्थकेयर सेंटर' को मानवता की सेवा के लिए समर्पित किया।

## स्टैंड अप इंडिया योजना

- 6 जनवरी, 2016 को प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी की अध्यक्षता में केन्द्रीय मंत्रिमण्डल द्वारा देश में **अनुसूचित जातियों/ अनुसूचित जनजातियों और महिला उद्यमियों** में उद्यमशीलता के प्रोत्साहन हेतु **'स्टैंडअप इंडिया' योजना** (Stand Up India Scheme) की स्वीकृति प्रदान की गयी।
- इस स्कीम के तहत प्रत्येक बैंक शाखा द्वारा उपर्युक्त दोनों श्रेणियों में से प्रत्येक के कम से कम औसतन एक-एक उद्यमी को उनकी उद्यम परियोजनाओं हेतु ऋण उपलब्ध कराये जायेंगे। सरकारी और निजी सभी बैंकों को इसके तहत प्रति शाखा न्यूनतम दो उद्यम परियोजनाओं को समर्थन उपलब्ध कराना होगा।
- इस योजना के शुभारम्भ से 36 माह के भीतर कम से कम 2.5 लाख लाभार्थियों को इसके तहत आच्छादित किये जाने का लक्ष्य रखा गया है।
- इस योजना के लिए भारतीय लघु उद्योग विकास बैंक (SIDBI) 10,000 करोड़ रुपये की प्रारम्भिक राशि के साथ पुनर्वित्तीयन (Refinance) विंडो उपलब्ध कराएगा।
- अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति एवं महिला उद्यमियों को इस योजना के तहत 10 लाख रुपये से लेकर 1 करोड़ रुपये तक के ऋण गैर-कृषि क्षेत्र में स्थापित किये जाने वाले हरित क्षेत्र उद्यमों के लिए प्राप्त होंगे। इन ऋणों की पुनर्भुगतान अवधि 7 वर्ष तक की होगी।

* *गाँधी भवन, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद*

- इस योजना के तहत प्रदत्त ऋणों की सुरक्षा हेतु क्रेडिट गारंटी प्रणाली का गठन 'राष्ट्रीय क्रेडिट गारंटी ट्रस्टी कम्पनी' (NCGTC) के माध्यम से किया जाएगा। इस योजना में सम्मिश्र ऋण हेतु मार्जिन राशि 25 प्रतिशत तक निर्धारित की गई है।
- उल्लेखनीय है कि प्रधानमंत्री द्वारा 15 अगस्त, 2015 को राष्ट्र के नाम अपने सम्बोधन में 'स्टार्ट अप इंडिया, स्टैंड अप इंडिया' पहल की घोषणा की गई थी। इसी के घटक के रूप में 'स्टैंड अप इंडिया' योजना वित्तीय सेवाएँ विभाग (DFS) द्वारा अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति एसवं महिला उद्यमियों को प्रोत्साहन उपलब्ध कराने हेतु तैयार की गई है ('स्टार्ट अप इंडिया' अभियान का विस्तृत विवरण 'आर्थिक मुद्दे 2015-16' अध्याय में प्रस्तुत किया गया है)।

## 'पहल योजना' गिनीज बुक में शामिल

- 5 दिसम्बर, 2015 को केन्द्रीय पेट्रोलियम मंत्री धर्मेन्द्र प्रधान द्वारा एलपीजी सब्सिडी हेतु प्रारम्भ 'पहल' योजना को गिनीज बुक ऑफ वर्ल्ड रिकॉर्ड में शामिल किये जाने सम्बन्धी प्राप्त प्रमाण पत्र प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी को सौंपा गया।
- उल्लेखनीय है कि 13 अगस्त, 2015 को गिनीज बुक द्वारा विश्व के सबसे बड़े नकद हस्तांतरण कार्यक्रम (परिवार आधार पर) के रूप में मान्यता दी गयी थी।
- भारत सरकार द्वारा एलपीजी गैस सब्सिडी के बैंक खातों के माध्यम से प्रत्यक्ष लाभ हस्तांतरण (DBT) के 'पहल' योजना 15 नवम्बर, 2014 को देश के 54 जिलों में प्रारम्भ की गयी थी जिसे देश के शेष जिलों में 1 जनवरी, 2015 को विस्तारित किया गया था।
- जनवरी, 2016 की स्थिति के अनुसार 14.78 करोड़ एलपीजी उपभोक्ता इस योजना से जुड़ चुके हैं।
- उल्लेखनीय है कि दिसम्बर–अंत, 2015 में सरकार ने यह निर्णय लिया है कि विगत वित्त वर्ष में 10 लाख रुपये से अधिक की कर-योग्य आय वाले उपभोक्ताओं या उनके पति/पत्नी को एलपीजी सब्सिडी उपलब्ध नहीं होगी। यह निर्णय उपभोक्ताओं द्वारा स्वघोषणा के आधार पर लागू किया गया है।

## सुगम्य भारत अभियान का शुभारंभ

- 3 दिसम्बर, 2015 को 'निःशक्त जनों हेतु अंतर्राष्ट्रीय दिवस' (International Day of Persons with Disabilities) के अवसर पर केन्द्रीय वित्त मंत्री अरुण जेटली और सामाजिक न्याय एवं अधिकारिता मंत्री थावरचंद गहलोत द्वारा संयुक्त रूप से 'सुगम्य भारत अभियान' (Accesibile India Compaign) का शुभारंभ किया गया।
- यह सामाजिक नयाय एवं अधिकारिता मंत्रालय के निःशक्तता मामले विभाग के तहत एक राष्ट्रव्यापी अभियान है जो कि देशभर में निःशक्त जनों को सार्वभौमिक पहुँच (Universal Access) विकास हेतु समान अवसर, स्वतंत्र आजीविका तथा एक समावेशी समाज में जीवन के सभी पक्षों में भागीदारी उपलब्ध कराने के उद्देश्य से प्रारम्भ किया गया है।
- सुगम्य भारत अभियान के महत्वपूर्ण बिन्दु इस प्रकार हैं–(1) इसके तहत जुलाई 2018 तक राष्ट्रीय राजधानी दिल्ली एवं सभी राज्यों की राजधानियों के सभी सरकारी भवनों के कम से कम 50 पतिशत भाग को निःशक्त जनों के लिए पूर्णतः सुगम्य बना दिया जाएगा।
- देश के सभी अंतराष्ट्रीय हवाई अड्डों तथा A1, A एवं B श्रेणी के रेलवे स्टेशनों को जुलाई, 2016 तक पूर्णतः सुगम्य बनाया जाएगा।
- देश के सरकारी परिवहन वाहनों के न्यूनतम 10 प्रतिशत को मार्च, 2018 तक निःशक्त जनों के लिए पूर्णतः सुगम्य बनाया जाएगा।
- यह भी सुनिश्चित किया जाएगा कि मार्च, 2018 तक केन्द्र एवं राज्य सरकारों द्वारा जारी किये जाने वाले सभी सार्वजनिक दस्तावेजों का न्यूनतम 50 प्रतिशत निःशक्त जनों हेतु सुगम्यता मानकों के अनुकूल हो।
- सरकार द्वारा 1,700 करोड़ रुपये की लागत से 'निःशक्त जनों हेतु एक विशेष विश्वविद्यालय' स्थापित करने का भी निर्णय लिया गया है जो कि अगले शैक्षणिक वर्श से कार्य प्रारम्भ कर देगा।
- इस अभियान के शुभारंभ के साथ इसके बारे में जागरुकता विस्तार हेतु एक वेब पोर्टल और मोबाइल एप भी शुरू किये गये।

- इस अभियान के शुभारम्भ के अवसर पर प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी ने निःशक्त जनों हेतु 'विकलांग' शब्द के स्थान पर 'दिव्यांग' शब्द के प्रयोग पर विचार हेतु भी कहा।
- केन्द्र सरकार द्वारा निःशक्त व्यक्तियों के कौशल प्रशिक्षण हेतु एक राष्ट्रीय कार्ययोजना प्रारम्भ की गयी है जिसक तहत अगले 3 वर्ष में 5 लाख ऐसे व्यक्तियों को कौशल प्रशिक्षण उपलब्ध कराया जाएगा। साथ ही इनके 12,786 रिक्त पदों को भरने के लिए एक समयबद्ध कार्ययोजना भी तैयार की गयी है।

## तीन नई सामाजिक सुरक्षा योजनाएँ

- 9 मई, 2015 को कोलकाता में आयोजित एक समारोह में प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी द्वारा तीन नई सामाजिक सुरक्षा योजनाओं–अटल पेंशन योजना (APY), प्रधानमंत्री जीवन ज्योति बीमा योजना (PMJJBY) तथा प्रधानमंत्री सुरक्षा बीमा योजना (PMSBY) का औपचारिक शुभारम्भ किया गया।

### 1. अटल पेंशन योजना (APY)

- यह पेंशन योजना मुख्यतः असंगठित क्षेत्र में कार्यरत व्यक्तियों को सेवानिवृत्ति पेंशन प्रणाली से जोड़ने के उद्देश्य से तैयार की गयी है।
- अटल पेंशन योजना के तहत अंशदाताओं को 60 वर्ष की आयु पूरी होने पर 1000 रुपये/ 2000 रुपये / 3000 रुपये/4000 रुपये/5000 रुपये न्यूनतम मासिक पेंशन प्राप्त होगी, जो उनके अंशदान पर निर्भर करेगी।
- इस पेंशन योजना में शामिल होने के लिए न्यूनतम आयु 18 वर्ष और अधिकतम आयु 40 वर्श होगी तथा अंशदान की राशि योजना में शामिल होने के समय आयु पर निर्भर करेगी (न्यूनतम 42 रुपये प्रतिमाह 18 वर्ष की आयु में)।
- केन्द्र सरकार ऐसे प्रत्येक पात्र अंशदाता के खाते में हर वर्ष कुल अंशदान के 50 प्रतिशत के बराबर या 1000 रुपये (इनमें से जो भी कम हो) की राशि का सह-योगदान 5 वर्षों (2015-16 से 2019-20) तक करेगी, जो नई पेंशन योजना में 31 दिसम्बर, 2015 (इस अवधि को बढ़ाकर अब 31 मार्च, 2016 कर दिया गया है) से पूर्व शामिल हुए हैं तथा जो आयकरदाता नहीं है और किसी अन्य वैधानिक सामाजिक सुरक्षा योजना के सदस्य नहीं हैं।
- 23 जनवरी, 2016 तक अटल पेंशन योजना में शामिल होने वाले अंशदाताओं की संख्या 1,948,811 पर पहुँच गयी है।

### 2. प्रधानमंत्री जीवन जयोति बीमा योजना (PMJJBY)

- इस योजना के पत्र वे सभी बैंक खाताधारक हैं जो 18 से 50 वर्ष की आयु वर्ग के हैं।
- इस योजना के तहत अंशदाताओं को मात्र 330 रुपये वार्षिक प्रीमियम का भुगतान (बैंक खाते से ऑओ डेबिट के माध्यम से) करने पर 2 लाख रुपये का जीवन बीमा प्राप्त होगा। इस योजना के तहत एक बार सदस्य बनने के बाद 55 वर्ष की आयु तक इस योजना का लाभ किया जा सकेगा।
- इस योजना (जो वस्तुत; 'टर्म इंश्योरेंस प्लान'–अवधि बीमा योजना है) में बीमा अवधि 1 जून, 31 मई निर्धारित की गई है।

### 3. प्रधानमंत्री सुरक्षा बीमा योजना (PMSBY)

- इस योजना के तहत 18 से 70 वर्ष आयु वर्ग के सभी बैंक खाताधारक पात्र होंगे जिन्हें मात्र 12 रुपये के वार्षिक प्रीमियम पर दुर्घटना बीमा का लाभ प्रापत होगा। इस योजना में अंशदाता की दुर्घटना में आंशिक विकलांगता की स्थिति में 1 लाख रुपये का जोखिम कवर या बीमा राशि उपलब्ध कराई जाएगी।
- इसकी बीमा अवधि भी 1 जून, से 31 मई है जिसका प्रतिवर्ष नवीनीकरण होगा।

## प्रधानमंत्री मुद्रा योजना

- 8 अप्रैल, 2015 को नई दिल्ली के विाान भवन में प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी द्वारा 'प्रधानमंत्री मुद्रा योजना' का शुभारंभ किया गया तथा इस योजना के तहत 20,000 करोड़ रु. की प्रारम्भिक निधि और 3,000 करोड़ रु. की गारण्टी निधि के

साथ 'सूक्ष्म इकाई विकसित पुनर्वित्त एजेंसी' (MUDRA : Micro Units Development Refinance Agency) की एनबीएफसी के रूप में स्थापना की गयी।

- मुद्रा (सिडबी0 बैंक' सभी सूक्ष्म-वित्त संस्थानों (MFIs : Micro-finance Institutions) को विनियमित (नीतिगत दिशानिर्देश निर्माण एवं उनके पंजीकरण के साथ) करेगा और उन्हें छोटी व्यावसायिक इकाइयों को ऋण प्रदान करने के संदर्भ में पुनर्वित्तीयन भी उपलब्ध कराएगा।
- इस ऋणप्रदाता एवं पुनर्वित्तीयन बैंक के लिए 'प्रधानमंत्री मुद्रा योजना' मुख्य समर्थन प्रणाली है तथा यह बैंक भारतीय लघु उद्योग विकास बैंक (SIDBI) के भाग के रूप में कार्य करेगा।
- 'मुद्रा बैंक' प्रधानमंत्री मुद्रा योजना के तहत युवाओं को स्वरोजगार हेतु 10 लाख रुपये तक का ऋण कम ब्याज दर पर उपलब्ध कराएगा। इस योजना के तहत ऋण लेने वालों को 'मुद्रा कार्ड' भी मिलेगा जिसे आकस्मिक आवश्यकता की स्थिति में क्रेडिट कार्ड की तरह प्रयोग कर 10 हजार रुपये तक प्राप्त किये जा सकेंगे।
- प्रधानमंत्री मुद्रा योजना के तहत सूक्ष्म/छोटी व्यावसायिक इकाइयों हेतु प्रारम्भिक रूप से 3 प्रमुख ऋण योजनाओं की शुरुआत की गयी है जो कि व्यवसाय के 3 स्तरों पर वित्तीयन उपलब्ध करा रही है। इनमें प्रथम योजना 'शिशु' है जिसके तहत किसी व्यक्ति को व्यावसायिक इकाई के प्रारम्भ के लिए 50 हजार रुपये तक का ऋण मिलेगा। दूसरी योजना 'किशोर' है जिसके तहत 50 हजार से 5 लाख रुपये तक का ऋण प्राप्त हो सकेगा। तीसरी योजना 'तरुण' के तहत 5 से 10 लाख रुपये तक का ऋण उपलब्ध कराया जाएगा।
- उल्लेखनीय है कि अप्रैल, 2015 में मुद्रा योजना के प्रारम्भ से पूर्व मार्च, 2015 में ही 'मुद्रा लि.' की स्थापना सिडबी की कॉरपोरेट अधीनस्थ कंपनी के रूप में कर दी गयी थी।
- 1 जनवरी, 2016 तक इस योजना के तहत 1.73 करोड़ ऋण प्राप्त कर्ताओं को 71,312 करोड़ रुपये के ऋणों का वितरण किया जा चुका है।
- 6 जनवरी, 2016 को प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी की अध्यक्षता में केन्द्रीय मंत्रिमण्डल द्वारा 'प्रधानमंत्री मुद्रा योजना' के तहत गैर बैंकिंग वित्तीय कम्पनी (एनबीएफसी) के रूप में सथापित 'मुद्रा लिमिटेड' को 'मुद्रा (सिडबी) बैंक' के रूप में परिवर्तित किये जाने के साथ मुद्रा (MUDRA : Micro Units Development Refinance Agency) योजना' के तहत दिये जाने वाले ऋणों के लिए एक 'ऋण गारंटी कोष' (Credit Guarantee Fund) की स्थापना को स्वीकृति प्रदान की गई।
- इस ऋण गारंटी कोष द्वारा छोटी व्यावसायिक इकाइयों को प्रदान किये जाने वाले लगभग 1 लाख करोड़ रुपये तक के ऋणों के संदर्भ में गारंटी प्रदान करने का अनुमान है। इस कोष का क्रियान्वयन 8 अप्रैल, 2015 से प्रारम्भ माना जाएगा।
- इस कोष के प्रबंधन में संचालन हेतु भारत सरकार के पूर्ण स्वामित्व वाली कम्पनी 'नेशनल क्रेडिट गारंटी ट्रस्टी कंपनी' (NCGTC) को ट्रस्टी बनाया गया है।
- यह कोष पोर्टफोलियो आधार पर डिफॉल्ट ऋण के अधिकतम 50 प्रतिशत हेतु गारंटी प्रदान करेगा।

## प्रधानमंत्री कौशल विकास योजना

- 20 मार्च, 2015 को प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी की अध्यक्षता में सम्पन्न केन्द्रीय मन्त्रिमण्डल द्वारा 'प्रधानमंत्री कौशल विकास योजना' (पीएमकेवीवाई) को प्रभावी तरीके से लागू करने के लिए 1,500 करोड़ रुपये जारी करे को स्वीकृति प्रदान की गयी तथा इस योजना को प्रधानमंत्री मोदी द्वारा 15 जुलाई, 2015 को 'कौशल भारत' अभियान के शुभारंभ के साथ औपचारिक रूप से शुरू किया गया।
- इस योजना को नई केन्द्र सरकार में पहली बार बनाए गए कौशल विकास और उद्यमिता मंत्रालय के जरिये लागू किया जा रहा है। इस योजना के तहत अगले 1 वर्श में 24 लाख युवाओं को विभिन्न प्रकार के रोजगारों हेतु प्रशिक्षित किया जाएगा।
- इस योजना में प्रशिक्षण पाने वाले लोगों का आकलन बाहरी संस्थान की ओर से किया जाता है। साथ ही प्रत्येक प्रशिक्षु को औसत 8,000 रुपये का आर्थिक सहयोग भी प्रदान किया जाएगा। राष्ट्रीय कौशल विकास निगम अपनी साझेदार एजेंसियों के साथ मिलकर यह प्रशिक्षण कार्यक्रम चला रहा है।

## बेटी बचाओ, बेटी पढ़ाओ राष्ट्रीय अभियान

- 22 जनवरी, 2015 को प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी द्वारा हरियाणा के पानीपत जिले के एचयूडीए ग्राउंड से केन्द्र सरकार के सामाजिक क्षेत्र के पुनरोत्थान के महत्वाकांक्षी कार्यक्रम 'बेटी बचाओ, बेटी पढ़ाओ' (BBBP) का राष्ट्रीय अभियान के रूप में शुभारंभ किया गया।
- 'बेटी बचाओ, बेटी पढ़ाओ' योजना एक साथ देश के अल्प (खराब) बाल लिंगानुपात (जहाँ लड़कियों की जनसंख्या का लड़कों की जनसंख्या से अनुपात काफी कम है) वाले 100 जिलों में प्रारम्भ की गयी।
- इन 100 जिलों में हरियाणा के 12 (देश में न्यूनतम बाल लिंगानुपात 775 वाले महेन्द्रगढ़ जिले सहित), पंजाब के 11, महाराष्ट्र के 10, राजस्थान के 10, उत्तर प्रदेश के 10 (बागपत, गौतमबुद्ध नगर, गाजियाबाद, मेरठ, बुलंदशहर, आगरा, मुजफ्फरनगर, हाथरस, झांसी एवं मथुरा), जम्मू एवं कश्मीर, दिल्ली के गुजरात के 5-5, मध्य प्रदेश के 4, उत्तराखण्ड के 2 तथा शेष सभी राज्यों एवं संघीय छात्रों के न्यूनतम बाल लिंगानुपात वाले एक-एक जिले शामिल किये गये।
- 5 जनवरी, 2016 से इस योजना को देश के 11 राज्यों के 61 अन्य जिलों (गुजरात-4, हरियाणा 8, हिमाचल प्रदेश 2, जम्मू एवं कश्मीर 10, मध्य प्रदेश 2, महाराष्ट्र 6, दिल्ली 2, पंजाब 9, राजस्थान 4, उत्तर प्रदेश 11, इटावा, फिरोजाबाद, अलीगढ़, एटा, जालौन, बिजनौर, मैनपुरी, हमीरपुर, सहारनपुर, फर्रुखाबाद एवं महोबा तथा उत्तराखण्ड–3 जिले) में विस्तारित किया गया है।
- उल्लेखनीय है कि बाल लिगानुपात (CSR-Child Sex Ratio) को 0 से 6 वर्ष की आयु में प्रति 100 बालकों पर बालिकाओं की संख्या के रूप में परिभाषित किया जाता है। भारत में सीएसआर वर्ष 1961 में 976 पर था जो कि वर्ष 2001 में 927 और पुनः वर्ष 2011 में 919 (ग्रामीण–9239, शहरी 905) पर आ गया है।
- ज्ञातव्य है कि राष्ट्रीय अभियान का ब्रांड एम्बेसडर प्रख्यात सिने-तारिका माधुरी दीक्षित को बनाया गया है।
- उल्लेखनीय है कि मध्य प्रदेश राज्य सरकार द्वारा इससे पहले 1 अक्टूबर, 2007 को 'बेटी बचाओ अभियान' नाम से राज्य स्तरीय योजना की शुरुआत की गयी थी।

## सुकन्या समृद्धि योजना

- 22 जनवरी, 2015 को प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी द्वारा 'राष्ट्रीय बेटी बचाओ, बेटी पढ़ाओ अभियान' के तहत बेटियों की उच्च शिक्षा और उनके विवाह के लिए 'सुकन्या समृद्धि योजना' नाम से राष्ट्रीय लघु बचत योजना का शुभारम्भ पानीपत से किया गया।
- सुकन्या समृद्धि योजना के अन्तर्गत बेटी के जनम से लेकर उसके 10 वर्ष की आयु की होने तक कभी भी किसी भी डाकघर अथवा सरकार द्वारा अधिसूचित बैंक शाखा में बेटी के नाम से 1 हजार रुपये की न्यूनतम राशि से खाता खोला जा सकेगा। हर वर्ष इस खाते में न्यूनतम 1 हजार और अधिकतम 1.5 लाख रुपये तक जमा कराये जा सकेगे जिन पर सम्बन्धित वित्त वर्श में लोक भविष्य निधि खाते की तरह कर छूट प्राप्त हो सकेगी। बेटियों के लिए विशेष तौर पर बनाई गई इस योजना के तहत खाता खोलने से 14 वर्ष तक धन जमा कराना होगा।
- यह खाता उसे खोले जाने से 21 वर्ष पूरे होने या 18 वर्श की आयु के पश्चात् बालिका का विवाह होने तक संचालित रहेगा। बालिका की आयु 18 वर्ष होने पर उसकी उच्चतर शिक्षा आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु खाते में शेष राशि की 50 प्रतिशत धनराशि निकाली जा सकेगी।
- उल्लेखनीय है कि इस योजना की सुविधा केवल दो बेटियों के लिए ही मिलेगी तथापि यदि पहली बेटी के बाद जुड़वाँ बेटियाँ पैदा होती है तो ऐसी स्थिति में तीनों बेटियों के लिए इस योजना का लाभ लिया जा सकेगा।
- 31 अक्टूबर, 2015 तक इस योजना के तहत देश भर में 76, 19, 668 खाते खोले जा चुके हैं।

## सांसद आदर्श ग्राम योजना का शुभारम्भ

- 11 अक्टूबर, 2014 को लोकनायक जयप्रकाश नारायण की जयंती के अवसर पर प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी ने 'सांसद आदर्श ग्राम योजना8 (SAGY) का शुभारंभ किया।
- इस योजना के तहत प्रत्येक संसद सदस्य वर्ष 2019 तक तीन ग्रामों में भौतिक एवं संस्थागत अवसंरचना विकास की जिम्मेदारी लेगा, जिसमें से एक ग्राम का विकास 2016 तक करना होगा। इसके पश्चात वर्ष 2024 तक प्रत्येक सांसद द्वारा ऐसे 5 ग्राम (प्रति वर्ष 1 ग्राम) चयनित और विकसित किये जाएंगे।

- 'सांसद आदर्श ग्राम योजना' के तहत महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि सांसद अपने संसदीय क्षेत्र के (राज्य सभा के संदर्भ में अपने राज्य के) किसी भी ग्राम का विकास हेतु चयन करने के लिए स्वतंत्र होंगे, परन्तु वे स्वयं के ग्राम या अपने ससुराल पक्ष (In-Laws) के ग्राम का चयन नहीं कर सकेंगे।
- इस योजना के तहत विकास की दिशा में समग्र दृष्टिकोण अपनाते हुए चयनित ग्रामों का विविध क्षेत्रों, यथा–कृषि, स्वास्थ्य, शिक्षा, सफाई, पर्यावरण, आजीविका आदि के संदर्भ में समन्वित विकास करने की परिकल्पना है।
- एसएजीवाई का क्रियान्वयन प्रत्येक चयनित ग्राम पंचायत के लिए तैयार की जाने वाली 'ग्राम विकास योजना' (Village Development Plan) के माध्यम से किया जाएगा जिसमें प्रत्येक निर्धन परिवार को गरीबी से बाहर निकालने हेतु सक्षम बनाने पर विशेष जोर दिया जाएगा। इसमें वित्तीय अंतरालों का आपूरण सांसद निधि (MPLADS) द्वारा किया जाएगा।
- इस योजना के तहत विकास हेतु प्राथमिक इकाई ग्राम पंचायत होगी। इस योजना के अंतर्गत मैदानी क्षेत्रों में 3-5 हजार जनसंख्या वाली ग्राम पंचायतों तथा पर्वतीय जनजातीय एवं दुर्गम क्षेत्रों में 1-3 हजार जनसंख्या वाली ग्राम पंचायतों का चयन किया जाएगा तथा जिन जिलों में जनसंख्या का इकाई आकार उपलब्ध नहीं होगा, वहाँ लगभग वांछित जनसंख्या आधार पर ग्राम पंचायतों का चयन किया जाएगा।
- उल्लेखनीय है कि प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी द्वारा अपने संसदीय क्षेत्र वाराणसी के 'जयापुर' ग्राम का चयन इस योजना के तहत किया गया है।
- 23 नवम्बर, 2014 को गुजरात राज्य ने सांसद आदर्श ग्राम योजना की तर्ज पर 'एमएलए आदर्श ग्राम योजना' की शुरुआत की।

## दीनदयाल उपाध्याय ग्रामीण कौशल्य योजना

- देश के ग्रामीण क्षे.ों के 15-35 वर्श के युवाओं के कौशल विकास और उनमें उत्पादक क्षमता का विकास करने के उद्देश्य से केन्द्र सरकार द्वारा 25 सितम्बर, 2014 से **'दीन दयाल उपाध्याय ग्रामीण कौशल्य योजना'** (DDU-GKY) का प्रारंभ किया गया है।
- उल्लेखनीय है कि आधुनिक बाजार व्यवस्था के संदर्भ में भारत के ग्रामीण निर्धनों को आगे लाकर समावेशी विकास प्रक्रिया में शामिल करने में औपचारिक शिक्षा और बाजार अनुकूल कौशल की कमी होना मुख्य समस्याएँ है। विश्वस्तरीय प्रशिक्षण, वित्त पोषण, रोजगार उपलब्ध कराने पर जोर देने, रोजगार प्रदान करने जेसे उपायों के माध्यम से डीडीयू-जीकेवाई इस अंतर को पाटनो के उद्देश्य के साथ प्रारम्भ की गयी है।
- दीन दयाल उपाध्याय ग्रामीण कौशल्य योजना की प्रमुख विशेषताएँ इस प्रकार हैं– (i) ग्रामीण निर्धन युवाओं के लिए माँग पर आधारित निःशुल्क कौशल प्रशिक्षण प्रदान कर लाभकारी योजनाओं तक पहुँच हेतु निर्धनों एवं सीमांत लोगों को सक्षम बनाना। (ii) सामाजिक तौर पर वंचित समूहों (एससी/एसटी 50% अल्पसंख्याक 15%, महिलाएँ 33%)। (iii) प्रशिक्षण से लेकर रोजगार स्थायी करने के साथ आजीविका उन्नयन और विदेशों में रोजगार प्राप्त करने हेतु पथ प्रदर्शन उपलब्ध कराना। (iv) नियोजन-पश्चात् सहायता, प्रवास सहायता और पूर्व-प्रशिक्षु नेटवर्क तैयार करना। (v) कम-से-कम 75 प्रतिशत प्रशिक्षित उम्मीदवारों के लिए रोजगार की गारंटी उपलब्ध कराना। (vi) प्रशिक्षण सेवा प्रदान करने वाली नई एजेंसियां तैयार कर कौशल विकास करना। (vii) विशिष्ट क्षेत्रों में निर्धन ग्रामीण युवाओं के लिए कौशल विकास उप-परियोजनाओं (यथा–जम्मू एवं कश्मीर में 'हिमायत' योजना तथा वामपंथी उग्रवाद से प्रभावित 27 जिलों में 'रोशनी' योजना)।
- डीडीयू–जीकेवाई वस्तुतः केन्द्रीय ग्रामीण विकास मंत्रालय के तहत **रीष्ट्रीय ग्रामीण आजीविका मिशन** (NRLM) का एक भाग है तथा इसे एनआरएलएम के रोजगार–सम्बद्ध कौशल घटक 'आजीविका कौशल' को पुनर्संरचित कर तैयार किया गया है।
- इस केन्द्र प्रायोजित योजना के वित्तीयन में केन्द्र सरकार एवं राज्य सरकारों की भागीदारी 75 : 25 (पूर्वोत्तर राज्यों के संदर्भ में 90 : 10) है।
- केन्द्रीय बजट 2015-16 में इस योजना हेतु 1,500 करोड़ रुपये का आवंटन किया गया था।
- इस योजना के तहत वर्श 2017 तक 10 लाख ग्रामीण युवाओं को कौशल प्रशिक्षण उपलब्ध कराने का लक्ष्य रखा गया है।

- यह योजना वर्तमान में देश के 610 जिलों में कार्यान्वित की जा रही है तथा इसमें 50 से अधिक क्षेत्रों से जुड़े हुए 250 से अधिक ट्रेडों को शामिल करते हुए 202 से अधिक परियोजना क्रियान्वयन एजेंसियों की साझेदारी है।

## पं. दीन दयाल अंत्योदय योजना

- केन्द्र सरकार द्वारा 25 सितम्बर, 2014 को **पं. दीन दयाल अंत्योदय योजना** (DAY) की घोषणा की गई। इस योजना का उद्देश्य ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्रों में कौशल विकास एवं अन्यसाधनों के माध्यम से रोजगार अवसरों की उपलब्धता बढ़ाकर निर्धनता को कम करना है। इस योजना के तहत व्यक्तिगत सूक्ष्म उपक्रमों हेतु 2 लाख रुपये तक तथा समूह उपक्रमों के लिए 10 लाख रुपये तक का .ण 7 प्रतिशत की सब्सिडीकृत ब्याज पर उपलब्ध कराकर स्वरोजगार को भी प्रोत्साहन दिया जाएगा।
- वस्तुतः 'राष्ट्रीय शहरी आजीविका मिशन' (NULM : National Urban Livelihood Mission) को ही 'दीन दयाल अंत्योदय योजना–एनयूएजएम' के रूप में पुनर्संरचित एवं पुनर्नामित किया गया है। 23 सितम्बर, 2013 से प्रारम्भ 'एनयएलएम' वर्तमान में देश के केवल 791 शहरों (सभी जिला मुख्यालयों एवं एक लाख से अधिक जनसंख्या वाले शहरों एवं कस्बों) में क्रियान्वित किया जा रहा था जिसे 'डीएवाई-एनयूएलएम' के तहत फरवरी, 2016 से अब देश के शेष 3,250 सांविधिक नगरों (सभी 4,041 सांविधिक नगरों) के लिए विसतारित कर दिया गया है।

## 'मेक इन इंडिया' वैश्विक पहल

- 25 सितम्बर, 2014 को प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी द्वारा भारतीय अर्थव्यवस्था को वैश्विक पहचान दिलाने के उद्देश्य से 'मेक इन इंडिया' (Make in India) वैश्विक पहल का शुभारंभ किया गया। इस कार्यक्रम का लोगो मशीनीकृत शेर है।
- 'मेक इन इंडिया' नामक इस नए वृहद राष्ट्रीय कार्यक्रम का उउद्देश्य भारत को वैश्विक विनिर्माण हब के रूप में स्थापित करना ह। यह कार्यक्रम देश में निवेश को बढ़ाने, नवप्रवर्तन को तीव्रतर करने, कौशल विकास संवर्धन, बौद्धिक संपदा संरक्षा और उत्कृष्ट विनिर्माण अवसंरचना के निर्माण के उद्देश्यों के साथ तैयार किया गया है।
- इसमें वर्तमान में शामिल क्षेत्र हैं–ऑटोमोबाइल्स, ऑटोमोबाइल कंपोनेंट्स, एविएशन, बायोटेक्नोलॉजी, केमिकल्स, निर्माण क्षेत्र, रक्षा विनिर्माण, इलेक्ट्रिकल मशीनरी, इलेक्ट्रानिक सिस्टम्स, खाद्य प्रसंस्करण, आईटी एंड बीपीएम, लेदर, मीडिया एंड इंटरटेनमेंट, खनन, तेल एवं गैस, फार्मास्युटिकल्स, बंदरगाह, रेलवे, नवीकरणीय उर्जा, सड़क एवं राजमार्ग, अंतरिक्ष, वस्त्र एवं परिधान, तापीय ऊर्जा, टूरिज्म एंड हॉस्पिटैलिटी तथा वेलनेस (आयुर्वेदिक एवं वैकल्पिक औषधि क्षेत्र)।
- 'मेक इन इंडिया' अभियान को विशेष प्रोत्साहन उपलब्ध कराने के उद्देश्य से मुम्बई में 13718 फरवरी, 2016 के दौरान 'मेक इन इंडिया सप्ताह' एवं मेगा एक्सपो का आयोजन किया गया (विस्तृत विवरण हेतु देखें–इसी अंक में 'आर्थिक मुद्दे, 2015-16' अध्याय)।

## पं. दीन दयाल उपाध्याय 'श्रमेव जयते' योजना

- प्रधानंत्री नरेंद्र मोदी ने 16 अक्टूबर, 2014 को नई दिल्ली के विज्ञान भवन में '**पं. दीन दयाल उपाध्याय श्रमेव जयते योजना**' का सूत्रपात किया। इस योजना का मुख्य उद्देश्य भारत में मजदूरों की दशा-दिशा सुधारना है।
- इस योजना के तहत पारदर्शी श्रम निरीक्षण व्यवस्था को प्रभावी बनाये जाने के उद्देश्य से इन्स्पेक्टरों को दिये गये विवेकाधिकार वापस लिये जायेंगे। कम्प्यूटर पर ड्रा के जरिये तय होगा कि कौन-सा इंस्पेक्टर किस फैक्टरी का निरीक्षण करने जाएगा। निरीक्षण के बाद संबंधित निरीक्षक को 72 घंटों में ऑनलाइन रिपोर्ट अपलोड करनी होगी।
- योजना के तहत पीएफ जमा करने वालों के लिए यूनिवर्सल खाता नम्बर की व्यवस्था को प्रभावी बनाया जाएगा। नये नियोक्ता को कर्मचारी द्वारा इसकी जानकारी दी जाएगी और उसका खाता स्वयं स्थानांतरित हो जाएगा।

## स्वच्छ भारत अभियान

- महात्मा गांधी की 145वीं जयन्ती के अवसर पर 2 अक्टॅबर, 2014 को प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी द्वारा राष्ट्रव्यापी जन-जागरुकता कार्यक्रम 'स्वच्छ भारत अभियान' (Mission Clean India) का औपचारिक शुभारंभ नई दिल्ली में राजपथ के निक एक वाल्मीकि बस्ती में स्वयं झाड़ू द्वारा सफाई करके किया गया।

- वर्ष 2019 में महात्मा गांधी की 150वीं जयंती मनाये जाने तक उनके स्वच्छ भारत के सपने को पूरा करने का लक्ष्य रखा गया है।
- उल्लेखनीय है कि इस राष्ट्रवयापी मिशन को प्रारम्भ किये जाने की घोषणा प्रधानमंत्री मोदी ने 15 अगस्त, 2014 को लाल किले से राष्ट्र के नाम अपने प्रथम सम्बोधन में की थी।
- 24 सितम्बर, 2014 को केन्द्रीय मन्त्रिमण्डल की बैठक में 'निर्मल भारत अभियान' को 'स्वच्छ भारत मिशन' के रूप में पुनर्संरचित कर देशव्यापी वृहद अभियान के रूप में प्रारंभ करने को स्वीकृति दी गयी थी, जिसके तहत दो उप7उपमिशन हैं–स्वच्छ भारत मिशन (ग्रामीण) तथा 'स्वच्छ भारत मिशन' (लहरी)।
- स्वच्छ भारत मिशन (ग्रामीण) के क्रियान्वयन का उत्तरदायित्व केन्द्रीय पेयजल एवं स्वच्छता मंत्रालय को तथा स्वच्छ भारत मिशन (शहरी) के क्रियान्वयन का उत्तरदायित्व केन्द्रीय शहरी विकास मंत्रालय को सौंपा गया है।
- स्वच्छ भारत मिशन (ग्रामीण) के तहत देश के ग्रामों में अगले 5 वर्षों में लगभग 11.11 करोड़ शौचालय बनाने के लिए 1 लाख 34 हजार करोड़ रुपये खर्च किये जायेगे।
- स्वच्छ भारत मिशन (शहरी) के तहत अगले 5 वर्षों में कुल 62,009 करोड़ रुपये व्यय का अनुमान है। इस प्रकार शहरी और ग्रामीण क्षेत्रों को मिलाकर 'स्वच्छ भारत मिशन' पर 5 वर्षों में लगभग 2 लाख करोड़ रुपये व्यय किये जायेंगे।

## प्रधानमंत्री जन धन योजना (PMJDY)

- 28 अगस्त, 2014 को प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी द्वारा प्रारम्भ वित्तीय समावेशन के देशव्यापी वृहद अभियान 'प्रधानमंत्री जन धन योजना' के महत्वपूर्ण तथ्य इस प्रकार हैं–(1) प्रथमचरण में देश भर में सभी परिवारां को बैंकिंग सुविधाओं तक सार्वभौमिक पहुंच एक यथोचित दूरी के भीतर बैंक शाखा या नियत स्थान बिजनेस कॉरेस्पॉनडेंट (बैंक मित्र) के माध्यम से उपलब्ध कराई जा रही है। (2) इस योजना के तहत शून्य शेष (Zeero Balance) पर बैंक खाता खुलता है तथा खाता धारक को 'रुपे' (Rupay) डेबिट कार्ड के साथ 1 लाख रुपये का दुर्घटना बीमा एवं 26 जनवरी, 2015 तक खाता खोलने वालों को 30 हजार रुपये का जीवन बीमा कवर प्राप्त हुआ है। इसके अतिरिक्त इन खातों पर 5,000 रुपये तक की ओवरड्राफ्ट सुविधा भी आधार सम्बद्ध खातों` 6 माह तक संतोषजनक संचालन के पश्चात उपलब्ध (शर्तों के अधीन) कराई गई है। (3) इस योजना के द्वितीय चरण में लोगों को सूक्ष्म बीमा (Micro Insurance) सुविधाएँ उपलब्ध कराने के साथ बिजनेस कॉरेस्पॉन्डेट्स (बैंक मित्र) के माध्यम से स्वावलम्बन जैसी असंगठित क्षेत्र की पेंशन योजनाओं के लाभ भी प्रदान किये जाने हैं। (4) इस योजना के तहत परिवार की महिला सदस्य का खाता खोलने को प्राथमिकता दी जाती है। (5) वर्तमान खाताधारक भी एक आवेदन देकर प्रधानमंत्री जन-धन योजना का लाभ प्राप्त कर सकते हैं तथा उन्हें इसके लिए नया खाता खोलने की आवश्यकता नहीं है।
- प्रधानमंत्री जनधन योजना के प्रारम्भ के समय पहले ही दिन लगभग 1,50 करोड़ खाते तथा 23 से 29 अगस्त, 2014 के मध्य 18,096,130 खाते इस योजना के तहत खोले गये (जिसे 'गिनीज बुक ऑफ वल्ड रिकार्ड्स' द्वारा विश्व रिकार्ड के रूप में मान्यता दी गयी है) तथा 28 अगस्त, 2015 तक (अर्थात् एक वर्श में) इन खातों की संख्या लगभग 18 करोड़ पर पहुच गयी थी, 15.74 करोड़ 'रुपे' डेबिट कार्ड जारी कर दिये गये थे तथा 1 लाख 26 हजार से अधिक बैंक मित्र नियुक्त किये गये थे।
- नवम्बर, 2014 के प्रारम्भ में केरल इस योजना के तहत पूर्ण कवरेज प्राप्त करने वाला (अर्थात् राज्य में प्रत्येक परिवार कम से कम एक बैंक खाते के साथ) प्रथम राज्य तथा मई, 2015 में पूर्वोत्तर के राज्यों में मेघालय ऐसा करने वाला प्रथम राज्य बना।
- अक्टूबर, 2015 तक इस योजना के तहत खोले गये खातों में जमा राशि 25,000 करोड़ रुपये से अधिक हो गयी है तथा शून्य शेष राशि वाले खाते 40 प्रतिशत से भी कम हैं।
- फरवरी, 2016 के प्रारम्भ में पंजाब नेशनल बैंक (नीएनबी) को प्रधानमंत्री जनधन योजना के सबसे सपल क्रियान्वयन हेतु 'सर्वोत्तम बैंक' पुरस्कार प्राप्त हुआ है।

## डिजिटल इंडिया कार्यक्रम

- 20 अगस्त, 2014 को प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी की अध्यक्षता में सम्पन्न केन्द्रीय मण्त्रिमण्डल की बैठक में भारत को डिजिटल आधार पर सशक्त समाज एवं ाान अर्थव्यवस्था में रूपांतरित करने के वृहद एवं महत्वाकांक्षी कार्यक्रम 'डिजिटल इंडिया (digital India) को स्वीकृति प्रदान की गयी।

- सभी मंत्रालयों और सरकार के हर कोने को स्पर्श करने वाले इस वृहद कार्यक्रम को इलेक्ट्रॉनिक्स एवं सूचना प्रौद्योगिकी विभाग द्वारा परिकल्पित किया गया है।
- 'डिजिटल इंडिया' कार्यक्रम वर्ष 2014-15 से 2017'18 तक चरणबद्ध रूप में क्रियान्वित किया जा रहा है। इस कार्यक्रम की प्रकृति परिवर्तनकारी है तथा यह सुनिश्ि करेगा कि सभी सरकारी सेवाएं नागरिकों तक इलेक्ट्रॉनिक रूप से उपलब्ध हो सकें।
- इस योजना के तहत देश में डिजिटल साक्षरता कोवर्तमान 15 प्रतिशत से बढ़ाकर अगले 3 वर्षों में 50 प्रतिशत तक पहुँचाने का लक्ष्य निर्धारित किया गया है।
- वस्तुत; यद्यपि कि भारत को सॉफ्टवेयर शक्ति के रप में जाना जाता है, तथापि अभी भी यहाँ नागरिकों तक सरकारी सेवाओं की इलेक्ट्रॉनिक माध्यम से उपलब्धता काफी कम है। वर्ष 2006 में स्वीकृत 'राष्ट्रीय ई-गवर्नेस योजना' (NeGP) ने हालांकि मिशन मौड परियोजनाओं (MMPs) और कोर आईसीटी अवसंरचना विकास के माध्यम से इस दिशा में अच्छी प्रगति की है (NeGP) के तहत 8 घटक और 31 MMPs संचालित हैं), परंतु देश में इलेक्ट्रॉनिक्स विनिर्माण औरा ई-शासन के क्षेत्र में प्रभावी प्रगति सुनिश्चित करने हेतु इस कार्यक्रम को और बृहद करते हुए 'डिजिटल इंडिया' में रूपांतरित किया गया है।
- 'डिजिटल इंडिया' कार्यक्रम के तहत दूरसंचार, इलेक्ट्रॉनिक्स और आईटी की जारी परियोजनाओं पर 1 लाख करोड़ रुपये और नई योजनाओं एवं गतिविधियों पर 13 हजार करोड़ रुपये की समग्र लागत आने का आकलन है।
- 'डिजिटल इंडिया' कार्यक्रम के 2019 तक निम्नलिखत सुप्रभाव प्रत्याशित हैं–(अ) 2.5 लाख गावों में ब्रॉडबैंड, सार्वभौमिक फोन कनेक्टिविटी। (ब) वर्ष 2010 तक इलेक्ट्रॉनिक्स का निवल शून्य आयात। (स) सभी विश्वविद्यालयों एवं 2.5 लाख स्कलों में वाई-फाई सुविधा, नागरिकों के लिए सार्वजनिक वाई-फाई हॉटस्पॉटस। (द) डिजिटल समावेशन : आईटी, टेलिकॉम एवं इलेक्ट्रॉनिक्स रोजगारों के लिए 1.7 करोड़ प्रशिक्षित। (य) रोजगार सृजन प्रत्यक्षतः 1.7 करोड़ एवं अप्रत्यक्ष रूप से कम से कम 8.5 करोड़। (र) ई-गवर्नेस एवं ई-सर्विसेज : सरकार में सर्वत्र। (ल) भारत स्वास्थ्य, शिक्षा, बैंकिंग जैसी सेवाओं में आईटी उपयोग में नेतृत्वकर्ता बनेगा। (व) सार्वजनिक क्लाउड, इंटरनेट पहुंच के माध्यम से डिजिटली सशक्त नागरिक।
- डिजिटल इंडिया' कार्यक्रम को विशेष प्रोत्साहन उपलब्ध कराने के उद्देश्य से सरकार द्वारा 1-7 जुलाई, 2015 के दौरान 'डिजिटल इंडिया सप्ताह' (विस्तृत विवरण हेतु देखें–इसी अंक में राष्ट्रीय मुद्दे, 2015-16 अध्याय) का वृहद आयोजन किया गया।

## प. मदन मोहन मालवीय राष्ट्रीय शिक्षक एवं शिक्षण मिशन

- 25 दिसम्बर, 2014 को प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी द्वारा बनारस हिन्दू, विश्वविद्यालय, वाराणसी के स्वतंत्रता भवन में पं. मदन मोहन मालवीय राष्ट्रीय शिक्षक एवं शिक्षण मिशन का शुभारंभ किया गया। ज्ञातव्य है कि 25 दिसम्बर, 2014 को ही पंडित मदन मोहन मालवीय की 154वीं जयंती भी थी।
- इस राष्ट्रीय मिशन को प्रारम्भ किये जाने की घोषणा संघीय बजट 2014-15 में 500 करोड़ रुपये के आवंटन के साथ की गयी थी तथा इस मिशन के लिए 12वीं पंचवर्षीय योजना में कुल 900 करोड़ रुपये का परिव्यय निर्धारित किया गया है।
- यह राष्ट्रीय मिशन शिक्षकों, शिक्षण, शिक्षकों के प्रशिक्षण तथा उनके पेशेवर विकास से सम्बन्धित मुद्दों को व्यापक रूप से लक्षित करेगा। साथ ही इस मिशन के तहत पाठ्यक्रम डिजाइन एवं विकास, शिक्षण शास्त्र (Pedagogy) और प्रभावी शिक्षण शास्त्र का विकास भी होगा।
- मानव संसाधन विकास मंत्रालय इस राष्ट्रीय मिशन का नोडल मंत्रालय है।

## स्वच्छ हिमाचल पढ़ाई भी, सफाई भी, अभियान

- 20 फरवरी, 2016 को हिमाचल प्रदेश क्रिकेट एसोसिएशन द्वारा 'स्वच्छ हिमाचल पढ़ाई भी, सफाई भी' अभियान का शुभारंभ धर्मशाला से किया गया। इस अभियान का उद्देश्य राज्य के शहरी और ग्रामीण क्षेत्रों से बेहतर स्वास्थ्य एवं स्वच्छता

के प्रोत्साहन हेतु युवाओं को 'स्वच्छ कैप्टेन' और शिक्षकों को 'स्वच्छ कोच' के रूप में शामिल करना है। केन्द्र सरकार के स्वच्छ भारत अभियान से जुड़ने वाला यह देश का प्रथम राज्य क्रिकेट एसोसिएशन है।

## अन्य लघु योजनाएँ/कार्यक्रम

- **अंबेडकर सामूहिक प्रोत्साहन योजना :** 3 फरवरी, 2016 को महाराष्ट्र सरकार ने आर्थिक रूप से पिछड़े दलित उद्यमियों के लिए 'बाबा साहेब अंबेडकर सामूहिक प्रोत्साहन' योजना प्रारंभ की।
- **केरल :** 13 जनवरी, 2016 को शत प्रतिशत प्राथमिक शिक्षा का लक्ष्य हासिल करने वाला देश का पहला राज्य केरल बना। इसकी घोषणा उपराष्ट्रपति डॉ. हामिद अंसरी ने की। केरल ने यह लक्ष्य 'अतुल्यम' नामक साक्षरता मिशन के जरिये हासिल किया।
- **तेलंगाना :** 1 जनवरी, 2016 को स्नातक स्तर पर लैंगिक शिक्षा को अनिवार्य करने वाला देश का पहला राज्य 'तेलंगाना' बना। राज्य सरकार की ओर से इसके लिए 'टूवर्ड्स ए वर्ल्डस ऑफ इक्वल्स' नामक पुस्तक जारी की गयी।
- **आहार योजना का विस्तार :** 1 जनवरी, 2016 को ओडिशा सरकार द्वारा लोगों को सस्ता खाना उपलब्ध कराने के लिए शुरू की गयी 'आहार योजना' को राज्य के 29 जिलों में विस्तारित किया गया। इस योजना के तहत खोले गये काउंटर से 5 रुपये में खाना उपलब्ध कराया जा रहा है।

## गिट इट अप एवं गिव बैंक अभियान

- 27 मार्च, 2015 को प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी द्वारा 'ऊर्जा संगम, 2015' के दौरान 'गिव इट अप' अभियान (Give it Up Cammpaign) का शुभारंभ किया गया। इस राष्ट्रव्यापी अभियान का उद्देश्य समाज के बेहतर एवं उच्च श्रेणी वर्ग के लोगों को एलपीजी सब्सिडी स्वतः छोड़ने हेतु प्रेरित करना है। इस अवसर पर प्रधानमंत्री ने देश के समर्थ वर्ग के लोगों के साथ विभिन्न कम्पनियों एवं बैंकों के अधिकारियों से स्वयं एलपीजी सब्सिडी छोड़ने तथा अपने कर्मचारियों को एलपीजी सब्सिडी छोड़ने हेतु प्रोत्साहित करने का आपरेशन किया। इस प्रकार छोड़ी गयी सब्सिडी से बची राशि का उपयोग ऐसे निर्धनों को नये सब्सिडीकृत एलपीजी कनेक्शन उपलब्ध कराने हेतु 'गिव बैंक' अभियान (Give Back Compaign) के तहत किया जाएगा जो खाना पकाने हेतु लकड़ी, किरोसीन, कोयला, उपले या अन्य ईंधन साधनों का प्रयोग करते है। इससे पर्यावरण संरक्षण में भी सहायता मिलेगी क्योंकि एलपीजी पारंपरिक कार्बन ईंधनों के स्थान पर सवच्छ ईंधन है। उल्लेखनीय है कि 'गिव इट अप' अभियान के तहत दिसम्बर, 2015 तक 57.50 लाख एलपीजी उपलभोक्ताओं द्वारा स्वेच्छा से गैस सब्सिडी छोडत्री जा चुकी है।

## किरोसीन सब्सिडी डीबीटी योजना में शामिल

- एलपीजी सब्सिडी हेतु शुरू की गयी प्रत्यक्ष नकद हस्तांतरण योजना 'पहल' के फायदों को देखते हुए केन्द्र सरकार के पेट्रोलियम एवं प्राकृतिक गैस मंत्रालय द्वारा 1 जनवरी, 2016 को मिट्टी के तेल (किरोसीन) पर भी प्रत्यक्ष लाभ हस्तांतरण (डीबीटी) योजना लागू किये जाने का निर्णय लिया गया।
- यह योजना 1 अप्रैल, 2016 से लागू हो जाएगी तथा इसके लागू होने के बाद से सब्सिडी लाभ का इलेक्ट्रॉनिक भुगतान बैंक खातों में होगा।
- अभी 8 राजय अपने 26 जिलों में मिट्टी के तेल पर प्रत्यक्ष लाभ हस्तांतरण योजना लागू करने पर सहमत हुए है। ये राज्य हैं–छत्तीसगढ़ (तीन जिले), हरियाणा (दो जिले), हिमाचल प्रदेश (तीन जिले), झारखण्ड (छह जिले), मध्य प्रदेश (चार जिले), महाराष्ट्र (दो जिले), राजस्थान (तीन जिले) एवं पंजाब (तीन जिले)।
- ध्यातव्य है कि वित्त वर्ष 2014-15 के दौरान जहाँ मिट्टी के तेल के लिए सब्सिडी व्यय लगभग 24,799 करोड़ रुपये था, वहीं वर्ष 2015-16 के लिए राज्यों को 86.85 लाख किलो लीटर सब्सिडी प्राप्त पीडीएस मिट्टी का तेल आवंटित किया गया।

## अन्य लघु योजनाएँ/कार्यक्रम

- **अन्वेषा योजना :** 21 दिसम्बर, 2015 को ओडिशा सरकार ने अनुसूचित जाति और जनजाति को निःशुल्क शिक्षा प्रदान करने के लिए 'अन्वेषा योजना' प्रारम्भ की। इस योजना के तहत अनुसूचित जातियों एवं जनजातियों के 5000 बच्चे शहरी क्षेत्रों के प्रमुख निजी स्कूलों में नामांकित किए जाएंगे।

- **मिजोरम :** 9 मार्च, 2015 को 'बेटी बचाओ, बेटी पढ़ाओ' अभियान का उत्तर-पूर्वी भारत में औपचारिक शुभारम्भ मिजोरम के सैहा (Saiha) जिले से किया गया।
- **हरियाणा :** 27 फरवरी, 2015 को हरियाणा सरकार ने 'अंतर्जातीय विवाह योजना' के तहत मिलने वाली नकद पुरस्कार राशि को 50,000 से बढ़ाकर 1 लाख रुपये कर दिया।
- **एक भारत, श्रेष्ठ भारत :** अक्टूबर, 2015 के अंत में केन्द्र सरकार ने देश में विद्यमान सांस्कृतिक दूरी को कम करने तथा विभिन्न प्रदेशों में रहने वाले लोगों के मध्य संपर्क को बढ़ाने के उद्देश्य से 'एक भारत, श्रेष्ठ भारत' योजना शीघ्र लाने की घोषणा की।

## अन्य लघु योजनाएँ/कार्यक्रम

- **स्वाधार गृह योजना :** 18 अक्टूबर, 2015 को हरियाणा सरकार ने स्वाधार गृह योजना को मंजूरी प्रदान की। इसके माध्यम से 18 वर्ष से अधिक महिलाओं की संस्थागत कार्यक्रम के जरिए मदद की जाएगी। इस योजना के तहत प्रत्येक जिले में तीस महिलाओं की क्षमता वाले स्वाधार गृह स्थापित किये जायेंगे।
- **अन्नपूर्णा भण्डार योजना :** सार्वजनिक-निजी भागीदारी के आधार पर 31 अक्टूबर, 2015 को राजस्थान सरकार द्वारा 'अन्नपूर्णा भण्डार योजना' की शुरुआत की गयी, जिसके तहत उचित मूल्य की दुकानों को 'अन्नपूर्णा भण्डार' नाम दिया गया है। इस योजना के तहत देश में पहली बार सार्वजनिक वितरण प्रणाली (पीडीएस) को सार्वजनिक-निजी भागीदारी (पीपीपी मॉडल) के आधार पर शुरू किया गया है। योजना के तहत उचित मूल्य की दुकानों के माध्यम से प्रतिस्पर्धी दरों पर बहु-ब्रांड उपभोक्ता वस्तुओं को बेचा जाएगा।
- **स्वच्छ भारत उपकर :** 6 नवम्बर, 2015 को केन्द्र सरकार ने स्वच्छ भारत अभियान के लिए फंडिंग इकट्ठा करने हेतु सभी सेवाओं पर 15 नवम्बर, 2015 से 0.5 प्रतिशत स्वच्छता उपकर लगाने का निर्णय लिया। इससे एकत्रित धन को स्वच्छता अभियान पर खर्चा किया जाएगा। उल्लेखनीय है कि 17 दिसम्बर, 2015 को विश्व बैंक ने स्वच्छ भारत मिशन के लिए 1.5 बिलियन डॉलर का ऋण स्वीकृत किया गया है।

## अन्य लघु योजनाएँ/कार्यक्रम

- **मनरेगा के तहत काम के दिनों में वृद्धि :** 9 सितम्बर, 2015 को केन्द्र सरकार ने सूखा प्रभावित क्षेत्रों में मनरेगा के तहत दैनिक कार्य दिवसों में 50 दिन की बढोत्तरी की। इसके पहले मनरेगा के तहत 100 दिन का रोजगार मिलता था। अब सूखा प्रभावित क्षेत्रों में 150 दिन का कार्य मिलेगा।
- **नई मंजिल :** 8 अगस्त, 2015 को केन्द्रीय अल्पसंख्यक मंत्रालय ने अल्पसंख्यक समुदायों की प्रगति और सशक्तिकरण के सम्बन्ध में समग्र दृष्टिकोण एवं अल्पसंख्यकों के कल्याण के लिए 'नई मंजिल' योजना का शुभारम्भ किया। यह योजना अल्पसंख्यकों, विशेषकर मुस्लिमों की शैक्षिक एवं जीविकोपार्जन की जरूरतों में मदद करेगी। यह योजना ड्रॉप आउट छात्रों को भी लक्षित करने के लिए बनाई गई है। उल्लेखनीय है कि अल्पसंख्यक महिलाओं में नेतृत्व विकास के लिए 'नई रोशनी' नामक योजना भी वर्ष 2013 से चलाई जा रही है।

## सन्दर्भ-सूची

1. भारतीय आर्थिक सर्वे, योजना, कुरुक्षेत्र, हिन्दुस्तान, दैनिक जागरण, द हिन्दू।

***

**Political Science**
Shodh Sandarsh-V, Vol.-XVI, Sept.-2017, Page : 145-148
ISSN No. - 2319–5908 (U.G.C. Approved Journal No. : 41329)

# भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन का उदय और उसके कारण

*डॉ. प्रवीणा सिंह**

15 अगस्त, 1947 को विदेशी शासन की गुलामी से भारत की मुक्ति तथा एक स्वतंत्र सम्प्रभु राष्ट्र के रूप में इसके अवतरित होने की ऐतिहासिक घटना की पृष्ठभूमि में एक दीर्घ, कठिन एवं जुझारू संग्राम की गाथा है। एक संघर्ष अनेक चरणों में सम्पन्न हुआ। भारत में राष्ट्रवाद का उदय ब्रिटिश शासन के दौरान हुआ। राष्ट्रवाद, राष्ट्रीयता की भावना का वह रूप है, जिसमें राष्ट्रप्रेम की अभिव्यक्ति होती है। राष्ट्रवाद जाति, भाषा, धर्म, संस्कृति, आर्थिक एवं राजनीतिक विचारों के समूह को कहते हैं।

16वीं सदी में भारत अपनी समृद्धि और गौरव के उच्च शिखर पर था और भारत की इस समृद्धि से प्रभावित होकर यूरोप के विभिन्न देश भारत के साथ व्यापार करने के लिए उत्सुक थे। लन्दन के कुछ व्यापारियों ने भारत तथा पूर्वी देशों के साथ व्यापार करने के लिए 'ईस्ट इण्डिया कम्पनी' की स्थापना की और 31 दिसम्बर, 1600 ई. को ब्रिटिश महारानी एलिजाबेथ ने अंग्रेज व्यापारियों की इस कम्पनी को भारत के साथ व्यापार करने का एकाधिकार प्रदान किया। ईस्ट इण्डिया कम्पनी के द्वारा बहुत तेजी के साथ प्रगति की गई और व्यापारिक प्रतियोगिता मे पुर्तगाली, डच तथा फ्रेंच व्यापारिक कम्पनियों को पराजित कर भारत के व्यापार पर अपना प्रभुत्व स्थापित कर लिया गया।

व्यापारिक कम्पनी के रूप में अपनी आर्थिक स्थिति सुदृढ़ कर लेने के बाद 1750 ई. से कम्पनी ने भारत में शक्ति राजनीति का खेल प्रारम्भ किया। भारत की विशेष परिस्थितियों के कारण ईस्ट इण्डिया कम्पनी को अपने इस कार्य में सफलता भी मिली और 1850 तक भारत के बहुत बड़े भाग पर कम्पनी का शासन स्थापित हो गया। परन्तु कम्पनी के शासन के लगभग 100 वर्षों में राजनीतिक, धार्मिक, आर्थिक, सामाजिक ओर सैनिक क्षेत्र में अनेक ऐसी प्रवृत्तियों का उदय हुआ, जिन्होंने भारतीय जनता को कम्पनी के शासन का प्रबल विरोधी बना दिया। परिणामस्वरूप 1857 का स्वतंत्रता संग्राम हुआ। जिससे ब्रिटिश शासन का ध्यान भारत में ईस्ट इण्डिया कम्पनी के शासन की बुराइयों की ओर गया। अतः नवम्बर 1858 में ब्रिटिश सम्राट ने भारत में कम्पनी के शासन का अन्त कर भारतीय शासन अपने हाथ में ले लिया, लेकिन सत्ता हस्तान्तरण से भारतीय जनता के कष्टों और उनकी विदेशी शासन विरोधी भावनाओं में कोई कमी नहीं हुई और इन्हीं भावनाओं ने कालान्तर में भारत में राष्ट्रीय आन्दोलन को जन्म दिया। भारत में राष्ट्रवाद के आधार भूत कारण निम्नलिखित थे—

1. 1857 के विद्रोह की पृष्ठभूमि, 2. सामाजिक एवं धार्मिक सुधार आन्दोलन, 3. विदेशी दासता का प्रभाव, 4. अंग्रेजों द्वारा भारत का आर्थिक शोषण, 5. राजनीतिक एवं प्रशासनिक एकीकरण, 6. पाश्चात्य विचारों एवं शिक्षा का प्रभाव, 7. जातीय भेद, 8. भारतीय समाचार पत्र एवं साहित्य, 9. आवागमन एवं संचार के साधन, 10. इतिहास के शोध का प्रभाव, 11. समकालीन यूरोपीय आन्दोलन का प्रभाव, 12. नवीन वर्गों को उदय, 13. तात्कालिक कारण–(i) लार्ड लिटन के प्रतिक्रियावादी कार्य, (ii) इल्बर्ट बिल विवाद।

1857 का विद्रोह जिसे भारतीय इतिहासकार प्रथम स्वतंत्रता संग्राम तथा अंग्रेज इतिहासकार सैनिक विद्रोह मानते हैं, को अंग्रेजों द्वारा निर्दयता से कुचल दिया गया। इस विद्रोह की समाप्ति पर ईस्ट इण्डिया कम्पनी के शासन के स्थान पर भारत में सम्राट (क्राउन) की राजनीतिक सत्ता की स्थापना हुई। असफलता के बावजूद इस विद्रोह ने भावी राष्ट्रीय आन्दोलन का आधार तय कर दिया था। झांसी की रानी लक्ष्मीबाई, नाना साहब, तात्यां टोपे के चरित्र प्रेरणा के स्रोत बन गए। स्वतंत्रता प्राप्ति के

* *असिस्टेण्ट प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान विभाग, कौशाम्बी डिग्री कालेज, कौशाम्बी*

इस महान आन्दोलन को दबाने के लिए अंग्रेजों द्वारा किए गए अत्याचारों से विदेशी शासकों का चरित्र उजागर हुआ एवं राष्ट्रवाद के उदय के लिए प्रेरणा प्राप्त हुई। सर चार्ल्स डिस्के ने अपनी पुस्तक 'ग्रेटर इण्डिया' में लिखा है कि 'अंग्रेजों ने अपने कैदियों की बिना न्यायिक कार्यवाही के और ऐसे ढंग से हत्या कर दी, जो सभी भारतीयों की दृष्टि में पाशविकता की चरम सीमा थी। .............दमन के दौरान गांव जला दिए। निर्दोष ग्रामीणों का कत्लेआम किया गया कि मोहम्मद तुगलक भी शरमा जायेगा।''

19वीं शताब्दी के विभिन्न सामाजिक तथा धार्मिक सुधार आन्दोलनों ने राष्ट्रीय भावनाओं को जागृत किया। इस सुधार आन्दोलनों ने भारतीय जनमानस में व्याप्त अन्ध विश्वासों को दूर कर चेतना का संचार किया। डॉ0 जकारिया ने रिनेसेण्ट इण्डिया में लिखा है कि ''भारत की पुनर्जागृति मुख्यतया आध्यात्मिक थी तथा एक राष्ट्रीय आन्दोलन का रूप धारण करने के पूर्व इसने अनेक सामाजिक एवं धार्मिक आन्दोलनों का सूत्रपात किया।'' जब भारत में सामाजिक एवं धार्मिक दृष्टि से अन्धकार छाया हुआ था, तब राजा राम मोहन राय, देवेन्द्र नाथ टैगोर, केशवचन्द्र सेन, स्वामी दयानन्द सरस्वती, रामकृष्ण परमहंस तथा स्वामी विवेकानन्द जैसे समाज सुधारकों ने भारतीयों में आत्म-विश्वास पैदा किया और उन्हें नया जीवन दिया। राजा राम मोहन राय ने भारत में धर्म और समाज सुधार कार्य को प्रोत्साहित करने के लिए अगस्त 1828 ई0 में ब्रह्म समाज एवं स्वामी दयानन्द सरस्वती ने 1875 में आर्य समाज की स्थापना की थी। स्वामी दयानन्द ने सत्यार्थ प्रकाश में लिखा है कि विदेशी राज्य से चाहे वह कितना ही अच्छा क्यों न हो, स्वेदशी राज्य, चाहे उसमें कितना ही बुराइयां हो, अच्छा होता है।'' रामकृष्ण परमहंस तथा स्वामी विवेकानन्द न भारतीय संस्कृति की श्रेष्ठता से सारी दुनिया को अवगत कराया। 1893 में शिकागो धर्म सम्मेलन में विवेकानन्द ने कहा था ''भारत की मिट्टी मेरे लिए सर्वोच्च स्वर्ग है।'' इसके साथ ही थियोसोफिकल सोसाइटी, दक्षिण शिक्षा समाज, प्रार्थना समाज एवं सर्वेण्ट ऑफ इण्डिया सोसायटी जैसी संस्थाओं ने राष्ट्रवाद की भावना में प्राण फूंके। श्री ए.आर. देसाई ने लिखा है कि, ''सामाजिक एवं धार्मिक सुधार आन्दोलन केवल सुधार तक सीमित नहीं थे, इनका परम लक्ष्य राष्ट्रवाद था। देश के विभिन्न भागों में प्रारम्भ हुए इन आन्दोलनों ने देश को एक सूत्र में बांधकर व्यापक जागृति की भावना उत्पन्न की, जो अन्ततः राष्ट्रवाद तथा राष्ट्रीय आन्दोलन के रूप में अभिव्यक्त हुई।'' इसके साथ ही मुस्लिम सुधारवादी आन्दोलनों जैसे बहावी, अलीगढ़ एवं अहमदिया आन्दोलनों ने मुस्लिम जनता में जागरण तथा चेतना लाने की दिशा में विशेष भूमिका अदा की।

विदेशी दासता के कारण भी भारतीयों में राष्ट्रवाद की भावना, जागृत हुई। विदेशियों का राजनीति एकाधिकार, भेदभाव पूर्ण आर्थिक नीति, उच्च पदों पर अंग्रेजों की नियुक्ति के कारण भारतीयों को अपने ही देश में न्यायोचित अधिकारों से वांचित रहना पड़ रहा था। विदेशी राज के दौरान पढ़े-लिखे भारतीयों को यह अनुभव होने लगा कि विदेशी शासन ही भारत के सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक विकास में बाधक हैं।

भारत में राष्ट्रवाद के उदय का कारण विदेशी शासन द्वारा उत्पीड़न तथा भारत की अर्थव्यवस्था को नष्ट करना था। प्रारम्भ में ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने तथा बाद में अंग्रेजी सरकार द्वारा अपनी राजसत्ता का प्रयोग कर भारत के प्राचीन हस्तशिल्प तथा उद्योग धन्धों को नष्ट कर दिया गया। भारत में ब्रिटिश सरकार की आर्थिक नीति का उद्देश्य एक ओर भारत से सस्ती दरों पर कच्चा माल प्राप्त करना तथा दूसरी ओर तैयार माल की खपत के लिए भारत का मूल्यांकन मंडी बनाना था। भारत में सूती, रेशमी, ऊनी कपड़े, लोहे, चमड़े एवं चीनी उद्योग को नष्ट किया जा रहा था। इस आर्थिक शोषण का ही परिणाम था कि जिस भारत को 17वीं सदी तक सोने की चिड़िया कहा जाता था, उसी भारत के सम्बन्ध में 1900 ई0 में सर विलियम डिग्वी ने लिखा है कि ''भारत के लगभग 10 करोड़ ऐसे निवासी हैं जिन्हें किसी भी दिन भरपेट भोजन नहीं मिलता है। इस अधःपतन का दूसरा उदाहरण इस समय किसी उन्नतशील देश में कहीं दिखाई नहीं देता है।'' इस आर्थिक शोषण के राजनीतिक परिणाम उत्पन्न होने स्वाभाविक थे। 19वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में भारत के विविध भागों में बीस से अधिक अकालों में लाखों व्यक्तियों की मृत्यु के दौरान सरकार की निर्दयता एवं उपेक्षापूर्ण नीति से विदेशी भारत के प्रति आक्रोश उपजा।

ब्रिटिश शासन के पूर्व भारत भौगोलिक रूप से एक देश होते हुए भी अनेक छोटे राज्यों एवं रियासतों में विभक्त था। भारत के विशाल भूखण्ड में राजनीतिक एवं प्रशासनिक एकता का अभाव था। अंग्रेजों ने अपने साम्राज्यवादी हितों के लिए राजनीतिक एवं प्रशासनिक एकता कायम की। उनके द्वारा एक नया केन्द्रीय राजतंत्र सारे देश में स्थापित किया गया। नवीन मुद्रा व्यवस्था का प्रचलन हुआ। यद्यपि अंग्रेजों ने साम्राज्य की जड़े मजबूत करने के लिए ही अखिल भारतीय प्रशासनिक ढांचे की स्थापना की थी, किन्तु इस राजनीतिक एकता ने भारतीयों में राजनीतिक चेतना जागृत कर विदेशी शासन के विरूद्ध एकजुट किया। जवाहर लाल नेहरू के अनुसार – ''ब्रिटिश शासन द्वारा स्थापित भारत की राजनीतिक एकता सामान्य अधीनता की एकता थी, लेकिन उसने सामान्य राष्ट्रीयता की एकता को जन्म दिया।''

रजनी पामदत्त के अनुसार भारत में ब्रिटिश शासन द्वारा पाश्चात्य शिक्षा प्रारम्भ किये जाने का उद्देश्य यह था कि भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति का पूर्णतः लोप हो जाये और एक ऐसे वर्ग का निर्माण हो जो रक्त और वर्ण से तो भारतीय हो किन्तु रूचि, विचार, शब्द, बुद्धि से अंग्रेज हो जाये।'' परन्तु यह अंग्रेजों के लिए दुर्भाग्य सिद्ध हुआ। 1833 में अंग्रेजी को शिक्षा का माध्यम बनाया गया। जिससे भारतीयों ने स्वतन्त्रता, समानता एवं भ्रातृत्व जैसी संकल्पनाओं को समझा। पाश्चात्य शिक्षा के कारण भारतीय लोग सर्वोत्तम अंग्रेज विचारकों के सम्पर्क में आयें। उन्हें मिल बर्क, मिल्टन, मैकाले, रूसो, वाल्टेयर और हरबर्ट स्पेंसर आदि विचारकों की रचनाओं का ज्ञान हुआ। जिससे भारतीयों का दृष्टिकोण व्यापक हुआ और उनमें राष्ट्रवाद की भावना जागृत हुई।

जातीय/नस्लीय भेद की भावना ने भारतीयों को राष्ट्रीय रूप से एक होने के लिए प्रेरित किया। जातिगत भेद के आधार पर अंग्रेजों की भारतीयों से घृणा कर प्रतिक्रिया से भारतीयों में राष्ट्रवादी भावनाओं का उदय हुआ। 1857 के विद्रोह के बाद ब्रिटिश शासन ने जाति विभेद की जो नीति अपनाई उसके परिणामस्वरूप भारतीयों में असंतोष उत्पन्न हो गया। अंग्रेज भारतीयों को आधे वनमानुष और आधे जंगली कहने लगे। जाति के आधार पर अपमानित भारतीयों में विदेशी हुकूमत के विरूद्ध आक्रोश था। गैरेट के अनुसार, ''भारतीय राष्ट्रीयता की बढ़ोत्तरी में जातीय कटुता की भावना एक बहुत बड़ा कारण थी।''

मुनरो ने लिखा है कि ''एक स्वतन्त्र प्रेस और विदेशी राज एक-दूसरे के विरूद्ध है और ये दोनों एक साथ नहीं चल सकते।'' भारतीय समाचार-पत्रों पर भी यह बात पूरी उतरती है। पाश्चात्य शिक्षा के प्रभाव से देश में प्रेस का विकास हुआ। भारतीय समाचार-पत्रों एवं राष्ट्रवादी साहित्य ने भी राष्ट्रीय आन्दोलन में उत्प्रेरक का काम किया। अमृत बाजार पत्रिका, इण्डियन मिरर, द हिन्दू पैट्रियाट, केसरी, मराठा, दि ट्रिब्यून, दि बंगाल, दि इण्डियन हैराल्ड, बाम्बे समाचार जैसे समाचार-पत्रों में अंग्रेजों के कुशासन को उजागर करने के साथ-साथ राष्ट्रीय आन्दोलन में नए रक्त का संचार किया। बंकिम चन्द्र चटर्जी की रचनाओं 'आनन्द मठ' तथा 'वन्दे मातरम्' ने सम्पूर्ण जनमानस को उद्वेलित किया और राष्ट्रीय जागरण की भावना को जगाया।

अंग्रेजों ने भारत में रेल, डाक, तार आदि का विकास अपने प्रशासन एवं व्यापारिक हितों के लिए किया था। इन साधनों के माध्यम से ब्रिटिश शासन का प्रशासनिक एवं सैनिक नियन्त्रण मजबूत होता गया किन्तु इसके साथ ही इन साधनों द्वारा सम्पूर्ण देश के विविध क्षेत्रों के भारतीयों को आपस में मेल-जोल के साथ ही अंग्रेजों के खिलाफ रणनीति बनाने का अवसर मिला। **गुरुमुख निहाल सिंह** : आवागमन के साधनों ने विशाल देश को एकता में बांध दिया और भौगोलिक बांधाएं समाप्त हो गई। विशाल भारतीय जनता में राष्ट्रीय एकता और चेतना उत्पन्न हुई।

अनेक विदेशी विद्वानों जैसे – सर बिलियम जोन्स, ए0वी0कीथ, जैकोवी, रोथ, मैक्समूलर आदि विद्वानों ने प्राचीन भारत के इतिहास का शोध कर भारत की समृद्ध सांस्कृतिक परम्परा का गुणगान किया। कनिंघम जैसे पुरातत्वविदों की खुदाइयों तथा यूरोपीय विद्वानों ने इस सिद्धान्त को प्रस्तुत किया कि भारत की प्राचीन सभ्यता भी रोम एवं प्राचीन यूनानी सभ्यता के समान महान थी। इन का भाव जागृत हुआ तथा राष्ट्रीयता की भावना जागृत हुई।

तात्कालिक यूरोप एवं दक्षिण अमेरिका के राष्ट्रवादी आन्दोलनों ने भी भारतीय राष्ट्रवाद को स्फूर्ति प्रदान की। आयरलैण्ड, यूनान तथा इटली के स्वतंत्रता संग्राम ने भारतीयों को संगठित होने के लिए प्रेरित किया। ए0सी0 मजूमदार के अनुसार –''भारतीय सीमा के बाहर घटित इन घटनाओं ने भारतीय राष्ट्रवाद की धारा को स्वाभाविक रूप से प्रभावित किया।''

ब्रिटिश राज के द्वारा आर्थिक एवं प्रशासनिक क्षेत्र में अपनायी गई प्रक्रिया से भारत में नवीन वर्गों का उदय हुआ। ग्रामीण क्षेत्रों में – जमींदार, काश्तकार, खेतीहर मजदूर एवं सूदखोर पैदा हुए वहीं शहरी क्षेत्रों में पूँजीपति, कारखानों में काम करने वाले मजदूर, कारीगर, डाक्टर, वकील अध्यापक जैसे अभिजातीय लोगों का मध्यम वर्ग उदित हुआ। यह मध्यम वर्ग आधुनिक भारत की आत्मा बन गया, जिसने भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन को नेतृत्व प्रदान किया।

19वीं सदी से अनेक भारतीय शिक्षा प्राप्त करने तथा अन्य कार्यों से विदेश जाने लगे। उन्होंने वहाँ प्रजातांत्रिक सिद्धान्तों और स्वतंत्रता, समानता और भ्रातृत्व का पाठ पढ़ा। इन प्रजातांत्रिक सिद्धान्तों से प्रभावित होकर इसे भारत में भी लागू करना चाहते थे।

लार्ड लिट्न की दमनकारी नीतियों ने राष्ट्रीय आन्दोलन को प्रगति प्रदान की। गवर्नर जनरल के रूप में (1876-1880 तक) लिट्न की साम्राज्यवादी नीतियों में अनेक दमनात्मक नीतियां शामिल थी। जैसे–भारतीय सिविल सेवा में भाग लेने की आयु की अधिकतम सीमा 21 वर्ष से घटाकर 19 वर्ष करना, जिसका उद्देश्य भारतीयों को प्रशासनिक सेवाओं से वंचित करना था।

सेना का अत्यधिक व्यय तथा भारतीय शस्त्र अधिनियम एवं भारतीय समाचार पत्रों के दमन के लिए 1878 का वर्नाक्यूलर प्रेस एक्ट पास करना। 1877 में दक्षिण भारत में भयंकर अकाल के दौरान महारानी विक्टोरिया की प्रतिष्ठा में दिल्ली में लिटन द्वारा दिल्ली दरबार में की गई फिजूलखर्ची पर भारतीयों ने टिप्पणी की कि, ''जब रोम जल रहा था तो नीरो बॉसुरी बजा रहा था।''

भारतीयों के प्रति अंग्रेजों का भेदभावपूर्ण रवैया इल्बर्ट बिल पर वाद-विवाद से उजागर हुआ। 1883 में लार्ड रिपन के शासन काल के दौरान मि0 इल्बर्ट ने विधायिका में एक विधेयक रखा जिसका उद्देश्य भारतीय जजों को अंग्रेजों के विरूद्ध मुकदमें सुनने का अधिकार देना था। इसका अंग्रेजों ने तीव्र विरोध किया। अतः विधेयक वापस लेना पड़ा, जिसे भारतीयों ने अपना अपमान समझा।

**निष्कर्ष :** उक्त कारणों से भारत में राष्ट्रवाद का उदय हुआ। अखिल भारतीय कांग्रेस की स्थापना के पूर्व अनेक संस्थाएं कार्य कर रही थीं। जिनका क्षेत्र सीमित था। इन संस्थाओं में बंगाल-ब्रिटिश इण्डियन सोसायटी (1848), ब्रिटिश इण्डिया एसोसिएशन (1851), बाम्बे एसोसिएशन (1852), पूना सार्वजनिक सभा (1867), और महाजन सभा (1881) संस्थाएं थीं। 1876 में इण्डियन एसोसिएशन ने राजनीतिक स्तर पर जागरूकता का कार्य किया। अन्ततः अखिल भारतीय स्तर पर राष्ट्रवाद को तीव्र करने हेतु 1885 में ए0ओ0 ह्यूम के द्वारा भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना की गयी जिसने भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन में एक नये युग की शुरूआत की। अतः निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि भारत में राष्ट्रवाद को बढ़ावा देने में अनेक कारकों का सम्मिलित योगदान था।

## सन्दर्भ ग्रन्थ


1. डॉ0 जे. सी. जौहरी, राष्ट्रीय आन्दोलन एवं भारत का संविधान, एस बी पी डी पब्लिकेशन्स, आगरा।
2. डा0 रूपा मंगलानी, भारतीय शासन एवं राजनीति, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर।
3. डॉ. एस. एन. जैन, भारतीय संविधान, शासन और राजनीति
4. ए.आर. देसाई, रीसेन्ट ट्रेन्ड्स इन इण्डियन नेशनलिज्म, पापुलर प्रकाशन, बम्बई।
5. Alaknanda Shringare, Party Politics And Democratic Governance In India.
6. बी. एल. ग्रोवर एवं यशपाल, आधुनिक भारत का इतिहास, एस0 चन्द एण्ड कम्पनी लि0 नई दिल्ली।
7. डॉ. ए. के. मित्तल, भारत का इतिहास (1707ई. – 1947ई.) साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा।
8. सुमित सरकार, आधुनिक भारत, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।
9. डॉ. सुभाष कश्यप, भारत का सांविधानिक विकास और संविधान, हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली।


***

Sociology
Shodh Sandarsh-V, Vol.-XVI, Sept.-2017, Page : 149-151
ISSN No. - 2319–5908 (U.G.C. Approved Journal No. : 41329)

# भारतीय समाज में विधवाओं के युग-युगीन जीवन का अनुशीलन

*डॉ. नीतू सिंह**

भारत एक ऐसा देश है, जहाँ अनगिनत सम्प्रदाय हैं, उनके अनुयायी अपने उन्हीं सम्प्रदायों को अपनी धरोहर समझ कर विपक्षी सम्प्रदाय की निन्दा और तिरस्कार करने में ही अपना अमूल्य जीवन व्यतीत करते हैं। विधवा भी समाज की एक पंगु पहलू है, जिसका तिरस्कार एवं अपमान भारतीय समाज की एक परम्परा है। हमारे समाज में विधवा एक बेकार चीज समझी जाती है, अधिकांश व्यक्ति उन्हें बेकार ही नहीं, बल्कि समाज के लिए हानिकारक भी समझते हैं। विधवा जीवन हिन्दू समाज में विशेष यातनापूर्ण है। पति की मृत्यु के पश्चात् उसे सदा के लिए वियोग की पीड़ा सहन करनी पड़ती है।[1]

विधवा का अर्थ वि + धूंङ + अ + वा अर्थात् , जो अइहिक गृहस्थ धर्म शिक्षा दान के द्वारा काम परतंत्रता या विलास रहित अबला की पारतंत्रिक पाप तक को (धूङ कम्पने) यानि कम्पन्न को ध्वंस करता है।[2] ऋग्वेद में विधवा शब्द का प्रयोग उसके रचनाकाल से ही चला आ रहा है। यह शब्द ऋग्वेद में तीन बार प्रयुक्त हुआ है।[3] ऋग्वेद काल में विधवाओं की दशा दयनीय नहीं थी। वैदिक साहित्य में विधवा धर्म आदि के विषय में विशेष सामग्री नहीं मिलती। एक ऋग्वेदीय ऋचा में अविधवा नारियों की चर्चा है।[4] जिससे यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि विधवा नारियों का भी अस्तित्व था। ऐसी नारियाँ जो विधवा बनने के बाद फिर विवाह नहीं करती थीं, उनके भावी जीवन की दो सम्भावनायें पुनर्विवाह एवं नियोग थी। वेद में स्पष्ट है कि स्त्रियों और विधवाओं को अपने पति की सम्पत्ति में अधिकार नहीं था।

## विभिन्न कालों में विधवा की स्थिति

**वैदिक काल में विधवा नारी**—वैदिक काल में विधवाओं के लिए नियोग की प्रथा का प्रचलन था। मृत पति के भाई के साथ विवाह सम्पन्न करने एवं संस्कृति की परम्परा थी। समाज में प्रचलित नियोग प्रथा के अनुसार विधवा स्त्री पुत्र प्राप्ति के निमित्त अपने देवर के साथ पत्नी के रूप में रह सकती थी। पुत्र प्राप्ति के लिए नियोग तथा अन्य पुरुष के अस्थायी सम्बन्ध के अतिरिक्त ऋग्वेद के स्थायी विधवा विवाह के स्पष्ट उदाहरण नहीं मिलते। वैदिक काल में सती प्रथा का प्रचलन नहीं था, विधवा अपने पति के शव के साथ कुछ क्षणों तक लेटती थी, परन्तु पुनः उसको उठने के लिए कहा जाता था। अतः स्पष्ट है कि विधवा का सती होना समाज में मान्य नहीं था।

**उत्तर वैदिक काल में विधवा नारी**—उत्तर वैदिक काल में भी विधवायें तिरस्कृत एवं उपेक्षित नहीं थीं। सती प्रथा के प्रचलन के चिन्ह इस युग में भी नहीं मिलते हैं। इस युग में भी विधवाओं को नियोग द्वारा पुत्र प्राप्त करने की परम्परा उचित मानी जाती थी। तैत्तिरीय आरण्यक में विधवा स्त्री का अपने पति के हाथों से उसकी धनुष आदि प्रिय वस्तुओं को लेकर गृह प्रत्यागमन करने तथा उसके आगामी जीवन में सुख समृद्धि की कामना का उल्लेख है।[5] पूर्व वैदिक काल एवं उत्तर वैदिक साहित्य के प्रस्तुत प्रसंग इस बात का संकेत करते हैं कि वैदिक युग की पत्नी अपने पति के शव के पार्श्व में लेटती थी। तत्पश्चात् उसे तुरन्त जीवलोक में लौट आने का संदेश दिया जाता था।[6] अथर्ववेद में एक स्थान पर पंयोदन क्रिया के द्वारा पत्नी और उसके द्वितीय पति में अपार्थत्य और अभिन्नता उत्पन्न करने की योजना है।[7] तैत्तिरीय संहिता में वेधिषण्य अथवा विधवा के पुत्र का उल्लेख भी इसी मत की पुष्टि करता है।[8] बौधायन सूत्र विधवा को पुनर्विवाह की आज्ञा देते हैं।[9] सत्रकारों ने सती प्रथा को स्वीकार नहीं किया है। सूत्र साहित्य जन्म से लेकर मरण तक मनुष्य के बहुसंख्यक संस्कारों का उल्लेख करता है। आपस्तम्ब गृहसूत्र में उल्लेख है कि मृतक पति के दाह संस्कार के पश्चात् विधवा स्त्री के देवर मृतक पति या शिष्य अथवा कोई विश्वस्त

* *असिस्टेण्ट प्रोफेसर, समाजशास्त्र विभाग, सल्तनत बहादुर पी.जी. कालेज, बदलापुर, जौनपुर*

व्यक्ति श्मशान से उसे घर ले आता है। इस विधान से भी विधवा के घर वापस आने और सती न होने की बात प्रकट होती है।[10]

**रामायण काल–**रामायण काल में वैधव्य नारी के ऊपर आने वाली सबसे बड़ी विपत्ति मानी गयी है। परन्तु पति का मरना स्त्री के जीवन का अन्त नहीं माना जाता था। दशरथ का कैकेयी को यह कहना कि तुम विधवा होकर शासन करो, यही प्रमाणित करता है कि रामायण काल में सती प्रथा को मान्यता नहीं मिली थी।

रामायण युग में आर्य विधवाओं में पुनर्विवाह की प्रथा साधारणतः नहीं थी, उनका वैवाहिक सम्बन्ध बहुत ही पुनीत एवं अटूट माना जाता था। पति की मृत्यु के बाद भी उस सम्बन्ध को वे सुरक्षित रखने की भावना रखती थी। दशरथ की विधवा रानियों ने महल में रहकर सुख का जीवन व्यतीत किया, उन्हें पुत्रों एवं बहुओं से सेवा सम्मान और आदर प्राप्त था। इसका कोई प्रमाण नहीं मिलता है कि धार्मिक या शुभ अवसरों पर विधवाओं की उपस्थिति अमंगलिक मानी जाती रही हो।

**महाभारत काल में विधवा नारी–**महाभारत में अनिबन्ध आचरण किसी के लिए भी चाहे वह स्त्री हो या पुरुष शिष्ट सम्मत नहीं था। महाभारत के मौसम पर्व में यह कहा गया है कि, ''कौन सी पतिव्रता स्त्री विधवा होने पर भी जीवित रहने की इच्छा कर सकती है। वैधव्य पूर्ण जीवन को पाप का फल माना गया है।''[1] आदि पर्व में यह व्याख्या की गयी है कि विधवा सर्वकल्याण वर्जिता मानी जाने लगी। अनुशासन पर्व में विधवा से लेन-देन का व्यवहार करना अनुचित माना जाता था, किन्तु कुटुम्ब में विधवा का आदर होता था।[12] वह पर्दे में नहीं रहती थी। विवाहोत्सव में उसका आदर सत्कार होता था, समारोहों एवं उत्सवों में उपस्थित रहती थी एवं ऋषियों का आतिथ्य करती थीं, उन्हें भोज दे सकती थी। उनका ऋषियों से परिचय भी कराया जाता था। वे उसका अभिनन्दन करती थी। उनकी परिक्रमा करती थी। विधवा का जीवन नीरस अवश्य था, किन्तु समाज में कहीं भी उनका अनादर नहीं होता था।

पूर्व काल की अपेक्षा महाभारत युग में विधवा रूप में नारी के आदर्श विकसित रूप में उपलब्ध होते हैं। विधवा जीवन कष्टमय अवश्य था, किन्तु समाज में उनके अनादर का एक भी प्रमाण प्राप्त नहीं होता है।

**स्मृति काल में विधवा नारी–**स्मृति काल आते-आते विधवाओं के पुनर्विवाह का विरोध और बढ़ता दिखायी देता है। इस युग में विधवाओं की आदर्श दिनचर्या का विवारण भी उपलब्ध होता है। आपस्तम्ब के अनुसार यदि एक बार भी पूर्व विवाहित स्त्री के साथ कोई पुरुष रहता है तो दोनों पाप के भागी होते हैं।[13] अतः स्पष्ट है कि उस समय विधवा विवाह का प्रचलन अवश्य हो गया था, परन्तु वह प्रशस्त नहीं माना जाता था। इसके समर्थन का प्रमाण विष्णुस्मृति[14] से भी प्राप्त होता है।

पुनर्विवाह से पूर्व एक अवधि तक विधवा को कठोर जीवन व्यतीत करना होता था। ऐसा निर्देश था कि मृत पति की विधवा 6 महीने तक जमीन पर सोते हुए धार्मिक कृत्य करती रहे, जिसके उपरान्त उसका पिता उसके मृत पति के सन्तान के लिए नियुक्त करेगा। लेकिन मनु एवं याज्ञवल्क्य ने कहा है कि तपस्या का जीवन ही विधवाओं का जीवन है। आपस्तम्ब एवं बौधायन ने भी पुनर्विवाह का विरोध किया है और कहा है कि यह उन प्रथाओं में से एक है, जो हमारे युग में निन्दनीय मानी गयी है। अतः स्त्रियों की प्रशंसा करते हुए पुनर्विवाह न करना ही इस काल में विधवाओं का सबसे बड़ा गुण बताया गया है। इस काल के स्मृतिकारों ने अधिकतर विधवा आदर्श पर ही जोर दिया है।

**आधुनिक समाज में विधवाओं की स्थिति–**20वीं सदी के प्रारम्भ में विधवायें सम्पूर्णतया पति के भाई या रिश्तेदारों पर निर्भर करती हैं। कुछ दशकों से संयुक्त परिवार व्यवस्था प्रायः समाप्त होती जा रही है। नगरीय परिवेश में स्थान का अभाव, बच्चों के परिवर्तित जीवन मूल्य एवं पाश्चात्य सम्पत्य के प्रभाव ने हमारे सामाजिक मूल्यों को परिवर्तित करने में सहयोगी भूमिका निभाया है। आधुनिक परिप्रेक्ष्य में भाई या देवर विधवा की रक्षा करने की बाध्यता महसूस करते हैं, अतः विधवा को विविध प्रकार के जीवन आवश्यकताओं से स्वयं ही जूझना पड़ता है।

आज भी विधवा होने का तात्पर्य है दरिद्रिता, अभाव और मानसिक उत्पीड़न है, जिससे बचने का कोई मार्ग नहीं है। विधवा होने के बाद हिन्दुस्तानी औरत के पास केवल दो ही विकल्प बचते हैं, या तो वह समाज की जूठन बन किसी विधवा आश्रम की शरण में जाकर शोषण व्यवस्था की एक मूकदर्शक हो जाए और मौत का इन्तजार करे या फिर किसी रिश्तेदारों के तानों एवं अत्याचारों को झेलती रहे। दकियानूसी धार्मिक मान्यताओं और रीति-रिवाजों के जरिये विधवा को एक अस्तित्वहीन स्थिति में डाल दिया जाता है, न केवल उसकी आजादी ही छिनी जाती है, बल्कि जायदाद सम्बन्धी अपने अधिकारों के लिए लड़ सकने को उसकी मानसिकता को भी कुन्द कर दिया जाता है।

संक्षेप में कहा जा सकता है कि भारतीय सामाजिक परिवेश में प्राचीन काल से वर्तमान समय तक विधवा नारियों की प्रस्थिति में परिवर्तन दृष्टिगोचर हो रहा है। वैदिक काल में विधवाओं को कठोर बन्धन में नहीं रखा जाता था, उसको पुनर्विवाह करने का अधिकार था, वह सामाजिक एवं मांगलिक सभाओं में सहभागी होती थीं, परन्तु धीरे-धीरे उनकी स्थिति दयनीय होती गयी। स्मृति काल में विधवाओं के ऊपर अनेक बन्धन एवं निषेध लागू किये गये। विधवाओं को अमंगलसूचक माना जाने लगा, उन्हें सदा के लिए शृंगार विहीन जीवन यापन का आदेश दिया गया, परन्तु वर्तमान समय के बदलते हुए परिवेश में विधवाओं के परम्परागत मूल्यों, मान्यताओं निषेधों के प्रति विरोध का भाव परिलक्षित हो रहा है। इसके साथ ही नारियों की स्थिति को सुधारने के लिए अनेक सामाजिक विधानों को पारित किया गया, इसका तात्कालिक उद्देश्य सामाजिक कुरीतियों पर प्रतिबन्ध तथा सामाजिक सुधार व कल्याण है। ये सामाजिक विधान स्त्रियों की गिरी हुयी दशा को उच्च बनाने के लिए निर्मित किये गये थे, जिसमें बाल विवाह पर रोक (1829), सती प्रथा पर प्रतिबन्ध (1829), दहेज प्रथा, बहुपत्नी विवाह पर रोक, हिन्दू स्त्रियों को पति की सम्पत्ति पर अधिकार का अधिनियम (1856) प्रमुख रहे हैं। इन सामाजिक विधानों के निर्माण से विधवाओं की परम्परागत स्थिति में परिवर्तन परिलक्षित हो रहा है, लेकिन सामाजिक परम्पराओं को पूर्णतः विरोध करना विधवा नारी के लिए कठिन कार्य ही प्रतीत होता है।

## सन्दर्भ–सूची


1. राज गोपाल (1963)–इण्डियन ह्यूमेन इन द न्यु एज मैसूर
2. उपाध्याय, गंगा प्रसाद (1926) : विधवा विवाह मीमांसा, प्रकाशक चाँद कार्यालय, इलाहाबाद
3. शर्मा, परीक्षित दास (1934) : विधवा विवाह खण्डन, द्वितीय खण्ड, कटक प्रिंटिंग प्रेस
4. ऋग्वेद, 4.18.2, 10, 40-2 और 8
5. वृद्धहारितस्मृति, 11.205-210
6. तैत्तिरीय आरण्यक, 6.1
7. ऋग्वेद, 10.18.6
8. ऋग्वेद, 9.5.26-28
9. तैत्तिरीय संहिता, 3.2.4–4
10. बौधायन धर्मसूत्र, 2.2.16, 22, 68-70
11. वाल्मीकि रामायण, अरण्य काण्ड, 6-25
12. महाभारत, मौसल पर्व, 259
13. आपस्तम्ब स्मृति
14. विष्णुस्मृति, 5.156-160


***

Philosophy
Shodh Sandarsh-V, Vol.-XVI, Sept.-2017, Page : 152-155
ISSN No. - 2319–5908 (U.G.C. Approved Journal No. : 41329)

# आध्यात्मिक आनन्द मोक्ष ( भारतीय दर्शन के परिप्रेक्ष्य में )

*डॉ. सीमा शर्मा**

सृष्टि की अभिव्यकित में मानव श्रेष्ठतम उपलब्धि है। मानवाभिव्यक्ति में ही आदि तत्व की सृजन-शक्ति न केवल सार्थक होती है, बल्कि अपने पूर्णत्व का प्रदर्शन करती है। ऐतरेयोपनिशद्[1] में तो मनुष्य को ही सृष्टि की सर्वोत्कृष्ट कृति स्वीकार किया गया है। मनुष्य एक आध्यात्मिक प्राणी है। इस आध्यात्मिकता के कारण वह जड़ पशु-योनि से भिन्न है। आत्मिक सत्ता होने के कारण उसमें वर्तमान के प्रति असन्तोष तथा भविष्य में पूर्ण होने की आकांक्षा विद्यमान है। मानव स्वभाव से ही अपने वर्तमान जीवन को सुखमय बनाने का प्रयास करता रहा है और अपने जीवन को दुःखों से दूर रखना चाहता है। मनुष्य इसी आशा में रहता है कि उसका जीवन सुखमय बना रहे और उसका मरणोत्तर जीवन भी सुखों से भरा हुआ हो। सामान्य दैनिक जीवन में ही वह भविष्य की चेतना में नहीं रहेगा। वह जो कुछ है उससे आगे जाकर पूर्ण बनना चाहता है। मानव का जिज्ञासु मन आत्म-तत्व को जानने का निरन्तर प्रयास करता रहा है। विश्व में दो प्रकार की प्रवृत्ति सर्वत्र दृष्टिगोचर होती है। प्रथम दुःखों को दूर करने प्रवृत्ति और द्वितीय सुखों को प्राप्त करने की प्रवृत्ति। हम साधारणतः दुःखों की इच्छा न करते हुए अपने सुख की वृद्धि करना चाहते हैं। 'सुख' मनुष्य की वह अनुभूति है जो इन्द्रिय-संवेदना द्वारा उसकी प्राकृतिक शारीरिक इच्छाओं की तृप्ति के परिणामस्वरूप उत्पन्न होता है। मनुष्य की स्वाभाविक शारीरिक इच्छाओं की तृप्ति के फलस्वरूप दृष्टि, स्पर्श, श्रवण, गंध, स्वाद आदि द्वारा तृप्ति की क्षणिक अनुभूति 'सुख' है। ऐपिक्यूरस के मतानुसार दुःख का अभाव ही सुख है। शारीरिक पीड़ा तथा मानसिक सभी प्रकार के कष्ट से पूर्णतः मुक्त हो जाते हैं तभी हम वास्तव में विशुद्ध सुख का अनुभव करते हैं।[2] सिजविक सुख को वांछनीय अनुभूति मानते हैं। ''सुख वह भावना है जिससे बुद्धिशील प्रणाली अनुभाव करने पर कम से कम निहित रूप से वांछनीय समझते हैं और अन्य भावनाओं की तुलना में वरीय मानते हैं।[3] इस प्रकार सुख एक भावना अथवा अनुभूति है जिसे हम सामानय परिस्थितियों में वांछनीय मानते हैं और प्राप्त करने की सामान्य चेष्टा भी करते हैं। आनन्द भी मूलतः अनुभूति ही है और उसका स्रोत की बहुधा इन्द्रिय-संवेदन ही होते हैं, किन्तु आनन्द का सम्बन्ध मनुष्य की प्राकृतिक शारीरिक इच्छाओं की अपेक्षा उसके मानसिक अथवा बौद्धिक पक्ष से अधिक है। इसी कारण 'आनन्द' सुख की अपेक्षा अधिक स्थायी होता है। मनुष्य को साहितय, कला, ज्ञान, दार्शनिक अथवा आध्यात्मिक चिंतन पारस्परिक स्नेह और मैत्री, परोपकार आदि के फलस्वरूप जो संतोषदायक अनुभूति प्राप्त होती है उसे 'आनन्द' कहा जा सकता है। इस अर्थ में 'आनन्द' सुख से भिन्न है, क्योंकि 'आनन्द' के लिए मनुष्य की अतृप्त प्राकृतिक इच्छाओं का होना अनिवार्य नहीं है, जबकि 'सुख' मुख्यतः इन अच्छाओं की तृप्ति का परिणाम है। यद्यपि मानव-जीवन में 'सुख' तथा 'आनन्द' दोनों का बहुत महत्व है, फिर भी अपेक्षाकृत अधिक सायी होने और मनुष्य के बौद्धिक पक्ष से समबन्धित होने के कारण सामान्यतः 'आनन्द' को 'सुख' की अपेक्षा अधिक उत्कृष्ट माना जाता है। सुख का सम्बन्ध इच्छाओं की संतुष्टि से है, परन्तु आनन्द का सम्बन्ध व्यक्ति के समग्र रूप में संतुष्ट होने से है, परन्तु पाश्चात्य अधिकतम सुखवादी 'सुख' तथा 'आनन्द' में भेद नहीं करते, उन्होंने 'सुख' शब्द को व्यापक अर्थ में ग्रहण करते हुए 'आनन्द' को भी उसी के अन्तर्गत माना है। जॉन स्टुअर्ट मिल ने 'आनन्द' का अर्थ 'सुख' का होना तथा 'दुःख का न होना माना है।[4]

भारतीय दर्शन में 'दुख निवृत्ति' और आनन्द प्राप्ति की अवस्था का वर्णन मोक्ष के रूप में किया गया है। भारतीय दार्शनिक मतों में कुछ आस्तिक अथवा वेदों में विश्वास करने वाले और कुछ नास्तिक अथवा वेदों में विश्वास न करने वाले हैं। नास्तिक दर्शनों में चार्वाक, बौद्ध और जैन हैं तथा आस्तिक दर्शनों में षड्दर्शन सांख्य, याग, न्याय, वैशेषिक, मीमांसा एवं वेदान्त हैं। भारतीय दर्शन की समस्त शाखाओं में दुःख निवृत्ति को मोक्ष कहा गया है। प्रायः सभी भारतीय दर्शन आत्मा में विश्वास करते हैं और उसके यथार्थ स्वरूप की खोज करना चाहते हैं। आत्मा के यथार्थ स्वरूप की खोज उपनिषद् से लेकर सांख्य, योग, न्याय, वैशेषिक और वेदान्त की दार्शनिक जिज्ञासा का लक्ष्य था। भारतीय दर्शन का लक्ष्य मानसिक जिज्ञासा की शान्ति न होकर

* *असिस्टेण्ट प्रोफेसर, दर्शनशास्त्र विभाग, जी.एफ. कॉलेज, शाहजहाँपुर*

जीवन की चरम समस्याओं का हल करना है। वह जीवन में ही उत्पन्न होता है और जीवन में ही पलता है। भातरीय दार्शनिक भौतिक जीवन से संतुष्ट नहीं थे। वास्तव में सांसारिक जीवन से आध्यात्मिक असन्तोष में ही भारतीय दर्शन की उत्पत्ति हुई। उनका लक्ष्य जीवन का दैवीय रूपान्तर था। संसार के दःखों का वर्णन करते हुए उन दुःखों से छुटकारा पाकर आध्यात्मिक आनन्द की प्राप्ति का मार्ग भी भारतीय दर्शन में बताया गया है। अतः निराशावाद में प्रारम्भ होकर भी भारतीय दर्शन आशावाद और आनन्द की ओर बढ़ता है। प्रो. मैक्समूलर के अनुसार "भारत में दर्शन ज्ञान के लिए नहीं बल्कि उस सर्वोच्च लक्ष्य के लिए था जिसके लिए मनुष्य इस जीवन में चेष्टा करता है।[5]

भारतीय दर्शन दुःख को सुख में, निराशा को आशा में, अन्धकार को प्रकाश में, अशान्ति को शान्ति में परिवर्तित करने के उपाय बताता है। भारतीय दर्शन में ज्ञान का अर्थ जीवन का दिव्य रूपान्तर और सांसारिक दुःखों से छुटकारा पाना है। चार्वाक को छोड़कर सभी आस्तिक और नास्तिक भारतीय दार्शनिक मोक्ष को ही जीवन का लक्ष्य मानते हैं। परिभाषाओं में शब्दों का परिवर्तन हो सकता है किन्तु सभी इस बात से सहमत हैं कि मोक्ष से संसार के दुःखों से दुटकारा मिला जाता है और मनुष्य अज्ञान के बन्धन से छूट जाता है।

मोक्ष एक आध्यात्मिक आनन्द की अवस्था है। दुःख निवृत्ति भी दो प्रकार की है। प्रथम वर्तमान दुःख की निवृत्ति और द्वितीय भावी दुःख की निवृत्ति। इन दोनों में भी भावी दुःख की निवृत्ति अधिक बलवान होती है, क्योंकि भावी दुःख इस वर्तमान कालिक दुःख की अपेक्षा अधिक बलशाली दृष्टिगोचर होता है। अतः महर्षि पतंजलि ने कहा है कि जो दुःख भविष्य काल में आते है। वे त्याज्य हैं।[6] हमें भविष्य काल में दुःख न आयें, उनका उपाय करना चाहिए।[7] ये प्रवृत्तियाँ ही मोक्ष की विचारधारा की जनक कहलाती हैं। यह धारणा कि हमें शातिशय सुख प्राप्त हो और दुःखों की निवृत्ति हो, वेदों के काल से ही प्राप्त होती है। उपनिषदों के युग में तो इसकी हमें पराकाष्ठा, दृष्टिगोचर होती ह। यजुर्वेद और ईशोपनिषद् में स्पष्ट कहा गया है कि वहाँ अर्थात् मोक्षावस्था में मोह अर्थात् शोक नहीं रहता है।[8]

जन्म-जन्मान्तरों के संस्कारों के फलस्वरूप सुख-दुःखादि का भोग करते हुए आत्मा को कष्ट की अनुभूति होती है। इसी कष्ट से मुक्ति प्राप्त करना उसका उद्देश्य है एवं यही मोक्ष की अवस्था है। बौद्ध दर्शन में मोक्ष को 'निर्वाण' कहा गया है। जैन दर्शन इसे 'आर्हती दशा' कहते है।। नैयायिकों ने 'अपवर्ग' व वैशेषिकों ने 'निःश्रेयस कहा है। सांख्य-योग दर्शन में 'कैवल्य' कहा गया है। मीमांसक 'प्रपंचसम्बन्धविलय' कहते हैं तो वेदान्त 'ब्रह्मपदाव्याप्ति' मानता है। मोक्ष एक ऐसी अवस्था है जहाँ दुखों का पूर्ण अभाव रहता है। कुछ विचारकों ने इस अवस्था को केवल दुःखरहित अवस्था कहा है, किन्तु कुछ अन्य विचारकों के अनुसार इस अवस्था में विशुद्ध आनन्द की प्राप्ति होती है। दार्शनिक विश्व में दुःख, पीड़ा एवं अपार कष्ट देखकर व्यथित हो जाते हैं। ये व्यक्ति को सर्वत्र बंधनग्रस्त पाते हैं। प्रो. डी. एम. एडवर्ड के अनुसार 'विश्व में कम से कम चार प्रकार के अशुभ व्याप्त हैं–पीड़ा, असत्य, कुरुपता और पाप। इनको चार परम् मूल्यों–आनन्द, सत्य, सुन्दर और शुभ का प्रत्यक्ष रूप में विरोधी कहा जा सकता है।'[9] बंधन ही दुःख मूल कारण है। बंधन स्वयं अविद्या या अज्ञान का फल है। इसलिए दुःखों को दूर करने के लिए सर्वप्रथम अज्ञान का नाश आवश्यक है। यही कारण है कि प्रायः सभी भारतीय विचारक अज्ञान का नाश ही बंधन का नाश और मोक्ष की प्राप्ति मानते हैं, जिसकी प्राप्ति होने पर बौद्ध, सांख्य तथा वेदान्त के अनुसार व्यक्ति इसी जीवन में शरीर धारण करते हुए मोक्ष प्राप्त कर सकता है। इसे ही 'जीवन्मुक्ति' कहते हैं। मृत्यु के बाद मिलने वाले मोक्ष को विदेहमुक्ति कहते हैं।

बौद्ध दर्शन भी मोक्ष को स्वीकार करता है। बौद्ध दर्शन में मुक्ति के लिए निर्वाण शब्द का प्रयोग किया गया है। निर्वाण का शाब्दिक अर्थ है, 'बुझा हुआ' व्युत्पत्ति के अनुसार कुछ लोग इसका अर्थ जीवन का अन्त समझते हैं परन्तु यह विचार भ्रमात्मक है। यदि ऐसा होता तो बुद्ध मृत्यु से पहले ही निर्वाण प्राप्त न करते। निर्वाण का अर्थ वासना की अग्नि का बुझ जाना है। उसमें लोभ, घृणा, क्रोध और भ्रम की अग्नि बुझ जाती है और कामासव, भवासव तथा अविद्यासव इत्यादि मन की अशुद्धियाँ ठण्डे हो जाते हैं।[10] वह भविनरोध अथवा पुनर्जन्म को रोकने वाला है।[11] बौद्ध ग्रन्थों में आग के 'जलने' और 'बुझने' का जिक्र आया है। निर्वाण को 'सितिभाव' अथवा शीतलता की अवस्था कहा गया है।[12] उसमें वासना और तज्जनित दुःखों की पूर्ण शान्ति हो जाती है। वह अस्तित्व का विनाश नहीं है।[13] उसे इसी जीवन में प्राप्त किया जा सकता है। वह अकर्मण्यता भी नहीं है उसमें बौद्धिक और सामाजिक जीवन सम्भव है। निर्वाण कर्मों का नहीं बल्कि उनमें राग, द्वेष का त्याग है। इस अवस्था में शरीर रहते हुए भी तृष्णा हो जाती है। वह उपनिषदों की जीवन्मुक्ति के समान है।

जैन धर्म में भी मनुष्य की परमागति को मोक्ष या 'कैवल्य' माना गया है। बन्धन का अर्थ है, आत्मा का पुद्गल (Matter) के साथ सम्बन्ध होना। अतः मोक्ष या कैवल्य का अर्थ है आत्मा और पुद्गल का पूर्णतया अलग हो जाना। जैन दर्शन में मोक्ष

के भावात्मक और अभावात्मक दोनों रूपों का वर्णन मिलता है। मोक्ष की अवस्था में दु;ख नहीं रहता। पूर्णता की प्राप्ति हो जाती है। मोक्ष की अवस्था में सारी बाधाएँ समाप्त हो जाती हैं। इसका उल्लेख 'अनन्त चतुष्टय' के रूप में किया गया है। अर्थात् मोक्षावस्था में अनन्त दर्शन, अनन्त ज्ञान, अनन्त शक्ति तथा अनन्त आनन्द और शान्ति मिलती है। इस प्रकार जैन दर्शन के अनुसार कर्म-बन्धनों से बिल्कुल छूट जाना मोक्ष है।[14]

न्याय दर्शन में मोक्ष का अपवर्ग कहा गया है। यह अपवर्ग दुःखों का अत्यन्ताभावरूप है।[15] अपवर्ग का अर्थ है जीवात्मा के इक्कीस प्रकार के दुःख और उन दुःखों के कारणों से आत्यन्तिकी निवृत्ति।[16] अतः मोक्ष दुःख के पूर्ण निरोध की अवस्था है। इसमें आत्मा शरीर और इन्द्रियों के बंधन से मुक्त होता है क्योंकि उनको छोड़े बिना दुःखों से छुटकारा नहीं हो सकता।[17] गौतम के अनुसार ''मिथ्या ज्ञान के नाश होने से राग, द्वेष आदि दोषों का भी नाश हो जाता है। इसके पश्चात् 'प्रवृत्ति' नहीं होती फिर जन्म ही नहीं लेना पड़ता और अन्त में दुःख के नाश होने से मुक्ति मिलती है।

वैशेषिक दर्शन और न्याय दर्शन दोनों वस्तुवादी हैं। वस्तुवादी विचारधारा का ज्ञानमीमांसा न्यायदर्शन प्रदान करता है और तत्वमीमांसा वैशेषिकों द्वारा प्रस्तुत की जाती है। वैशेषिक दर्शन के अनुसार भी सभी प्रकार के दुःखों के आत्यन्तिक निवृत्ति की अवस्था है। वैशेषिक दर्शन में मोक्ष को परम् पुरुषार्थ कहा गया है तथा उसकी शास्त्रीय संज्ञा निःश्रेयस दी गई है।[18] जैसे अग्नि ईंधन को जलाकर शान्त हो जाती है, कुछ भी शेष नहीं रहता। इसी प्रकार दुःखों का नाश हो जाना मोक्ष है।

सांख्य दर्शन के अनुसार जीवन में आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक तीन प्रकार के दुःख हैं।[19] मनुष्य बंधन के कारण इन दुःखों से ग्रस्त रहता है। मानव बंधन का कारण अविद्याा या अज्ञान है। अज्ञान का अर्थ है अपने यथार्थ स्वरूप की अनभिज्ञता। आत्मा का यथार्थ स्वरूप न जानने के कारण जीव अपने को मन, बुद्धि तथा अहंकार मानकर उनके सुख-दुस्त्रख से प्रभावित होता है। जब जीव अपने यथार्थ स्वरूप आत्मा या पुरुष को जान जाता है तब मन और अहंकार आदि के दुःखों का उस पर प्रभाव नहीं पड़ता। इस प्रकार प्रकृति और पुरुष के भेद का ाान ही वास्तविक मोक्ष का आधार है।[20] योग दर्शन में बुद्धि और पुरुष के शुद्ध होने पर मोक्ष होता है। जब बुद्धि तीनों गुणों के सम्पर्क से छूट जाती है अथवा छूटकर पवित्र हो जाती है उस समय पुरुष में अपने स्वरूप में ठहरने की शक्ति उत्पन्न हो जाती है। यही कैवल्य है।[21] त्रिगुणात्मक प्रकृति के दो ही प्रयोजन हैं–पुरुष के लिए भोग व अपवर्ग देना। जब दोनों प्रयोजन पूर्ण हो जाते हैं तब पुरुष स्वरूप में प्रतिष्ठित हो जाता है, यही कैवल्य है।[22]

मीमांसा मत में जीवात्मा के साथ जग, जगत्प्रेम के सम्बन्ध के विलय को मोक्ष कहा गया है। मीमांसक जीव और जगत् दोनों को नित्य मानते हैं। जगत् का प्रलय यहाँ अमान्य है। केवल प्रपंच के साथ जीव के सम्बन्ध का लय होता है।[23] प्रपंच तीन प्रकार का होता है–शरीर, इन्द्रियों और विषय। शरीर भोगायतन, इन्द्रियाँ भोगसाधन और विषय भोग्य हैं। इस त्रिविधि प्रपंच रूप बन्धन का सदा के लिए अवरुद्ध हो जाना मोक्ष है।[24]

अद्वैत वेदान्त दर्शन में जीव ब्रह्म में सर्वथा अभेद सम्बन्ध है। दोनों के अभेद सम्बन्ध को 'एकमेवाद्तिीयम्' इत्यादि श्रुतियों के आधार पर प्रतिपादित किया गया है। जीव यद्यपि स्वयं ब्रह्म है किन्तु अनादि विद्या के कारण वह उस परम् सत्य को विस्मृत कर बैठता है और स्वयं को मन, शरीर, इन्द्रियाँ समझने लगता है और यही बंधन का कारण है। जब साधक को ाान हो जाता है कि 'वह ब्रह्म है' तब वह बंधन से मुक्त हो जाता है। इस प्रकार आत्म-ाान की ब्रह्म-ज्ञान है और यही मोक्ष है। शारीरिक भाष्य में शंकराचार्य ने मोक्ष का वर्णन इस प्रकार किया है–''वह जो पारमार्थिक सत्य हे, कूटस्थ है, नित्य है, आकाश के समान सर्वव्यापी है, समस्त क्रियाओं से रहित, नित्यतृप्त, निरवयव है, जिसका स्वयं-ज्योति का स्वभाव है, जहाँ पर धर्म, अधर्म, कार्य, भूत, भविष्य तथा वर्तमान आदि को कोई स्थान नहीं वह अवस्था मोक्ष है।''[25] मुक्त आत्मा अपना यथार्थ स्वरूप प्राप्त कर लेता है। चितसुखाचार्य के कारण–'मोक्ष अनवच्छिन्न मोक्ष है।''[25] मुक्त आत्मा अपना यथार्थ स्वरूप प्राप्त कर लेता है। चितसुखाचार्य के अनुसार–'मोक्ष अनवच्छिन्न आनन्द की प्राप्ति है।[26] मोक्ष निषेधात्मक नहीं है। वह आनन्द है। वेदान्त के अनुसार मोक्ष का अर्थ शरीर का नाश नहीं बल्कि अज्ञान का नाश होता है। अतः वे जीवन्मुक्ति को मानते हैं। जैसे कि कुम्हार का चक्र का चाक बर्तन के बन जाने के बाद भी काफी देर तक घमता रहता है, उसी प्रकार मोक्ष प्राप्त होने के पश्चात् भी जीवन चलता रहता है। रामानुज के मत में भगवान ही हरि के दासत्व की प्राप्ति ही मोक्ष है।[27] मोक्ष दशा में विशेष आनन्द मोक्ष का फल है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि प्रायः सभी भारतीय दार्शनिक सम्प्रदायों ने आनन्द एवं मोक्ष के सिद्धान्तों का वर्णन उपनिषद् - वचनों के आधार पर किया है किन्तु अपने मत के लिए उन्होंने अपने ढंग से उपनिषद् वचनों की व्याख्या की है। उपनिषदों का चरम् लक्ष्य आत्मा की अपरोक्षानुभूति कराकर ज्ञान एवं आनन्द की प्राप्ति कराना है। ईशोपनिषद् में कहा गया है कि ज्ञान से अमृत प्राप्त होता है।[28] इस उपनिषद् में मोक्ष के स्वरूप को अमृतमय बताया गया है जिसका अभिप्राय है कि वह अमृत को प्राप्त

कर उस कल्याणमय ईश्वर के दर्शन कर लेता है अर्थात् उसके आनन्द में रहता है। उपनिषदों के अनुसार मोक्ष का लक्ष्य है–स्वोपलब्धि। स्वोपलब्धि का तात्पर्य है–आत्मरति, आत्मक्रीड़ा, आत्ममिथुन और आत्मानन्द। अर्थात् मुक्तावस्था में जीव आत्मा से ही प्रेम करता है, आत्मा से ही खेलता हे, आत्म में ही आसक्त रहता है और आत्मा में ही निरतिशय आनन्द को प्राप्त करता है।[29] इस आनन्द की कोई सीमा नहीं है। इस प्रकार उपनिषदों में मोक्ष दुःखाभाव रूप ही नहीं अपितु आनन्द रूप भी है। 'अत्र ब्रह्म समुश्चते'[30] 'आनन्दो ब्रह्मणो विद्वान न विभेति कुतश्चन[31] इत्यादि वचनों का यही तात्पर्य है। केवल ब्रह्मलोक में वास मोक्ष नहीं है, अपितु अभौतिक शरीर से आनन्दोपभोग करना मोक्ष है। आनन्द का स्रोत बह्म है। आनन्द के सारे उपक्रम, सुख की अनेकों अभिव्यक्तियाँ, हर्ष और रागादि की अदम्य वृत्तियाँ, भोगों के लिए प्राणी की विकलता आदि सब ब्रह्म से ही संस्कारित हैं। अतः आनन्द को ब्रह्मानन्द माना गया है। आनन्द का अन्वेषण ब्रह्म का अन्वेषण है, ब्रह्म का ज्ञान आनन्द की अनुभूति है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि चित-शुद्धि से आत्म तत्व का ज्ञान होता है और आत्म-तत्व के ज्ञान से कामनाएँ पूर्ण होकर, यत्र-तत्र उत्पन्न होने के क्रम से मोक्ष हो जाता है। यही मोक्ष ही अमरत्व या आनन्द है। आनन्द की अभिव्यक्ति यद्यपि भोग होती है तथा यह उसी प्रकार है, जैसे सत की अभिव्यक्ति इस सृष्टि में होती है। अनासक्त कर्म से भोग समाप्त होकर आत्म-भाव की निष्पत्ति होती है, वही अभय, अद्वैत और आनन्द है।

## सन्दर्भ-सूची


1. ऐतरेयोपनिषद्, 1/2/3-4
2. रिचर्ड बी. ब्रान्ट, 'वेल्यू एंड ऑब्लिगेशन, पृ. 25-26
3. हेनरी सिजविक, 'दि मेथड्स ऑफ एथिक्स', पृ. 127
4. जॉन स्टुअर्ट मिल, 'युटिलिटैरियनिज्म', पृ. 10
5. मैक्स मूलर, 'सिक्स सिसटम्स ऑफ इण्डियन फिलॉसफी'
6. योग. सा. पा. 16
7. व्यास भाश्य, 2. 16
8. तत्र को मोहः क शोकः (ईशो. 7 मं.)
9. प्रो. डी. एम. एडवर्ड, 'फिलॉसफी ऑफ रेलिजन', पृ. 241
10. संयुक्त निकाय, III 251, 261, 271
11. रेए डेविस, 'बुद्धिज्म' पृ. 180-181
12. इन्साइक्लोपीडिया ऑफ रेलिज़न एण्ड एथिक्स', पृ. 11
13. अंगुत्तर निकाय, III, 359
14. त. सू. 10/2, सर्वदर्शन संग्रह, पृ. 167
15. न्याय सूत्र 1/1/22
16. तदत्यन्तविमोक्षोऽपवर्ग : न्याय सूत्र 1/1/22
17. वात्स्यायन भाष्य, 1/1/22
18. सर्वदर्शन संग्रह, पृ. 447
19. सां. द. 6/5
20. सांख्यकारिका–62
21. योगदर्शन 1/3
22. योगसूत्र 4/34
23. प्रपंचसम्बन्धविलयो मोक्ष : मीमांसा दर्शन (शास्त्र दीपिका), पृ. 358
24. शास्त्रदीपिका, पृ. 358
25. ब्रह्मसूत्र, शाकर भाष्य 1/104
26. अनविच्छन्नान्द प्राप्ति : मुण्डक उ.
27. श्री भाष्य–1/1/11
28. विद्ययाऽमृतमनुश्नते–ईशोपनिषद, पृ. 24
29. छान्दो. उ.–7/25/2
30. कठो. उप0 2/3/14
31. तैत्ति. उप.


***

Philosophy
Shodh Sandarsh-V, Vol.-XVI, Sept.-2017, Page : 156-160
ISSN No. - 2319–5908 (U.G.C. Approved Journal No. : 41329)

# राजनैतिक नैतिकता एवं अन्तर्राष्ट्रीय दायित्व

*डॉ. दल सिंगार सिंह**

मानव एक राजनैतिक प्राणी है, किन्तु आज राजनीति इतनी दूषित हो गई है कि इसे बदमाशों का शरण-स्थल भी कहा जा रहा है। भर्तृहरि ने राजनीति को वेश्या की उपमा देते हुए 'वारांगनवनृप अनेक रूपा' कहा है। राष्ट्रों के सूत्रधारों की कथनी और करनी में भयानक अन्तर रहता है। शान्ति की वार्ता तथा साथ-साथ महासंहारिणी सैन्य शक्ति का अतुलित विस्तार दोनों एक साथ होता है। इसीलिए तो सन्धि-पत्रों की स्याही सूख भी नहीं पाती कि रणभेरी बजने लग जाती है। राजनयिकों के विचार तथा व्यवहार का यह भयानक द्वैत इतना स्पष्ट हो जाता है कि राजनीति को हम 'कुटिल-नीति' कहते हैं। भारतीय इतिहास में इसी को कौटिल्य-नीति तथा यूरोपीय इतिहास में 'विलेन पॉलिटिक्स' कहा गया है। वर्तमान राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में सत्य-असत्य, न्याय-अन्याय, धर्म-अधर्म सब बराबर हैं। राजनीति भले ही चाँद तथा अन्तरिक्ष से लेकर समुद्रतल की चिन्ता करते दिखलाई पड़ती हो परन्तु, आज की राजनीति हमारी चिन्ता का विषय बनती जा रही है। आतंकवादी सिर ऊँचा करके टहल रहे हैं, जनता अकारण काल के गाल में समा रही है। आज इच्छा शक्ति का अभाव स्पष्ट दिखाई पड़ रहा है। राजनयिकों को अपनी जॉन की बेहद चिन्ता है। आज राजनीति जो हमारी चिन्ता का विषय है उसका कारण यह भी है कि राज्य सत्ता के हाथों में आधुनिक विज्ञान तथा तकनीक ने संहार की सर्वोपरि शक्ति सौंपती है। सम्पूर्ण जीवन नाशक, संहार शक्ति को इकठ्ठाकर लिए हैं। यह दुर्भाग्य का विषय है कि राजनीतिज्ञ आज तक अविश्वास, ईर्ष्या, कपट, स्वार्थ तथा सत्तामोह के चंगुल में इस प्रकार कैद हैं कि मानवता का भविष्य अन्धकार मय दिखता है। क्योंकि मानवता का भाग्य-विधाता आज राजनीतिज्ञ बन बैठा है। इसलिए राजनीति की समस्या मूलतः एक नैतिक समस्या मूल्यों के संकट की समस्या है जिसे अर्नल्ड व्रन्चट ने वैज्ञानिक मूल्यात्मक सापेक्षतावाद (Scientics Value Relatinsm) कहा है।

राजनीति के सम्बन्ध में तुलसीदास ने रामचरित मानव में लिखा है कि "राजनीति विनुधन बिनु धरमा। हरहि समरपे बहुसत करमा।।" यद्यपि राजनीति का मूल विस्तार 'भ्रातृत्व' है। डॉ0 सर्वपल्ली राधा कृष्णन के अनुसार 'राजनीतिक भ्रातृत्व है और यह नीतिशास्त्र की एक शाखा है। यदि राजनीति से नीति को दूर कर दिया जाएगा तो वह अवसरवाद एवं सुविधावाद के दुष्चक्र से नहीं निकल पाएगी और फिर सत्ता प्राप्ति के लिए अत्यन्त अशोभनीय दृष्टि एवं उससे समुत्पन्न संघर्ष तथा कलह निश्चय ही फूटेगा। अतः राजनीति का कायाकल्प आवश्यक है। महात्मागाँधी ने अपने राजनीतिक गुरु गोपाल कृष्ण गोखले से 'राजनीति के आध्यात्मीकरण' (Spiritualisation of Politics) का पाठ सीखा था जिसे जास्पर्स ने 'शुद्धात्मा की धार्मिक राजनीति' (Religious politics of self-vevealing man) या ऊँची राजनीति (Higher Politic) कहा है। इसी को गाँधीवादी चिन्तक प्रो. गोपीनाथ धवन ने 'सम्यक् राजनीति' कहा था।

जय प्रकाश नारायण ने "भारतीय राजनीति के पुर्नगठन" नामक अपने प्रबन्ध में स्पष्ट कहा है कि राजनीति नीति का ही विस्तार है। आदर्श से आदर्श राजनैतिक व्यवस्था तथा संविधान तभी कारगर हो सकते हैं जब उसको चलाने वाले लोग नैतिक तथा आध्यात्मिक गुणों से सम्पन्न हों। राजनैतिक क्रिया-कलापों को नियन्त्रित करने के लिए जब तक स्थायी नैतिक मूल्यों की स्थापना नहीं हो सकेगी, तब तक मानवता के सम्पूर्ण विनाश का ही खतरा उत्पन्न हो सकता है।[1] इसलिए महात्मा गाँधी ने कहा था कि परमाणु-युग में धर्म-विहीन राजनीति की कल्पना ही भयावह है, लेकिन वे धर्म का संकुचित अर्थ नहीं करते थे। धर्म वह है जो सामंजस्य स्थापित करता है और जो मानव-स्वभाव का कायाकल्प करता है। संक्षेप में धर्म का अर्थ है विश्व की सुव्यवस्थित नैतिक व्यवस्था में विश्वास।[2] धर्म का वही अर्थ है जो नैतिकता का है।[3] महात्मा गाँधी ने स्पष्ट कहा था कि " जो धर्म शुद्ध राजनीति का विरोधी है, वह धर्म नहीं है।[4] गाँधी की मान्यता थी 'जो यह कहते हैं कि राजनीति से धर्म का सम्बन्ध नहीं है, वे धर्म को नहीं जानते।"[5] 'धर्म-विहीन राजनीति सचमुच मौत का एक फंदा है।'[6]

* *रीडर, दर्शनशास्त्र विभाग, टी.डी.पी.जी. कॉलेज, जौनपुर*

यह हमारा दुर्भाग्य है कि हम राजनीति तथा जीवन को दो भागों में बाँट कर देखते हैं। मन्दिरों में तो हम धर्म तथा नीति की बातें करते हैं किन्तु राजनीति में वे बातें बिल्कुल निरर्थक मानी जाती हैं। गाँधी ने इसे बदल दिया और उनकी राजनीति सत्य तथा अहिंसा की राजनीति थी, जिसने पूरे विश्व को प्रभावित किया और उसी से भारत से ब्रितानी साम्राज्यवाद को समाप्त भी किया। गान्धी ने समझाने-बुझाने, आन्दोलन आदि के विफल होने पर उपवास तथा अनशन आदि का सहारा लिया था जो चमत्कार का कार्य करता था जिसकी स्पटस चार्ल्स बाउल्स जैसे प्रसिद्ध राजनीतिज्ञों ने भी मुक्त कण्ठ से प्रशंसा की। राजनीति को वस्तुतः धूर्तता एवं प्रवंचता का पर्याय नहीं बनना है। इसलिए 'राजनीति के आध्यात्मीकरण के अतिरिक्त हमारे पास कोई उपाय नहीं है।[7] अन्यथा जैसा कि अरस्तू ने कहा है कि 'राजनीति राजनीति ही नहीं रह पायेगी।'[8] आज धर्म-निरपेक्ष राज्य की जो बात की जा रही है, उसका अर्थ धर्म-विहीन राज्य नहीं समझा जाना चाहिए। धर्म तो मानव के साथ जुड़ा हुआ है। वह तो मानव जीवन के सभी पक्षों को प्रभावित करने वाली एक व्यापक अभिवृत्ति है जिसका विषय सर्वाधिक मूल्यवान, पवित्र सर्वज्ञ तथा शक्तिशाली समझे जाने वाला अलौकिक या अतिमानवीय शक्ति या सत्ता है जो दुःख-दर्द विनाशक है और उसी से मनुष्य को दुःख-दूर होने का आश्वासन भी मिलता है। उसी धर्म में धैर्य, क्षमा, दम, संयम, अस्तेय, शौच, इन्द्रिय-निग्रह, धी, विद्या, अक्रोध सब विद्यमान हैं, आपत्ति-विपत्ति में यही हमारी सहायता करता है। ऐसे धर्म जिसमें सत्य अहिंसा आदि विद्यमान हैं, को कैसे छोड़ा या त्यागा जा सकता है। इसे छोड़कर मानव-समाज टिक ही नहीं सकता। अतः धर्म-निरपेक्ष तो केवल पशु ही हो सकता है, मनुष्य कदापि नहीं। धर्म के बिना मनुष्य मनुष्य ही नहीं रह जाता है। धर्म ही तो है जो मनुष्य और पशु में अन्तर करता है। इसलिए हेनरी जार्ज ने Social Probloms में कहा है कि राजनीति को हम केवल पेशेवर राजनीतिज्ञों के हाथों में नहीं छोड़ सकते। जैसे हम अर्थशास्त्र को केवल अर्थशास्त्र के अध्यापकों पर नहीं छोड़ सकते। धर्म का समाज, व्यक्ति तथा राज्य के सन्दर्भ में समष्टि हित को ध्यान में रखकर मूल्यांकन होना चाहिए। धर्म वैयक्तिकता आधारित नहीं। उसमें 'स्व' ही सब कुछ है 'पर' तो कुछ है ही नहीं। उसमें अपने-पराये का कोई स्थान नहीं है।

'साधन शुद्धि' के प्रश्न पर साम्यवादी, फासिस्ट तथा तथाकथित व्यावहारिक राजनीतिज्ञों की यह धारणा है कि साधन के औचित्य का आधार साध्य है। परन्तु इसके विपरीत गाँधी, टालस्टाय, रस्किन आदि ने साधनों की शुद्धता पर जोर देते हुए साध्य के अनुरूप साधन अपनाने की बात रखी। साधन बीज है और साध्य वृक्ष है शैतान की उपासना करके ईश्वर-भजन का फल कैसे प्राप्त होगा फिर हमारा अधिकार तो केवल कर्म पर है, उसके परिणाम पर नहीं। फिर अच्छे साधन के उपयोग अपने आप में पारितोषिक हैं। साध्य और साधन के नैतिक समीकरण के सिद्धान्त को हक्सले भी मानते हैं शान्ति तथा विकास के लिए शान्ति का साधन ही चाहिए। हमारे साध्य को शुद्ध, शुभ तथा ठोसी तल पर अटल रहना चाहिए। गाँधी की राजनीति सत्य तथा अहिंसा पर आधारित है। सत्य के लिए है। आग्रह करना तथा वह भी आत्मपीड़न एवं कष्ट सहन के द्वारा यही सत्याग्रह है। नैतिक दृष्टि से भी यदि विचार करें तो राज्य स्वतः साध्य नहीं बल्कि साधन है। साध्य तो लोक मंगल या लोक-कल्याण है। राज्य की सत्ता व्यक्ति के लिए है, व्यक्ति की राज्य के लिए नहीं। नैतिक इकाई व्यक्ति है। अतः राज्य का कार्य व्यक्ति के अधिकार का अपहरण नहीं बल्कि व्यक्तित्व के विकास में उसकी सहायता करना है। अतः गिलक्राइस्ट ने ठीक ही कहा है कि, ''राज्य व्यक्ति के नैतिक जीवन की सबसे बड़ी शर्त है, क्योंकि राज्य के अभाव में नैतिक जीवन सम्भव नहीं है। एक तरफ राज्य शान्ति व्यवस्था स्थापित करने के अतिरिक्त नशा खोरी, वेश्यावृत्ति बेगारी गुलामी, शोषण, सती-प्रथा, बाल-विवाह, बहु-विवाह आदि जैसी बुरी प्रथाओं-परम्पराओं को रोकता है, दूसरी तरफ भूमि-सुधार, विवाह, तलाक सम्बन्धी अच्छे कानून पारित करता है, इतना ही नहीं व्यक्ति के अधिकारों का सब से बड़ा संरक्षक राज्य है। इसलिए नागरिकों की स्वत्तता को मान्यता प्राप्त होती है, उन्हें मौलिक अधिकार मिलते हैं। इसके बिना मनुष्य का नैतिक विकास नहीं हो पाता।

कुछ लोगों की यह धारणा है कि राजनीति में नैतिकता या आध्यात्मिकता को घुसेड़ने से उसकी व्यावहारिकता नष्ट हो जाती है, नैतिकता व्यक्तिगत चीज है जिसे राजनीति में घसीटना ठीक नहीं है। किन्तु नैतिकता के बिना राजनीति कपट, कुटिलता, एवं प्रपंच का पर्याय ही होगी। आधुनिक विज्ञान तथा अध्यात्म दोनों का समन्वय भी आवश्यक है।

अब हम राजनैतिक नैतिकता के अन्तर्गता नागरिक अधिकार तथा राज्य के कर्त्तव्य के सम्बन्ध में विचारक करेंगे। नागरिक का अर्थ ही है-'नगर-निवासी।' किन्तु आज नागरिक के अन्दर वे सभी व्यक्ति आयेंगे जो राज्य के अन्दर रहते हैं और जिन्हें कुछ अधिकार हैं और उनके कुछ कर्तव्य हैं। सत्ता के दुरुपयोग से बचाव का एक महत्वपूर्ण साधन है-'नागरिकों के अधिकारों की मान्यता तथा उनकी रक्षा।' प्रत्येक देश के संविधान में नागरिकों के मौलिक अधिकारों को परम पवित्र माना जाता है। संयुक्त राष्ट्र संघ में भी मानव अधिकार समिति बनी हुई है जो हर छः महीने पर अपनी रिपोर्ट प्रकाशित कर दुनियाँ को यह सूचित करती है कि किन-किन राष्ट्रों में नागरिकों के मौलिक अधिकारों को छीना गया और इस तरह की कार्यवाही के दोषी राज्यों की सरकारों

की भर्त्सना करती है। इसका मतलब यह है कि नागरिक हो सार्वभौम हैं और राज्य तो नागरिकों के द्वारा दिए गये अधिकारों से बनी एक संस्था है। राज्य सामान्य स्थिति में नागरिकों के मौलिक अधिकारों को नहीं छीन सकता। यदि वह ऐसा करता है तो वस्तुतः उसकी सार्वभौम शक्ति का अपहरण है। अधिकारों की सार्थकता कर्त्तव्य की पृष्ठभूमि में ही है। यदि राज्य नागरिकों के प्रति अपने दायित्वों का निर्वाह नहीं करता तो फिर विद्रोह अवश्यम्भावी है। इसी तरह नागरिकों का भी राज्य के प्रति कर्त्तव्य होता है जिन्हें पूरा करना होता है। कर्त्तव्य के बिना अधिकार की कल्पना ही नहीं की जा सकती।

जीवन सबसे मूल्यवान होता है। अतः राज्य का कर्त्तव्य है कि प्रजा के जानमाल की हिफाजत करें। इसके लिए प्रभावशाली पुलिस प्रणाली, कुशल गुप्तचर प्रणाली और सुदृढ़ न्याय-व्यवस्था किसी सुशासित राष्ट्र की प्रथम शर्त है। लोकतंत्र की सफलता के लिए न्याय-व्यवस्था चुस्त, सस्ती तथा निष्पक्ष होनी चाहिए। माल इस मान्यता के मौखिक प्रतिपादन से काम नहीं चलेगा कि 'कानून सर्वोपरि है और कानून के समक्ष सभी नागरिक समान हैं।' यदि राज्य का कर्त्तव्य प्रजा के जान-माल की हिफाजत है तो प्रजा का भी यह धर्म है कि वह राज्य को इन कानूनों के परिपालन कराने में सहायता दे। यदि हम चाहते हैं कि हमारे जान-माल की रक्षा हो तो हमें दूसरों के जान-माल की रक्षा के लिए मदद करनी चाहिए। कोई जरूरी नहीं कि केवल पुलिस ही आन्तरिक शान्ति कायम करे। 'संगठन में शक्ति होती है।' अतः नागरिक संगठित होकर शक्ति को संगठित करें और समाज व्यवस्था में इसका उपयोग दें। स्थान-स्थान पर शान्ति सेना बनायी जाये जो अशान्ति के समय काम करे तथा समाज में शान्ति का वातावरण बनाने में सहायक हो। शान्ति-सेना की, जैसे साम्प्रदायिक एवं जातीय दंगों के समय, बड़ी उपयोगिता है।

राज्य की सम्प्रभुता ही सर्वोपरि है। सम्प्रभुता समाप्त तो प्रजा नागरिक न रहकर गुलाम बन जायेगी। अतः विदेशी आक्रमणों से, विदेशी शक्तियों की सहायता से आन्तरिक तोड़फोड़ से, आतंकवादी गतिविधियों से देश की हिफाजत करना राज्य का सबसे बड़ा कर्त्तव्य है। आज आतंकवादी तथा आतंकवाद अपने विभिन्न आयामों में विश्व के समक्ष एक चुनौती है। इस समस्या के निदान के लिए आवश्यक है कि इसके कारणों की ठीक से पहचान की जाये और फिर उन कारणों का निदान ढूँढ़ा जाय। सामाजिक विषमता को दूर किया जाये और समाज में आपस में सौहार्द्र की भावना का विकास हो। आतंकवाद की समस्या का समाधान आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक तथा सांस्कृतिक स्तर पर संभव है।[9] जो राज्य देश की पवित्र भूमि की रक्षा नहीं कर सकता, वह कर्त्तव्यच्युत होता है और उसकी सरकार को शासन में बने रहने और आन्तरिक सुरक्षा कायम करने वाले बलों की प्रभावकारी तथा कार्यक्षम व्यवस्था करना राज्य का दायित्व है। परन्तु हमारे भीतर भी देशभक्ति तथा राष्ट्र-प्रेम की भावना होनी चाहिए। देशहित सर्वोपरि है जिसके समक्ष व्यक्ति, संस्था, दल आदि कुछ भी नहीं। देश की रक्षा एवं सम्मान हेतु अपना सर्वस्व न्यौछावर करने के लिए तैयार होना चाहिए। देश की रक्षा तथा सम्मान करना हम सभी का सामूहिक दायित्व है। युद्ध से किसी समस्या का न आज तक समाधान हुआ है न भविष्य में होगा। जब राष्ट्रवाद उग्र तथा संकुचित हो जाता है तो यह साम्राज्यवाद उग्र रूप लेकर युद्धवाद को जन्म देता है। अतः यदि अपने राष्ट्र की रक्षा करने का हमारा दायित्व है तो दूसरों के राष्ट्र की सम्प्रभुता का भी पूरा सम्मान करने का हमारा अन्तर्राष्ट्रीय राजनीतिक कर्तव्य है। अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति तथा सुरक्षा के लिए बनी हुई संयुक्त राष्ट्र संघ तथा अन्य संस्थाओं के कार्य-संचालन में हमें यथाशक्ति सहयोग प्रदान करना चाहिए।

विश्व में शान्ति के लिए तथा किसी आकस्मिक घटना एवं अशान्ति से मुकाबला करने के लिए सभी देशों को अलग-अलग सेनाओं को विघटित कर एक विश्व-सुरक्षा दल की कोई वैकल्पिक व्यवस्था कर ली जाये।[10] निःशस्त्रीकरण की वार्ता का प्रयास होते रहना चाहिए। विश्व में गरीबी, बेरोजगारी, रोग तथा गन्दगी जैसे मानवता के स्थायी शत्रुओं को समाप्त करने का प्रयास होना चाहिए। विश्व-सरकार का गठन होना चाहिए; परन्तु जब तक नाटो, सिएटो, बगदाद पैक्ट, वार्सा सन्धि आदि सैनिक सन्धियाँ रहेंगी, अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में परस्पर अविश्वास, घृणा तथा वैमनस्य से मानवता की अपार क्षति होती रहेगी। विदेशी शक्तियाँ आज आन्तरिक तोड़-फोड़ में संलग्न हैं। एक देश दूसरे देशों में कार्यरत विद्रोही शक्तियों को खुलेआम सहायता कर रही हैं। यह बिल्कुल ही ठीक नहीं है। किसी देश के आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप की नीति विश्वयुद्ध को जन्म दे सकती है और अब यदि कोई विश्वयुद्ध होता है तो वह पूरी मानवता के लिए भयावह स्थिति होगी। देश-विदेश की बात उसी देश के अन्तर हल हो, ऐसा जनता द्वारा प्रयास होना चाहिए। स्वाभिमान तथा स्वावलम्बन की महत्ता पर ध्यान देना चाहिए।

नागरिक तथा राजनैतिक स्वतन्त्रता के बिना नागरिक की कल्पना ही नहीं की जा सकती। इसके बिना तो वह गुलाम रहता है। नागरिकों की स्वतन्त्रता को छीनने वाला राज्य निरंकुश तथा अनैतिक है। विचार-स्वातन्त्र्य ही मनुष्य की सबसे बड़ी धरोहर है। मनुष्य विवेकशील प्राणी है, विचार ही उसकी पूँजी है। इसके अभाव में मानवता का विकास अवरुद्ध हो जायेगा। परतंत्रता ठीक नहीं। प्रतिबन्ध ठीक नहीं। रवीन्द्र नाथ ठाकुर ने अपनी कविता में लिखा है–''भगवान्, मुझे उस देश में ले चलो, जहाँ मानव-मन मुक्त हो एवं सिर ऊँचा हो। जहाँ संकीर्णता, अन्धविश्वास एवं रुढ़िवादी संस्कार प्रगति को अवरुद्ध न करें।'' राज्य

का यह दायित्व है कि जनता के मत-स्वातन्त्र्य तथा अभिव्यक्ति-स्वातन्त्र्य की, समाज-व्यवस्था सन्दर्भ में, रक्षा करे। साथ ही नागरिकों का भी यह दायित्व है कि वह अपने पवित्र अधिकार का दुरुपयोग न करें। स्वतन्त्रता का अर्थ मनमानी स्वतन्त्रता कदापि नहीं। स्वच्छन्दता कदापि नहीं। यह व्यक्ति तथा समाज सापेक्ष है, दोनों में परस्पर विरोध नहीं होना चाहिए। अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता में ही प्रेस की स्वतन्त्रता सन्निहित है। जनतन्त्र के लिए प्रेस की स्वतन्त्रता आवश्यक है। ''प्रेस स्वतन्त्रता के प्रहरी, न्याय की तलवार तथा सत्य की स्वर्णकिरण है।'' थामस जेफरसन ने तो यहाँ तक कह दिया कि उन्हें यह विकल्प दिया जाय कि ''समाचार पत्र के बिना सरकार'' या ''सरकार के बिना समाचार-पत्र'' में से किसी एक को चुनिए तो बिना एक क्षण विचार करे ''सरकार के बिना समाचार-पत्र'' को चुनना पसन्द करेंगे। समाचार पत्रों को राज्य का चतुर्थ आयाम माना जाता है। प्रेस की स्वतन्त्रता नागरिक, राजनैतिक तथा धार्मिक अधिकारों के संरक्षण के लिए परमावश्यक है। राज्य का दायित्व है कि वह समाचार-पत्रों, रेडियो, टेलीविजन आदि संचार के साधनों की स्वतन्त्रता तथा निष्पक्षता बनाये रखने का ईमानदारी से प्रयास करे। परन्तु हमारा भी दायित्व है कि हम प्रेस की स्वतन्त्रता का दुरुपयोग न करें। जनता का विश्वास उस पर बना रहे। सनसनीखेज पत्रकारिता (Yellow Journalism) वस्तुतः पत्रकारिता की मर्यादा का उल्लंघन है। जिनसे राष्ट्र का आन्तरिक शान्ति-व्यवस्था भंग हो या राष्ट्र की आन्तर्राष्ट्रीय शक्ति, सामर्थ्य तथा गौरव को प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से क्षति पहुँचे, ऐसी खबरों, समाचार आदि को प्रेस, मीडिया न छापे। भारतीय संविधान में प्रेस को पूरी आजादी है।

विचार-स्वातन्त्र्य तथा अभिव्यक्ति-स्वातन्त्र्य के बिना अपूर्ण है। ये दोनों संगठन स्वातन्त्र्य के बिना अधूरे हैं। संगठनों को बनाकर ही नागरिक अपने विचारों को प्रचारित कर सकते हैं। विभिन्न तरह के संगठन हो सकते हैं। विभिन्न तरह के संगठन, दल बनाने की स्वतन्त्रता होनी ही चाहिए, तानाशाही व्यवस्था ठीक नहीं। जनता का भी दायित्व है कि वह संगठन या दल का दुरुपयोग मात्र वर्ग समूह विशेष के हितों की रक्षा हेतु न करे। संगठन, पार्टी, दल से बड़ा देश या राष्ट्र है। देश व हित के विरुद्ध उद्देश्य व कार्यक्रम बनाने वाले किसी भी संगठन या दल को बने रहने का न कानूनी अधिकार है और न ही नैतिक।

राज्य का कोई अपना धर्म नहीं होना चाहिए। राज्य का काम है कि धार्मिक विश्वासों एवं कर्मकाण्डों का पालन करने के लिए सभी नागरिकों को समान स्वतन्त्रता प्रदान करे, जिस प्रकार से पूजा-प्रार्थना, व्रत, त्यौहार एवं प्रथाएँ मानना चाहता है निर्बाध माने। किन्तु प्रत्येक धर्मावलम्बियों का भी यही कर्तव्य है कि वह किसी दूसरे धर्म पर कीचड़ न उछाले, जबरदस्ती लोभ तथा भय किसी का धर्म-परिवर्तन नहीं करे। धर्म के नाम पर किसी प्रकार की क्रूरता, नृशंसता एवं मानव-विद्वेष का कार्य न करे। धर्म भी संस्कृति का एक अंग है। राज्य का दायित्व है कि वह हर धर्म एवं संस्कृति की रक्षा करे। भारतीय संविधान की धारा 16 में सभी धर्मावलम्बियों को समान अधिकार एवं अवसर दिये गये हैं। इसके मूल में भावना यही है कि नागरिक-नागरिक में धर्म या मजहब के आधार पर भेद नहीं करना चाहिए। 'सर्वधर्म समभाव' की नीति ही राज्य की सर्वोत्तम नीति हो। देश को खुशहाल बनाने के लिए धर्मनिरपेक्षता की जगह राष्ट्रीयता को महत्व देना होगा।[11]

जनतन्त्र में प्रत्येक वयस्क को अपना प्रतिनिधि चुनने का तथा स्वयं प्रतिनिधि चुने जाने का अधिकार होना चाहिए। जो राज्य जनता को इन दोनों अधिकारों से वंचित रखता है, उसी को तानाशाही कहते हैं। जनता का दायत्वि है कि वोट को एक पवित्र चीज मानें। जैसी जनता होगी वैसा शासन होगा। राज्य का भी दायित्व है कि निष्पक्ष तथा निर्भीक चुनाव-व्यवस्था करे। भ्रष्टाचार ठीक नहीं। व्यक्तिगत जीवन तथा सामाजिक जीवन में साध्यों तथा साधनों दोनों की पवित्रता पर भरपूर जोर दिया जाये।

न्याय राज्य का एक आवश्यक अंग है। राज्य में सबके लिए एक किस्म का कानून होना चाहिए। कानून की नजर में राष्ट्रपति से लेकर समान व्यक्ति तक सामान्य समझा जाना चाहिए। कानून के शासन का पालन जरूरी है, न्याय शीघ्रातिशीघ्र मिलना चाहिए, न्याय को सर्वसुलभ होना चाहिए। न्यायाधीशों को कानून का बन्दा होना चाहिए तथा निष्पक्ष एवं निर्भीक रहना चाहिए। जनता का दायित्व है कि न्याय-व्यवस्था का उचित सम्मान करें।

नागरिक तथा राजनैतिक स्वतन्त्रता के लिए आर्थिक स्वतन्त्रता होना आवश्यक है। सम्पत्ति भी व्यक्तित्व के विकास के लिए आवश्यक है। नागरिकों को सम्पत्ति की सुरक्षा करने का राज्य का नैतिक कर्त्तव्य है। व्यक्तिगत सम्पत्ति की भी सीमा होनी चाहिए। जीविका के साथ जीवन का घनिष्ठ सम्बन्ध है। जो राज्य अपने नागरिकों को जीविका नहीं प्रदान कर सकता वह कल्याणकारी राज्य होने का दावा नहीं कर सकता। सम्पूर्ण राज्य के सर्वाधिक विकास की जिम्मेदारी राज्य पर है। गरीबी व बेरोजगारी दूर करना उसका प्रथम दायित्व है राज्य बेकारी को रोके। ''रोजी-रोटी न दे सकने वाली सरकार निकम्मी सरकार है।''[12] मजदूर तथा मालिक संघों के संगठन को न्याय एवं सत्य पर चलना चाहिए। दण्ड के मामलों में राज्य का उद्देश्य सुधारवादी होना चाहिए। शिक्षा का अधिकार नागरिक का प्रधान अधिकार है। राज्य शिक्षा की समुचित व्यवस्था करे जो सर्वसुलभ हो और उत्तमकोटि का हो। समाज में समान शिक्षा-व्यवस्था हो। राज्य को समाज-कल्याण के कार्यों को बढ़ावा देना चाहिए और उस रास्ते में जो

व्यवधान उत्पन्न हो उसका निदान करे। कर्त्तव्य को ईश्वरीय आदेश माना जाये और उसका पालन किया जाये। व्यक्तिगत स्वार्थ ठीक नहीं है। अशिक्षा तथा अज्ञान को दूर करने का प्रयास किया जाए। नागरिकों को शिक्षा परमावश्यक है। 'अभाव से बढ़कर पराधीनता नहीं हो सकती'–(स्वामी विवेकानन्द)। अतः अभाव की उचित पूर्ति हो। सार्वजनिक महत्व के प्रश्नों पर नागरिक की उदासीनता राष्ट्रीय विकास के लिए घातक है।

जब तक अस्पृश्यता, विधवा-विवाह का विरोध एवं बाल-विवाह समाप्त नहीं होंगे तब तक कर्त्तव्य पालन में बाधा उत्पन्न होती रहेंगी। धार्मिक विश्वास, सामाजिक रूढ़ियाँ तथा राजनैतिक पूर्वाग्रह हमें कर्त्तव्य-पालन में बाधा देते हैं। इस तरफ भी ध्यान दिया जाए तथा उचित व्यवस्था हो। उग्र राष्ट्रीयता भी विश्वशान्ति के लिए खतरा है। कर्त्तव्य पालन में इसकी भी भूमिका की समीक्षा होनी चाहिए। पूँजीवाद वर्तमान समाज-व्यवस्था का सबसे बड़ा अभिशाप है। नागरिक सम्पूर्ण देश का होता है। क्षेत्रवाद, भाषावाद तथा जातिवाद ये सभी मानव सामाजिक कर्त्तव्य के लिए तथा राष्ट्र के लिए घातक होता है।

गाँधीजी ने कर्त्तव्य-पालन को ही अधिकार का स्रोत मानकर राजनीति को नैतिकता का वृहद् आयाम माना है। सारांश यह है कि राज्य व्यवस्था कितनी भी अच्छी क्यों न हो, प्रत्यक्ष व्यवहार में उसकी श्रेष्ठता किसी-न-किसी अंश में उन कर्त्तव्यों की योग्यता और सज्जनता या असफलता पर ही आधारित है, जिन्हें समाज की ओर से शासन-तंत्र सौंपा गया हो। 'राज्य' एक बात है और 'स्वराज्य' दूसरी बात। राज्य हिंसा से प्राप्त किया जाता है और स्वराज्य अहिंसा के बिना असम्भव है। विचारशील लोग राज्य नहीं चाहते, वे स्वराज्य के लिए प्रयत्न करते हैं। (नत्वहं कायमे राज्यम्, मतेमहि स्वराज्ये।) अतः राजनैतिक नैतिकता का मूल आधार अहिंसा होना चाहिए। अहिंसा को राजनैतिक, सामाजिक, कौटुम्बिक, आर्थिक तथा शैक्षणिक क्षेत्र में सर्वोच्च स्थान दिया गया है। सामाजिक अहिंसा के प्रयोग के बिना व्यापक राजनीति सम्भव नहीं है। नैतिकता तथा हिंसा का परस्पर विरोध है। अतः राजनैतिक नैतिकता के लिए अहिंसा का विस्तार आवश्यक है।[13]

## सन्दर्भ-सूची

1. J. B. Kriplani : Gandhian Thoughts, pg. 3.
2. हरिजन, 10.2.1940
3. Ethical Religion, pp 23-24
4. रामनाथ सुमन, गान्धीवाणी, पृ0 116-117
5. गाँधी : आत्मकथा
6. एस. राधाकृष्णन : Mahatma Gandhi : Essays and Reflections, Pg. 14
7. Hriday Nath Kunzru : "Spiritualistics Politics" Mahatma Gandhi, 100 years, Pg. 224
8. Aristotle : Politics, Pg. 224
9. रमेशचन्द्र सिन्हा : समाज दर्शन एवं राजनीतिक दर्शन की रूपरेखा, पृ0 204-205
10. डॉ0 रामजी सिंह : समाज दर्शन के मूल तत्व; राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, पृ0 379.
11. अमर उजाला (दैनिक समाचार-पत्र) : 7.12.2008, पृ0 5
12. डॉ. रामजी सिंह : समाज दर्शन के मूल तत्व, पृ0 383
13. वही, पृ0 387

***

**Geography**

Shodh Sandarsh-V, Vol.-XVI, Sept.-2017, Page : 161-163

ISSN No. - 2319–5908 (U.G.C. Approved Journal No. : 41329)

# अवनलिका अपरदन का कृषि पर प्रभाव

*शिव चरण गिरि**

मृदा पृथ्वी की सबसे ऊपरी परत है जो भूसतही जीवन चक्र को संचालित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। किसानों के लिए मृदा का बहुत अधिक महत्व होता है, क्योंकि किसान इसी मृदा से प्रत्येक वर्ष स्वस्थ व अच्छी फसल की पैदावार करते हैं। बहते हुए जल या वायु के प्रवाह द्वारा मृदा के पृथक्करण तथा एक स्थान से दूसरे स्थान तक स्थानान्तरण को ही मृदा अपरदन कहा जाता है। मृदा अपरदन से प्रभावित लगभग 150 मिलियन हेक्टेयर क्षेत्रफल है जिसमें से 69 मिलियन हेक्टेयर क्षेत्रफल अपरदन की गंभीर स्थिति की श्रेणी में रखा गया है। मृदा की ऊपरी सतह का प्रत्येक वर्ष अपरदन द्वारा लगभग 5334 मिलियन टन में से अधिक क्षय हो रहा है। देश के कुल भौगोलिक क्षेत्रफल का 57 प्रतिशत भाग मृदा ह्रास के विभिन्न प्रकारों से ग्रस्त है। जिसका 45 प्रतिशत जल अपरदन से तथा शेष 12 प्रतिशत भाग वायु अपरदन से प्रभावित है। हिमाचल प्रदेश की मृदाओं में जल अपरदन एक प्रमुख समस्या है।

**मृदा अपरदन के कारण–**अपरदन के कारणों को जाने बिना अपरदन की प्रक्रियाओं व इसके स्थानान्तरण की समस्या को समझना मुश्किल है। मृदा अपरदन को जैविक व अजैविक कारणों में बाँटा जा सकता है। किसी दी गई परिस्थिति में एक यह दो कारण प्रभावी हों। अजैविक कारणों में जल व वायु प्रधान घटक है जबकि बढ़ती मानवीय गतिविधियों को जैविक कारणों में प्रधान माना गया है। जो मृदा अपरदन को त्वरित करता है।

मृदा अपरदन को मुख्यतः दो भागों में विभाजित किया गया है–

**1. भूगर्भिक अपरदन–**प्राकृतिक या भूगर्भिक अपरदन मृदा अपरदन को इसकी प्राकृतिक अवस्था में अभिव्यक्त करता है। प्राकृतिक स्थिर परिस्थितियों में किसी स्थान की जलवायु एवं वानस्पतिक परत, जो कि मृदा अपरदन या प्राकृतिक अपरदन वनस्पतिक परत में अपरदन को दर्शाता है। इसके अन्तर्गत अपरदन गति इतनी धीरे होती है कि होने वाला मृदा ह्रास चट्टानों के विघटन प्रक्रिया से बनने वाली नई मृदा में समायोजित हो जाता है। इस प्रकार होने वाला मृदा, ह्रास, मृदा निर्माण से कम या बराबर होता है।

**2. त्वरित अपरदन–**जब मृदा निर्माण व मृदा ह्रास के बीच प्राकृतिक संतुलन, मानवीय गतिविधियों जैसे कि वृहत स्तर पर वनों की कटाई या वन भूमि को कृषि भूमि में रूपांतरित करके प्रभावित किया जाता है जिससे अपरदन तीव्रता कई गुणा बढ़ जाती है। ऐसी परिस्थिति में प्राकृतिक साधनों से सतही मृदा ह्रास दर, मृदा निर्माण दर से अधिक होती है। त्वरित अपरदन, भूगर्भिक अपरदन की अपेक्षा तीव्र गति से होता है। त्वरित अपरदन से कृषि योग्य भूमि का उपजाऊपन लगातार कम होता जाता है। जिससे अपरदन तीव्रता कई गुना बढ़ जाती है। ऐसी परिस्थितियों में प्राकृतिक साधनों से सतही मृदा ह्रास दर, मृदा निर्माण दर से अधिक होती है। त्वरित अपरदन, भूगर्भिक अपरदन की अपेक्षा तीव्र से होता है। त्वरित अपरदन से कृषि योग्य भूमि का उपजाऊपन लगातार कम होता जाता है।

**जल अपरदन के प्रकार–**जल के अभिगमन द्वारा मृदा का ह्रास जल अपरदन कहलाता है। उच्च व मध्यम ढाल वाली भूमि में मृदा ह्रास का मुख्य कारण जल अपरदन ही होता है। जब अत्यधिक वर्षा के कारण उत्पन्न जल बहाव के द्वारा मृदा को बहा कर दूर ले जाया जाता है तो जल अपरदन होता है। जल अपरदन के विभिन्न प्रकार निम्नलिखित हैं–

**1. वर्षा जल अपरदन–**गिरती हुई वर्षा जल की बूंदों के प्रभाव से होने वाले मृदा कणों के पृथक्करण एवं स्थानान्तरण को वर्षा जल अपरदन कहते हैं जिसे बौछार अपरदन के नाम से भी जाना जाता है। मृदा की एक बड़ी मात्रा बौछार की इस सरल प्रक्रिया द्वारा नष्ट हो जाती है एवं इसे अपरदन प्रक्रिया में प्रथम चरण के रूप में जाना जाता है। इस प्रक्रिया में मृदाकणों को मुख्यतः कुछ सेंटीमीटर की दूरी तक ले जाया जाता है तथा इसके प्रभाव स्थानीय होते हैं।

* *प्रवक्ता, भूगोल विभाग, ए.आई.सी. कौशाम्बी, उत्तर प्रदेश*

**2. धारा तट अपरदन—**नदी तल से जल प्रवाह द्वारा नदी के किनारों के मृदा कटाव को धारा तट अपरदन कहते हैं। धारा तट अपरदन व नाली अपरदन विभेदन करने योग्य है। धारा तट अपरदन मुख्यतया सहायिकाओं के निचले स्तर पर तथा नाली अपरदन सामान्य रूप से सहायिकाओं के ऊपरी सिरे से होता है। वानस्पतिक कटाव, अतिचारण या किनारों के निकट जुताई करने से तीव्र हो जाता है।

**3. भूस्खलन अपरदन—**भूस्खलन या मृदापिंड अपरदन पहाड़ी सतह या पर्वतीय ढाल के नीचे गीली ढालदार भूमि पर होता है। इसके मुख्य कारण जैसे ढालों पर कटाई या खुदाई, कमजोर भूगर्भ या ढालों पर वानस्पतिक फैलाव की कमी से अपरदन में वृद्धि हो जाती है।

**मृदा संरक्षण के उपाय—**हमारे देश में भूमि कटाव की समस्या दिन प्रतिदिन गंभीर होती जा रही है। अतः जल ग्रहण व्यवस्था में भूमि संरक्षण प्रमुख कार्य होता है। इसकी उपयोगिता पर्वतीय जल संग्रह करने से और अधिक बढ़ जाती है। जल संग्रहण क्षेत्र सामान्यतया ढलानदार होते हैं। इससे ढाल का भूमि क्षरण पर प्रत्यक्ष प्रभाव होता है। ढाल अधिक होने से बहने वाले जल का वेग अधिक हो जाता है। गिरती हुई वस्तु के नियम के अनुसार वेग, खड़े ढाल के वर्गमूल के अनुसार बदलता है। यदि भूमि का ढाल चार गुणा बढ़ जाता है तो बहते हुए जल का वेग लगभग दो गुणा हो जाता है। बहते हुए जल का वेग दो गुणा हो जाने पर जल की क्षरण क्षमता चार गुणा अधिक हो जाती है। इस प्रकार जल परिवहन क्षमता 32 गुणा बढ़ जाती है। यही कारण है कि ढलानदार स्थानों में भूक्षरण अधिक होता है।

जलवायु के समान मृदा भी एक प्राकृतिक संसाधन है, जो प्राणियों/प्राणिमात्र को भोजन एवं रहन-सहन, विचरण-क्रिया प्रदान करती है। भूमि का योगदान मानवीय गतिविधियों के अतिरिक्त पारिस्थितिकी तंत्र में जलचक्र, नाइट्रोजन चक्र, ऊर्जा चक्र इत्यादि को व्यवस्थित करने में होता है। जहाँ मृदा तक मानवीय गतिविधियों का प्रश्न है, तो खेती से लेकर कचरा फेंकने तक सभी आर्थिक गतिविधियों का आधार भूमि ही होती है।

घरेलू कचरा, लौह अपशिष्ट औद्योगिक इकाइयों के अपशिष्ट आदि भूमि को प्रदूषित करते हैं। इन अपशिष्टों में जहरीले अकार्बनिक एवं कार्बनिक रसायनों के अवशेष पाये जाते हैं, जो हानिकारक होते हैं। इन अवशेषों में रेडियो-विकिरण तत्व जैसे स्ट्रॉन्शियम, कैडमियम, यूरेनियम, लैड आदि पाये जाते हैं, जो भूमि की जीवंतता एवं उर्वरता को प्रभावित करते हैं। चिमनियों से निकलने वाला पदार्थ, औद्योगिक क्षेत्र के आस-पास प्रदूषण का मुख्य स्रोत है। बहुत से अपशिष्ट जिनका जैविक अपघटन नहीं होता जैसे— पालीथिन बैग, प्लास्टिक आदि बहुत समय तक मृदा में अवरुद्ध रहकर एवं भौतिक संरचना को प्रभावित करते हैं।

व्यावसायिक कृषि में पेट्रो रसायन जैसे खरपतवारनाशी, कीटनाशी आदि का बेतहाशा प्रयोग किया जा रहा है साथ में अकार्बनिक रासायनिक उर्वरक का भी प्रयोग दिनों-दिन बढ़ रहा है। रासायनिक उर्वरकों में फास्फेट, नाइट्रोजन एवं अन्य कार्बनिक रासायनिक भूमि के पर्यावरण एवं भूमिगत जल संसाधनों को प्रदूषित कर रहे हैं। सर्वाधिक खतरनाक प्रदूषक जैवनाशी रसायन है जिनके कारण जलवायु एवं अन्य मृदा के सूक्ष्म जीव, नष्ट हो रहे हैं। फलस्वरूप मिट्टी की गुणवत्ता में कमी हो रही है। विषैले रसायन आहार शृंखला में प्रविष्ट हो जाते हैं जिससे उनकी पहुँच शीर्ष उपभोक्ता तक हो जाती है जैवनाशी रसायनों को रेंगती मृत्यु भी कहा जाता है। गत 30 वर्षों में जैव रसायनों के प्रयोग में 11 गुने से अधिक की वृद्धि हुई है। अकेले भारतवर्ष में प्रतिवर्ष 100000 टन जैव रसायनों का प्रयोग हो रहा है।

विश्व खाद्य एवं कृषि संगठन की एक रिपोर्ट के अनुसार विगत 30 वर्षों में कीटनाशकों का प्रयोग 11 गुना बढ़ा है। कीटनाशकों की विषाक्तता से प्रतिवर्ष लगभग 10 हजार लोगों की मृत्यु हो रही है। विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार प्रतिवर्ष लगभग 5 लाख लोग जैव रसायनों की विषाक्तता के शिकार होते हैं।

मृदा प्रदूषण के मुख्य प्रभाव निम्नवत हैं—

1. मृदा की गुणवत्ता में ह्रास एवं उर्वरकता में कमी होती है जिसके कारण कृषि उत्पादन में कमी तथा खाद्यान्न संकट में बढ़ोत्तरी होती है।
2. मृदा अपरदन से मृदा बंजर भूमि में बदल जाती है।
3. रासायनिक उर्वरकों एवं जैवनाशी रसायनों के कारण संपूर्ण पारिस्थितिकी तंत्र में असंतुलन पैदा होता है एवं विषाक्तता से मृत्यु तक हो जाती है।

मृदा प्रदूषण के प्रभावों को देखते हुए इस पर नियंत्रण नितांत आवश्यक है। मिट्टी कृषकों का धन है इसके गुणों के ह्रास से न केवल कृषक ही बल्कि देश की अर्थव्यवस्था, मानव स्वास्थ्य, जीव-जन्तु, वनस्पतियाँ आदि भी प्रभावित होती हैं, जन्तु जंगल एवं पादप जंगल का अस्तित्व मिट्टी पर आधारित होता है।

सघन वनस्पति आचरण के कारण जल बूंदे सीधे धरातल पर नहीं पहुँचती हैं। फलस्वरूप मृदा संगठन मजबूत और सुरक्षित रहता है। जल प्रवाह धीमा एवं मृदा अपरदन कम होता है। वनस्पति आचरण की वृद्धि योजनाबद्ध तरीके से करना आवश्यक है।

बलुआ धरातल पर जल प्रवाह तीव्र होता है फलतः अपरदन अधिक होता है। समोच्च रेखाओं के अनुसार जुताई करने पर जल प्रवाह पर नियंत्रण रहता है। फलस्वरूप मृदा अपरदन कम होता है।

नदी घाटियों अथवा पर्वतीय ढालों पर सीढ़ीदार खेत का निर्माण कर कृषि कार्य किया जाता है। फलस्वरूप जल का प्रवाह रुक-रुक कर होता है और मृदा अपरदन कम होता है। इसके लिए सीढ़ीदार खेतों की दीवारों को मजबूत बनाना आवश्यक है। क्योंकि दीवारों के कमजोर होने से वर्षा के समय दीवारें टूट जाती हैं।

जलवायुविक दशाओं के अनुसार एक ही खेत में वर्ष में दो अथवा तीन फसलों को एक के बाद एक उगाते हैं तो इसे फसल चक्र कहा जाता है। एक ही फसल के लगातार उगाने से भूमि की उर्वर क्षमता कम हो जाती है।

स्थानान्तरित कृषि से विश्व पर प्रति वर्ष काफी मात्रा में वनस्पतियाँ तथा भूमि बेकार हो जाती है। फलस्वरूप संसार के विभिन्न क्षेत्रों में होने वाली इस कृषि पर नियंत्रण आवश्यक है।

अवनलिका अपरदन से भूमि ऊबड़-खाबड़ हो जाती है। मिट्टी की अपरदन रोधी क्षमता बहुत कम हो जाती है। वनस्पतियाँ नष्ट हो जाती हैं। अतः वनस्पति आचरण में वृद्धि एवं बांध निर्माण द्वारा अवनलिका अपरदन पर नियंत्रण किया जाता है।

## सन्दर्भ सूची


1. Azapagic A and S. Perdan Idicators of Sustanable Development for Industry : A General Framework.
2. Process Safety and Environmental Protection.
3. Volume 12, Issue 3, 2007.
4. AMBIO : A Journal of the Human Environment 31(5) 2002.
5. Hammond, G.P. : Energy, Environment and Sustainable Development : A UK Perspective.
6. Kausbik Anubha – Perspectives in Environmental Studies New Age International, 2016.
7. Futures, Volume 20, Issue 6, December, 1988.
8. Pearce, David – Economics, Equity and Sustainable Development.


***

Geography
Shodh Sandarsh-V, Vol.-XVI, Sept.-2017, Page : 164-174
ISSN No. - 2319–5908 (U.G.C. Approved Journal No. : 41329)

# जलापूर्ति, समस्या एवं समाधान : जनपद जौनपुर का एक भौगोलिक विश्लेषण

*बबिता शुक्ला**

**प्रस्तावनाः—**पृथ्वी पर जल की उलब्धता मानव जीवन के साथ-साथ सम्पूर्ण पारिस्थितिक तंत्र के लिये सर्वाधिक महत्वपूर्ण अमूल्य निधि है। सभी प्रकार के जैविक-अजैविक घटकों की जल पर पर ही निर्भरता है वर्तमान समय में बढ़ती जनसंख्या, औद्योगिकरण, नगरीकरण, वन विनाश, पर्यावरण प्रदूषण, भूमिगत जल की कमी सामाजिक सांस्कृतिक एवं आर्थिक परिवर्तन आदि कारणों से अनेक समस्याएँ उत्पन्न हो रही हैं जो सम्पूण जीवन के अतिस्तत्व के लिये खतरा है।

**अध्ययन के उद्देश्य—**प्रस्तुत शोध पत्र में जनपद जौनपुर के सन्दर्भ में जलापूर्ति किन-किन माध्यमों से किस स्तर तक किया जा रहा है, एवं अजैविक घटकों पर किस रूप में प्रभाव पड़ रहा है, की व्याख्या एवं विश्लेषण किया गया है।

**आंकड़े एवं विधि तंत्र—**प्रस्तुत शोध-पत्र में प्राथमिक एवं द्वितीयक आंकड़ों, आरेख, मानचित्र, रेखाचित्र, सारिणीयन एवं सांख्यिकीय विधियों का प्रयोग किया गया है ये आंकड़े जिला सांख्यिकीय पत्रिका वर्ष 2000 से 2015 तक जिला अर्थ एवं संख्या अधिकारी कार्यालय जनपद जौनपुर से प्राप्त हैं।

**तालिका : जनपद जौनपुर पेयजल आपूर्ति का कालिक वितरण**

| क.सं. | वर्ष | नल/हैण्डपम्प इण्डिया मार्क–2 लगाकर जल सम्पूर्ति के अन्तर्गत ग्राम (संख्या) | | | | सामान्य प्रयोगें में लाये जा रहें स्रोतों के अनुसार ग्रामों की संख्या | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| | | पूर्ण आच्छादित | आंशिक आच्छादित | लाभान्वित जनसंख्या | कुँआ | सधारण हैण्डपम्प | हैण्डपम्प इण्डिया मार्क–2 | नल | अन्य | योग (स्तम्भ 5–9) |
| | 1 | 2 | 3 | 4 | 5 | 6 | 7 | 8 | 9 | 10 |
| 1 | 2000-01 | 3008 | 98 | 1468524 | 2463 | 434 | 2205 | 0 | 0 | 5102 |
| 2 | 2001-02 | 3016 | 252 | 2165230 | 619 | 438 | 2211 | 0 | 0 | 3268 |
| 3 | 2002-03 | 3021 | 247 | 2201355 | 613 | 436 | 2219 | 0 | 0 | 3268 |
| 4 | 2003-04 | 3091 | 177 | 2228673 | 485 | 403 | 2177 | 203 | 0 | 3268 |
| 5 | 2004-05 | 3126 | 164 | 3622268 | 476 | 417 | 2194 | 203 | 0 | 3290 |
| 6 | 2005-06 | 3139 | 151 | 3622268 | 466 | 414 | 2207 | 203 | 0 | 3290 |
| 7 | 2006-07 | 3152 | 138 | 3622268 | 466 | 414 | 2207 | 203 | 0 | 3290 |
| 8 | 2007-08 | 3161 | 129 | 3622268 | 466 | 414 | 2207 | 203 | 0 | 3290 |
| 9 | 2008-09 | 3161 | 129 | 3622268 | 466 | 414 | 2207 | 203 | 0 | 3290 |
| 10 | 2009-10 | 3178 | 112 | 3622268 | 473 | 417 | 2293 | 107 | 0 | 3290 |
| 11 | 2010-11 | 2154 | 1136 | 3622268 | 473 | 417 | 2293 | 107 | 0 | 3290 |
| 12 | 2011-12 | 2455 | 835 | 3622268 | 473 | 417 | 2293 | 107 | 0 | 3290 |
| 13 | 2012-13 | 2730 | 559 | 4147624 | 464 | 417 | 2299 | 107 | 0 | 3287 |
| 14 | 2013-14 | 2930 | 357 | 3622268 | 351 | 417 | 2412 | 107 | 0 | 3287 |
| 15 | 2014-15 | 2930 | 357 | 3622268 | 351 | 417 | 2412 | 107 | 0 | 3287 |

स्रोत : अधिशासी अभियन्ता जल निगम, जनपद जौनपुर जिला सांख्यिकीय पत्रिका जौनपुर 2010-2015

* *जे. आर. एफ., भूगोल विभाग, राजा हरपाल सिंह, पी.जी. कॉलेज, सिंगरामऊ, जौनपुर (उत्तर प्रदेश)*

**स्थिति एवं विस्तार–**जनपद जौनपुर की स्थिति उत्तर प्रदेश राज्य के पूर्वी भाग में है। इसका विस्तार 25$^0$ 24' उत्तरी अक्षांश से 26$^0$ 12' उत्तरी अक्षांश के मध्य तथा देशान्तरीय विस्तार 82.7$^0$ पूर्वी देशान्तर के मध्य है। यह जनपद वाराणसी मण्डल के उत्तर पश्चिमी भाग में स्थित है। इसकी पश्चिम से पूरब की लम्बाई लगभग 90 किमी. उत्तर से दक्षिण की चौड़ाई लगभग 85 किमी0 है। इसके उत्तर में सुल्तानपुर, पश्चिम में प्रतापगढ़, दक्षिण पश्चिम में इलाहाबाद, दक्षिण में संत रविदासनगर (भदोही), दक्षिण-पूरब में गाजीपुर एवं उत्तर पूरब दिशा में आजमगढ़ अवस्थित है। जनपद का सम्पूर्ण क्षेत्रफल 4040 किमी.[2] है जो प्रदेश के क्षेत्रफल का 1.4% है। इसका आकार चतुर्भुजाकार है। यह राज्य के प्रमुख ऐतिहासिक जनपदों में से एक है जिसकी स्थापना शर्की साम्राज्य के रूप में 14वीं शताब्दी में फिरोज तुगलक द्वारा अपने चचेरे भाई सुल्तान मुहम्मद (जौना खाँ) की याद में किया गया। मुख्य नदियाँ गोमती, सई एवं अन्य वरुणा पीली, वसुही, मयूर आदि छोटी नदियाँ हैं। मृदा मुख्य रूप से रेतीली, चिकनी एवं बलुई है। जनपद जौनपुर का उच्चावच प्लीस्टोसीन कालीन गंगा जलोढ़ से निर्मित हैं जो गंगा एवं घाघरा दोआब में स्थित है।

**जल संसाधन वैश्विक सन्दर्भ में–**जल के बिना जीवन सम्भव नहीं है यह सर्वाधिक महत्वपूर्ण एवं अमूल्य संसाधन है जिसकी खपत दिन प्रतिदिन आपूर्ति की अपेक्षा बढ़ रही है। जल का उपयोग पीने के लिए, सिंचाई, विद्युत उत्पादन, मत्स्य-पालन, परिवहन, उद्योग, घरेलू कार्यों हेतु किया जाता है और स्रोत के आधार पर सामुदिक, सतही एवं भूमिगत जल उपलब्ध है। **शिक्लोमनोव** की पुस्तक Water in Crisis के अनुसार विश्व में कुल जल संसाधन का 96.5% महासागर में, मीठे जल का भण्डार 2.53% जिसका 68.77% हिमानी एवं स्थायी हिमावरण, 0.86% परमाफ्रास्ट के रूप में एवं 0.34% नदियों, झीलों आदि में विद्यमान है।

जनपद जौनपुर में पेयजल आपूर्ति का कालिक वितरण के अन्तर्गत तालिका संख्या–1 में स्पष्ट रूप से प्रदर्शित है। वर्ष 2000-01 से 2014-15 तक नल/हैण्डपम्प/इण्डिया मार्क-2 लगाकर जल सम्पूर्ति के अन्तर्गत जनसंख्या तथा सामान्य प्रयोगों में लाये जा रहे स्रोतों (कुँआ, साधारण हैण्डपम्प इण्डिया मार्क-2, नल एवं अन्य संसाधन) के अनुसार ग्रामों की संख्या दी गयी है।

सन् 2000-01 में पूर्ण आच्छादित 3008 गाँव, आंशिक आच्छादित गाँव 98, पर लाभन्वित जनसंख्या 1468524 थी जिसमें कुएं द्वारा जलापूर्ति में 2463 गाँव, साधारण हैण्डपम्प द्वारा 434 गाँव हैण्डपम्प इण्डिया मार्क-2 द्वारा 2205 गाँव, जबकि नल एवं अन्य द्वारा नगण्य है। कुल गाँवों की संख्या 5102 थी।

सन् 2001-01 में कुल गाँवों में पूर्णतः आच्छादित 3016 एवं आंशिक 252 गाँव की लाभन्वित जनसंख्या 2165230 थी। 619 गाँवों में कुँआ 438 गाँव में साधारण हैण्डपम्प, 2211 गाँवों में हैण्डपम्प मार्क-2 और नल एवं अन्य संसाधन नगण्य है।

सन् 2002–03 में कुल गाँवों में पूर्णतः आच्छादित 3021 गाँव आंशिक आच्छादित 247 गाँवों में लाभान्वित जनसंख्या 2201355 थी। जिसमें कुँआ के द्वारा 613 गाँवों में जलापूर्ति हेतु उपयोग किया जा रहा था जो कि पिछले वर्ष की अपेक्षा घटा है। साधारण हैण्डपम्प के द्वारा 436 गाँव, हैण्डपम्प इण्डिया मार्क–2 द्वारा 2219 गाँव जो कि सर्वाधिक थी अर्थात् कुएं एवं साधारण हैण्डपम्प की तुलना में अधिक थी। नल एवं अन्य स्रोत स्थिति नगण्य है।

सन् 2003–04 में कुल गांव 3268 में पूर्णतः आच्छादित 3091, एवं आंशिक आच्छादन में 177 गांव थे। कुल लाभान्वित जनसंख्या 2228673 थी। जिसमें 485 गांव कुएँ द्वारा, साधारण हैण्डपम्प में 403 गाँव, हैण्डपम्प इण्डिया मार्क–2 द्वारा 2177, नल द्वारा जलापूर्ति 203 गाँव, में उपलब्ध हो गयी थी।

सन् 2004-05 में गाँव, 3290 में पूर्णतः आच्छादित 3126, आंशिक आच्छादित 164 गाँव तथा लाभान्वित जनसंख्या 3622268 थी। कुएँ द्वारा 476 गाँव साधारण हैण्डपम्प में 417 गाँव, हैण्डपम्प इण्डिया मार्क-2 द्वारा 2194, नल द्वारा 203 गाँवों में अन्य में कुछ नहीं था।

सन् 2005-06 में गांवों की संख्या, 3290 में पूर्णतः आच्छादित 3139 गाँव, आंशिक आच्छादित 151 गाँव तथा लाभान्वित जनसंख्या 3622268 थी। कुएँ का प्रयोग 466 गाँव साधारण हैण्डपम्प में 414, हैण्डपम्प इण्डिया मार्क-2 द्वारा 2207, गाँव नल द्वारा 203 गाँवों में, अन्य में शून्य था।

सन् 2006-07 में गाँव 3290 गाँवों में पूर्णतः आच्छादित 3152 गाँव, आंशिक आच्छादित में 138 गाँव लाभान्वित जनसंख्या 3622268 थी। कुएँ का प्रयोग 466 गाँव, साधारण हैण्डपम्प में 414 हैण्डपम्प इण्डिया मार्क-2 द्वारा 2207, गाँव नल द्वारा 203 गाँव अन्य साधन शून्य में जलापूर्ति हेतु उपयोग किया जाता है।

सन् 2007-08 में कुल 3290 गाँवों में पूर्णतः आच्छादित 3161 गाँव, आंशिक आच्छादित 129 गाँव, लाभान्वित जनसंख्या 3622268 थी। 466 गाँवों में कुएँ, 414 गाँवों में साधारण हैण्डपम्प, 2207 गाँवों में हैण्डपम्प इण्डिया मार्क-2, 203 गाँवों में नल द्वारा जलापूर्ति की व्यवस्था थी।

सन् 2008-09 में सभी आँकड़े पूर्ववत् हैं।

सन् 2009-10 में कुल 3290 गाँवों में पूर्णतः आच्छादित 3178 गाँव, आंशिक आच्छादित 112 गाँव, लाभान्वित जनसंख्या 3622268 थी। कुएँ का उपयोग 473 गाँवों में, साधारण हैण्डपम्प का उपभोग 417 गाँवों में हैण्डपम्पइण्डिया मार्क-2 द्वारा 2293 गँव, 107 गाँव में उपयोग किया जाता था।

सन् 2010-11 में कुल 3290 गाँव थे जिसमें पूर्णतः आच्छादित गाँव 2154, आंशिक आच्छादित 1136 गाँवों की कुल लाभान्वित जनसंख्या 3622268 थी। कुँएँ का उपयोग 473 गाँवों में, साधारण हैण्डपम्प का उपयोग 417 गाँवों में हैण्डपम्प इण्डिया मार्क-2 का उपयोग 2293 गाँवों में, नल का उपयोग 107 गाँवों में, अन्य में शून्य में उपयोग किया जाता था।

2011-12 सत्र में कुल गाँव 3290 जिसमें पूर्णतः आच्छादित 2455 गाँव, आंशिक आच्छादित 835 गाँव, कुल लाभान्वित जनसंख्या 3622268 थी। कुएँ द्वारा 473 गँव, साधारण हैण्डपम्प 417 गाँव, हैण्डपम्प इण्डिया मार्क-2 2293, नल का उपयोग 107 गाँवों में किया जाता है।

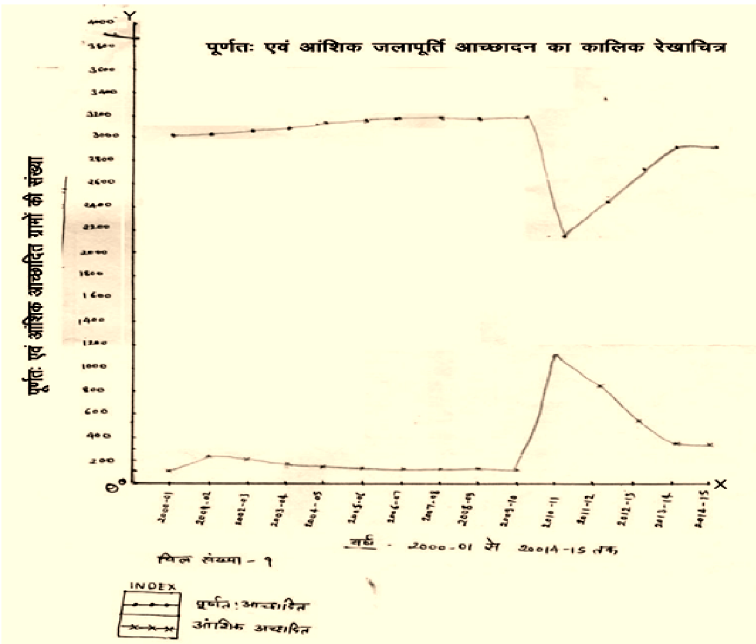
सन् 2012-13 सत्र में कुल गाँव 3287 में पूर्णतः आच्छादित गाँवों की संख्या 2730, आंशिक आच्छादित 559, कुल लाभान्वित जनसंख्या 4147624 (सर्वाधिक) थी। कुँए का उपयोग 464 गाँव, साधारण हैण्डपम्प द्वारा 417 गाँव, हैण्डपम्प इण्डिया मार्क-2 द्वारा 2299 गाँव, नल द्वारा 107 गाँवों में उपयोग किया जाता है।

2013-14 सत्र में कुल गाँव 3287 में पूर्णतः आच्छादित 2930, आंशिक आच्छादित गाँव 357, लाभान्वित जनसंख्या 3622268 थी। कुँए का उपयोग 351 गाँवों में साधारण हैण्डपम्प द्वारा 417, हैण्डपम्प इण्डिया मार्क-2 का उपयोग 2412 गाँवों में, नल का उपयोग 107 गाँवों में अन्य में शून्य का उपयोग किया जाता था।

2014-15 सत्र में सभी आँकड़े पूर्ववत् हैं।

तालिका संख्या-1 के वार्षिक आँकड़े एवं पूर्णतः तथा आंशिक आच्छादित गाँवों की संख्या में होने वाले कालिक परिवर्तन को चित्र संख्या-1 में प्रदर्शित किया गया है। OY रेखा पर पूर्णतः एवं आंशिक आच्छादित ग्रामों की संख्या और OX अक्ष पर वर्ष 2000-01 से 2014-15 तक प्रदर्शित किया गया है। रेखाचित्र में पूर्णतः आच्छादन का ग्राफ 2000-01 तक मामूली परिवर्तन के साथ बढ़ा है। सन् 2010-11 में घटकर 2154 गाँव रह गया जो 2011-12 से फिर बढ़ते हुए 2013 से 2015 तक समान हो गया। अर्थात् पूर्णतः आच्छादित का ग्राफ धीरे-धीरे बढ़ा है।

चित्र संख्या-A में आंशिक आच्छादन में सबसे कम 2000-01 में है। जिसके पश्चात् 2001-02 में वृद्धि तथा 2009-10 तक कमी 2010-11 में बढ़कर 1136 गाँव हो गये। सन् 2010-11 से ग्राफ में फिर कमी आयी तथा 2013 से 2015 तक समान रह है।



तालिका एवं चित्र संख्या-1 से स्पष्ट है कि सन् 2000-01 में सुविधाओं की कमी के कारण कुँए का उपयोग अधिकतर गाँवों में किया जाता था। हैण्डपम्प इण्डिया मार्क-2 का उपयोग भी सन्तोषजनक भी था। साधारण हैण्डपम्प की संख्या 434 थी जबकि नल द्वारा जलार्पूित की सुविधा नहीं थी लेकिन धीरे-धीरे जलापूर्ति स्रोत में वृद्धि हुई। भूमिगत जलस्रोत का दोहन बढ़ा। लगभग सभी गाँवों में साधारण हैण्डपम्प इण्डिया मार्क-2 हैण्डपम्प, नलों की संख्या में वृद्धि हुई। कुँए का उपयोग धीरे-धीरे कम हुआ। पूर्णतः एवं आंशिक आच्छादन दोनों में बढ़ोत्तरी हुई है। सर्वाधिक लाभान्वित जनसंख्या सन् 2012-13 में 4147624 थी। 2010-11 में ंशिक आच्छादन में कमी एवं आंशिक में वृद्धि (1136) हुई।

**तालिका 2 : गांवों में पेयजलापूर्ति की सुविधा विकास खण्डवार जनपद- जौनपुर**

| क. सं. | विकास खण्ड | नल/हैण्डपम्प इण्डिया मार्क–2 लगाकर जल सम्पूर्ति के अन्तर्गत ग्राम (संख्या) | | | सामान्य प्रयोगों में लाये जा रहें स्रोतों के अनुसार ग्रामों की (संख्या) | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| | | पूर्ण आच्छादित | आंशिक आच्छादित | लाभान्वित जनसंख्या | कुँआ | सधारण हैण्डपम्प | हैण्डपम्प इण्डिया मार्क–2 | नल | अन्य | योग (स्तम्भ 5–9) |
| | 1 | 2 | 3 | 4 | 5 | 6 | 7 | 8 | 9 | 10 |
| 1 | सुइथाकला | 140 | 5 | 80805 | 94 | 30 | 105 | 0 | 0 | 229 |
| 2 | शाहगंज | 172 | 6 | 70407 | 143 | 24 | 128 | 0 | 0 | 295 |
| 3 | खुटहन | 165 | 4 | 80923 | 148 | 19 | 110 | 0 | 0 | 277 |
| 4 | करंजाकला | 173 | 5 | 95125 | 125 | 22 | 134 | 0 | 0 | 281 |
| 5 | बदलापुर | 181 | 5 | 72876 | 155 | 21 | 131 | 0 | 0 | 307 |
| 6 | महराजगंज | 145 | 4 | 67172 | 129 | 20 | 114 | 0 | 0 | 263 |
| 7 | बक्शा | 145 | 6 | 80207 | 98 | 24 | 124 | 0 | 0 | 246 |
| 8 | सुजानगंज | 153 | 6 | 62868 | 152 | 27 | 112 | 0 | 0 | 291 |
| 9 | मुंगराबादशाहपुर | 106 | 4 | 56240 | 74 | 18 | 67 | 0 | 0 | 159 |
| 10 | मछलीशहर | 150 | 5 | 67555 | 128 | 38 | 119 | 0 | 0 | 285 |
| 11 | मड़ियाहूँ | 180 | 5 | 91337 | 148 | 32 | 138 | 0 | 0 | 318 |
| 12 | बरसठी | 148 | 4 | 69450 | 122 | 15 | 111 | 0 | 0 | 248 |
| 13 | सिकरारा | 143 | 5 | 65977 | 124 | 14 | 107 | 0 | 0 | 245 |
| 14 | धर्मापुर | 100 | 4 | 45785 | 84 | 6 | 56 | 0 | 0 | 146 |
| 15 | रामनगर | 176 | 4 | 88521 | 139 | 27 | 122 | 0 | 0 | 288 |
| 16 | रामपुर | 154 | 6 | 78447 | 143 | 18 | 136 | 0 | 0 | 297 |
| 17 | मुफ्तीगंज | 88 | 4 | 36936 | 77 | 12 | 64 | 0 | 0 | 153 |
| 18 | जलालपुर | 87 | 3 | 59596 | 75 | 12 | 60 | 0 | 0 | 147 |
| 19 | केराकत | 111 | 4 | 56594 | 83 | 13 | 71 | 0 | 0 | 167 |
| 20 | डोभी | 115 | 4 | 55125 | 91 | 11 | 70 | 0 | 0 | 172 |
| 21 | सिरकोनी | 176 | 5 | 86587 | 131 | 31 | 126 | 0 | 0 | 288 |
| | योग ग्रामीण | 3008 | 98 | 1468524 | 2463 | 434 | 2205 | 0 | 0 | 5102 |
| | योग नगरीय | 0 | 0 | 0 | 0 | 0 | 0 | 0 | 0 | 0 |
| | योग जनपद | 3008 | 98 | 1468524 | 2463 | 434 | 2205 | 0 | 0 | 5102 |

स्रोत : जिला सांख्यिकीय पत्रिका जौनपुर 2000-2001

तालिका संख्या-2 से स्पष्ट है कि सन् 2000-01 में जनपद जौनपुर में विकासखण्डवार ग्रामों में पेयजल कू सुविधा के अन्तर्गत पूर्णतः आच्छादित गाँवों की संख्या सुइथाकला 140, शाहगंज 172, खुटहन 165, करंजाकला 173, बदलापुर 181, महराजगंज 145, बक्शा 145, सुजानगंज 153, मुंगराबादशाहपुर 106, मछलीशहर 150, मड़ियाहूँ 180, बरसठी 148, सिकरारा 143, धर्मापुर 100, रामनगर 176, रामपुर, 154, मुफ्तीगंज 88, जलालपुर 87, केराकत 11, डोभी 115, सिरकोनी 176 थे। कुल 5102 गाँवों में, 3008 गाँव पूर्णतः आच्छादित थे।

आंशिक आच्छादित के अन्तर्गत ग्रामों की संख्या सुइथाकला में 5, शाहगंज में 6, खुटहन में 4, करंजाकला में 5, बदलापुर में 5, महराजगंज में 4, बक्शा में 6, सुजानगंज में 6, मुंगराबादशाहपुर में 4, मछलीशहर में 5, मड़ियाहूँ में 5, बरसठी में 4, सिकरारा में 5, धर्मापुर में 4, रामनगर में 4, रामपुर, में 6, मुफ्तीगंज में 4, जलालपुर में 3, केराकत में 4, डोभी में 4, सिरकोनी में 5, कुल 5102 गाँव में से सिर्फ 98 गाँव आंशिक रूप से आच्छादित थे।

कुँए का उपयोग सुइथाकला में 94 गाँव, शाहगंज में 143, खुटहन में 148, करंजाकला में 125, बदलापुर में 155, महराजगंज में 129, बक्शा में 98, सुजानगंज में 152, मुंगराबादशाहपुर में 74, मछलीशहर में 128, मड़ियाहूँ में 148, बरसठी में 122, सिकरारा में 124, धर्मापुर में 84, रामनगर में 139, रामपुर, में 143, मुफ्तीगंज में 77, जलालपुर में 75, केराकत में 83, डोभी में 91, सिरकोनी में 131 गाँवों में किया जाता था।

साधारण हैण्डपम्प उपयोग में ग्रामों की संख्या सुइथाकला 30, शाहगंज 24, खुटहन 19, करंजाकला 22, बदलापुर 21, महराजगंज 205, बक्शा 24, सुजानगंज 27, मुंगराबादशाहपुर 18, मछलीशहर 38, मड़ियाहूँ 32, बरसठी 15, सिकरारा 14, धर्मापुर 6, रामनगर 27, रामपुर, 18, मुफ्तीगंज 12, जलालपुर 12, केराकत 13, डोभी 11, सिरकोनी में 31, थी।

हैण्डपम्प इण्डिया मार्क-2 के उपयोग में ग्रामों की संख्या सुइथाकला 105, शाहगंज 128, खुटहन 110, करंजाकला 134, बदलापुर 131, महराजगंज 114, बक्शा 124, सुजानगंज 112, मुंगराबादशाहपुर 67, मछलीशहर 119, मड़ियाहूँ 138, बरसठी 111, सिकरारा 107, धर्मापुर 56, रामनगर 122, रामपुर, 136, मुफ्तीगंज 64, जलालपुर 60, केराकत 71, डोभी 70, सिरकोनी 126 गाँव लाभान्वित थे। नल एवं अन्य स्रोत की संख्या नगण्य थी।

**तालिका 3 : जनपद जौनपुर में विकास खण्डवार ग्रामों में पेयजल सुविधा की स्थिति (वर्ष 2014-15)**

| क्र. सं. | वर्ष | नल/हैण्डपम्प इण्डिया मार्क–2 लगाकर जल सम्पूर्ति के अन्तर्गत ग्राम (संख्या) | | | | सामान्य प्रयोगों में लाये जा रहें स्रोतों के अनुसार ग्रामों की संख्या | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| | | पूर्ण आच्छादित | आंशिक आच्छादित | लाभान्वित जनसंख्या | कुँआ | सधारण हैण्डपम्प | हैण्डपम्प इण्डिया मार्क–2 | नल | अन्य | योग (स्तम्भ 5–9) |
| | 1 | 2 | 3 | 4 | 5 | 6 | 7 | 8 | 9 | 10 |
| 1 | सुइथाकला | 116 | 31 | 156687 | 3 | 27 | 114 | 3 | 0 | 147 |
| 2 | शाहगंज | 147 | 38 | 249921 | 16 | 28 | 134 | 7 | 0 | 185 |
| 3 | खुटहन | 158 | 29 | 186093 | 37 | 19 | 129 | 2 | 0 | 187 |
| 4 | करंजाकला | 164 | 20 | 209009 | 14 | 20 | 148 | 2 | 0 | 184 |
| 5 | बदलापुर | 180 | 11 | 200285 | 16 | 20 | 149 | 6 | 0 | 191 |
| 6 | महराजगंज | 148 | 23 | 14548 | 21 | 20 | 123 | 7 | 0 | 171 |
| 7 | बक्शा | 160 | 7 | 180138 | 4 | 22 | 132 | 9 | 0 | 167 |
| 8 | सुजानगंज | 157 | 29 | 184173 | 31 | 22 | 130 | 3 | 0 | 186 |
| 9 | मुंगराबादशाहपुर | 96 | 14 | 166329 | 14 | 18 | 74 | 4 | 0 | 110 |
| 10 | मछलीशहर | 144 | 28 | 193682 | 6 | 35 | 129 | 2 | 0 | 172 |
| 11 | मड़ियाहूँ | 178 | 13 | 188699 | 10 | 29 | 147 | 5 | 0 | 191 |
| 12 | बरसठी | 132 | 19 | 184437 | 8 | 12 | 122 | 9 | 0 | 151 |
| 13 | सिकरारा | 165 | 10 | 157119 | 36 | 14 | 121 | 4 | 0 | 175 |
| 14 | धर्मापुर | 101 | 11 | 105859 | 27 | 8 | 68 | 9 | 0 | 112 |
| 15 | रामनगर | 172 | 14 | 191708 | 19 | 23 | 142 | 2 | 0 | 186 |
| 16 | रामपुर | 140 | 20 | 190162 | 3 | 13 | 137 | 7 | 0 | 160 |
| 17 | मुफ्तीगंज | 90 | 4 | 113885 | 11 | 15 | 62 | 6 | 0 | 94 |
| 18 | जलालपुर | 80 | 11 | 148062 | 10 | 12 | 66 | 3 | 0 | 91 |
| 19 | केराकत | 107 | 5 | 162091 | 17 | 14 | 73 | 8 | 0 | 112 |
| 20 | डोभी | 114 | 10 | 146992 | 27 | 14 | 79 | 4 | 0 | 124 |
| 21 | सिरकोनी | 181 | 10 | 161219 | 21 | 32 | 133 | 5 | 0 | 191 |
| | योग ग्रामीण | 2930 | 357 | 3622268 | 351 | 417 | 2412 | 107 | 0 | 3287 |
| | योग नगरीय | 0 | 0 | 0 | 0 | 0 | 0 | 0 | 0 | 0 |
| | योग जनपद | 2930 | 357 | 3622268 | 351 | 417 | 2412 | 107 | 0 | 3287 |

स्रोत : अधिशासी अभियन्ता जल निगम, जनपद जौनपुर, जिला सांख्यिकीय पत्रिका जौनपुर 2000-2001

तालिका संख्या-3 में वर्ष 2014-15 के आँकड़ों के अनुसार जनपद जौनपुर में विकासखण्ड वार गाँवों में पेयजल सुविधा की स्थिति से स्पष्ट है कि नल/हैण्डपम्प इण्डिया मार्क-2 लगाकर जलापूर्ति के अन्तर्गत पूर्णतः आच्छादित ग्रामों की संख्या सुइथाकला 116, शाहगंज 147, खुटहन 158, करंजाकला 164, बदलापुर 180, महराजगंज 148, बक्शा 160, सुजानगंज 157, मुंगराबादशाहपुर 96, मछलीशहर 14, मड़ियाहूँ 178, बरसठी 132, सिकरारा 165, धर्मापुर 101, रामनगर 172, रामपुर, 140, मुफ्तीगंज 90, जलालपुर 80, केराकत 107, डोभी 114, सिरकोनी 181 गाँवों में पेयजल की सुविधा थी। तालिका संख्या-3 से स्पष्ट है कि आंशिक आच्छादित ग्रामों की संख्या में सुइथाकला 31, शाहगंज 38, खुटहन 29, करंजाकला 20, बदलापुर 11, महराजगंज 23, बक्शा 7, सुजानगंज 29, मुंगराबादशाहपुर 14, मछलीशहर 28, मड़ियाहूँ 13, बरसठी 19, सिकरारा 10, धर्मापुर 11, रामनगर 14, रामपुर, 20, मुफ्तीगंज 4, जलालपुर 11, केराकत 5, डोभी 10, सिरकोनी में 10 गाँव थे। साधारण हैण्डपम्प द्वारा उपयोग में ग्रामों की संख्या सुइथाकला 27, शाहगंज 134, बक्शा 132, सुजानगंज 30, मुंगराबादशाहपुर 74, गाँव लाभान्वित थे। हैण्डपम्प इण्डिया मार्क-2 द्वारा जलापूर्ति में ग्रामों की संख्या सुइथाकला 114, शाहगंज 134, खुटहन 129, करंजाकला 148, बदलापुर 149, महराजगंज 123, बक्शा 132, सुजानगंज 130, मुंगराबादशाहपुर में 74 गाँव लाभान्वित थे। 2013-15 में कुल गाँव की संख्या 3287 है जिसमें 2930 गाँव पूर्ण आच्छादित, 357 आंशिक रूप से आच्छादित हैं। कुल जनसंख्या 3622268 लाभान्वित है। कुँए के द्वारा 351 साधारण हैण्डपम्प द्वारा 417, हैण्डपम्प इण्डिया मार्क-2 द्वारा 2412, नल द्वारा 107 एवं अन्य में शून्य गाँव हैं।

**तालिका 4 : विकासखण्डवार गाँवों में पेयजलापूर्ति का प्रतिशतांक ( वर्ष 2000-01 से 2014-15 )**

| क्र.सं. | विकासखण्ड | 2000—01 | | | | 2014—15 | | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| | | पूर्ण आच्छादित ग्राम (%)में | आंशिक आच्छादित ग्राम (%) में | योग | पूर्णतः आच्छादित ग्राम(%)में | आंशिक आच्छादित ग्राम (%) में | योग | स्तम्भ 5 और का अन्तर |
| 1 | सुइथाकला | 61-1 | 2-1 | 63-2 | 78-9 | 21-1 | 100 | 36-8 |
| 2 | शाहगंज | 58-3 | 2-0 | 60-3 | 79-4 | 20-6 | 100 | 39-7 |
| 3 | खुटहन | 59-56 | 1-4 | 60-96 | 84-4 | 15-6 | 100 | 39-04 |
| 4 | करंजाकला | 61-5 | 1-7 | 63-2 | 89-1 | 10-9 | 100 | 36-8 |
| 5 | बदलापुर | 58-9 | 1-6 | 60-5 | 94-2 | 5-8 | 100 | 39-5 |
| 6 | महराजगंज | 55-1 | 1-5 | 56-6 | 86-5 | 13-5 | 100 | 43-4 |
| 7 | बक्शा | 58-9 | 2-4 | 61-3 | 95-8 | 4-2 | 100 | 38-7 |
| 8 | सुजानगंज | 52-5 | 2-0 | 54-5 | 84-4 | 15-6 | 100 | 45-5 |
| 9 | मुंगराबादशाहपुर | 66-6 | 2-5 | 69-1 | 87-2 | 12-8 | 100 | 30-9 |
| 10 | मछलीशहर | 52-6 | 1-7 | 54-3 | 83-7 | 16-3 | 100 | 45-7 |
| 11 | मड़ियाहूँ | 56-6 | 1-5 | 58-1 | 93-1 | 6-9 | 100 | 41-9 |
| 12 | बरसठी | 59-6 | 1-6 | 61-2 | 87-4 | 12-6 | 100 | 38-8 |
| 13 | सिकरारा | 58-3 | 2-0 | 60-3 | 94-2 | 5-8 | 100 | 39-7 |
| 14 | धर्मापुर | 68-4 | 2-7 | 71-1 | 90-1 | 9-9 | 100 | 28-9 |
| 15 | रामनगर | 61-1 | 1-3 | 62-4 | 92-4 | 7-6 | 100 | 37-6 |
| 16 | रामपुर | 51-8 | 2-0 | 53-8 | 87-5 | 12-5 | 100 | 46-2 |
| 17 | मुफ्तीगंज | 57-5 | 2-6 | 60-1 | 95-7 | 4-3 | 100 | 39-9 |
| 18 | जलालपुर | 59-1 | 2-04 | 61-14 | 87-9 | 12-1 | 100 | 38-86 |
| 19 | केराकत | 66-4 | 2-3 | 68-7 | 95-5 | 4-5 | 100 | 31-30 |
| 20 | डोभी | 66-8 | 2-3 | 69-1 | 91-9 | 8-1 | 100 | 30-9 |
| 21 | सिरकोनी | 61-1 | 1-7 | 62-8 | 94-7 | 5-3 | 100 | 37-2 |
| | कुल औसत | 58-9 | 1-9 | 60-8 | 89-1 | 10-9 | 100 | 39-2 |
| | कुल योग | 58.9+1.9=60.8% | | | 89.1+10.9=100% | | | |

स्रोत : अधिशासी अभियन्ता जल निगम, जनपद जौनपुर, जिला सांख्यिकीय पत्रिका जौनपुर 2000-2001

प्रस्तुत सारणी संख्या-4 से स्पष्ट है कि जनपद जौनपुर में विकासखण्डवार पेयजल सुविधा में स्तम्भ संख्या-3 में पूर्णतः आच्छादित ग्राम का विभिन्न विकास खण्डों में प्रतिशत के आधार पर सन् 2000-01 में सुइथाकला 61.1 प्रतिशत, शाहगंज 5.3 प्रतिशत, खुटहन 59.56 प्रतिशत, करंजाकला 61.5 प्रतिशत, बदलापुर 58.9 प्रतिशत, महराजगंज 55.1 प्रतिशत, बक्शा 58.9 प्रतिशत, सुजानगंज 52.5 प्रतिशत, मुंगराबादशाहपुर 66.6 प्रतिशत, मछलीशहर 52.6 प्रतिशत, मड़ियाहूँ 56.6 प्रतिशत, बरसठी 59.6 प्रतिशत, सिकरारा 58.3 प्रतिशत, धर्मापुर 68.4 प्रतिशत, रामनगर 61.1 प्रतिशत, रामपुर, 51.8 प्रतिशत, मुफ्तीगंज 57.8 प्रतिशत, जलालपुर 59.1 प्रतिशत, केराकत 66.4 प्रतिशत, डोभी 66.8 प्रतिशत, सिरकोनी 61.1 प्रतिशत गाँवों में जल की आपूर्ति पूर्ण रूप से उपलब्ध थी।

प्रस्तुत सारणी संख्या-4 से स्पष्ट है कि सन् 2000-01 में स्तम्भ संख्या-4 में आंशिक रूप से आच्छादित गाँवों के प्रतिशत में सुइथाकला 2.1 प्रतिशत, शाहगंज 2 प्रतिशत, खुटहन 1.4 प्रतिशत, करंजाकला 1.7 प्रतिशत, बदलापुर 1.6 प्रतिशत, महराजगंज 1.5 प्रतिशत, बक्शा 2.4 प्रतिशत, सुजानगंज 2.0 प्रतिशत, मुंगराबादशाहपुर 2.5 प्रतिशत, मछलीशहर 1.7 प्रतिशत, मड़ियाहूँ 1.5 प्रतिशत, बरसठी 1.6 प्रतिशत, सिकरारा 2.0 प्रतिशत, धर्मापुर 2.7 प्रतिशत, रामनगर 2.0 प्रतिशत, मुफ्तीगंज 2.6 प्रतिशत, जलालपुर 2.04 प्रतिशत, केराकत 2.3 प्रतिशत, डोभी 2.3 प्रतिशत, सिरकोनी 1.7 प्रतिशत था जो सारणी एवं मानचित्र से स्पष्ट है।

**तालिका 5 : गाँवों में श्रेणीयान वर्ष 2000-01**

| क. सं. | विकासखण्ड | पूर्णतः आच्छादन | | | आंशिक आच्छादन | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| | | 55% से कम | 55—60 | 60 से अधिक | 0—2 | 2-4 |
| 1 | सुइथाकला | | | 61-1 | | 2-1 |
| 2 | शाहगंज | | 58-3 | | 2-0 | |
| 3 | खुटहन | | 59-56 | | 1-4 | |
| 4 | करंजाकला | | | 61-5 | 1-7 | |
| 5 | बदलापुर | | 58-9 | | 1-6 | |
| 6 | महराजगंज | | 55-1 | | 1-5 | |
| 7 | बक्शा | | 58-9 | | | 24 |
| 8 | सुजानगंज | 52-5 | | | 2 | |
| 9 | मुंगराबादशाहपुर | | | 66-6 | | 2-5 |
| 10 | मछलीशहर | 52-6 | | | 1-7 | |
| 11 | मड़ियाहूँ | | 56-6 | | 1-5 | |
| 12 | बरसठी | | 59-6 | | 1-6 | |
| 13 | सिकरारा | | 58-3 | | 2-0 | |
| 14 | धर्मापुर | | | 68-4 | | 2-7 |
| 15 | रामनगर | | | 61-1 | 1-3 | |
| 16 | रामपुर | 51-8 | | | 2-0 | |
| 17 | मुफ्तीगंज | | 57-5 | | | 2-6 |
| 18 | जलालपुर | | 59-1 | | | 2-04 |
| 19 | केराकत | | | 66-4 | | 2-3 |
| 20 | डोभी | | | 66-8 | | 2-3 |
| 21 | सिरकोनी | | | 61-1 | 1-7 | |
| कुल प्रतिशत | | =58-9 | | | = 1-9 | |
| | | | | | योग | 58-9+1-9= 60-8% |

स्तम्भ संख्या-5 में पूर्णतः एवं आंशिक आच्छादित ग्राम के प्रतिशत का योग 2000-01 सत्र का निर्दिष्ट है। दोनों का औसत योग 60.8 प्रतिशत है। अर्थात् सन् 2000-01 में पूर्णतः एवं आंशिक निर्दिष्ट है। गोनों का औसत योग 60.8 प्रतिशत को दर्शाता है।

प्रस्तुत सारणी संख्या-4 से स्पष्ट है कि सत्र 2014-15 में जलापूर्ति के अन्तर्गत पूर्णतः आच्छादित गाँवों के प्रतिशत में सुइथाकला 78.9 प्रतिशत, शाहगंज 79.4 प्रतिशत, खुटहन 84.4 प्रतिशत, करंजाकला 89.1 प्रतिशत, बदलापुर 94.2 प्रतिशत, महराजगंज 86.5 प्रतिशत, बक्शा 95.8 प्रतिशत, सुजानगंज 84.4 प्रतिशत, मुंगराबादशाहपुर 87.2 प्रतिशत, मछलीशहर 83.7 प्रतिशत, मड़ियाहूँ 93.1 प्रतिशत, बरसठी 87.4 प्रतिशत, सिकरारा 94.2 प्रतिशत, धर्मापुर 90.1 प्रतिशत, रामनगर 92.4 प्रतिशत, रामपुर, 87.5 प्रतिशत, मुफ्तीगंज प्रतिशत, जलालपुर 87.9 प्रतिशत, केराकत 95.5 प्रतिशत, डोभी 91.9 प्रतिशत, सिरकोनी 94.7 प्रतिशत है। कुल 8.1 गाँवों में पूर्ण रूप से जलापूर्ति की सुविधा है।

सारणी संख्या-4 से स्पष्ट है कि सत्र 2014-15 में आंशिक आच्छादन में कुल 39.2 प्रतिशत में सुइथाकला 36.87 प्रतिशत, शाहगंज 39.7 प्रतिशत, खुटहन 39.04 प्रतिशत, करंजाकला 36.8 प्रतिशत, बदलापुर 39.5 प्रतिशत, महराजगंज 43.4 प्रतिशत, बक्शा 38.7 प्रतिशत, सुजानगंज 45.5 प्रतिशत, मुंगराबादशाहपुर 30.9 प्रतिशत, मछलीशहर 45.7 प्रतिशत, मड़ियाहूँ 41.9 प्रतिशत, बरसठी 38.8 प्रतिशत, सिकरारा 39.7 प्रतिशत, धर्मापुर 28.9 प्रतिशत, रामनगर 37.6 प्रतिशत, रामपुर, 46.2 प्रतिशत, मुफ्तीगंज 39.9 प्रतिशत, जलालपुर 38.86 प्रतिशत, केराकत 31.30 प्रतिशत, डोभी 30.9 प्रतिशत, सिरकोनी में 37.2 प्रतिशत गाँवों में पेयजल की सुविधा उपलब्ध है।

प्रस्तुत सारणी से स्पष्ट है कि जनपद जौनपुर में दो वर्षों के जलापूर्ति का परिकलन एवं तुलनात्मक अध्ययन किया गया है। वर्ष 2000-01 एवं 2014-15 में प्राप्त आँकड़ों के आधार पर स्पष्ट होता है कि अध्ययन क्षेत्र में बढ़ती जनसंख्या और जल उपभोग का स्तर भी बढ़ा है। परिणामतः अनेक सरकारी प्रयासों, नीतियों, योजनाओं के द्वारा जलापूर्ति के स्रोतों एवं संसाधनों में वृद्धि की गयी है। वर्ष 2000-01 में जहाँ पूर्णतः आच्छादन में 58.9 प्रतिशत एवं आंशिक आच्छादन में 1.9 प्रतिशत गाँवों में ही पेयजल सुविधा उपलब्ध थी। कुल 60.8 प्रतिशत वहीं दूसरी ओर वर्ष 2014-2015 में पूर्णतः आच्छादन का प्रतिशत 89.1 प्रतिशत एवं आंशिक में 39.2 की बढ़ोत्तरी हुई। दोनों मिलकर 100 प्रतिशत का सूचक है अर्थात् 60.8 से 100 प्रतिशत गाँवों में जलापूर्ति की व्यवस्था है। इसमें भी पूर्णतः आच्छादन का प्रतिशत बढ़ रहा है। यह वृद्धि विकासखण्डवार सुइथाकला 36.8 प्रतिशत, शाहगंज 39.7 प्रतिशत, खुटहन 39.04 प्रतिशत, करंजाकला 36.8 प्रतिशत, बदलापुर 39.5 प्रतिशत, महराजगंज 43.4 प्रतिशत, बक्शा 39.7 प्रतिशत, सुजानगंज 45.5 प्रतिशत, मुंगराबादशाहपुर 30.9 प्रतिशत, मछलीशहर 45.7 प्रतिशत, मड़ियाहूँ 41.9 प्रतिशत, बरसठी 18.8 प्रतिशत, सिकरारा 39.7 प्रतिशत, धर्मापुर 28.9 प्रतिशत, रामनगर 37.6 प्रतिशत, रामपुर, 46.2 प्रतिशत, मुफ्तीगंज 39.9 प्रतिशत, जलालपुर 38.86 प्रतिशत, केराकत 31.30 प्रतिशत, डोभी 30.9 प्रतिशत एवं सिरकोनी में 37.2 प्रतिशत की वृद्धि पिछले 15 वर्षों में धनात्मक परिवर्तन को दर्शाता है।

तालिका संख्या-5 से स्पष्ट है कि वर्ष 2000-01 के आँकड़ों के आधार पर जनपद जौनपुर में विकासखण्ड स्तर पर पेयजलापूर्ति हेतु पूर्णतः आच्छादित ग्रामों के प्रतिशत के श्रेणीयन के आधार पर तीन श्रेणियाँ बनाई गई हैं जिसमें प्रथम श्रेणी 55 से कम के अन्तर्गत सुजानगंज में 52.5 प्रतिशत, मछलीशहर में 52.6 प्रतिशत और रामपुर में 51.8 प्रतिशत पूर्णरूपेण आच्छादित है।

द्वितीय श्रेणी का प्रतिशतांक 55-60 जिसके अन्तर्गत शाहगंज 58.3 प्रतिशत, खुटहन 59.56 प्रतिशत, बदलापुर 58.9 प्रतिशत, महराजगंज 55.1 प्रतिशत, बक्शा 58.9 प्रतिशत, मड़ियाहूँ 56.6 प्रतिशत, बरसठी 59.6 प्रतिशत, सिकरारा 58.3 प्रतिशत, मुफ्तीगंज 57.5 प्रतिशत, जलालपुर 59.1 प्रतिशत है।

तृतीय श्रेणी का प्रतिशतांक 60 से अधिक के अन्तर्गत सुइथाकला 61.1 प्रतिशत, करंजाकला 61.5 प्रतिशत, मुंगराबादशाहपुर 66.6 प्रतिशत, धर्मापुर 68.4 प्रतिशत, रामनगर 61.1 प्रतिशत, केराकत 66.4 प्रतिशत, डोभी 66.8 प्रतिशत, सिरकोनी में 61.1 प्रतिशत है जो कि वर्ष 2000-01 में सर्वाधिक था।

आंशिक आच्छादन के अन्तर्गत आँकड़ों में अधिक न्यूनता है इसमें श्रेणियों को दो भागों में विभक्त किया गया है।

प्रथम श्रेणी 0-2 के अन्तर्गत शाहगंज 2.0 प6तिशत, खुटहन 1.4 प्रतिशत, करंजाकला 1.7 प्रतिशत, बदलापुर 1.6 प्रतिशत, महराजगंज 1.65 प्रतिशत, सुजानगंज 2 प्रतिशत, मछलीशहर 1.7 प्रतिशत, मड़ियाहूँ 1.5 प्रतिशत, बरसठी 1.6 प्रतिशत, सिकरारा 2.0 प्रतिशत, रामनगर 2.0 प्रतिशत, सिरकोनी 1.7 प्रतिशत है।

द्वितीय श्रेणी के प्रतिशतांक 2-4 के अन्तर्गत सुइथाकला 2.1 प्रतिशत, बक्शा 2.4 प्रतिशत, मुंगराबादशाहपुर 2.5 प्रतिशत, धर्मापुर 2.7 प्रतिशत, मुफ्तीगंज 2.6 प्रतिशत, जलालपुर 2.04 प्रतिशत, केराकत 2.3 प्रतिशत, डोभी 2.3 प्रतिशत है।

उपरोक्त आँकड़ों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि वर्ष 2000-01 में पूर्णतः आच्छादित ग्रामों का प्रतिशत 58.9 प्रतिशत है। एवं आंशिक आच्छादित का 1.9 प्रतिशत तथा दोनों का योग सिर्फ 60.8 प्रतिशत ही है जो कि यह दर्शाता है कि इस समय पेयजलापूर्ति की समस्या अवश्य थी क्योंकि ज्यादातर जलापूर्ति कुओं एवं हैण्डपम्पइण्डिया मार्क एवं साधारण हैण्डपम्प के द्वारा किया जाता था।

**तालिका 6 : गाँवों का श्रेणीयन वर्ष : 2014-15 पेय जलपूर्ति**

| क्र.सं. | विकासखण्ड | पूर्णतः आच्छादन | | | आंशिक आच्छादन | | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|
| | | 85 से कम | 85–90 | 90 से अधिक | 10 से कम | 10–15 | 15 से अधिक |
| 1 | सुईथाकला | 78.9 | | | | | 21.1 |
| 2 | शाहगंज | 79.4 | | | | | 20.6 |
| 3 | खुटहन | 84.4 | | | | | 15.6 |
| 4 | करंजाकला | | 89.1 | | | 10.9 | |
| 5 | बदलापुर | | | 94.2 | 5.8 | | |
| 6 | महराजगंज | | 86.5 | | | 13.5 | |
| 7 | बक्शा | | | 95.8 | 4.2 | | |
| 8 | सुजानगंज | 84.4 | | | | | 15.6 |
| 9 | मुंगराबादशाहपुर | | 87.2 | | | 12.8 | |
| 10 | मछलीशहर | 83.7 | | | | | 16.3 |
| 11 | मड़ियाहूँ | | | 93.1 | 6.9 | | |
| 12 | बरसठी | | 87.4 | | | 12.6 | |
| 13 | सिकरारा | | | 94.2 | 5.8 | | |
| 14 | धर्मापुर | | | 90.1 | 9.9 | | |
| 15 | रामनगर | | | 92.4 | 7.6 | | |
| 16 | रामपुर | | 87.5 | | | 12.5 | |
| 17 | मुफ्तीगंज | | | 95.7 | 4.3 | | |
| 18 | जलालपुर | | 87.9 | | | 12.1 | |
| 19 | केराकत | | | 95.5 | 4.5 | | |
| 20 | डोभी | | | 91.9 | 8.1 | | |
| 21 | सिरकोनी | | | 94.7 | 5.3 | | |
| कुल प्रतिशत=89.1 | | | | | = 10.9 | | |
| योग | | | | | 89.1+10.9= 100 % | | |

तालिका संख्या-6 से स्पष्ट है कि वर्ष 2014-15 में जनपद जौनपुर में पेय जल आपूर्ति हेतु पूर्णतः एवं आंशिक आच्छादित ग्रामों के प्रतिशत को विभिन्न श्रेणियों में बाँटा गया है जो निम्नवत् है–

प्रथम श्रेणी में प्रतिशतांक 85 से कम के अन्तर्गत सुइथाकला 78.9 प्रतिशत, शाहगंज 79.4 प्रतिशत, खुटहन 84.4 प्रतिशत, सुजानगंज 84.4. प्रतिशत, मछलीशहर 83.7 प्रतिशत है।

द्वितीय श्रेणी में 85-89 प्रतिशतांक के अन्तर्गत करंजाकला 89.1 प्रतिशत, महराजगंज 86.5 प्रतिशत, मुंगराबादशाहपुर 87.2 प्रतिशत, बरसठी 87.4 प्रतिशत, रामपुर 87.5 प्रतिशत, जलालपुर 87.9 प्रतिशत है।

तृतीय श्रेणी में प्रतिशतांक 90 से अधिक के अन्तर्गत बदलापुर 94.2 प्रतिशत, बक्शा 95.8 प्रतिशत, मड़ियाहूँ 93.1 प्रतिशत, सिकरारा 94.2 प्रतिशत, धर्मापुर 90.1 प्रतिशत, रामनगर 92.4 प्रतिशत, मुफ्तीगंज 95.7 प्रतिशत, केराकत 95.5 प्रतिशत, डोभी 91.9 प्रतिशत, सिरकोनी 94.7 प्रतिशत है।

अर्थात् कुल 89.1 प्रतशत गाँवों में पेयजल की पूर्ण रूप से सुविधा है।

ांशिक आच्छादन को तीन श्रेणियों में बाँटा गया है–

प्रथम श्रेणी में प्रतिशतांक 10 से कम जिसमें बदलापुर 5.8 प्रतिशत, बक्शा 4.2 प्रतिशत, मड़ियाहूँ 6.9 प्रतिशत, सिकरारा 5.8 प्रतिशत, धर्मापुर 9.9 प्रतिशत, रामनगर 7.6 प्रतिशत, मुफ्तीगंज 4.3 प्रतिशत, केराकत 4.5 प्रतिशत, डोभी 8.1 प्रतिशत, सिरकोनी 5.3 प्रतिशत के गाँव शामिल हैं।

द्वितीय श्रेणी में 10-15 प्रतिशतांक के अन्तर्गत करंजाकला 10.9 प्रतिशत, महराजगंज 13.5 प्रतिशत, मुंगराबादशाहपुर 12.8 प्रतिशत, बरसठी 12.6 प्रतिशत, रामपुर 12.5 प्रतिशत, जलालपुर 12.1 प्रतिशत के गाँव शामिल हैं।

तृतीय श्रेणी के प्रतिशतांक 15 से अधिक के अन्तर्गत सुइथाकला 21.1 प्रतिशत, शाहगंज 20.6 प्रतिशत, खुटहन 15.6 प्रतिशत, सुजानगंज 15.6 प्रतिशत, मछलीशहर 16.3 प्रतिशत है।

उपरोक्त आँकड़ों के आधार पर स्पष्ट है कि पूर्णतः आच्छादित ग्रामों का प्रतिशत 89.1 एवं ांशिक आच्छादन का प्रतिशत 10.9 है। कुल मिलाकर 100 प्रतिशत गाँवों पर पूर्ण एवं आंशिक रूप से पेयजल की उपलब्धता है जो 2000-01 के आँकड़ों से बहुत अधिक है।

तालिका संख्या-5 एवं 6 से स्पष्ट है कि पेयजल आपीर्ति के अन्तर्गत सभी गाँवों में 2000 से 2015 तक स्रोत एवं संसाधनों में बढ़ोत्तरी हुई है। जिनमें अनेक जन सुविधाएँ, सरकारी प्रयास, हैण्डपम्प एवं नलों का सभी गाँवों में वितरण इत्यादि कारणों से जल संसाधनों का अधिर उपभोग एवं दोहन किया जा रहा है। टूयूबवेल, पम्पिंग सेट, समरसेबुल वर्तमान में प्रत्येक घर की आवश्यकता बन चुकी है।

सन् 2011 की जनगणना के अनुसार जनपद जौनपुर में 4494204 जनसंख्या है जिसमें से 3622268 को ही जलापूर्ति हो रही है। शेष 771936 जनसंख्या जल संकट की समस्या से ग्रसित है। प्रथम श्रेणी में प्रतिशतांक 85 से कम के अन्तर्गत सुइथाकला 78.9 प्रतिशत, शाहगंज 79.4 प्रतिशत, खुटहन 84.4 प्रतिशत, सुजानगंज 84.4. प्रतिशत, मछलीशहर 83.7 प्रतिशत है। वर्षा की अनिश्चितता, जलवायु परिवर्तन, वनों की अन्धाधुन्ध कटाई, भूमि जल का स्तर का अत्यधिक दोहन अनेक समस्याओं को जन्म दे रही है। जिसमें एक तरफ किसानों को कृषिगत समस्या एवं शहरी क्षेत्र जल की आपूर्ति में कमी का संकट झेलना पड़ रहा है।

**जल संकट–**भारत 1850 किमी.$^{3}$) में अल्प उपलब्धता परन्तु अधिक उपयोग क्रमशः 461 मिमी. एवं 612 घनमी. प्रति व्यक्ति है। सर्वाधिक जल संकट शुष्क जलवायु प्रदेश में जहाँ उपलब्धता नगण्य परन्तु उपयोग प्रतिशत अधिक है प्रति वर्ष नव्य जल की वार्षिक आपूर्ति 200 घनमी. क्रांतिक माना जाता है। 600 घनमी. संकट का द्योतक है, 1000-2000 घनमी. तक आसन्न संकट का प्रतीक है। शुष्क, अर्द्धशुष्क एवं निकटस्थ देश संकटग्रस्त हैं। विश्व बैंक के अनुमान के अनुसार 2025 तक विश्व के 3.25 अरब लोग संकटग्रस्त होंगे।

पूरे देश में स्वच्छ पेयजल का प्रतिशत 85.5 प्रतिशत है जिसमें ग्रामीण क्षेत्र में 82.7 प्रतिशत शहरी क्षेत्र में 91.4 प्रतिशत परिवारों को स्वच्छ पेयजल उपलब्ध है।

जल का उपयोग सर्वाधिक सिंचाई में 89 प्रतिशत घरेलू उपयोग 7 प्रतिशत उद्योगों में 41 प्रतिशत है।

भू-जल स्तर में लगातार गिरावट एवं बढ़ती माँग के चलते पानी का संकट बढ़ता ही जा रहा है। एक आँकड़े के अनुसार सन् 2013 में बोतलबन्द पानी का कारोबार 60 अरब रुपये था जो अनुमानतः 2018 तक 160 अरब रुपये तक होने की संभावना है।

22 मार्च विश्व जल दिवस के रूप में मनाया जाता है जिससे पानी को संरक्षित करने हेतु जन जागरूकता लायी जाय।

एक अन्य ज्वलंत उदाहरण महाराष्ट्र के लातूर में जल संकट की समस्या जहाँ जल के सभी स्रोत सूख गये हैं वहाँ जलापूर्ति टैंकरों के माध्यम से की जाती है। वर्षा की कमी के कारण पानी का स्तर बहुत नीचे जा चुका है। ड्रिलिंग मशीन द्वारा पानी

निकालना अधिक खर्चीला एवं अपर्याप्त है जिससे वहाँ की जनसंख्या अन्यत्र पलायन को मजबूर हो रही है। आसपास के क्षेत्रों में जन दबाव बढ़ रहा है। पानी के लिए मारा-मारी तक की नौबत आ गयी है। इतनी ही नहीं सरकार की उदासीनता एवं लापरवाही के कारण एक ऐसे तंत्र का विकास हो रहा है जिन्हें पानी की शुद्धता से कोई लेना-देना नहीं है। पेयजल की समस्या वहाँ के लोगों को टैंकरों को टूटने के लिए विवश कर रही है जिसके ऊपर धारा 144 (निषेधाज्ञा) लागू करना आवश्यकता एवं मजबूरी बन चुकी है जो घृणित कार्य से भी बढ़कर है।

समस्या यहीं तक सीमित नहीं है अनेक क्षेत्र ऐसे हैं जहाँ पानी की अत्यधिक किल्लत है। लोगों को कई किमी. तक पानी की खोज में जाना पड़ता है। मानव की अत्यधिक संसाधन दोहन की प्रवृत्ति और प्रकृति की बेरुखी महत्वपूर्ण कारक है जिससे समस्याएँ निरन्तर बढ़ रही हैं। आज हम यह सोचने पर मजबूर हो गये हैं कि अभी तो केवल कुछ ही स्थानों पर यह समस्या है परन्तु आने वाले दिनों में यह समस्या एक विकारल रूप धारण करेगी। जल के लिए आन्तरिक एवं बाह्य संघर्ष से जूझना होगा जिसका जिम्मेदार मानव होगा और कोई नहीं।

## समस्या समाधान

1. जल संसाधन संरक्षम के कारगर उपाय किये जायँ।
2. वर्षा के जल का संचय किया जाय।
3. खेतों में अनावश्यक जलभराव न किया जाय।
4. जल विभाजक प्रबन्ध का सिद्धान्त–''गाँव का पानी गाँव में, घर का पानी घर में तथा खेतों का पानी खेत में रहे'' अपनाया जाय।
5. समुचित वनों का विस्तार किया जाय।
6. सिंचाई हेतु पक्की नालियो की उचित व्यवस्था की जाय।
7. आवश्यकतानुसार जल का उपयोग किया जाय।
8. कुँए, तालाब की खुदाई करवायी जाय, जिससे जल स्तर बना रहे।
9. वाटर हार्वेस्टिंग की सुविधा होनी चाहिए।
10. जल की गुणवत्ता का समय-समय पर परीक्षण कराया जाय।
11. नदियों का परस्पर ग्रिड में गन्थन।
12. जलागम क्षेत्र प्रबन्धन।
13. चेक डैम का निर्माण।
14. नहरी सिंचाई को प्रत्साहित एवं नलकूप, कुँआ, हैण्डपम्प, ट्यूबवेल जैसे साधनों द्वारा सिंचाई को हतोत्साहित किया जाय जिससे भूमिगत जल का दोहन कम से कम हो।
15. स्प्रिंकलर, ड्रिप सिंचाई को कारगर जनजागरण, स्वयंसेवी संस्था, लोगों का शिक्षण, प्रशिक्षण।

मनुष्य का अस्तित्व ही जल से है। बिना जल के जीवन की कल्पना करना बहुत नामुमकिन है। यदि हम इस जीवन की भलाई चाहते हैं तो जल का समुचित उपयोग और संरक्षम करना ही पड़ेगा अन्यथा धरातल पर कुछ शेष नहीं रहेगा।

## सन्दर्भ-सूची


1. तिवारी, आर. सी., (2012) : भारत का भूगोल, प्रयाग पुस्तक भवन, इलाहाबाद।
2. सिंह, महेन्द्र बहादुर (2006) : जलवायु एवं जल विज्ञान, तारा बुक एजेन्सी, वाराणसी।
3. सिंह, जगदीश, सिंह, के. एन. (2014) : आर्थिक भूगोल के मूल तत्व, ज्ञानोदय प्रकाशन, गोरखपुर।
4. सिंह, सवीन्द्र (2012) : पर्यावरण भूगोल, प्रयाग पुस्तक भवन, इलाहाबाद।
5. जिला अर्थ एवं संख्या अधिकारी कार्यक्रम, 2000-2015 तक  जनपद जौनपुर
6. Jambu Dwip Research : ISSN 2249-3859, Vol. II, Dec.-2011, Pg. 55-65 : Vol. V, Dec.-2013, Pg. 52-55.


***

Geography
Shodh Sandarsh-V, Vol.-XVI, Sept.-2017, Page : 175-180
ISSN No. - 2319–5908 (U.G.C. Approved Journal No. : 41329)

# Average Slope of Chaibasa Plain Jharkhand India

*Dr. Pawan Kumar Singh**

## Introduction

Chaibasa plain lies in the mid-southern part of Chhotnogpur highlands which forms the southern most extension of the Stable Indian Peninsular Block and is separated fronm Shiloong plateu by the Molda ga. 'Located between 85° 15'F to 85°S5/B longitudes and 22° 45 N to 23°45. It measure about 3624.96 $km^2$. It covers the central part of the district of Western Singhbhum. The town of Chaibasa, the administrative headquarter of the district has a elevation of about 250m. It is located in the central part of the study-area it covers the some parts of the Ranchi district in the north cast and Keonjhar district in the southeast of the study-area.

The boundary on the east is defined for some distance by the Kharkai river while portion of the Kcmgera river in the southeast and Konia river in the southuest and northeast by the Sanjai river. The general aspect of the study-area is undulating or hilly, to the southwest.

## 5.1 Previous Studies

The slope, loss or gain in altitude per unit horizontal distance in a direction or the inclination on any segmental elements of the earth surface with the datum, expressed in degrees is a function of multiple complex forces, such as climatic, biotic, lithologic, tectonic etc., which control or guide the processes involved in its development and as such as of prime concern to the geomorphologists.

Slope is an important element of the landscape which deserves close observation. It is a measure of the rate of ascent or descent per unit horizontal distance (gradient) expressed in degrees. Several factors, including climate lithology, structure, relief, drainage characteristics, surficial deposits, vegetation, morphogentic systems, palaeoclimates and recent geomorphic history, have influenced the morphology and slope characteristics of Chaibasa plain either in unison or isolation. There are two schools of thought regarding the sequential evaluation of slopes, namely the 'uniformitarian' or 'parallel retreat' lead by King, L.C. (1957) and 'climatic control' followed by Davis, W.M. (1990). Like absolute and relative relief, information regarding slope can be obtained from the contour map; it can also be determined by field measurements.

The technique for calculation of slope was put forth as early as 1890 by Finsterwalder, who invented the following formula:

$$\text{Tan } 0 = \text{Average slope} = \frac{\text{Average length of contours x Contour interval}}{\text{Total area}}$$

This method is very laborious and its use is considered limited to map with a few widely spaced contours. It however, opened the way for Rich. J. (1914), Smith G.H. (1938; 1932), Wentworth, C.K. (1930), Raisz, E. and J.Henry (1937), Calef, W.(1950), Calef. W. and Newcomb (1953), Strahler, A.N.(1956), Miller, O.M. and Summerson, C.H.(1960) and Eyles, R.J. (1965) who put forth new ideas that gave new dimensions to slope studies. In 1916,

* *Asst. Prof. in Geography S.B.P.G. College, Badlapur Jaunpur (U.P.)*

J.L. Rich revised Finsterwalder formula by counting contour intersections along

lines drawn at right angles to the contours. This method appears to result in over-weighing certain parts of topography, because it has always a tendency to emphasize valley in preferences to peaks. Wentwoth, C.K. (1930) devised a method by covering the entire area with a grid of equally spaced E-W and N-S lines, counting the number of crossing of contour lines on four sides of a square of the grid and calculating the slope with the help of the following formula:

$$\text{Tan } 0 = \frac{\text{Average number of contour crossing per mile x Contour interval}}{3361 \text{ (constant)*}}$$

This method gives only a general and average picture of slope with the result that very high and very low values of slope are somewhat smoothed. Smith, G.H. (1935), therefore, examined the problem on the basis of the amplitude of relief, i.e., relative relief, wich by implication gives a picture of average slope. It hides the actual value, pushing it upward or downward, with the result that, at times, smaller escarpments get completely lost in areas of gentle or level slopes. Later, Miller, A. A. (1948) suggested that the differences in minimum and maximum elevation, obtained for various squares of the grid, should be their respective horizontal destances. Another modification was put forward earlier by Raisz, E and J. Henry (1937). They divided the large-scale topographical map into small regions, within each of which the contour lines had the same standard spacing, i.e., the same number of counter-lines per mile of horizontal equivalent, and represented the slope in feet/mile. The chosen categories were seven in number, representing slopes of under 507 /mile, 50/-100/ /mile, and so on. AJKorizontal scaleof standard contour-spacing was drawn, so that number contours per mile on the map-scale could be checked off with dividers, and the slope category ascertained by careful inspection. Later Robinson, A.N. (1948) devised still another, rather difficult and laborious method to produce a quantitatively accurate relief map from areal slope data. He covered his map with a network of squares, each 0.01 square miles in area. The average slope of each square was estimated, and one dot for each degree of average slope placed within it. The dots were not placed symmetrically within each square, but their positions were determined by reference to contours on the topographical map and to dots in adjacent squares so that continuity may be maintained. Although the dot density gives a very good visual impression, yet it fails to give a precise quantitative regarding slopes.

Miller, O.M. (1960) has been concerned with a, "method preferable to hypsometric tereting or oblique hill-shading for presenting the pattern of relief on small-scal aeronautical charts used for constact flying at high altitudes and high speeds." He first suggested this slope zone method in 1951, and developed it latter in 1960. His aims was to emphsize slope, rather than elevation, by dividing the surface into a series of zones with successive degrees of slopes, and indicating them by clear, though, subdued tirting. Still another technique of slope estimation was evolved by Strahler, A.N.(1956) wich is actually a modification of Raisz, E. and J. Henry method. Strahler, A.N. instead of taking he density of contour per mile, plotted the value of slope with the help of the formula V/H=tan0, where 'V' and 'H' indicate actual and horizontal distances respectively. He also plotted isotangent and isosinal values of slopes to produce isotangent and isosinal slope maps.

### 5.2 Average Slope Categories

The average slope of Chibasa plain has been obtained by Wentworth's method. This method has been used quite frequently for presenting slope morphology. In the present analysis, the contour map of the study-area has been covered with a network of squares having a unit area of 10.24 km2, and then the number of contour crossings has been counted along each side of the unit square. In this way, some 354 squares have been analysed. This slope values have been grouped into five categories ranging from 0° to over 15° (Table V.l and Fig. 5.2) as suggested by Singh, R L.(1967).

Table V.l gives the distribution of average slope in the study-area. Statistical analysis shows that the mean, median and modal values of an average slope in the area are 7.23°, 6.27° and 5.16° respectively. The mean value of 7.23°, infact, indicates that the present topography is in the 'late mature' stage of landform development. Lower modal values of 5.16°, is however typical of the 'old stage'. Thus, the area is present experiencing somewhat accelerated erosion after its upliftment in the Late Tertiary times.

**Table V.l**

**Slope-Area Relationship in Chaibasa Plain**

| Slope in degrees | Symbol | Frequency | Area | | |
|---|---|---|---|---|---|
| | | | (km ) | (%) | (cum%) |
| < -3= | SI | 54 | 552.96 | 15.25 | 15.25 |
| | Sg | 97 | 993.28 | 27.40 | 42 65 |
| 5 - 10 | Sm | 104 | 1064.96 | 29.37 | 72.02 |
| 10 - 15 | Sms | 69 | 706.56 | 19.51 | 91.53 |
| 15 > | Ss | 30 | 307.20 | 8.47 | 100.00 |
| **Total** | | **354** | **3624.96** | **100.00** | |

Mean: 5.5° Median: 4.59° and Mode: 4.47°

### 5.2.1 Areal Distribution of Average Slope Categories and their Correlation with Absolute Relief

Table V.2 shows the relationship between absolute relief and average slopes. The statistical calculations show that there is moderate correlation between average slope categories and absolute relief; its Karl Pearson's coefficient of correlation is 0.56. It is noted that a large part of the upland surface, except the upland margins, is in the Mate mature' stage of the landform development. It is also noted that the average slope categories (Fig. 5.2) more or less coincide with the various altitudinal zones (Fig. 3.1). This is clear from the following description of the five broad categories of the average slopes.

This distribution of the average slopes in the area is as follows (Fig. 5.1 & 5.2).

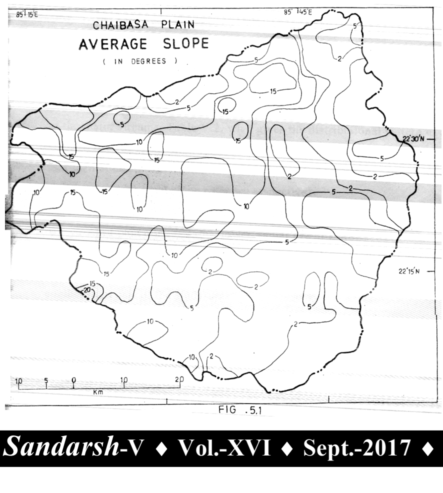



FIG .5.1

**5.2.1.1 Level Slope (SI: Less than 2°) :** Level slope covers an area of about 552.96 kmT or 15.25% of the study-area. It is the fourth largest category interms of areal coverage. It is mostly confined to the lower peneplain and gently sloping alluvium flood plains of the major streams. Table V.2, wich gives the distributional pattern of average slope values in relation to absolute relief, shows that the height categories of less than 300m, 300m-450m, 450m-600m account for 29.7%, 38.8% and 31.5% of the area under level slope category respectively.

This slope categories occupies of alluvial Chaibasa plain (259m), Bhoya-Abru peneplian (225m), lower Sanjai (325m), lower Roro Gara (325m), lower Lli Gara (484m) valleys and Tahalko tableland (278m) in the northeast and middle Kongera (410m) and upper Kongera (450m) valleys in the southeastern part of the study-area.

**5.2.1.2 Gentle Slope (Sg:2°-5°) :** Gentle slope area characterizes a maximum of 993.28 km or 27.4% of the study-area. It is the second largest categories interms of areal coverage. It covers mainly the undulation separating the flat countries and the margins of the ranges. Table V.2 reveals that 18.6%, 28.8% and 52.6% of the area under gentle slope (2°-5°) are associated with the altitudinal zones of less than 300m, 300m-450m and 450m-600m respectively.

This category covers large areas including the dissected part of Pampara plain (352m), middle Kharkai (241m), lower Kharkai (238m) valleys, Furnia peneplain (480m) in the northeast and upper Lli Gara valley (540m), Satbhalya (581m), Sirlingsia (458m) pahars, Dumria peneplain (495m), Kasira gorge (517m), Champua tableland (278m) in the southeastern part of the study-area.

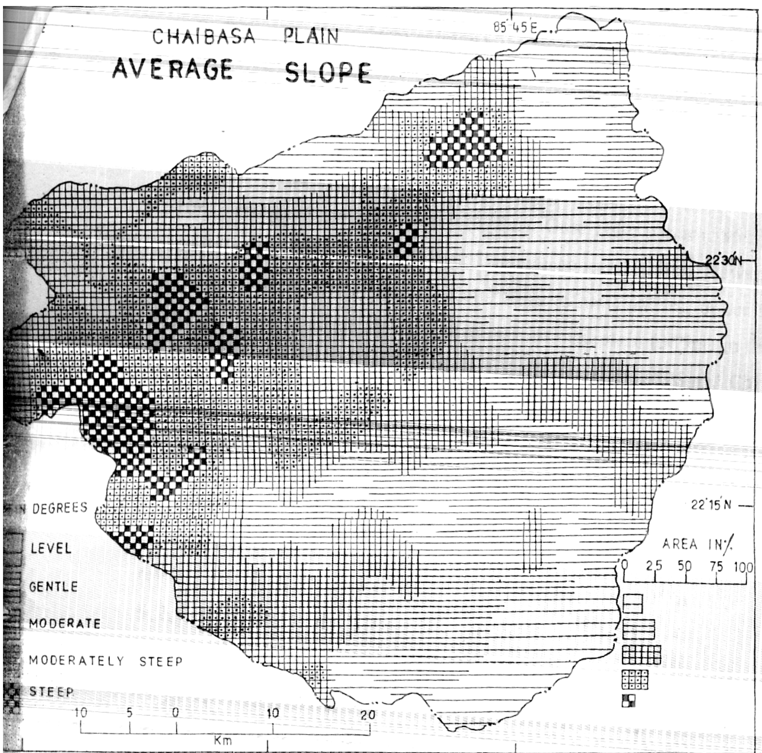



FIG - 5.2

**5.2.7.3 Moderate Slope (Sm: 5°-10°) :** Moderate slope covers an area of about 1064.96km2 or 29.37% of study-area. It is the largest category interms of areal coverage. It is an apparent from Table V.2 that 1.0%, 14.3%, 80.9% and 3.8% of study-area under moderate slope lie in the altitudinal zones of less than 300m, 300m-450m, 450m-600m and 600m-750m respectively.

The important areas of moderate slope are the Suribasa peneplain (510m), middle Roro Gara valley (328m), Gutu Hatu pahar (586m), Bara Guira peneplain (485m) in the northeast; Petapeti george (520m), Dewanbi peneplain (612m), Hatlluba Buru (545m), Kulla Buru (520m) pahars, upper Sanjai valley (512m), Gulruan gorge (595m), Manoharpur peneplain (385m) in the northwest; Kokcho peneplain (575m), middle Lli Gara valley (525m), Chitimiti gorge (950m), upper Roro Gara valley (480m), Jhinkpani tableland (460m), Jargannathpur table land (512m) in the southeast and Dirl Buru (559m), Chaou Buru (660m), pahar upper Konia (565m), Baitarni (450m) valleys in the southwestern part of the study-area. Although the above-mentioned areas fall under the category of moderate slope, a critical examination of the terrain reveals that the slopes, in several parts, varies between 10° to 15°.

**5.2.1.4 Moderately Steep Slope (Sms:10°-15°) :** This categories covers an area of about 706.56 km2 or 19.5% of the study-area. It is mostly confined to the stripper scarp zone of the upland margins and isolated highland. Table V.2 reveals that the altitudinal zones of 300m-450m, 450-600m, 600m-750m and over 750m account for 4.4%, 79.7%, 13.0% and 2.9% of the area under this category respectively.

This slope region covers a major part of the Chaibasa plain which are composed of Upper Gondwana rocks and have elevation of 750m. It is confined tothe Lota pahar (626m), Hararango Buru hill-complex (862m) in the northeast;

Putung Buru (743m), Jiling Buru (724m) pahars, Kutumati gorge (482m), Ganmor scarp (620m) in the northwest; Rang Buru pahar (595m), Deo gorge (512m), middle Konia valley (550m) in the southwestern part of the study-area.

**5.1.2.5 Steep Slope (Ss:over 15°) :** The area under steep slope is 307.20 km2 or 8.4% of the study-area only. The absolute relief categories of 300m-450m, 450m-600m, 600m-750m and over 750m accounts for 3.3%, 60.0%, 3.3% and 3.4% of the area under steep slope respectively (Table V.2).

Steep slope is confined to the Leharda gorge (650m) in the northeast; Leda Buru pahar (694m), Rengo gorge (595m) in the northwest; and Lutu Buru (862m), Bal Buru (475m) pahars, lower Konia valley (535m) in the southwestern part of the study-area. These area have, in common, very high relative relief, high dissection Index and high drainage texture.

Thus, on the basis of the above analysis, slope can be regarded as a better indicator of the surface characteristics associated with different height group; its distribution, however, shows a marked diversity. The relationship between slope and relative relief need not be emphasized here, because slope is a direct function of relative relief.

(862m7'aoja Chaou Buru (660m) pahars are characterized by^'higher sinal values of 0.3 and above.

**5.4 Summary and Conclusion :** The slope in the study-area has been analysed according to Wenthworth's method of average slopes. Thus 5 categories of slope-less than 2° (SI), 2°-5° (Sg) 5°-10° (Sm), 10°-15° (Sms) and over 15° (Ss), have been identified. These account for 15.3%, 27.4%, 29.4%, 19.5% and 8.4% of the study-area respectively. Level slopes (less than 2°)

characterize the alluvial plains of Kharkai, Sanjai, Gara, Deo and Kongera rivers. Similarly gentle slopes are noted around the margins of the Bhoyo, Pampara (352m) plains, Jogi buru (581m), Satbhalya (416m) pahars and Cahmpua tableland (278m) and moderate slopes occur in the Suribasa peneplain (510m), Gutuhatu (586m), Chaou Buru (660m) and Kulla Buru (520m) pahars have moderately steep to steep slopes. There is a moderate positive correlation (r=+0.55) between average slopes and absolute relief. Besides, isotangent and isosine maps have been prepared and analysed to assess the suitability of various types of terrrain for road buildings military manoeuvres and planning purposes.

## References


Calef, W.(1950): Slope studies of Northern Illinois. Transaction, Illinois Academy of Science, 43: 110-115

Davis, W.M. (1909): 'Geographical Essays'. Boston, Dover: 773

Eyles, R.J.(1965): Slope studies on the Wellington Peninsula. New Zealand Geographer, 21:133-143

King, L.C. (1957): On the ages of African landscape. Qur. Jour. Of Geological Society, London, 104:439-459

Miller, A.A. (1948): The dissection and analysis of maps. Presidential address 1948, to the Institute of British geographers, Pub. In Transaction of the Institute, 14:2

Miller, O.M. & C.H. Summerson (1960): Slope-Zone maps. Geographical Review, New York, 50:194-209

Raisze, E. & J. Henry (1937): An average slope map of Southern New England. Geographical Review, 27: 467-472

Rich, J.L. (1916): A graphical method of determining the average inclination of a land surface from a contour map. Transactions, Illinais Academy of

Robinson, A.N. (1948): A method for producing shaded relief form areal slope data. Surveying and Mapping, Washington, 8: 157-160

Singh, R.L. (1967): Morphometric analysis of terrain. Presidential Address, Proc.54th Indian Science Congress, Part II, Geology and Geography Section (Hyderabad): 115-135

Smith, G.H. (1935): The Relative relief of Ohio. Geographical Review, 25: 272- 284

Smith,G.H. (1938): The morphometric of landscape: An analysis of slope. Annals Association of American Geographers, 28: 63-64

Strahlar, A.N. (1952): Hypsometric (area-altitude) analysis of erosional topography. Bull, of Geological Society of America, 63, November: 1117-1142

Strahlar, A.N. (1956): Quantitative slope analysis. Bull. Of the Geographical

Society of America (New York), 67: 571-596

Wentworth, C.K. (1930): A Simplified method of determining the average slope of land surfaces. American Journal of Science, Series -5 (New Haven Cnnecticut), 20: 184-194.


***

Economics

Shodh Sandarsh-V, Vol.-XVI, Sept.-2017, Page : 181-183
ISSN No. - 2319–5908 (U.G.C. Approved Journal No. : 41329)

# मनरेगा योजना : सोनभद्र जिले के विशेष संदर्भ में

*डॉ. योगेन्द्र सिंह**

महात्मा गाँधी राष्ट्रीय रोजगार गारंटी अधिनियम (मनरेगा) भारत सरकार की एक सर्वोत्कृष्ट ग्रामीण रोजगार परियोजना है, जिसे 7 सितम्बर, 2005 को अधिसूचित किया गया था एवं फरवरी 2006 में प्रारम्भ किया गया। यह सम्भवतः सार्वजनिक सुरक्षा एवं लोक निर्माण कार्यों पर आधारित विश्व की सबसे वृहद् एवं महत्वाकांक्षी परियोजना है।

अपने कार्यान्वयन के 6 वर्ष के भीतर मनरेगा के मूलभूत सिद्धान्त एवं इसकी उच्च कार्यक्षमता भली-भाँति स्थापित हो चुकी है। वास्तव में देश के कुल ग्रामीण परिवारों में लगभग एक चौथाई (25 प्रतिशत) परिवार इस परियोजना में भाग लेते हैं, जो इसकी बढ़ती लोकप्रियता का स्पष्ट प्रमाण है।

इस कार्यक्रम की शुरुआत से अब तक लगभग 110,000 करोड़ रु0 सीधे ग्रामीण परिवारों को उनकी मजदूरी भुगतान के रूप में दिये जा चुके हैं एवं 1,200 करोड़ श्रम दिवस रोजगार के रूप में सृजित किए गए हैं।

**मनरेगा–**यह अधिनियम 7 सितम्बर, 2005 को अधिसूचित किया गया तथा प्रथम चरण में 2 फरवरी, 2006 को देश के लगभग 27 राज्यों के अति पिछड़े 200 जिलों में लागू किया गया जिसकी शुरुआत प्रधानमंत्री डॉ0 मनमोहन सिंह ने आंध्र प्रदेश के अनन्तपुर जिले के बांदलापल्ली ग्राम पंचायत से किया। वित्तीय वर्ष 2006-07 में इसके लिए 11300 करोड़ रुपये का केन्द्रीय बजट प्रावधान/आवंटन किया गया तथा ग्रामीण निर्धनों के कल्याणार्थ पहले से संचालित **'सम्पूर्ण ग्रामीण रोजगार योजना एवं 'काम के बदले अनाज का राष्ट्रीय कार्यक्रम'** उन जिलों में नरेगा के अन्तर्गत समाहित कर दिया गया, द्वितीय चरण में नरेगा का प्रसार व विस्तार करते हुए वित्तीय वर्ष 2007-08 में 12000 करोड़ रुपये के बजट का आवटित कर देश के अतिरिक्त 130 जिलों में लागू किया गया। इस प्रकार देश के कुल 330 जिलों में 'राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारन्टी योजना एकरूप' लागू हो गयी। अतः वित्तीय वर्ष 2008-09 में 'नरेगा' हेतु 16000 करोड़ रुपये का बजट आवेदन कर देश के शेष सभी जिलों में 1 अप्रैल, 2008 से इसे प्रभावी कर दिया गया है। यथासमय, सत्सम्बन्धी घोषणा करते हुए केन्द्रीय ग्रामीण विकास मंत्री श्री रघुवंश प्रसाद सिंह ने कहा था कि **''इसमें से 163.12 करोड़ रुपये पहले ही नये 274 जिलों में प्रारम्भिक गतिविधियों के लिए जारी कर दिया गया है।''** महात्मा गाँधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारन्टी योजना अभी तक संचालित ग्रामीण विकास, गरीबी, उन्मूलन एवं रोजगार सृजन सम्बन्धी अन्य योजनाओं से सर्वथा भिन्न है क्योंकि यह विधि अधिकार प्रदान करती है। इस योजना का मुख्य उद्देश्य 'देश के ग्रामीण क्षेत्रों में प्रत्येक ग्रामीण परिवार (गृहस्थी) को जिसके वयस्क सदस्य अकुशल शारीरिक कार्य करने के लिए स्वेच्छा से आगे आते हैं कम से कम **100 दिनों का निश्चित (गारन्टीड) रोजगार प्रत्येक वित्तीय वर्ष में उपलब्ध कराकर उनकी आजीविका सुरक्षा को बढ़ाना है।'** इसमें एक तिहाई लाभभोगी महिलाएँ होंगी। ग्राम पंचायत इस योजना की क्रियान्वयन इकाई है तथा गृहस्थी (परिवार) लाभ प्राप्त-कर्ता इकाई है। इस योजना की मुख्य विशेषता यह है कि इसमें समय-सीमाबद्ध रोजगार गारन्टी, पारदर्शिता, उत्पादक व स्थायी परिसम्पत्ति सृजन, बैंक व डाकघर में खोले गये खातों के माध्यम से मजदूरी भुगतान आदि के साथ-साथ समुचित सामाजिक लेखा परीक्षण, बहुस्तरीय निर्देशन व निरीक्षण तथा सार्वजनिक जवाबदेही का समावेश है। इस योजना के प्रभावकारी क्रियान्वयन में नागरिक समाज के संगठनों के विशिष्ट योगदान को मान्यता प्रदान करने हेतु **'रोजगार जागरुकता पुरस्कार'** गत वित्तीय वर्ष से ही प्रारम्भ किये जाने की घोषणा की गयी है।

**महात्मा गाँधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारन्टी अधिनियम–**(1) महात्मा गाँधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारन्टी अधिनियम 2005 (अधिनियम संख्यांक 42, वर्ष 2005) की धारा 4 की उपधारा 1 में प्राविधान है कि धारा 3 के प्रावधानों

* *अर्थशास्त्र विभाग, शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, अमरपाटन, सतना (म.प्र.)*

को प्रभावी बनाने के उद्देश्य से प्रत्येक राज्य सरकार इस अधिनियम के प्रारम्भ की तारीख से 6 माह-विस्तारित एक वर्ष के भीतर अधिसूचना द्वारा तत्सम्बन्धी एक योजना बनायेगी।

2. किसी ग्रामीण क्षेत्र में निवास करने वाले ऐसे परिवार के वयस्क सदस्य (पुरुष-महिला) जो 18 वर्ष की आयु पूर्ण कर चुके हों तथा अकुशल शारीरिक कार्य करने को तैयार हों रोजगार के लिए आवेदन दे सकते हैं। तीन चरणों में पूरे देश में लागू करके समग्र विकास पर विशेष बल दिया गया है।

3. समुचित जाँच के बाद ग्राम पंचायत आवेदन परिवार (गृहस्थी) को आवेदन की तिथि से **15 दिनों के अन्दर एक फोटोयुक्त रोजगार कार्ड जारी होगा जो 5 वर्ष के** लिए वैध होगा।

4. जिन लोगों को रोजगार दिया गया है उनमें कम से कम एक तिहाई महिलाएँ होंगी।

5. नियोजन और क्रियान्वयन में पंचायती राज्य संस्थानों की केन्द्रीय भूमिका होगी।

6. इस योजना में स्वीकार्य कार्यों की विभिन्न श्रेणियाँ इस प्रकार हैं–

(i) सूखे की रोकथाम (वृक्षारोपण और वनारोपण सहित)।

(ii) बाढ़ सुरक्षा एवं प्रभावित क्षेत्र में जल निकासी की व्यवस्था।

(iii) सिंचाई नहरों के साथ सूक्ष्म एवं लघु सिंचाई कार्य।

(iv) अनुसूचित जाति एवं अनसूचित जन जाति/ गरीबी के रेखा से नीचे/ इंदिरा आवास योजना लाभान्वितों तथा भूमि सुधार लाभान्वितों की जमीन के लिए लघु सिंचाई, बागवानी, एवं भूमि विकास।

(v) ग्रामीण सम्पर्क मार्ग का निर्माण जिससे सभी मौसमों में पहुँच का उपबन्ध करने के लिए ग्रामीण संयोजकता संभव हो सके।

(vi) परम्परागत जल स्रोतों का पुनरुद्धार एवं शुद्धीकरण

6. परियोजनाओं की सूची ग्राम सभा द्वारा तय की प्राथमिकता के आधार पर बनायी जायेगी। कम से कम 50 प्रतिशत कार्यों के क्रियान्वयन का उत्तरदायित्व ग्राम पंचायतों को दिया जायेगा। **मजदूरी/ श्रमिक और सामग्री अनुपात 60:40 का रहेगा।** ठेकेदारों तथा श्रम विस्थापन मशीनरी का इस्तेमाल या प्रयोग बिल्कुल नहीं किया जायेगा।

7. आवेदकों को गाँव के 5 किमी0 की त्रिज्या के अन्दर रोजगार उपलब्ध कराया जायेगा। यदि कार्य स्थल इससे ज्यादा दूर है तो उन्हें 10 प्रतिशत अतिरिक्त मजदूरी दिया जायेगा।

8. कार्य स्थल पर श्रमिकों हेतु स्वच्छ पेयजल, विश्राम की अवधि के लिए तथा बच्चों के लिए शेड, प्राथमिक उपचार बाक्स आदि सुविधाओं की व्यवस्था उपलब्ध करायी जायेगी।

**9. महिलाओं के लिए इस योजना में विशेष सुविधा प्रदान की गयी है। 6 वर्ष से कम आयु के बच्चों की संख्या यदि 5 या इससे अधिक है तो कार्य स्थल पर उन्हीं महिलाओं में से एक महिला की तैनाती बच्चों के देख-भाल के लिए की जायेगी और उसे सामन मजदूरी दी जायेगी।**

**10.** मनरेगा केवल बी0पी0एल0 परिवारों तक ही सीमित नहीं है। ग्रामीण क्षेत्रों में पहले से जनकल्याणार्थ संचालित 'सम्पूर्ण ग्रामीण रोजगार योजना, 25 सितम्बर, 2001 (SGRY) एवं 'काम के बदले अनाज का राष्ट्रीय कार्यक्रम, 14 नवम्बर, 2004 (NFFW) ' का मनरेगा में विलय कर दिया गया है।

11. केन्द्रीय सरकार भारत के नियंत्रक महालेखा परीक्षक के परामर्श से योजनाओं के लेखाओं की सभी स्तरों पर सम्परीक्षा के लिए समुचित व्यवस्थाएं विहित कर सकेगी।

**मनरेगा का परिणाम–**महात्मा गाँधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारन्टी अधिनियम के क्रियान्वित होने के बाद ग्रामीण मजदूरों का सबसे बड़ा फायदा यह हुआ कि उन्हें उनके श्रम का उचित मूल्य मिलने लगा जिससे उनके श्रम शोषण पर पूर्ण विराम लग गया। मनरेगा ने सामाजिक न्याय की अवधारणा को भी बल प्रदान किया है, कल तक जो उपेक्षित था, वह सशक्त हुआ है, मनरेगा के तहत उसे पहचान मिली और आज के देश की मुख्य धारा में शामिल हो गये हैं एवं राष्ट्र निर्माण में अहम भूमिका निभा रहा है। देश के कुल ग्रामीण परिवारों के लगभग एक चौथाई (25 प्रतिशत) परिवार इस परियोजना में भाग लेते हैं, जो इसकी लोकप्रियता का स्पष्ट प्रमाण है। कार्यक्रम की शुरुआत से अब तक लगभग 110,000 करोड़ रु0 सीधे ग्रामीण परिवारों को उनकी मजदूरी भुगतान के रूप में दिए जा चुके हैं। 1200 करोड़ श्रम दिवस के रूप में सृजित किए गए हैं। वित्तीय वर्ष 2006-2007 से वित्त वर्ष 2011-

2013 में महिलाओं की मजदूरी पर लगभग 53,000 करोड़ रु0 खर्च किए लगभग 47 प्रतिशत महिलाओं द्वारा किया गया है। वित्तीय वर्ष 2010-2013 में 70 प्रतिशत काम कृषि के मंदी मौसम में किए गए। 2011-2013 में ग्राम पंचायतों में औसतन 50 से 60 कार्य दिवस थे। वित्तीय वर्ष 2011-2012 में केरल में महिलाओं की भागीदारी सबसे अधिक (93 प्रतिशत) रही है, जबकि उत्तर प्रदेश और जम्मू कश्मीर ने महिलाओं की भागीदारी 18 प्रतिशत और 17 प्रतिशत दिखाई है। महात्मा गाँधी मनरेगा ने वित्त वर्ष 2006 से वित्त वर्ष 2011-2013 में 1,10,700 करोड़ रु0 (कुल 166,000) करोड़ रुपया के कुल व्यय का 66 प्रतिशत श्रमिकों के मजदूरी के रूप में उपलब्ध कराए हैं।

**सोनभद्र जिले की भौगोलिक स्थिति**—सूखे की मार को लगातार झेल रहे सोनभद्र क्षेत्र पर्वत मालाओं एवं जंगलों से आच्छादित इन्हीं में से एक है, सोनभद्र क्षेत्र का कुल भौगोलिक क्षेत्रफल 7388.80 वर्ग किमी0 है, जो 25.52 और 25.32 उत्तरी अक्षांश तथा 82.72 एवं 83.33 पूर्वी देशान्तर के मध्य में स्थित है। प्रशासनिक सुविधा के दृष्टि से इसे तीन तहसीलों राबर्टसगंज, दुद्धी एवं घोरावल में विभाजित किया गया है, एवं आठ विकास खण्ड राबर्टसगंज, चोपन, दुद्धी, बभनी, घोरावल, नगवाँ चतरा एवं म्योरपुर में विभाजित किया गया है वर्तमान में इस जिले का मुख्यालय राबर्टसगंज में है।

यह कहा जा सकता है कि सोनभद्र उत्तर प्रदेश के पिछड़े क्षेत्रों में शामिल है। यह सूखे की मार को झेल रहा है। जिस कारण यहाँ के लोगों के रहन-सहन के स्तर में तथा रोजगार में कमी आयी है। वर्षा के दिनों में नदी तथा नालों में यहाँ पर्याप्त मात्रा में जल रहता है। लेकिन शुष्क मौसम में कर्मनाशा, चन्द्रप्रभा रिहन्द एवं कनहर जो की मध्य श्रेणी की नदियाँ हैं ये गर्मी में सूखे के कगार पर पहुँच जाती हैं। बांध एवं तालाब की व्यवस्था को और सुदृढ़ करके सिंचाई के साधनों की स्थिति सुधारी जा सकती है।

**अर्थ व्यवस्था एवं कृषि**—सोनभद्र क्षेत्र में कृषि योग्य भूमि 2.5 प्रतिशत है। यहाँ का 75 प्रतिशत क्षेत्रफल पहाड़ एवं वनों से घिरा हुआ है। कृषि योग्य कुल भूमि 152529 हेक्टेअर है, 2011 की जनगणना के अनुसार सोनभद्र क्षेत्र की कुल जनसंख्या 1,862,6112 है, जिसमें कुल पुरुष जनसंख्या 973,480 एवं महिलाएं 889,132 है, 2011 की जनगणना के अनुसार 23.74 प्रतिशत जनसंख्या की वृद्धि हुई है, सोनभद्र क्षेत्र में आठ ब्लाक हैं इन सभी ब्लाक के आधारभूत विकास के लिए कई महत्वपूर्ण योजनायें मनरेगा के द्वारा चलाई जा रही है।

**सोनभद्र में मनरेगा की स्थिति**

| ब्लाक | स्वीकृति धनराशि | कुल खर्च (लाख) | श्रम | सामाग्री | | जॉब कार्ड | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|
| | | | | | अनु0 जाति | अनु0 जन जाति | अन्य |
| आठ ब्लाक | 3079.19 | 4533.13 | **2954.55** | 1332.34 | 96932 | **83224** | 138007 |

*स्त्रोत—ग्रामीण विकास मंत्रालय, भारत सरकार। सोनभद्र मनरेगा वार्षिक रिपोर्ट 2013-14*

## सन्दर्भ-सूची


1. डॉ0 गुप्ता, एम0एल0 एवं शर्मा, डी0डी0, ''भारतीय ग्रामीण समाजशास्त्र'' साहित्य भवन पब्लिकेशन, आगरा, 2008, पृ0 सं. 513
2. डॉ0 शर्मा, दीपक, कुरुक्षेत्र, अक्टूबर 2013 , अंक 12
3. मनरेगा रिपोर्ट 2006-2014 ग्रामीण विकास मंत्रालय भारत सरकार
4. www.Sonbhdra.nic.in
5- www.manrega. nic. in
6. Ministry of Rural Development, www. rural.nic. in
7. Deprtment of Agriculture, www.agricoop.nic.in


***

English Literature
Shodh Sandarsh-V, Vol.-XVI, Sept.-2017, Page : 184-187
ISSN No. - 2319–5908 (U.G.C. Approved Journal No. : 41329)

# Feminist Empiricism:A Psycho-analytic Study

***Dr. Ram Mohan Tiwari****

It is only natural that 'Religion of Blood' cannot be disregarded, but it is possible to elevate this nature to the level of culture. In the nineteenth century there were four major movements-Brahmo Samaj, Arya Samaj, Ramkrishan movement and the theosophical movement inform us how a human being to suffer from different mental ailment when his Various natural instincts are suppressed. When we consider our Indian woman is caught in the flux of fear and faith, Joy and sorrow, love and hate, tradition and modernity. On one hand there is the burden of traditional past chasing her like a shadow and on the other hand she was containing fortitude of future to look forward to. The depiction of woman in Indian English novel is complex and multifaceted. The view about Indian women is biased by racial and imperialistic prejudice. Indian-English fiction was the true outcome of the Indian exposure to western culture and art forms like the novels. Modern psychology delineate a struggle to co-ordinate the divergent cultures of the East and West in the image of the woman. Indian-English fictions realises how a woman is preyed to injustice and discriminate in the family and explores the reasons behind the traditional view and out-dated beliefs. The movement towards realism and naturalism show up in the Indian-English fiction with Mulk Raj Anand. R.K. Narayan, Raja Rao, Arun Joshi, Kamala Markandaya, Anita Desai who considered our attention to the realistic problems of the suppressed members of society as well as the treatment of the woman. They agree with Shelley that creative writers or poets are " The Unacknowledged legislators of the world" In fact their fictional works testify to their missionary zeal and stead fastly oppose the breakdown of decencies of- Indian society.

This is to say that-"Philosophical thinking begins with human subject"- Among the various 'ism' that affected the west the principal ones were nationalism, democracy, socialism and Empiricism.

The place of women has been christened in two varying types- the Sita types who embodies the ideal of India womanhood and the character of femme fatale who threatens to ruin her lover and also disturb social peace. The feminist creative writers have faith in order to consider woman position in the Indian society one has to understand the system of patriarchy. They refuse to accepts the 'Image of woman' as portrayed by male writers, men all over the world looked at women from their points of view and not only that they have also taught and even forced women to look at themselves form mail points of view. We find an interesting account of woman's position in society.

Thus the period between1935to1945 was the most productive period to understand the soul of Indian society and shows faith in power of creative writings to awaken. "The slumbering conscience of woman." The creative and progressive writers have painstaking efforts to understand the soul of this land which has been expressing itself through Indian thoughts and Indian culture. We find in the writing of woman writer. "the still sad music of humanity" and pathos for wretched plight of women. As William Wordworth had already hinted in early spring. And much it grieved my heart to think' what man has made of man.

The political and social event of the forties and fifties the along with growing new opportunities of education and employment for women encourage women belonging to the Indian village and rural

* *Guest Faculty Department of English Govt. P.G. College Panna (M.P.)*

lower class to engage in little learning activities. The thematic concern of these woman writers have been centering around woman related issues such as dowry, Purdah, irrespective of creed,caste,ritual and convention,the social and real for the most of these writing is the urban middle class and the protagonist is more often than not a woman,Indian culture trates woman worth most reverence. Women are identified with Adi Shakti Devi or Primordial energy.

Basic to patriarchy is the conflation of sex and gender roles. The biological sex distinctions of male and female are by and large acceptable to feminists though with the increasing attention paid to homosexuality even those distinctions are being examined afresh……………. The social roles of wife, mother, housewife, assigned to women go hand in hand with a division into the public and private domain the first being the sphere considered proper to men, the second to women. women become 'the second sex' in Simon deoeauvoir's telling phrase . Milton's line, " He for God only, she for God in him" could will be cited as an example of the almost universally held assumption that man's purpose in life is to serve god, the state, society, not least his own self advancement, while woman's purpose is to serve man.

Munshi Premchand one of, the foremost of Indian Hindi novelists, depicts "the still sad music of humanity and sympathy for the plight of woman in Indian village society. He has given an expression to the aspiration of Indian women. The novelist himself taking place of Mehta comments on the various problems of worldly life; he began his address;

"Devijis when I address you like this goddesses- you find it nothing unusual. You take this honor as a matter of right. But have you ever heard a woman addressing a man as 'god'? If you address him as 'god' he will think you are pulling his leg, for sympathy, devotion and sacrifice are the precious virtues of a woman. And what about man? What has he to give? Nothing, he is not the giver, he is the taker. He fights to wrist his rights from others; struggle and violence are the basic traits of his character…….,In the scheme of evolution of human civilization, I consider the position of woman superior to men; in same way as love and sacrifice are always superior to discard and war. It will not good to society if woman leaving the temple of creation,decide to come to the battle field……..

Woman is as above man, and light is above darkness, sacrifice, non-violence and forgiveness are still distant ideal for man; but the woman breathes naturally. For ages man has been striving to achieve these ideals partly with the help of sages partly by his own Dharma, but in vain. I maintain that all his religious fervour and Yoga cannot match the sacrifice of women" (Godan P.P. 124-125)

As a humanist he depicts on "The status of women in changing times" praises women for their social roles of mother, sister , wife and eulogises the quality of compassion in them; but being critical of the compassion in them,but being critical of the present new tendency of woman being ultra modern butterfly. He comments on the various contemporary social issues and problems. Like an existentialist he believes in the freedom of individual giving his views on the institution of marriage which delimits freedom and adds responsibilities, he believes that love is the greatest virtue and marriage is only social contract. He says: "Marriage puts fences all around you".

Analyzing the works of Norman Mailer and Henry Miller a feminist critic, delineate their patriarchal bias and the sexual harassment dispossessed and disinherited, swindled out of her rights, respected by one and she does not respected yourselves. He looks at truth askance and strangely. It was "the kaleidoscopic perspective of colour, sight, touch, and sound".

While feminisms and post modernism have both worked to help us consider the predominant modes of representation at work in our society feminisms have given on the specifically female subject of representation and have focused to suggest ways of challenging and alternating those dominants in both mass culture and high art.

Elaineshowalter joins issue with Irving Howe on the interpretation of Thomas Hardy's famous scene of the drunken Michael Henchard selling his wife and infant daughter for five guineas at a country fair in The Mayor if Casterbridge, while Howe praises the brilliance of this scene, showalter question it in the following words.

What Howe like other male critics of Hardy conveniently over looks about the novel is that Henchard sells not only his wife but his child, a child who can only be female.Patriarchal societies do not readily sell their sons, but their daughters are all for sale sooner or later. Hardy wished to make the sale of the daughter empathetic and central; In early drafts of the novel Henchard has two daughter and sells only one but Thomas Hardy revised to make it clearer that Henchard is symbolically selling his entire share in the world of women. Having severed his bonds with this female community of love and loyalty, Henchard has chosen to live in the male community, to define his human relationship by the male code of paternity, money and legal contract. His tragedy lies in realizing the inadequacy of this system and in this inability to repossess the loving bonds he comes desperately to need.

Feminist writers and critics have keenly felt the complete and perfect negation of female experience and art of living in literature. Even the projection of the image of mother, sister wife has been compressed into a few acceptable roles. There are two basic types of image of women; positive roles which depict woman as independent, liberal, intelligent and even heroic, and a surplus if misogynistic roles commonly identified as the bitch, ultra-modern butterfly the witch, the vamp and the virgin/goddess.

The major concern of the Indian novelist in the "thirties" was social change. Between Gandhism and socialsm various shades of reform were advocated by creative writes. They stand out as the most outstanding figure whose novels depict with moving realism and tragic plight of Indian woman. The progressive writes had developed new literary trends in the direction of socialism. We find Vivekananda's attitudes to social reform are an indication of an advance in his own feeling- while a staunch supporter of social reform Vivekananda was not happy with the current rate progress in this regard.Most of the efforts made in this direction at this time were aimed at the higher and the educated class. The Purdah system, widow-remarriage,forced marriage and untold agony of the Indian widows or thodox way of life, unmated marriage are the greatest social problem, of our times which are crying out for women liberation,and each are relates to the educated classes.Vivekanand had a loftier ideal of raising the liberation of woman and educating and adopting them. They are the roots of Hindu society and the educated classes merely its branches.

The social concern of existential humanist was to depict bitter realities of life. They has painted the sad and pathetic plight of the life of Indian Hindu house wife who craves for personal freedom and dignity.She has natural desires of being respected and praised; of having and individual identify, which the conventional society denies to her. They highlight the problem of Indian woman in orthodox society.

The source of inspiration if the psychoanalytical theory is to be found in the principal of Freud and Adler in which an analysis based on sex inferiority complex of the subconscious mind is presented. Feminist literary theory is an interdisciplinary approach which focuses on gender politics. It emphasizes the ways in which discrimination against woman is manifested and how this can be resisted and countered. The most significant contribution of Indian literary critic to the philosophy of woman's emancipation is perhaps the theory of the whole man which forms the key stone in the arch of his comprehensive historican humanism. They start with a declaration of his immense faith in the protagorean dictum, "man is the measure of all things." W.T.Stace tries to give an admissible interpretation:

"Man is the measure of all things."

Certainly, but man as a rational being, not man as a bundle of particular sensations, subjective impressions, impulses, irrational prejudices, selfwill, mere eccentricities, oddities, foibles and fancies.

Any society is guided by the philosophy of human existence given to it by it's precursors the torch bearers ,the philosophers, the wise man, saints rishis and the seers, Indian civilization strength derives

from the fact that our social reformers addressed the question of human relation and gender,class discrimination and their certain place in the Indian society directly,when we concern the psychoanalysis itself , is a form of therapy which aims to cure mental disorder s by investigating the interaction of conscious and unconscious elements in the mind .This investigation is concerned upon specific disciplines of how the mind and the instincts and progressive work.

The concern with' conditioning' and' socialization' under pins a crucial set of distinctions-that between the terms 'feminist' 'female' and 'feminine'. The representation and place of woman in literature then was felt to be one of the most forms of socialisation since it provided the role which indicated to woman and men what constituted considerable modes of the feminine and their purpose and aspirations.Thus, in social concern In the 1970,s the major effort conceived into exposing and analysing what might be called the mechanisms of patriachy,that is the cultural mind set in men and women which regulated female inequality.Another fundamental issue ,on which opinion is just as polarised , the question of whether or not there exists a form of language which is inherently feminis. Genrally we find,the female writer is seen suffering the handicap of having to use a medium which is new essentially a male instrument fashioned for male purposes

For Helen Cixous(thogh not for other theorists) this kind of writing is some how uniquely the product of female psysiology ,which women must celebrate in their writing,

"Women must write through their bodies they must invent the impregnable language that will wreck partitions classes and rhetrorics, regulation and codes, they must some merge cut through, get beyond ultimate' reserve discource ,including the one that laughs it the very idea of pronouncing the word silence ............................such is the strength of women that sweeping away syntax ,breaking, that famous thread which acts for men as a surrogate umbilical cord"

Our social existentialists and humanists used to present their reader to own interpretation of life', both were concerned with basic problems of human exixtence, man's relationships with his fellows and with the universe beyond himself,The combined a violent hatred of the moral values of modern machanised civilization with a love of primitive and natural and a passionate faith and virtue in the prominant unique individuality.Man's primitive 'Religion of Blood' and the impulses which spring from his unconsious mind are his safest guides in life-AlI want to answer to my blood direct without fribbling intervention of mind or moral or what not,English ,norvelist D.H Lawrence's portrayals of these vital experiences of which is deeply conscious of their religious nature, the prophet of the primitive instincts and passions', his own appeal is to heart rather than the head.

## Works cited


1. Shirin Kundchedkar, "Feminist literary criticism: The groung Journal of Literary criticism 8:1(June 1996) 33.
2. Munshi Premchand Godan (PP 124-125)
3. W.T. Stace, a critical history of Greek philosophy (London, 1962) P-123.
4. Show walter, 1992-94
5. N.Geetha, "exploding the canon: Feminist writing and Intertexulity." Journal of literary criticism, 7:2(Dec. 1994), 61.
6. Pt. Deendayal Upadhyaya, Integral humanism 22nd April 1965.
7. Freud Sigmund,The interpretation of Dreams (pub.in 1900).
8. Jacobus Mary Reading women Essay in Feminist criticism(Metheuen,1986)
9. Showalter,Laine the New Feminist Criticism Essay on women Literature and theory (1985)
10. Marks and de courtivoron p-256
11. Mills Sara it all Feminist Reading an Introduction to Feminist Literature(Prentice Hall 1996)
12. Chritian Barbara New Black Feminist Criticism(1985-2000)
13. Jacobus Mary .ed Women Writing and Writing About Women(Croom Helm,1979)


***

English Literature
Shodh Sandarsh-V, Vol.-XVI, Sept.-2017, Page : 188-192
ISSN No. - 2319–5908 (U.G.C. Approved Journal No. : 41329)

# "Woman Of Present-Day-World In Namita Gokhale's Novels
## *Paro; Dreams of Passion And Priya; In Incredible Indyaa"*

***Ankit Khare****

Namita Gokhale, the giant idol of the famous novels, will need no introduction to the aficionados of Indian English Literature. She presents an image of the new woman of present-day-world. She is a well known feminist novelist among the Indian writers of the twenty-first century. She presents human life, quest for freedom and elementary passions in her novels with the perspective of woman. She tries to portrait a new image of woman of upper-middle class society in India and redefines feminine quest in her famous novels Paro; Dreams of passions and Priya; In Incredible Indyaa.Khushwant Singh pens that "Namita Gokhale writes grippingly about lust, love and death." Woman is the center of her fictional work her desire efforts and failure in the traditional Indian society are the main theme points in her novels. Her delineation of woman world is authentic, realistic and credible. She had great reverence of woman passions."Gokhale holds a mirror to a world where everything is carefully ritualized." In Paro; Dreams of Passion, the protagonist Paro is the representative of the woman of present-day-world. Her quest for freedom deals her deeds and proves what the rank and result of a individual woman are ? Paro became a dealt woman of the aristocratic Indian society, where everything is admitted for the sake of modern life style. She knows how to earn paisa, power, position and pleasure through employing of her feminine power. Green eyed Paro drinks jinn, a kind of alcohol.She dreams for passion, her passion is for pleasure and her pleasure is for leading a prosperous life but she failed to become a liberated woman and finally she committed suicide.

Quest for freedom is one of the most significant characterisation of a woman of present-day-world."Every woman must have money and a room of her own."Virginia Woolf means about the term room is not only a building Construction of four walls, a window and a door but alsoa the room is a space of her mind for generating thoughts and applying these thoughts for her quest for freedom.It is called her mental freedom. Gokhale also tries to fulfill the quest and wants to present actual circumstances of a young woman in the society of the twenty-first century. In Priya; *In Incredible Indyaa*, the protagonist Priya is aware that she could never be Paro, who is a voluptuous young girl leads to live lifein her own way. Priya is an endearing young girl who has now indulged into an elusive housewife of Suresh Kaushal, a famous politician in Delhi. She is at once nostalgic and dismissing of her life.

Priya is perhaps the most honest and content being a housewife and mother while she is a woman of contradiction that is the special feature of present-day-world.She likes her Gucci glasses and Dior bags even she observes her new friend Pooonam and follows her status and power with her voluptuous ways of life. She admits sex for the sake of sex.Priya does not care about being called a title 'mrs. Menopause'.

*"Got an sms from Pooonam, whom I did met at the Bhandpur wedding, 'Gal Palz get together sooon' love smooch hugga bugga!*

*Pooonam*

*Very soon I reply I really needed to make more friends." (PII 62)*

---

* *M.A., B.Ed. Research scholar, J.R.H.U.Chitrakoot,U.P.*

Here Priya the protagonist of the novel seems to become very curious to meet with Pooonam and reveals emptiness in her life, so she needed to make more friends. It had a large sale of the first book. This novel is written in satirical tone upon the upper middle class society in Mumbai and New Delhi. She depicted frankly sexual activities in this novel. Paro, the protagonist is a representative of an aristocratic woman. She is seen in desire, chasing fun and pleasure by enticing and entangling male persons in her circumstances. She leads lustful life, gets pleasure and exploits them. Finally she reaches at her last scene in her life. This novel was admired by many readers for the reason about bare-facts of life with humour and sympathy. This is a story of modern culture and freedom of upper-middle class people. Her dreams to lead a passionatic life of pleasure ultimate turned into gloom.Priya the protagonist looses her husband and adopted Paro's way of life. In the beginning of the novel, we find very unfeminine portrait of Paro. Priya's husband Suresh Koshal, the stout lawyer of sober habits, has propelled himself up the political ladder to become minister of state for Food-processing, Animal-husbandry, Fisheries and Canneries. She cannot believe their luck and determined to ensure it doesn't run out, struggles valiantly with 'social vertigo', infidelity and menopause. Along the way she also learns vital lessons on survival, as she watches her glamorous new friend Pooonam chase status, sex and jimmy choo shoes, and her radical old friend Lenin ride a donkey and lose his bearings.

Namita Gokhale is one of the best feminist writers amongthe Indian novelist as Anita Desai, Kiran Desai, Kamla Markande, Jhumpa Lehri, Rama Mehta, Geeta Mehta, Geeta Hariharan, Manju kapoor, Tasleema Nasreen, Shasi Deshpande, Sudha Murthi, Shobha De and Arundhati Roy. In first half of twentieth century novelists present a suppressed woman, who is searching for freedom but the society was a male dominated and settled at that time. So she should be a housewife, she should be a puppet under direction given by her father, brother, husband then soon as the traditional custom of her family.In later half of twentieth century India became free from the British government then the society adopted activities and life style of English-man. Sometime opposition and sometime acceptance of British life style, and the result is Indian society became moderncaused by the influences of western culture. It is called hybridization in the society of present-day-world in twenty first century. Both the protagonists Paro and Priya respectively in Paro; Dreams of Passion and Priya; In Incredible Indyaa are the representatives of the women of present day world. Paro is very conscious about her physical beauty. Her eyes are green, her make-over is much like a Chinese girl. Her dresses are very fashionable. She likes fashions like an aristocratic lady and leads to live like a modern girl. She drinks Jinn, a kind of Whisky. She entangles man one by another and uses them for paisa, power, position and pleasure. She utilizes her beauty and feminine power to lead a liberated life. The rank of woman is as equal as the rank of man in politically and socially manner in modern world, which is clearly defined by Namita Gokhale. The television also played a great role to build equilibrium state of different gender in the society. Woman of twenty first century desires her own 'room' not only building construction but mental also. She dreams for her freedom, she does deeds for her dreams, she works for her dreams come true. She does not care about traditional dogmas, which are the most impediments of her carrier and freedom. Gokhale is not only amusing the society of metropolitan cities like Delhi and Mumbai and also amusing on upper-middle class families, but also representing the picture of the society in satirical brush. An original is the real , it remains forever, hybrid is the fake, it falls into fallen fate. Fallen woman is a very sensitive theme of an aristocraticsatirist, The protagonist of the novel is presenting the ideology and developing the thoughts of the satirists ,Paro and Priya are Gokhale's novels, who admittheir own way to lead a happy life but realize at last their wrong selection so she things that nothing saved, everything has been lost then the protagonist Paro committed sucide.Namita Ghokhale seems as a committed writer. She has freely presented insensitive fatality of her heroines. She has rendered her work for counting upon the woman of present-day-world, she is the genius of feminine psychology. She boldly presents the psychological effects caused by external factors upon her protagonists Paro in Paro; dreams of passion and Priya in Priya; In Incredible Indyaa, women struggle

to havetheir freedom while living responsible and dutyful along with other members of the society. They are neither suppressed nor directed by the males in the male dominate society. They themselves struggle hard and emerge to lead their own life and they are not only conscious about their families but also conscious about their own selves. This consciousness leads them towards the direction of autonomous image. In this aspect Paro and Priya both protagonists became the representatives of woman of present-day-world.

Namita Gokhale is leading feminist novelists in twenty first century. Her novels reveal her keen concern for welfare of woman. Woman in her famous novel Paro: Dreams of Passion and Priya: In Incredible Indyaa produce and attempt to shake off the shakeless of social and self perspective. She presents the image of a new woman with features of the influences of present-day-world. Her protagonists denyto remain shadowy personality and utilize the power of feminine identities and their inner selves to come out of the man's personality and earn their individual identities.

Paro: Dreams of Passion is a very popular novel among the readers and critics in India and abroad. It came in 1984 when Namita Gokhale was of just 26 years. This is her first novel based on satire upon the aristocratic society of upper middle class in India. The protagonist Paro is an educated young woman who is an economically independent woman in search of love and her identity. She has much strength in her inner self, and she tries to discover it such as the other human being of the present-day-world. Gokhale presented Paro as a proud ambitious and self confident woman when she was in a boarding school she had a love affair with her school master Marcus consequently expelled from the school. At the college in Delhi, she met Mr. B.R. a nymphomaniac who is friend of many house-wifes and boss of a Sita Sewing Machines. He is not aware of Paro's affair with Marcus. B.R. fell in love with Paro and made love cum arrange marriage. She goes to the height of fulfilling her voluptuous desires and finally dropped into the deepest depth. Then she committed suicide. Her fatal flaw was vanity. The protagonist Paro is a heroic temptress. She is wandering through the world of privilege. She drinks Jinn a scotch Whiskey. Her life style is as well as modern life style. Priya, the narrator of the novel also love with her boss B.R., so she seems fury and jealous with Paro and she observes Paro in all time. Priya's fury is shown when Paro Marries with B.R. Gokhale tries to depict 'the modern life is a life of curiosity'. There is an Inter-play of reality and fantasy. The marriage of B.R. and Paro does not last long. After having free from their relationship, both they indulge in different and many affairs. Priya hurts to see the relationship of B.R. and Paro and she always observe the way of Paro's life style and she changes her life style and behaves like Paro. Now Priya follows Paro's way of life. She marries with Suresh but she does not like him. She continues with him due to social customs and welfare of her family. After her miscarriage Paro gifted a picture to Priya and Suresh the Picture was scary. Priya is watching the picture and says-

> *"I lost my baby,never before and never after have I known such pain,I am referring not to the physical pain.which was negligible but to the desolation the sudden emptying out of reason and beauty and hope form life in fact even today . Ican hardly wear even to write about it." (PDP 68)*

Priya and Suresh get away from each other and also the affection and attachmentdisappear from their conjugal life.

Suresh keeps him away from Priya and indulges in his work and reaches home late night. Priya feels loneliness and finds out the solution by getting a part time job in a book-shop but consequently not satisfied. Suresh persuades her to write her confessional diary. In this diary Priya writes matters related to Paro and her relations,Suresh and his appearance in her life and B.R. and Priya's physical relationship,she tries to hide her relationship with B.R. from her husband Suresh .but she is unable to hide. She regularly indulges in a double dealingto keep both the men in relationship with her. Priya needs Suresh for paisa,power and prosperity, she needs B.R. for pleasure,passion and physical

satisfaction. One day the truth is revealed when Suresh reads Priya's diary and Priya accepted that she had never loved Suresh. Paro as liberation,entangles one man to another after divorce. She has no fear about social custom and the life that she will have after the divorce. She divorces B.R.and takes money and property from him. She defies moral orthodoxy of patriarchal social system of the world. Paro here redefines the image of the woman who challenges the conventional values and customs. She decides to pay back B.R. in her own way .She also chooses a way of self consciousness to lead further life, that way is faithlessness. Paro emerges to find her true self.She compares her life with the life of Clymnestra and realizes that the male dominated social network has entrapped and degenerated her. She plays the role of clymnestra at the theatre. Priya says -

*"I am myself,she said theatrically and no one else.Idepend on nobody .*

*I am my own person." (PDP48) Finally Priya realizes that sensual love is not the actual love but fulfillment of desires is all so must to lead a liberated life.Priya returns to her husband's home and says-*

*"I am an Indian woman. I told myself,and for me and my husband is my God ." (PDP129)*

Finally the protagonist Paro realizes that the zone for her life place is produced through glamorous western way of life style such as jewels,sex and wine,is not the real way of modern way of life. Sex for the sake of sex is fake phenomenon for present-day-world.

Paro carries emptiness of pleasure during the whole lifelong. Priya knows that she could never be Paro.but both Paro and Priya choose their own way and set up themselves in struggle and exploitation,but are unable to lead their lives effectively.

"*To prevent an inner life that has no useful purpose from sinking into nothingness to assert herself given conditions which she wears rebelliously to create a world other that in which she fails to attain her being ,she must resort to self expression."(Rashmi Gaur P110*)

Priya is not only the protagonist of the novel Priya In Incredible Indyaa but also the narrator of the novel, she narrates her own story in confessional tone. Gokhale knows that the confessional writing is much popular among the readers, so she employsPriya again as a narrator as well as in paro–dreams of passion. Priya likes fashion like Paro. She says –

"I opened apprehensively, A diamond necklace glittered
against the deep blue velvet,finely crafted swirls of light
clustering into a breath taking garland."(PII108)

"Gokhale presents the dreams and desires of the members specially female gender of upper-middle class society.Their interest in materialists prosperity is depicted by the novelist. The novelist knits a net of the affairs of the rich and prosperous family members of present-day-world. In this novel Gokhale tries to relate infatuation and family responsibility.The fantasy is concerned as inner theme in the both novels. Priya and Pooonam both are observed sophisticated persons, they often seem in search of love and quest forfreedom. Priya says –

"A spare of calls and urgent sms messages from Pooonam. I gave into the relentless pressure and called her back. She was sobbing on the phone, Darling, darling Priya. I need you. We women have to stick together. Men are such bustards.And such liars, Never, never but never believe anything a man tells you or some women I thought to myself."(PII103)

They both Priya and her friend Pooonam are self conscious women who become hatredof male society due to the regards of their experiences in their lives,so they decide to untrust upon man's promises but they think that every woman has kept the spiritof freedom. Pooonam discovers her inner self in every woman of the world.

Namita Gokhale presents much about the internal problems of feminine perspective. She never tries to strike the equilibrium in tradition and modern lifestyle. She depicts very boldly the psychological

aspects caused by external agencies upon the protagonists of Paro in Paro ; Dreams of Passion and Priya in Priya;In Incredible Indyaa. Paro and Priya both are epitome of consciousness and vitality of feminine. In both novels protagonists are governing the plot and presenting as a central figures. They refuse to imprison in man-made narrow domestic walls. They represent the women of present-day-world and gravitate defiance men in their own ways. They don't care about its side-effects.Namita Gokhale's women are always in search of their own room in their families and society where they struggle to prove their individual identities against the circumstances. She presents unsuppressed woman in her novels. Her women don't want to spend their precious lives under the veil, even they urge to raise their voices against the age-old traditions and dogmas.Women of her novels, struggle to achieve freedom and being liberated persons.

## Work cited

1. Namita Gokhale,Paro; Dreams of Passion, London Chatto and Windus,The Hogarth Press,198
2. Namita Gokhale,Priya;)n Incredible Indyaa, Replika Press Pvt. Ltd. Penguin Viking,2011
3. Rashmi Gaur"Women's Writing Some Facets, Namita Gokhale's Paro A Tale of Two Ladies, New Delhi Sarup and Sons 2003
4. Anand T.S., Paro: A Psychological Approach in R.K. Dhawan's Indian Women Novelists; New Delhi, Prestige Books, 1999
5. Gupta Monika Women Writers in the Twentieth century Literature; New Delhi: Atlantic Publishers And Distributors, 2000..
6. Nityanandan Indira, Three Great Women Novelists; New Delhi: Creative Books, 2000.
7. Bhagdikar Vandana, Fiction of Namita Gokhale;A Critical Study, Prestige Books International, New Delhi 2015
8. Dhawan R.K.,Explorations in Modern English Fiction,New Delhi, Bahri,1992

***

English Literature
Shodh Sandarsh-V, Vol.-XVI, Sept.-2017, Page : 193-194
ISSN No. - 2319–5908 (U.G.C. Approved Journal No. : 41329)

# Role of Women in The Novels of Kamla Markandaya

***Dr. Gauravendra Vikram Singh***

Kamla Markandaya occupies a prominent place as a novelist in Indo-Anglian literature.She won world wide name and fame after the publication of her first novel Nectar in a Sieve.She is an impressive explorer of human consciousness and of the convolutions of intimate inter-personal relationships, in the whirlpool of disparate and divergent cultures.women has been the focus of many literary works down the centuries.In an age of development and flux in every field one can not easily ignore half of the population.The concept of Indian womanhood is as divergent as the country itself and has undergone drastic and dramatic changes from era to era.India has travelled from her glorious past to degeneration, from spiritual ascendancy to communal clashes ,from captivity to independence from agrarian revolution to cyber technology.The Role of Indian woman has also changed from that of deity to devdasi, from shakti to abla, homebound creature to a professional. A post-Independence writer, Kamla Markandaya draws her canvas on the socio-economic scene making her novels a wonderful Kaledoscope.Her characters represent a wide spectrum:peasent,queens and conqubines,rural and city- bredss,English officials in India and Indian émigrés in England.Traditional patriarchal society confines woman to the taboo-riden path.Markandaya's debut novel Nectar in a Sieve,exemplifies the large mass of of under privileged rural woman whose backs are bent with ill-rewarded labour.She narrates her life with tenant Nathan "who was poor in everything but in love and care for me,his wife whom he took at the age of twelve."(8)They gradually becomes the victim of two evils: the Zamindari system and Industrialization.Degradation of the female is neatly woven into the fabric of this novel.When Ira is born Rukmani sheds "sheds tears of weakness and disappointment,for what woman wants a girl for her'first-born'? (19).Literature as well as society around us reinforce the image of the Indian woman as Pativrata,the patronage of all the virtues.Yet the same society does not chastise a husband for for marital disloyalty.Rukmani is shocked to learn about the infidelity of Nathan. "Disbelief first, disillusio-nment ,angern,reproach, pain.To find out ,after so many years ,in such a cruel way.'(90).Indian womanhood has "to be explored,experienced,and understood in all its vicissitudes ,multiplicities, contradictions and complexities."[1] Markandaya's women ,though victims of nature and society never give in compleately.They are like leaves of grass :the humblest,the most dowentroden ,continually being rooted up and and continually reappearing,pushing their way,surviving all pressures and sprouting again with vigour and vitality.

Compared to Nalini in A Handful of Rice Rukmani is relatively free.The fun-loving,bright eyed girl confronts the realitiiies and hardships of life once she is married to Ravi.When Apu,the anchor of the family dies poverty grinds them down.Though not of the caliber of Rukmani or Ira,Nalini survives the pressure of their financial posi and the brutality of her husband.Her gentleness and sensibility enable her to guide Ravi gradually from the clutches of the underworld.The tender and loving approach of

* *Assistant Professor- Department of English, S.B.P.G. College, Badlapur, Jaunpur*

Nalini restores peace in the family. "she was constant,a rock to which he could cling and keep his head level when his views and values began their mad dance."(118).Her children take refuge in her constant and undemanding love.Her first born's fatal sickness and death drain out all her energy.Yet she does not allow herself to be shattered for she knows "life has to be lived and other children have to be looked after."[2]In this urban atmosphear of poverty ,exploitation and corruption Markandaya highlights woman's power of endurance, patience and inexhaustible love.This feminine spirit armourrs her woman in in their struggle for a handful of rice.

Even amidst material prosperity "many woman live with harrowing feelings of psychological insecurity ,lack of personal status" and a sense of alienation(Parikh1 62) The woman characters in Some Inner Fury,though better equipped with education and wealth than their counterparts in the for them.This novel chronicles the repercussions of the freedom struggle on the lives of educated ,upper class women.Premala epitomizes the traditional concept of the vative upper class woman.She belongs to a consertvative Hindu family and tries to remould herself to her husband's modern anglicized tastes "thoughshe tried desperately,she plainly found it difficult to adapt herself to him."(37) She sacrifices all aspirations for personal freedom and happiness, yet she fails to bridge the cultural gap between herself and Kit,her husband.Mira her sister in law feels sorry for h tem her.Her unfulfilled maternal feelings find an outlet in nurturing an orphan child.Srinivas Iyengar opines about her "she is symbolic of Mother India who is compassion and sufferance ,who must indeed suffer all hurts and survive all disasters."(440)

Markandaya's fictional canvas thus portrays certain social conventios and attitudes that victimize woman. Yet neither the struggle for survival nor the social inequalities can defeat them complea tely.Chronicling the experience of the Indian woman Markandaya shows her as the pillar of the society supporting,strengthening and enduring everyone around her.

**WORKS CITED**

Markandaya Kamla.Nectar in a Sieve.1954.New York: Signet,1982

Some Inner Fury.Newyork:Signet.1955

A Handful of Rice.1966.Bombay : Orient

(1) Parikh Indira J. and Pulin K.Garg.Indian Woman:An Inner Dialouge.New Delhi, Sage 1989

(2) Uma Alladi.Woman and Her Family---Indian and Afro-American: A literary Perspective.New Delhi: Sterling, 1989.

***